

डा. लक्ष्मीबाई (सुभाष)

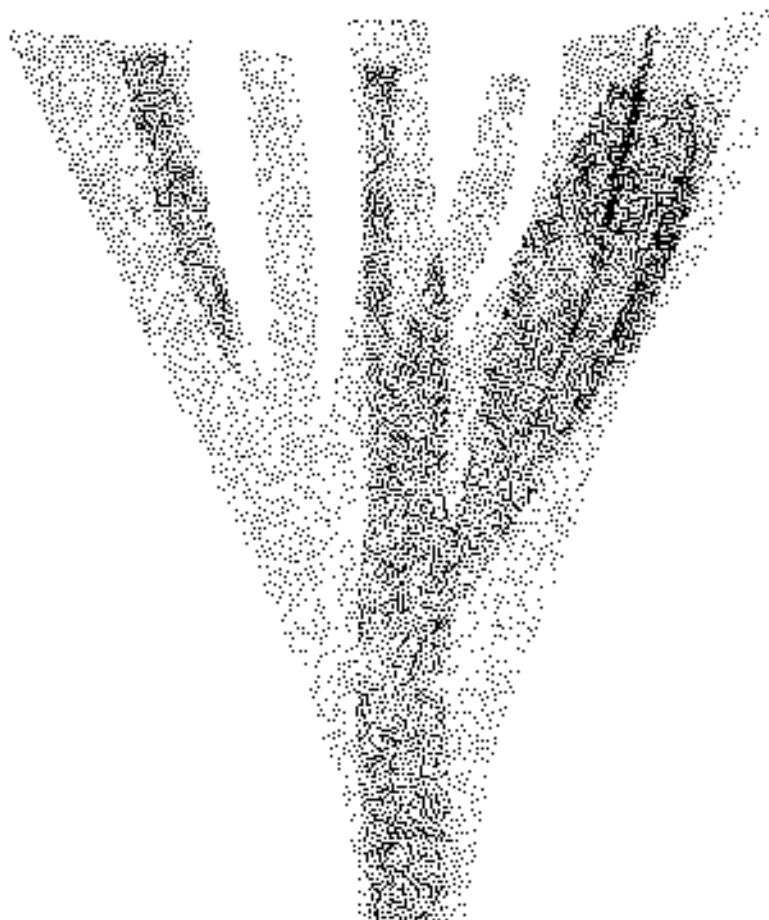
अव्यक्तस्य नृपतिः मूलं रक्तघाश्व भूमिणः ।
सोऽस्मेतायिषाः सेनाः एतलवाः कुमुभानि च ।
शाः कलानि भूभराया बीज भूमिः प्रकल्पिता ॥
(भुवनीनिमार ५१२२-१३)

राज्य रपी वृक्ष की जड़ राजा है, स्कंध मंत्री है,
रापति शासक है, सैनिक पत्ते और फूल हैं, तथा
शा फल, और भूमि बीज है ॥

॥ भारतीय राजनीति का चरित्र ॥

निर्भूल वृक्ष का फल

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल



त्रिपि प्रकाशन

अनुग्रह

पल धो-डाईं दलकों में मैं यज्ञ बराबर गून्तता और देखता रहा हूँ कि --कुछ भी करने बड़ो, उसमें राजनीतिमा जायगी --कॉर्ड भी चीज जो अच्छी भासी चल रही हो, यदि उसे नष्ट करना है, तो उसे राज्य के सुपुर्द कर दो, वय । राज्य और राजनीति, राजनीति और राज्य जैसे मनुष्य और समाज को उसके स्थान से हटाकर उस पर अत्यंत काबिज हो गए हैं । इस मनुस्मिति और गच्छार्थ के भीतर ये जिग दिन मुझे यह प्रश्न आते आते प्रायः हुआ कि, यह जो हमारा वर्तमान राज्य है, राजनीति है, यह है क्या नीच ? राज्य के नाम पर जो राजनीति चल रही है, उसका हमारे जीवन में, देश में, मरण में क्या रिश्ता है, क्या प्रयोग है और क्या अर्थ है ? अगर यह कहना मेरे लिए बड़बोनापन न समझा जाय तो मुझे यह कहने की अनुमति दें कि मैंने निश्चय के समाने यह प्रश्न उनके भीतर ने उनके भासने आया था कि यह जीवन क्या है, यह अर्थ क्या है—ठीक उसी प्रकार मेरे सामने मेरे भीतर से यह प्रश्न आया कि यह हमारी राजनीति क्या है ?

यह प्रश्न तब मेरे भीतर घबना पूर्ण स्वरूप नहीं ले सका था, जब मैं जय-प्रकाश का जीवन-चरित लिख रहा था, या अहमद-आंदोलन में जब मैं उनके साथ था । मेरे भीतर इस प्रश्न ने अपना संपूर्ण स्वरूप प्राप्त किया २६ जून १९३५ की सुबह । इस प्रश्न के आसने-वासने स्वरा होकर, इसके साक्षात्कार में जिना का कुछ पड़ा, गोपा, गांधी, सोया, उसे बड़ा गाना काँटन है --मायव सम्भव है । परंतु इस प्रश्न के संदर्भ में जो गहरी बात मेरे हाथ लगी वह यह कि जब तक राज्य समाज के समीप था, तब तक राजनीति नहीं राज्यधर्म था परंतु जिस समय से राज्य समाज पर हावी हुआ, उस क्षण से राजनीति शुरू हुई । जहां जिना का भाव होगा वहां उनकी ही राजनीति होगी । राजनीति का एकमात्र लक्ष्य है जिन हाथों करना । शक्ति का स्रोत है मनुष्य और समाज—इतने धीरे-धीरे इतकी शक्ति हथियाकर एक दिन राजनीति जिस सत्तावादी राज्य का रूप देती है, वहां मनुष्य और समाज अंततः अपने

अद्विष्टान्ति परिरह्यात् राजानमतिस्त्रादिमम् ।
अद्विष्टान्य कुतः श्रेयो सवृते लभते फलम् ।
(महाभारत शांतिपर्व ५७।१६)

॥ जो राजा सर्वोत्तम अधिक जाना चाहता है,
प्रजा उसके निकट हो जाती है । प्रजा जिसमें
विशेष करे, उसका कल्याण कैसे संभव है ॥

हित, कल्याण और धर्म के स्थानित्व से हाथ धीरे बैठता है—आज भारतीय राजनीति का यही मूल चरित्र है। इस चरित्र में केवल 'राज' है, 'नीति' गायब होती चली गई है। यहाँ इस क्षेत्र में आकर दर कांडे जैसा वही राज बनना चाहता है।

देरा क्यों हुआ ? अंगरेजों ने इस देश को जो राज्य व्यवस्था दी उसका केवल एक ही लक्ष्य था कि उस व्यवस्था में वे इस देश पर राज करें—और राज्य का केवल यही उद्देश्य था कि इस देश का वे लूटें और हर तरह से यहाँ की उन्नति का नाश करें। इस राज्य व्यवस्था की परंपरा में आजादी के बाद भी हमें डिमोक्रेसी, प्रजातंत्र और वह पश्चिम की डिमोक्रेसी का एक सहज विकृत भारतीय रूप है। धुनियादी तौर पर यह चूकि भारतीय नहीं है, भारतीय मनोपा और सत्ताधियों से उगी हुई नहीं, इसलिए जिस डिमोक्रेसी का चरित्र इंग्लैंड में प्राकृतिक है, हमारे यहाँ उसी डिमोक्रेसी का चरित्र स्वभावतः मध्ययुगीन और सामंतवादी है। मैंने धारणा कि भारतीय जीवन यहाँ की धरती पर उगे घूस पर आए हुए फल की तरह है। बीज, वृक्ष, फूल और फल—फल पककर वृक्ष को सहज ही छोड़ देता है, यह है भारतीय जीवन का सहज रूप। फल का वह बीज फिर उसी धरती में उगता है और उसका वृत्ताकार जीवन उस भारतीय संगीत की तरह है जो 'ग' से शुरू होकर 'ग' पर समाप्त नहीं होता बल्कि धरा से पुनः शुरू हो जाता है, और यह प्रक्रिया ही भारतीय जीवन का प्रवाह संगीत है। परंतु ठीक इसके विपरीत वर्तमान राजनीति के निर्मूल वृक्ष पर जो सत्ताधारी फल एक बार किमी तरह लगता है, फिर वह फल कभी नहीं पकता, न कभी स्वतः वृक्ष से अलग हो पाता है। जो एक बार राजनीति की कुर्सी पर बैठा, वह कभी भी उस कुर्सी से उतरन नहीं हो पाता है। इस विकृत भारतीय राजनीति के चरित्र का निर्माण यही कंस, यही और किम तरह हुआ, इसके अंतर्विरोध हैं जिन्हें देखने का प्रयत्न मैंने अपने इस प्रस्तुत काम में किया है। इस राजनीतिक चरित्र के निर्माण में कितने व्यक्तियों और शक्तियों के बितने और कौन-कौन से हाथ हैं, और इस सत्तावादी राजनीति के खिलाफ यहाँ की संस्कृति अपने बितने पुरुषों द्वारा संघर्षरत हुई है—एक विस्मृत, विराट् घरातल पर, विविध प्रसंगों और संदर्भों में यह मैंने पहली बार अपने दम से देखने का प्रयत्न किया है।

भारतीय राजनीति का चरित्र किसी प्राचीन नाटक के नायक के चरित्र से क्या काम है ? इस नायक के आसपास कितने अर्थ चरित्र हैं, यह देखना वास्तव में आश्चर्यजनक होता है। यहाँ कोई चीज एक-दूतरे में अलग नहीं है। सब कुछ एक-दूतरे में जुड़ा है—साहित्य, संगीत, धर्म, जीवन, व्यक्ति, समाज और राज्य, सब कुछ परस्पर सम्पृक्त ! इस देखने और पहचानने की प्रक्रिया में मुझे अनेक महत्वपूर्ण शक्तों, शक्तियों और सहयोगियों ने मदद मिली

है। विशेषकर फाई० प्रा०००० अमरनाथ पांडे के प्रति अपनी शक्ति का ज्ञान तथा मेरे साथ रहेगा।

नेहरू महोदय का अनुमन्य मैंने यह आर्थ पूरा किया है। कर्ताओं के प्रति अपनी कृतज्ञता के प्रति । अपने परिवार और साधुओं को स्मरण करना मैं निमित्त के कितने जाने-अनजाने लोगों, के आशीर्वाद का ही यह फल है।

य को रक्षता है—राज भारतीय
स चरित्र में वैश्व-राज है, 'नीति'
प्रकार हर को रक्षे वही राजा

य को जो राज व्यवस्था दो उसका
वे इस देश पर राज करें—योग
को वे वृद्ध और हर तरह से यहाँ
स्था की परंपरा में धारणी के वाद
विषय की विमोक्षों का एक गहन
यह चर्चा भारतीय नहीं है, भारतीय
इसलिए जिसे विमोक्षों का चरित्र
की विमोक्षों का चरित्र रक्षकवतः
कि भारतीय जीवन यहाँ की भारतीय
। नीति, बुद्धि, पूज और फल—यह
है भारतीय जीवन का सृष्टि रूप ।
ता है और उसका वृत्ताकार जीवन
गुण होकर तो पर समाप्त नहीं
। ही यह प्रक्रिया ही भारतीय
मके विपरीत वर्तमान राजनीति के
निर्भीतर वह भगता है, फिर यह
फल ही पाता है । जो एक बार
त दुर्भोगे बनग गही हो पाता
का निर्माण यहाँ कैसे, क्यों और
के का प्रयत्न मैंने अपने इस प्रस्तुत
निर्माण के किन व्याक्तियों और
और एक राजावादी राजनीति के
दुर्भोगे द्वारा गणपत हुई है—एक
और संदर्भों में यह भी पहली

राजीव गांधी के नायक के चरित्र
में अन्य चरित्र हैं, यह देखना
ही जीव एक-दूसरे में भ्रम नहीं
संगीत, धर्म, जीवन, व्यक्ति,
! इस देखने और पहचानने की
और सहयोगियों से मदद मिली

है । विशेषकर आई. आई. टी., दिल्ली, के समाजकारण के अधिकार श्री
समरनाथ पांडे के प्रति अपनी तादिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ । उनके सन्तान
का श्रेय सदा मेरे पास रहेगा ।

नेहरू मेमोरियल यूनिवर्सिटी लाहौर, तीस मुक्ति, नई दिल्ली, से ही बैठकर
मैंने यह कार्य पूरा किया है । इस लाहौर के सभी प्राध्यापकों और कार्य-
कर्त्ताओं के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, विशेषकर ट. ए. हर्षदेव शर्मा
के प्रति । अपने परिवार और खासकर श्रीमती आरती लाल के प्रेममय सह-
योग को स्मरण करता हूँ जिसके बिना यह कार्य संभव नहीं था ।

कितने ज्ञान-समर्थाने लोगों, मित्रों, विद्वानों और मेरे पूर्वजों और श्रुतियों
के आशीर्वाद का ही यह फल है । यह सब भेगा वहीं सबका है— न गम् !

—लक्ष्मीनारायण लाल

अनुक्रम

पहला भाग

१. देवता / १५
२. फल / ३२
३. बीज : हम / ४१
४. वृक्ष : हम लोग / ५०
५. बीज और फल : राजधर्म / ६२
६. निर्मूल वृक्ष : आज की राजनीति / ७०

दूसरा भाग

७. राजनीति और सशपावहू : आजादी और स्वराज्य / ६६
८. राजनीति नहीं प्रेम : महात्मा गांधी / १०६
९. संकल्प से महत्वाकांक्षा : जवाहरलाल नेहरू / १२६
१०. विद्रोह से स्वयंभू : राममनोहर लोहिया / १५१
११. संघर्ष से लोकतन्त्र : जयप्रकाश / १७४
१२. दंड से संघर्ष : नमगुप्तिवाद / २०१
१३. राजनीति से राष्ट्रीयता : दीनदयाल उपाध्याय / २१७
१४. महत्वाकांक्षा से अविद्यास : इंदिरा गांधी / २२६
१५. राजनीति और हम लोग / २४३

निर्मूल वृक्ष का फल

पहला अध्याय

देखना

अपने पूरब के मुद्दर गांव से बस्ती नस्वा, बस्ती से इलाहाबाद शहर, फिर दिल्ली, बंगर, कलकत्ता, पटना महानगरों में लौटकर फिर अब वहीं पड़ाओं से अपने गांव गलाबपुर धुंभता हूँ तो पाया हूँ—इस बीच पूरे पलायन का क्या हाल ? इस लानत से क्या-क्या मिला ? और इस प्रकृति में क्या-क्या देखा ?

मिला यह कि ज्यों-ज्यों पति बने जाओ, दुःखान् और बढ़ती जाती जाती है। अगर इतना ही होता तो भी एक था। भर्त्सना बात यह कि जो पाया उसे भी पूरा ने नहीं मया, जो मिला वह महत्वहीन हो गया उसी क्षण। जो नहीं मिला और देख रहा हूँ कि यों-की भील गया है, बस, वहीं भाड़िए मुझे, जाते भी हो जाए।

इस कष्ट नष्टक का मैं ही शकल पाय नहीं हूँ—क्यों मैं मेरी ही तरह पाय। देखा यह कि जो उदां है वह तो नहीं है, अक्षय नहीं है, वहीं जाना चाहता है।

इसका मूल कारण यह देख कि पहा हमरा कुछ है ही नहीं, सर्वत्र वहीं एक ही है। अभी सब वहीं एक, वहीं समान होना चाहते हैं। सत्य है। सर मेरे इस देश में कितने असह्य लोगों ने कब में आज तक यही बात तो नहीं है, तरह-तरह से कही है। राजनेता, उद्योगपति, विद्वान्, यकणर सबका यही विचार है। फिर भी वही बुझा होने, और अधिक धनी बनने और अधिक भोगों के लिए इतनी चाहना ! और वह भी इतनी क्यों बढ़ती जाती है ? यह बात तो समझ में आती है कि इतना मिला और इतना देय रह गया। पर यह क्या है कि जो मिला वह तो है ही (मूलतः मिला ही नहीं) और मिल जाए, और और और पाते की लालसा उत्तरेणर बढ़ती जाए ? लालसा, अर्थहीन, मांग, संघर्ष, लड़ाई, डमन, फिर इस मांग की संज्ञा: पूर्ति। फिर उससे दुगुने वेग की लालसा, मांग—एक और सतत समतोल बढ़ाना, दूसरी ओर उससे व्यापार करते रहना। मैंने देखा, यही है राजनीति। यह मैं अपनी 'समन्वयिका' (न्यायशास्त्र) से नहीं बह रहा हूँ—जो जैसा है, जो क्या-क्या है, उते उनी तरह

देखकर कह रहा हूँ ।

यह राजनीति क्या है ? एक महान्तंत्र (मिस्टम) का कार्यरूप, माध्यम, शक्ति, विधान, व्यवस्था जो हम पर लारी हो गयी गई जिनके प्रभावतंत्र, लोकतंत्र, समाजवाद, मानव-स्वतंत्रता, मानव कल्याण, मानव उत्थान, सामाजिक विकास, जैसे भारी-भरकम और भौतिक शब्दों के परम आत्मिक और अक्षय जाल में हमें फास दिया गया ।

यह महान्तंत्र, 'ग्रेट मिस्टम' क्या है ? जहाँ मनुष्य इसके दुःखों और पर, शक्ति इसके मागे मनुष्य नहीं है, कोई सामाजिक प्राणी नहीं है, केवल 'बिनेवाला' या 'अभांगिना' है, देनेवाला नहीं, केवल पानेवाला है । यह महान्तंत्र समस्त विद्या, मानव ज्ञान, सारी कलाएँ, साहित्य और दर्शन का गुच्छ है, बाकी सब इसके शिष्य हैं । जो कुछ सब तक हुआ है इस अताशरी में और जितना कुछ आज हो रहा है सब कुछ इसी के इशारे पर, इसी के अधीन हो रहा है । यही कर्ता है, जेय सब उपभोक्ता हैं । यह बहुत बड़ी मशीन है, बंध है, मनुष्य इसमें केवल एक पुर्जा है । पुर्जा इस मशीन में भ्रमर आवाज करता है तो उसकी दो ही स्थितियाँ हो सकती हैं—या तो मशीन की चाल में पिथकर एक क्षण उसकी आवाज अक्षय हो जायगी, शब्दों उस क्षण करनेवाले पुर्जे को बदल दिया जाएगा, और उस बेकार पुर्जे को नष्ट करार दे दिया जाएगा कि इसकी अभाव ही ने कोई दोष है । इसे गला दिया जाए, और भ्रमर इसकी भाव ही में कोई दोष है तो इसे नष्ट कर दिया जाए ।

यह बीस-पचीस वर्षों में आने देना भारतवर्ष के बारे में कुछ विविध लेखकों की किताबें पढ़ने का मिला—तोमर चौधरी, बी० एम० भाग्यल वृन्विजुमल, एरिक एरिकसन, मन्वेन लाम्की, आर्थर कोणनर आदि-आदि ।

मुझे लगा, ये लेखक नहीं किंगो यय में चर्चित कल्पुतले है । ये उन ग्रेट मिस्टम के शिष्य हैं, जहाँ 'नालेज' एक 'इंडस्ट्री' है—'नालेज इंडस्ट्री !' जल उद्योग ।

तो उस 'ग्रेट मिस्टम' में राजनीति भी एक इंडस्ट्री है । गारा कुछ पर व्यावसायिक उद्योग है, जिसकी बुनियाद व्यक्ति नहीं, मनुष्य नहीं, 'इंडिविजुमल' है ! हम संदर्भ में 'इंडिविजुमल' क्या है ? 'इंडिविजुमल' अर्थात् प्रतिस्पर्धी, असंनष्ट, स्वाधीन और अनतः उपभोक्ता—हर वस्तु उस 'मिस्टम' में कुछ न कुछ लेने का जालघरी, भिलारी, या डूमरी और अन्तम में एक-दूसरे की हत्या कर उसकी 'भोज' को हड़पनेवाला । लालमा और लालमा, मांग और मांग, भय और भय, हिमा और हिमा, शक्ति और शक्ति—यहाँ है उन राजनीतिक संस्कृति का 'इंडिविजुमल' ।

तो यह महान्तंत्र, राजनीति जिसकी आकारशक्ति है और जिसका माध्य है हमने को अपने अधिकार में रखना, उसमें 'इंडिविजुमल' का अपना महत्त्व क्यों

है ? इतनी ही बात नहीं, यह गहरा का व्यक्ति, गरीब व्यक्ति, गिन्न वर्ग का व्यक्ति । फिर फिर अलग-अलग व्यवस्थाओं में यह इंडिविजुमल, यह किसान हर इंडिविजुमल एक वर्ग अभिसम्बु है ! हर मिस्टम में सड़ता है । जैसे इस जाल में शिक्षक लड़ रहा है, वह प्रति अधिकार है, और यह गोचर अस्पताल में, या मशीन के पुर्जा जाता है ।

भारतवर्ष में सन् १९४७ आने लगा । सन् १९४२ के सन् १९६२ के बाद वह इन्धन-विचारना और फैसला दे देने की देत है—यह भी मैं था एक और 'इंडिविजुमल' को मूल्यहीन साधक करने रहना । वह किसी दिन क्लककर पूरेगा न स्थिति और व्यवस्था ही न मिले महान्तंत्र का बहुत बड़ा महायय की युद्ध के संसारक अन्त बना बांध रखने, अधिकार में कर ही मनुष्य की इच्छाओं को अन्त की अन्त विशाल और जिन न, यह एक विज्ञान ने हर 'अन्त' कंपनी ने भारतवर्ष को राज-को उपभोक्ता बनाना आता । कोई नवाज, कोई शक्तिवाली पु वह अपनी ही जेब में ने पुर्जा आर ?

आगे-पहन इस अन्त मगर है । यह विज्ञान और राजनीति इच्छाओं केरा की जाती है । और

वर्गों का आदर्श, मध्यम, ही गटे इतिहास, लोक-पण, मध्यम-वर्ग, सामाजिक के परम आदर्श और अन्ध

मनुष्य इसके तुरंत छोड़ पर, प्राणी नहीं है, केवल 'मिनेवाला' बना है। यह महात्मा बनकर और वर्णन का गुरु है, बाकी इस महात्मा में और ज्ञाना, अभी से उद्योग में ही रहना, बहुत बड़ी मशीन है, बंध है, तब से परम आकाश करता है। मशीन की भाँति में दिक्कर, तब मार करनेवाले पुर्जे को ह करके दे दिया जगत्मा कि भाग, और अगर इसकी बात

के बारे में कुछ विचार लेखकों एस. नाथपात्रा मुक्तिरहाहन, माने-पारि ।

तब बहुत ही है। ये उन ब्रह्म है—'मानेच उद्योगी' जान

इसकी है। जहाँ कुछ एक ही, मनुष्य नहीं। 'इतिविशुभल' इतिविशुभल' वर्गों, इतिविशुभल, इतिविशुभल' तब तक उस 'मिनेवाला' तब तक उस में एक-दूसरे की हत्या कर लस), मांग और मांग, भय ही है उन सामाजिक संस्कृति

है ही प्री, मिनेवा, मान्य है 'मिनेवा' का अपना महात्मा वर्गों

है ? इतनी ही बात नहीं, यह असंभव वर्गों में बंटा है—गांधी का व्यक्ति और गहर का व्यक्ति, भारीव व्यक्ति और घनी व्यक्ति, ऊँचे वर्ग का, मध्यवर्ग का, निम्न वर्ग का व्यक्ति। फिर उच्चवर्ग में इतने वर्ग, मध्यवर्ग में इतने वर्ग। फिर मध्यम-प्रत्यक्ष व्यक्तियों में बंटा व्यक्ति—यह उद्योगपति, यह राजनीतिक, यह वृद्धिजीवी, यह किसान, यह मजदूर, यह दलित का बानू । मतलब हर इतिविशुभल एक वर्ग है, और हर कोई उस वर्ग संघर्ष का 'मिनेवा' अभिमान है ! हर मिनेवा अभिमान एक मिनेवा में जन्म लेता है, उसी में बढ़ता है। उसे दग बात का भी भय दिया जाता है कि वह 'मिनेवा' के खिलाफ लड़ रहा है, वह प्रतिपक्ष में है, स्वतंत्रता-समाजता उसका बन्धनमिद्व अधिकार है, और यह सोचता हुआ वह एक दिन किसी मध्य कुर्भरता में, समता में, या मशीन के पुर्जे की तरह चलते-चलते एकाएक समाप्त हो जाता है।

भारतवर्ष में सन् १९४७ के बाद मनुष्य यही 'इतिविशुभल' बनाया जाने लगा। सन् १९६२ के बाद वह राजनीतिक बनाया जाने लगा और सन् १९६२ के बाद वह इतना ते 'बोटर' हो गया। ऐसा सोचता, निष्कर्ष निष्ठावता और फैसला दे देना भी उसी राजनीति की प्रकृति है, उसी की वन है—वह भी मैं मान्य का मायारण जन देख रहा हूँ। क्योंकि एक और 'इतिविशुभल' की अर्थों महत्त्वपूर्ण और तुरती और उसे मर्यात सुनसहीव सावित करने रहना यही तब दुहरी चान्द है उस 'महात्मा' की, नहीं तो वह किसी दिन रुककर पूछेगा नहीं कि ऐसा क्यों है ? भयने और प्रश्न करने की शक्ति और प्रवण ही न मिले इसमें महात्मा की विज्ञान ने। विज्ञान इस महात्मा का बहुत बड़ा महात्माक है। उसने तरह-तरह की मशीनें बनाई, मशीनें की युद्ध के संहारके शत्रु बनाए, हर तरह में मनुष्य और उसके समाज को बांध रखने, प्राधिकार में कर रखने के लक्ष्युरत में लक्ष्युरत उपाय दिए, साथ ही मनुष्य की दुःखाओं को अपार बनाए रखने के लिए उपभोग, और उपभोग को प्रयोग दिनाए और दिन नए खोजे मालि। पहले कोई देश बाजार होता था अब दग विज्ञान ने हर व्यक्ति को बाजार बना दिया। अर्थों की रंर इतिव्या कंपनी व आनन्द की ताजा बनाया, स्वतंत्रता के बाद इस देश के हर व्यक्ति को उन्मात्ता बनाना चाहा। अर्थों में पहले सुख सजा, भारतीय नरेण, कोई नबाव, कोई अजितपाली मुख्य विनता चाहता था ? एक सीमा पर आकर वह अपने ही जीवन में कुछ वैदता था—इसके बाद क्या ? क्या है इसके शत्रु ?

माने-पारि इस और मार में सब अपने इस प्रश्न के उत्तर कुछ विधानते है। उन विज्ञान और राजनीति के एक युग में उनका केवल उन्मात्ता है। इन्मात्ता की जाती है और अपनी पुर्ति के उन्मात्ता में उन्मात्ता बनाना उन्मात्ता

कर दिया जाता है कि वह एक धन कहे हम ही नहीं सकता । कक्या मुमुक्षु है प्रथम कर्म की संभारना ही भिन्न जग, इसी है लक्ष्य हम महात्म का विज्ञान जिसका सहायक है, राजनीति जिसका परम भाष्य है ।

आधुनिक राजनीति की एक ही वृद्धि है— दूर का अपने साधनार में रखना । 'दूर' की प्रकृति क्या है ? दृष्टाओं की दृष्टि दृष्टाओं का भोग नहीं, केवल प्रति । क्योंकि जब तक एक इच्छा पूरी होती है, इस प्रक्रिया में हमारी इच्छा स्वतः जन्म ले लेती है—भीत का प्रदूष ही नहीं रहना ।

दृष्टिगत दूरता की दृष्टाओं का प्रमाण है हमारे को हमारे अधिकांश में अपने का दृष्टिगत तब तक ही भागे हैं—व्यापार, उद्योग, वाणिज्य । राजनीति का मातृ व्यापार है, वाणिज्य है, उद्योग है, यह रहता तो बसा यथोक्त है । अनन्त इस दृष्टाओं की वयाधे को सुन्दर चीज में देखने-प्राप्तन के लिए अर्थतः से एक 'चीज' की कला, यह ही दर्शन है, जन्म का प्रतिनिधित्व । प्रतिनिधित्व को राजनीति । जो राजत आया प्रतिनिधि कहा से लाया जाए ? तबत स्पष्ट था, इस वैया किया जाए । भारत को उसे शिक्षा ही जग । विदेश कर्षण शिक्षा से, प्रेम से, प्रेमोत्ती पुत्रको और प्रेमोत्ती विचार और जीवन प्रज्ञा से एक नया वर्गीकरण वैया किया जाय, मध्यवर्ग, उच्चवर्ग और निम्नवर्ग । उच्चवर्ग प्रतिनिधित्व करे भारत देश का, मध्यवर्ग मर्यादा लेकर हा और निम्नवर्ग देशी वर्गों की सेवा करे ।

एक वर्गों में भारतवर्ष पर भाग है अपने उद्योगिक शक्तियों में प्रतिष्ठ नहीं है, अर्थतः की प्रतिनिधित्व ही राजनीति । हम आया मुक्त है, हमारा प्रतिनिधि बनना है—भारत, हम तो प्रजा के मध्यक है । पर हमें पता नहीं है, या भावना पता ही कि वह मरना किसी की मुलायमी कर रहा है । किसी मुलायमी ? आती पती की । मरना ही मुलायमी ही अंततः मरती जातकों और इच्छाओं की मुलायमी ।

सन् १८३२ में चार्ल्स डार्विन ने एक इतिहास कर्तों की तरफ से वर्गों के बड़े बड़े परिवर्तों और मुक्तों की प्रकृति और प्रकृति-वृत्त लोगों के स्थान में भारतवर्ष का 'विचार' बना है ? परिवर्तों और मुक्तों में बनाया । रिवाज केलाके को ही गई और हमारे फलना दिया कि अब अपने (अर्थतः) इतिहास में 'विचार' में प्रेम कहना । ऐसा विचार जो अर्थतः व्यवस्था, 'विचार' महात्मन की मुलायमी कर लके । मुक्त में रती गई दृष्टिगत भाषा और इसकी बुनियाद पर ही पीछे गये गये—मरना पीछा शिक्षा का, दूसरा पीछा विचार का । पहले पीछे से नलक, बाढ़, हाविस प्रकाश हुए । दूसरे पीछे से विचारक, प्रेमोत्तर और नार्डो सी० एम०, पी० सी० एम०, इतिहास, वैज्ञानिक, उद्योगिक, पत्रकार, लेखक, मुद्रिणीवी पैदा हुए ।

एक छोटा वृक्ष, एक बड़ा वृक्ष— और दोनों ही निर्मूल !

पहले उस देश को लड़ने के लिए करने पड़े । पर जब एक बार मुक्त होने भी पर-वाहन चागे लक्ष्य में ही पूरी मरती, एक तंत्र वैया किया । नामत कर लके और हमें बड़े पाते ।

इस महात्मन को वहभी जानकर का जो मार्ग उन्होंने रखा, हमारी शिक्षा के वास्तविक उपा महात्मन के ही धर्म भांती की । मरना ध्यान उद्योग (मन), मुक्तता विद्यापीठ (भांती), मुक्तिम बुनियादी (नर लक्ष्य पर राष्ट्रीय शिक्षा और आर्थिक विचार) में लड़ना नाहा पर अब एक तंत्र उद्योगी भांति के आग मर मुक्त या सब भी वही महात्मन कार्यरत है, व इसके अधिवार कर लिया है ।

आर्थिक जाने के नाश ही भाग विफलता राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्त फल निर्मात है हम जगत पर कि मनुष्य हृदय में बुनियादी परिवर्तना ही महात्मनो उद्योगे एक महात्मन को हमें ही हमीनिता, हम संपूर्ण महात्मन के लिए एक संपूर्ण भारतीय जीवनतंत्र की मरना अपने उद्योग विचारों को अपने जीवन में बन गए पर अभी वेध है संपूर्ण भाषा ।

भांती को मैंने लिखा कुछ देना पर भाष हम देश से कह रहा है कि हम महात्मन के लिए संपूर्ण प्रतिनिधित्व साधनों में कति नहीं व्यापार कर्षणों में मैंने देखा है, सन् १९३२ में मनुष्य प्रवर्ण पर हम महात्मन में वीर्यवानों के लक्ष्य नहीं जो जानो जो हम महात्मन नहीं है—यह वास्तविकता का काम बनानों का । जो एक बार संपूर्ण प्रवर्ष को विनि से कर्तों की परिभाषा की है—क

स्वतंत्र किमंत ? भय से । भय, अर्थात् संघकार, भ्रम । भ्रम, अर्थात् न वेन पाना । न देख सकने के कई उदाहरण हमें प्राप्त हैं । पहला है धर्म का उदाहरण, जब धर्म अपनी धरमगीमा पर पहुँच जाता है तो धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिए ईश्वर का अवतार होना है । जब पुरातन व्यवस्था में सामूहिक परिवर्तन भगवत् रूप में हो जाता है । यह भारतीय उदाहरण है ।

दूसरा उदाहरण फ्रांस और इंग्लैंड का है—क्रान्ति के नाम पर समानता, स्वतंत्रता और संभुल्य का दर्शन । इनके लिए राजकीयता और इस क्रान्ति से जो राजकीय विफलताएँ यह यह कि कुछ बड़े नाम आदर्श, साधारण जनता, और उसका लाभ उठाए ऊपर का आरामी । भये गाँव, फावदा उठाए अहर । तथाह हो गये, पालियामेंट पर कब्जा ही समीरो और तान्त्रिकों का ।

तीसरा उदाहरण है—मावर्तवायियों का— व्यवस्था में ही क्रियशी परिवर्तन हो । पुरी व्यवस्था मजदूरों के हाथ में । मैंने देखा है कि मजदूर मजदूर चलानेवाला ता होता है, पर उनके नाम पर व्यवस्था चलती है, ऊपर के कुछ एक ही दो परम शक्तिशाली व्यक्तियों के हाथों । वर्ष में एक बार यह प्रहसन जरूर खेल दिया जाता है कि सत्ता मजदूर के ही हाथ में है ।

चौथा विषय उदाहरण यह है कि गरीब क्रान्तियों मातृसक अंगुष्पन, विद्रोह, उन्माद के कारण है, अतः इनमें सावधान रहो—यह अमेरिका की देन है ।

क्रान्ति या परिवर्तन के विषय में छे चारों विचारधाराएँ धार प्रकार की व्यवस्थाओं में निकली है । क्रान्ति या परिवर्तन के नाम पर एक व्यवस्था के भीतर में केवल दूसरी व्यवस्था आ जाती है । अन्तर्गत यह है कि केवल अन्तर्गत रूप में ही परिवर्तन हो जाय, इसकी पुरी तैयारी तब पर विचार और निरन्तर गाँधी के विचार, पर अब तक दक्षिण प्रयाग नहीं हुआ । यह अती महत्त्व, उनी 'ग्रैंड सिस्टम' की विषय है जिसके खिलाफ गाँधी लड़ते हुए लड़ते हुए ।

व्यवस्था में ही परिवर्तन हो जाय, इसका अकेला उदाहरण गाँधी ने अपने दम नीम में प्रस्तुत किया ।

पर हमारे यहाँ करने समय के अन्तर्गत इस विषय पर बहुत ही गंभीरता से विचार किया गया है । व्यवस्था में परिवर्तन को प्रजा का अवतार कहा है— यह प्रजा का अवतार इच्छा, मनीषियों द्वारा इच्छा विद्या गया अंगु है । भीष्म ने महाभारत में कहा है कि यह प्रजापति किमी एक शासन में बंधाव्य नहीं है । इसके लिए संपूर्ण को देवता होना । प्रजापति को में अपने समय के प्रजा में 'अकल्प' कहा जाता है । पहले परिवर्तन का अर्थ ही, फिर अपने देव, तब प्रजा की परिस्थितियों के भीतर में उस अर्थ को देवता गया कि उसके गोले

सत्य क्या है ?

सत्य एक बीज है—जिस सत्य है, जैसे वृक्ष का फल उस नहीं है । हमारे यहाँ अखंड, म इसके देखना होगा, जैसे म

तब मैं नाटक के अर्थ को या और फिर उसे अर्थ में की निरुद्ध या तंत्र के भीतर पैदा देखने चलें हैं । देखना क्या कि क्रियाना देखना उनता ही प्रक सत्य है ।

कहते हैं कि गाँधी नव विष्णु उनमें कुछ महायज्ञा मानी सभी लुम्हारे देव में क्रान्ति न पहिले जीव में पौराणिक विकास फिर क्रान्ति, नव भगवान्वाद आ कि यह सत्य मुझे बताए कि मैं और तब स्या । हमारी सदायना

गाँधी चरणों परने देता न का काम करने लगे, वे अपने को को परने कि देना समान की गया है, इसकी ताकत क्या है, अ

हीक यही नाम गाँधी न कि में । गाँधी ने दिखाया कि देवी चं तरह एक-प्राणामी (नर नाइमं वट्टेड रणोय ने मन् ५९३३) पीवी का अध्वयत कर यह पाया निरु अर्थ में कुछ क्रान्ति करने सिरम' में दूतनी दूर रही है ।

प्रजा में भी देखना है कि व जहाँ इनता कुछ करने का है, वहाँ क्यों हूँ नहीं है ? यह किना भगवान् मानी, लोहिया, जयप्रकाश सब कुछ मैंने अनुभव किया है कि मात्र स्वतंत्र और उपभोक्ता समाज

अर्थात् संभार, भ्रम । भ्रम, अर्थात् न
इसमें प्राप्त है । पहला है भ्रम का
सीमा पर पहुंच जाता है तो भ्रम की पुनः
है । तब पुरानी व्यवस्था में आधुनिक
यह भारतीय उदाहरण है ।

का है—कांति के नाम पर समानता,
निम्न राज्यकर्तृता । और इस कांति से जो
रे साम्राज्य, साम्राज्य जनता, और
मरे मात्र, पालना उठाए गए । नवाह
नीरी और तापनरों का ।

का—व्यवस्था में ही वृत्तियाँ परि-
वर्तित हैं । ये देखा है कि पञ्जाब गलीन
पर व्यवस्था चलती है । ऊपर के कुछ
होयों । वर्ष में प्रभाव कर, पञ्जाब
के ही साथ में है ।

कि शांति का विना नानात्मिक अर्थव्यवस्था,
से शांति प्राप्त हो—एक अर्थव्यवस्था की

ये चारों बिना-रक्षात्मक नाना प्रकार की
वर्तन के भाव पर एक व्यवस्था के
ती है । पञ्जाब हीमा यह है कि केवल
प्राप्ति है ।

ए, इनकी पूरी तैयारी इस पर विचार
क उभरा प्रयोग नहीं हुआ । यह उसी
के अन्तर्गत शांति नहीं हुए, अहीन

का सकेला उदाहरण माओ के शासन

एक विषय पर बहुत ही गंभीरता
वर्तन की प्रकृति का भवना कहें—

इसका विचार करना समुचित है । प्रीटम
विनी एक सामान्य मन्त्रालय नहीं
आवतार को कि पञ्जाब के प्रयोग

का गहनता, फिर अन्तर्गत, फल
शांति की योजना बना कि इनके निरूपे

सत्य क्या है ?

सत्य एक चीज है—जिसमें से उसका वृक्ष उगता है । वृक्ष उठी चीज का
सत्य है, जैसे वृक्ष का फल उस वृक्ष का सत्य है । हमारे यहाँ सत्य या नाम सत्य
नहीं है । हमारे यहाँ सत्य, संपूर्ण ही सत्य है ।

इसे देखना होगा, जैसे नाटक में पात्र का चरित्र को देखा जाता है । अब
तब मैं नाटक के चरित्र को देखता था—उसके मूल में जाकर उसे देखना
या और फिर उसे समझने की कोशिश करना था । आज पहली बार मैं व्यवस्था,
मिस्टम या देश के भीतर ईसाई भारतीय राजनीति को एक चरित्र के रूप में
देखने चला हूँ । देखना सत्य, प्रकाश में होता है । पर विविध अनुभव यह है
कि सततता देखा उतना ही प्रकाश है । नहीं प्रकाश, उतना ही प्रकाश गेरा
सत्य है ।

कहते हैं कि माओ जब बेनिन में गिरे और अपने देश चीन में कांति के
निम्न उगत कुल नष्टावना मांगी तो बेनिन ने पाओ से कहा—देश का परेड,
सभी तुम्हारे देश में कांति करने की परिस्थितियाँ नहीं पैदा हुई हैं । (पतञ्जल
पहले चीन में औद्योगिक विकास हो, पूँजीवाद का विकास हो, फिर प्रभुत्व,
फिर कांति, तब समाजवाद आया ।) माओ ने बेनिन को ही एक उदाहरण दिया
कि जो आप मुझे बताते कि मेरे देश में कांति की परिस्थितियाँ अब पैदा होंगी,
और तब आप हमारी सहायता करेंगे । सत्य है ।

माओ बुनाग अपने देश लौट गए । अपने तगर में जाकर वह जूते गिलने
का काम करते लगे, वे अपने लोगों के बीच में रहते, लोको को त्यागकर, उनकी
को पढ़ते कि देखो समाज कैसे बनता है—इसे कीत, कीत बनाना है, मनुष्य
बना है इनकी ताकत क्या है, आदि ।

ठीक गली नाम गांधी ने किया अफीक के अपने अनुभवों के बाद उभ देग
में । गांधी ने दिखाया कि देखो संश्लेषण, उगती गरी व्यवस्था, मनुष्य की किन
तरह एक-साथानी (वन उद्योगपाल) बनती है—यह एक मशीन के पुर्जे हैं ।

बड़े रमेल ने मनु १९३० के भारतीय आन्दोलन में यहाँ की गरी-लिपी युवा
पीढ़ी का अध्ययन कर यह पाया कि चीन देश-देश में सामाजिक, सांख्यिक, सांख्यिक
जिक क्षेत्र में कुछ साम्य करने की नहीं है अर्थात् यहाँ की युवा पीढ़ी विभिन्न
विषय में हतनी बूध रही है ।

आज मैं भी देखना हूँ कि वर्तमान भारतवर्ष में चारों तरफ, हर क्षेत्र में
वहाँ इतना कुछ करने का है, यहाँ हमारा युवा पीढ़ी इन कदर 'वित्तियत' में
क्यों हूय रही है ? यह कैसा संभव है हमारा, यहाँ सततता गांधी, बाले धारम,
मामो, लोहिया, अन्तर्गत सब कुछ मुनिपूजक विद्वेषण में बदल दिया जाता है ।

मैंने अनुभव किया है कि भारतवर्ष का वर्तमान राजनीतिक मध्यम मूलतः
राजतंत्र और उपभोगता समाज के बीच का सापेक्ष संघर्ष है । यह अभाव से

पैदा हुआ है— हर तरह का समाज, हर क्षेत्र के समाज में और वेग दिव्यता है समाज भी पुति कभी नहीं देती जब एका की पुति विशेषकर जब उन समाज, जो उच्छा का विचक्षण प्रीत संभावक कोई नैव ही, व्यवस्था है, या कोई भी 'सुनरा' है।

यह उस महापुत्र-अनिष्ट राजनीति की मायिका है, जो जगता में बहनी है— 'शांति करो' परिचरित करो'। पर वह वर कभी नहीं चलेगी (शांति, बहेगी, कर्त्तवी रहने है) कि महापुत्र म, उसके जीवन में, विचारों और उसके जीवन कभी शांति ही, परिचरित ही।

शक्ति, त, पुत्रोत्पाद के विचार, राजा, दमो: स्वरुता, नकारना, अजा-जय के नाम पर जो व्यवहार, शोचन कर रहा है— स्वामी कोई कोर भिद्यता है न गद मुझे वाद को ही देत है, बहिक मान्य है कि एक पुत्रीवाद का अभाव केवल बहुत गरीबी संभव है

कने देखा है, कुछ चाहे वह भी ही, या शक्ति को का भोग की, मनुष्य की मूला (जीव) उद्विक्त नहीं है। यह कर्मकाण्ड का व्यवस्था का सात्वत्य देता है। भिद्यता के लोच पर अनेकों में पुत्री भावनवर्ग का पांच को उद्दीप्त, अंत, मन्, पुत्रे पाप की शक्ति थी। पर, अनेकी व्यवस्था ने जब संघर्ष पर किसी एक अंकीत का इतिहास देखा भारतीय समाज समाज की गेह की उद्गी की भी कभी एक संघर्ष के लक्ष्य शक्ति में का 'भूल' पैदा करें। काली परिवार के प्रति ही एकमात्र, काली की न या अर्थात् न अंतम संकल-संठन की विद्युता और अन्त, दमो न बंद माने, वह मान की उन्म परिचरिता, यह ही एक नय की राजनीति। दमो एक युवा, इच्छा शक्ति के स्वभाव को देना है और एक नैतिक नायक भी देना है।

धर्म, अर्थ और काम अर्थात् हुआत राजा की भाषा में श्रम-मुक्ति-मर्णादा, मन-अर्पित, और दमि—जीवन के बड़ी शैली आयात है जीवन का अन्तर है कही। महाभारत में धर्म बनता धर्म, धर्म बनता धर्म, धर्म बनता काम में ही नयात पर धर्मों छिदा। धर्मों में परिचरिता के चरित के द्वारा कला—धर्म के सत्त्वान्तर कर्म और काम का अन्त, परिचायत करो तथा धर्म पर धर्म विद्यता। धर्म में कला—अन्तर ही, यह मान है। इच्छा, भावना की मूल अंगण है माते कभी थी। भीम ने उदाहरण दिया—देवो ने, इच्छा के ही की पुत्री (श्रीमोउदिपन सेना) बना। इच्छा को म ही तो संगार हुए देना। इच्छ ही शैधर्म, अर्थ और काम के शिष्टि अन्तगत उतरक बनत।

बन सीक है। जो देता ही इच्छा का भावना। महाभारत का युवा युवा परिचरिता का विचार है अन्त और अन्त। जब एक अन्तरता पर वह भीचक बनत। भीम के विचारों कि जो धर्म, अर्थ और काम शैली पर धर्मगत रूप के हुए मन्त, मन्त की भी पर एक साथ बना देना, कर्म बनत है, एकदर भीगा।

धर्म है 'धर्म' प्राचरित कर दिया। अन्त-जब कि कर्त्तवी भीनों एकापर ही जीवा-जन्तु है, मूर्खीत है। मेरे 'देवने'

जिन् 'अनि' के स्थान है, समाज पाद अन्तिरित है कला है कि शीत कि यह जो कर बन करे।

संगर वह का लक्ष्यगत पर भीम विविध चाशकाते, गरी देना को मन्त मे एक परिचरिता

भी अन्तम नय को दार है। पर देवने जो मुछ देना, या न सत्ता कि नहीं क देना, पापा, कला नपूणे लक्ष्य होना हेन देव रहा है कि

मूर्खी में, पर कही धर्म में पाप, धर्म-धर्म उन्म कर्त्त का अन्त विद्यता। और धर्म दुरण को अदर्ष अने कि पर वह सब है कि नाच है। गरी नही, अन्तम की च अन्तिरित अन्तिरिता ही लीम नि

विज्ञान में सत्य घोषित हुई, उसे धर्म ने कहा यह असत्य है। जो धर्म ने सत्य कहा, उसे विज्ञान ने असत्य, झूठ साबित कर दिखाया। धर्म ने जिस श्रद्धा को, विनय और पवित्रता को सत्य बनाने, गुरु कार्य, कल्याण, दया, समानता और स्वतंत्रता को महत्त्वपूर्ण माना, राजनीति ने कहा—यह सब भावुकता है, राजनीति में इसकी कोई गुंजाइश नहीं। राजनीति का लक्ष्य है सत्ता, व्यक्ति हार्जित करना चाहे जैसे भी हो।

धर्म में 'असत्य' प्राध्यात्मिक मूल्य है। विज्ञान में असत्य विनाश है और राजनीति में असत्य के लिए पिछला कोई दंड नहीं है। सिर्फ इतना है कि हर बड़ी शक्ति, छोटी शक्ति को दबाकर चली जाती है।

हमारे समय की शक्ति यह है कि हम दो विरोधी शक्तों पर एक साथ चपना चाहते हैं। चाहते हैं राजनीति भी हो और धर्म भी हो। धर्म भी हो और विज्ञान भी हो। यही बड़ा विरोध भाव है जिसके अभाव में पहले हमने इतने विशेष कर्म किए—इतनी विशेष उपलब्धियां हमने प्राप्त कीं। पर धर्म जो कुछ भी विशेष करेगा वह गलत करेगा, व्यक्ति सब भीड़ का एक हिस्सा मात्र है। विज्ञान ने राज्य के लिए जो एक मजामज बनाया है, उसमें हम लोग एक पूर्ण प्राप्त हैं।

धर्म और राजनीति में गारस्पेरिक विरोध, विज्ञान और धर्म के पारस्परिक विरोध में भी बड़ा है। दुनिया के किन धर्म में यह विरोध है जो आज किमी भी देश का राजतंत्र और बड़ा की राजनीति कर रही है—भोल्या, तिमेंग प्रति-इन्डिया, कर्कर इत्यादि, झूठ का नाट्याय, दुगरीं की शक्ति पहुंचाकर अधिकतम लाभ प्राप्त करने का अधिकार और प्राप्त सुविधाओं का ऐंग उपयोध और अर्जन कि मनुष्य और मनुष्य के बीच का अंतर उत्तरोत्तर बढ़ना जाए ? यह किस धर्म को स्वीकार था ? धर्म धर्म को ? हिन्दू धर्म को ? ईसाई धर्म को ? मुसलमान धर्म को ? नहीं, यह किसी भी धर्म को स्वीकार्य नहीं था। पर आज सारा ईसाई धर्म, हिन्दू धर्म, मुसलमान धर्म उसी राजतंत्र की कृपा और संरक्षण में न जाने कैसे जी रहा है और अपने पापकी धार्मिक बद्ध रहा है।

मैंने देखा है, एक अर्थकर झूठ, विश्वासघात से हमारे समय की प्रायः बृद्ध नहीं है। मुझे आज की राजनीतिक व्यवस्था ने यह नोखला परिणाम तो दे दिया है कि मैं व्यवस्था के विरुद्ध अपने विचार प्रकट करूँ, पर उससे गलत कामों में हस्तक्षेप न करे। यह मन्थार एक और तो हमें दिरा भावनी बना रही है, दूसरी ओर हममें सपराध भाव और पलायन का भाव भर रही है।

रपट है जो भी धर्म अथवा वर्णन प्राधुनिक विज्ञान ने प्रतिकूल होगा वह विज्ञान की तजरी में केवल पालंड और दंड बनकर रह जाएगा। और जो धर्म, विज्ञान राजनीति के प्रतिकूल होगा वह राजनीति की तजरी में एन ऐसी वेमत्तमब वाहिनात चीज होगी जिसे जल्दी से जल्दी सत्तम कर दिया जाना

चाहिए।

में स्थापयण पद कर्त
प्राधार सुरक्षित रस्सा
समस्त विरांगति को देखा
पुनः मानव की प्रतिष्ठा

संयोग पर मनुष्य के
व्यवस्था सब भी प्रस्तुत है
राजनीति के अनुकूल है
नीतिवास्तव विकल्पित हुआ
व्यक्ति-व्यवस्था सर्वोपरि
जिक, वैज्ञानिक और मानव

वेदान्त का परमार्थ
मानवकर्म आरोपित परम
की विकास सर्वोपरि और धर्म
आज हमें कितने भी
कार कितने भी मद्भाग शो
तक उसके लिए प्रांशिर
प्रकृति तिजी संस्कृति न हो
कार का संग व्यापक ब्रह्म
है।

गोतम, उपनिषद्, और
प्राधार ही है मानव कल्याण
करना सच्चे अर्थ में परमानन्द
आज की परिस्थिति में
शक्ति, भग और दंड पर प्रा
अगर हम चाहते हैं कि रा
राजतंत्र नहीं, प्रजातंत्र न हो
उद्यम के लिए धर्मोपस्था जीवन
पालन में ही प्राप्त होना है
जाना है।

उपनिषद्, वेदान्त भारत
पर लड़ी है (उपनिषदों को
संसार के पदों से प्रभाव
मुक्त प्राप्त कर लेने पर भी,
से, मुक्ति केवल शान से, तप

यह धर्मशुद्ध है। जो धर्म ने मनुष्य दिखाया। धर्म ने जिस धरती को, काये, कठणा, दया, मंगलता और सद्भाव—यह सब धर्मशुद्धता है, राज-धर्म का लक्ष्य है सना, समित्त सामिल

विज्ञान में समस्त विज्ञान है और उन्नत है। किन्तु इतना है कि उन्नत नहीं है।

जो विरोधी धर्मों पर एक साथ और धर्म भी हो। धर्म भी हो है जिसके अभाव में पड़ने हमने हमारे धर्मों को। पर अब जो धर्म भी है। एक इच्छा मात्र कहेगा है, उसमें हम लोग एक

विज्ञान और धर्म के पारस्परिक संबंध पर विचार है जो आज किन्तु नहीं है—योग, विवेक प्रवि-योग को ज्ञान पत्राचार अधिवक्ता अधिकांशों का विना उन्नत और उन्नतों पर बढ़ता जाए? यह किन्तु धर्म को? ईसाई धर्म भी धर्म की स्वीकार्य नहीं था। मान धर्म उन्नी चतुस्रता की कृपा अपने धर्मको धारित कह रहा है। किन्तु से हमारे धर्म की धारण धर्म ने यह धर्मको अधिकांश को उन्नत प्रकट करके, पर धर्मों मान्यता पर तो हमें विना वातुनी बना रही धर्म का भाव भर रही है।

क विज्ञान के प्राक्कूल होगा वह धर्म कर रहे जायगा; और जो धर्म, राजनीति की नदरों में एक धर्मों की नदरी धर्म कर दिया जायगा

चाहिए।

यह स्वार्थबोध यह कहने को विचार हुआ है कि यदि हम मानव प्रगति का दृष्ट आधार सुरक्षित रखना चाहते हैं तो धर्म, विज्ञान और राजनीति के बीच को समस्त विमंगल को देखकर उगका संत किया जाना चाहिए, जिससे व्यक्ति को पुनः मानव की प्रतिष्ठा मिल सके।

संयोग या मनुष्य के भाव ने भारत में एक धर्ममूलक दर्शन और जीवन व्यवस्था धर्म भी प्रस्तुत है जो अध्याधारण रूप में विज्ञान के और मनुष्यनिष्ठ राजनीति के अनुकूल है। एक धर्ममूलक दर्शन और जीवन-व्यवस्था में एक नीतिमूलक विकसित दृष्टि है जो व्यापक, मानवीय और सामाजिक है, जिसमें व्यक्ति-व्यक्ति सर्वोपरि है। हमारा बुनियादी धर्म, दर्शन, श्रुत रूप में सामा-जिक, वैश्विक और मानवीय है। यह कतई आध्यात्मिक नहीं है।

वेदान्त का परमात्मा (ईश्वर नहीं) मनुष्य की कल्पना द्वारा उत्पन्न श्रवण मानवरूप आरोपित परमात्मा नहीं है। यह अज्ञान विज्ञान तथा भौतिक शास्त्र की विकास संबंधी और आधुनिक ज्ञान की सचाइयों के बहुत नजदीक है।

धर्म हमें चिंतने भी राजनीतिक अधिकार क्यों न मिल जाए और वे अधि-कार किन्तु भी महान क्यों न हो, पर वे तब तक प्रभावहीन और निरर्थक हैं जब तक उनके लिए आधुनिक रूप में कानून और नियम का काम करनेवाली अपनी निजी संस्कृति न हो। आधुनिक विचारण के बिना केवल भौतिक अधि-कार का अंत व्यापक अष्टाचार, हिंसा और अंधकार अतन्वीय में होना अनिवार्य है।

गोता, उपनिषद्, बौद्ध धर्म सूत्र रूप में मानवशास्त्र, नीतिकोश हैं जिसका अध्याय ही है मानव कल्याण। गोता बताती है कि स्वयं, अपने नियत कर्मों को करता मनुष्य धर्म में परमान्ता की उपासना करते में लौकिक भी धर्म नहीं है।

धर्म की अधिवक्ता राजनीति, और उगका सामन संत, राजाध, केवल धर्म, धर्म और धर्म पर आधारित है। धर्मों से मनुष्य नहीं पद गैदा होगा। धर्म हम कहते हैं कि राजनीति में से मनुष्य पैदा हो, तो राजनीति में से राजवंत नहीं, अंधांध नदी, लोकतंत्र को उदय देना होगा और लोकतंत्र के उदय के लिए अधिवक्ता जीवन का निर्माण करना होगा जिसमें धर्म और कर्तव्य-पालन में ही आनन्द होता है। धर्म स्वयं से जुड़कर सामान्य में विशेष हो जाता है।

उपनिषद्, वेदांत भारत की मूल संस्कृति है। हमारी जिन्दगी धर्म बुनियाद पर खड़ी है (उपनिषदों की मूल दृष्टि) कि मनुष्य उन्नत सुख, संतति तथा संसार के पदार्थों से अधिकांश धर्मों द्वारा नियत धर्मों की रक्षणदिन बढ़े सुख प्राप्त कर लेन पर भी, स्थायी सुख नहीं प्राप्त कर सकता। सुख केवल से, मुक्ति केवल जान ले, तथा ज्ञान धर्म और भोग को स्वयं देखने से प्राप्त हो

नकरा है।

यहां 'दोसरे' का अर्थ है संन्यत का पूर्ण विकारण, यही है मृत्यु की पूर्ण अनुभूति। प्रकृत को (आत्मा) देखने के लिए वृद्धि और जिज्ञासा प्योक्त नहीं है। जीवन की साधना और परिचयना आवश्यक है। योंही होने हुए भी हम देख नहीं पाते इसका कारण चलन नहीं है, हमारी इच्छाएं और आकांक्षितियां हैं। पर वह भी नहीं विविय भात है। इसी उन्मत्ताओं, कामलाओं और आप्तिवर्तों के भोग के माध्यम से हम मृत्यु की 'दोसरे' पाते हैं।

वैशे खुद देना है, काफी रूप में मुझे यह शवाही देनी पड़ रही है यचना मुझे क्या पसी थी इस विषय में लु।

पर धर्म की बात यह है कि वह जोर लय बगैरे रूप में मेरे स्वरूप करना हूँ तभी देखना संभव है, अल्पता वह भोग नहीं रहता है। जो बेह देता है, वह देना नहीं मानता, क्योंकि वह कोई जगत् नहीं है--वहना क्रिया नहीं है, प्रति-क्रिया है।

सांसारिक उपनिषद् में वही एक प्रदत्त गुरुता शवा है कि वह जगत् क्या भूम से हो उठाना देता है? उद्दालक आदि ने उपाय दिया--कहीं, वह नहीं हुआ सकता। सुख से सुख ही निकल सकता है। इसमें से ननु कैसे पैदा हो सकता है? इमालिद् होने मानना ही परमार्थ कि प्रारण के, शक्ति में, विनमय उन्मत्ता ही का 'कर्ण', उगका वाक्य रख थी भव। जो इस मृतु के परिश्रमिका की इच्छा की और वह प्रसाध, जब जगत् शवा जीवनधारिणी के रूप में परिचित हो गया। वही मृतु मृतु से उन्मत्त और मृतु की वृत्तुणित और विमृत्त ही रहा है।

दोसरे लु न प्रपते पिना उद्दालक म पुडा। शवाज है, उगना विराट विज्ञान विराट शोम शवा उन्मत्त मयल सीति ने कौत पैदा हो सकता है।

उद्दालक त करे—बड़े, इस परमेश्वर वृक्ष का एक कल न साथे।

—रूप लीजग।

—कोसो दमे।

—कोस विद्या।

—उमके अंदर मुहुं क्या विचारें विद्या ?

—छोटे-छोट के शक्ति बीत।

—समता, एक शक्ति की गोती।

—कोस विद्या।

—क्या विचारें पड़ा ?

—कुरु ली, शवा।

शक्ति न करे—इस छोटे से बीज को जिग शक्तिमा को तुम नहीं देख सके। उमी में इस विज्ञान वृक्ष का परिचय था।

धर्म, विज्ञान और राजनीति का परस्पर विरोधभाव, और इस विरोध-

भाव के कारण जो समाजिक धर्म का लोचिशास्य महत्त्व परभावना का स्वयं। जीवन विभिन्न प्राणियों के बीच में जो मुक्त होना जानना ही शक्य है--दैनिक जीवन का रूप नहीं।

नवलव शोम म कालक श। उनी, कारण पयता प्र इना कतर देवता। पयता लू अदरभाण मनुष्य की लो है। तपनी देखो उने पयता म विद्या म देव पयता म उगना उगना हुदव ने उगना उगना म कालक म शोमी, जैसी कि शवा म शमी म शवा लील

प्रभावक का नवलु में उगना मया लीनको उगना म लीनता उद्दालक शवा ने कि पायका लीनता मय। धर्म का शोका शरवाणी तुनी की जो काले है, उद्दे पाकर हम लू अमर हम यद्दे देव की कि कुछ और ही है जो उद्दे हम हम राजनीति म काल उगना मय लीनें पूरा होया न मु वरी ने खुद शोका शवा म

तपनी की शक्ति है, हम शवा है। उद्दके जि, सब लू नहीं जो वह देव रहा है।

यह 'दोसरे' शवा, विद्या नहीं है शवा विज्ञान शवा प्रव एक विचारार है। पर अस्मिन् विश्व शोम एक विचार है, शोमी है, शवाही है, जो

एकी विचारता, वही है नभ्य की पूर्ण
लिङ्ग बुद्धि और विद्याका पर्याप्त नहीं
बसक है। इसी लीजे हुए भी हम देख
हमारी इच्छामें और सम्पत्तिका है।
इच्छाओं, लक्षणाओं और आत्मिकताओं
कावे है।

यह महती देवी। तब नहीं है अन्तर
जब वहाँ रूप में रूप कथना त
यही रहता है। जो वह रहा है, वह
ही है- वहना क्या नहीं है, उक्ति-

छा गया है कि यह जगत् क्या हुआ
उत्तर दिया- नहीं, यह नहीं ही
अन्त में भा। कौन सीसा का नरुण।
नि में, जगत् में विस्मय परभावना
ही हम नरुणों आधिपत्य की इच्छा
नियों के रूप में परिणत हो गया।
तब और विस्तृत हो गया है।
-बमान है, जगत् की तारा विद्यमान
दा हो गयाना है ?
का एक कल के आर्यो।

प्रणिता की तुल्य नहीं देल सके
केशीवशाय, और इस विरोध-

भाव क भावों को मानसिक-वैतनिक-सहित ही रहा है, एवं सारी के लिए
बसे का जीवनश्रम पर्यन्तपूर्ण है। उस नीचे-उपम का आधार है आत्मा और
परशरथा का संबंध। जीवन्मा और परशरथा का संबंध नभ्य केने पर हममें
विभिन्न प्राणियों के बीच भिन्नता का साथ नहीं रह जाता। भिन्नता के साथ
ते भुक्त होना नभ्यका ही ज्ञान करने की क्रिया नहीं है, परन्तु अवस्था का परि-
सरेन है—तैले और न अथ जगत्। इतीवत्प ही का जगत् है—उत्था, जगो,
रथा।

गन्धन नीचे में जगत्पर देवी कि तुम नहीं इस कदर हम कर के, जो नरे
थ। उन्को, सारता पकटा और भुक्त ही जगत्, विद्याकी चरक न तुम्हें कभी
इस कदर हमका पड़ना है और इस न इस सारा पड़ना है। क्योंकि न के शक्ति
परशरथा परशरथ ही नहीं है। ये भीकी अवस्था न किनी भी अवस्था है।
रथा, देवी के। निहा न जगत्ता सत्य है। पर तु गन्धनिक जीवन की और
सिद्धि (ने देल मान) न जगत्ता सत्य नहीं है। इसके लिए सत्यपता जगत्ता का
इच्छा कदर में वसतुता सत्यता कर है। किन निरंतर सत्य रहा जगत्। यह
मन का हीकी, हीकी कि—रही पर सत्य विद्याकर्म नर की जगत् ही। एक
जगत् रथी पर श्रम हीका साथ देने क बाद यह हम पर ही नहीं गयाना।

अवस्था का जगत् में हीन का पड़ने में अपनी सत्ता करने के लिए दाने
आम सत्ता हीकीकी सत्यता परशरथा का सत्य न परशरथा, तैले निहा ही सत्य-
भौतिक महत्ता काही न हीन स्या—और नहीं जो ही सत्यता का, और सत्य का
सात्व हीनिष्पत्त। नभ्य का कौन किया। नहीं ही है। इस स्वार्थ में हीन
हीकर आत्माकी सुखों की जीवने और उन्ने प्राप्त करने का लिए जगत्ता जगत्ता
यत्ने है। उन्ने महत्ता हम सुख ही सत्य है, औरकर हम सुख ही प्राप्त है। पर
इसका हम यह देल न कि भेदे दूना और तुल्य का महत्ता कही अवस्था है, यह
तुल्य ही ही ही ही मुझे हम महत्ता परशरथाकी हीर पर सुखी-सुखी क्या का है जो
हम परशरथा न अपर परशरथा अपने सत्यता सत्यता का सत्य हीन—और नहीं
नभ्य न हीर हीन हीका न सुख। परत परशरथा हीन हीका, वनता नहीं हीन।
रथा ही तुल्य हीकीका सत्यता कने।

रथी जो नभ्य ही, नर श्रम रथा है। यह तुल्य जो श्रमता श्रमता हीका देल
रथा है। उनके लिए हम तुल्य श्रमता है हीकीका तुल्य ही जो सत्यता नहीं है।
रथी ही वह देल रथा है।

पर श्रमता सत्य, निहा ही और राजनीति में सत्यता रूप में क्या गुनाधर
नहीं। परने विद्याके शक्ति शक्ति देल पर दिया है। पर भारतीय राज नीति
सत्य का निरधार है। पर हीकरा है कि यह श्रमिता पर हीकी कही है। पर
नभ्य सत्य हीर पर निरधनी है। शक्ति कही कही श्रमिता, पर श्रम का नभ्य
ही हीकी ही, श्रमता ही, ही हम परशरथा सत्य हीका जगत्ता है, यह निरधार

होता है। जो इसे देखने लगता है तबिन चहों टिक जाती है—उसी देखने के साधार से वह प्रवाहित होती है।

शक्ति का साधार महाशक्ति है। बिजली जब घाममत्न में कौधली है तो उसे रोकनेवाला पृथ्वी के सलाका और कोई नहीं होता। जबिन महाशक्ति में जाकर समा जाती है—साधार पर जाकर टिक जाती है। राजनीति का साधार अंगर शक्ति है तो उन शक्ति को धारण करनेवाले मनुष्य को महाशक्तिमानी होना होगा, वरना वह शक्ति उसे जलाकर नाक कर डालेगी।

पर मरुवी राजनीति के चरित्र के समुदाय महाशक्तिमानी के पाने निरंकुश सनाधारों नहीं, सर्वशक्तिवान नहीं, बल्कि ऐसा पृथ्वी जिसके पास इतनी वैज्ञानिक शक्ति हो कि सारी राजनीतिक शक्तियां उसमें वैज्ञानिक बल देने की शक्ति हों।

अच्छा राजनीतिक दृष्ट्य धूलतः वैज्ञानिक पुण्य होगा। और वैज्ञानिक पुण्य का मूल चरित्र है एक ऐसा कर्मवीर जो इन कर्म पुरे भंगप, माहंग, जोष और धर्म के साथ एक निरिचन पल के लिए करता है पर फल के प्रति ध्यानवित्तमय शपने भीतर नहीं पलने देता।

उसका जीवन सफलता और सम्पन्नता, सुख और दुःख, आनन्द-अनुशास से समरक पाता है। उसका जीवन अपने स्वयं में समन्वित जीवन होता। उसके हृदय में कभी कोई अय नहीं होता। आज की व्यावहारिक राजनीति अय पर खड़ी है। राजनीतिक सेवन शक्ति संग्रह करना आदता है, क्योंकि वह अपने भीतर प्रथित हो है। जो जीवन में जीवन निर्बल और सम्पन्न होना, सम्पन्नता, वह पाने की ही शक्ति, अतिशय, इच्छिताना चाहेंगा। एक बार जीवन हाथ में पा गई तो भय एक ही पाना कि कोई उसके हाथ में छीत ले ले। फिर वह अयभीन राजनीतिक उन शक्ति को दबावे अपने में अपने आवको अमानुष बना दालेगा। नती सना और शक्ति की राजनीति की यही है प्रवृत्ति, यही है उसकी परिणति।

समाव है बुनियाद नंगी राजनीति की, और अय है इसकी संपूर्ण दवारण।

असमान रंगका आदि है, हिंसा और विनाश इसका संत है।

भुंग इसके मूल में है, संपूर्ण इसकी प्रवृत्ति में है।

सहंनय इसका शरीर है, सूठ इसकी अंत्यात्मा है।

सत्वाउत्थर इसका स्वभाव है, देख नहीं पाता इसकी निष्पत्ति है।

प्रजासका कोई साधार नहीं होता। ज्ञान का साकार होता है। छाया प्रकाश में अवशोष होन में पड़ती है। यदि अवशोष न हो तो प्रकाश सर्वत्र समान रूप से फैलता है। हमारी वर्तमान राजनीति यही छाया है, विनाश वतना, विनाशना, ज्ञाना सब कुछ अवशोष पर, सत्वाउत्थर पर निर्भर है।

पर सही राजनीति नः प्रकाश की तरह ज्ञाना होगा। यह माध्यम है स्वयं को देख पाने का। यह सेतु है पहले से आगे का। पर अगर सेतु ही सत्ता शोक-

देखना

कर खड़ा हो जाए, तो नहीं होने वृणा, तो

सड़े फल का बीज प्रमली स्वस्थ बीज पूर्ण है। धरी बीज फिर पृथ्वी

राजनीति में जनक शक्ति जब संपूर्ण होती में) होती है, रूपक जन निकालती है।

सीता एक शक्ति शक्ति को कोई एक हृदय पणित की राजनीति शुरू अपने स्वार्थ में धर्म का नाक-नाम काटता है, को होने हैं। जब जाना है स और प्रतिपक्ष में असंतुष्ट निकली थी।

शक्ति उस पृथ्वी में कर रही है, जब तक कर बरन् उसकी रक्षा करता शक्ति तो समान रूप में स रावण को रावण इंगितिनी

नी। जन्मगिड़ अन्धकार हैं क्योंकि सब संभव है। राजनीति की उन्नी प होने से मतलब है राजनीति का अर्थ और वि केवल हिंसा है, आत्मघात गई है। और शक्ति प्रकाश राजनीति शक्ति का देवी होती है। तथा इस राजनीति है।

पर यह सच है जहां है। शक्ति हमेशा वैज्ञानिक गया। शक्ति को रक्षा की

बानी है—उनी देखने के

आत्ममान से कोशली है तो
ता । शक्ति महाशक्ति से
है । राजनीति का आत्म-
मनुष्य को महाशक्तिवादी
रखेगी ।

मनवादी के माने निरनुशा
विके मान इतनी शक्ति
बल देने का विषय ही ।

गा । प्रोड नैतिक प्रोड
संबंध, सादर, सीधे सीधे
है । शक्ति आत्मविश्वास

दुःख, आत्म-अनुमान में
ज्ञान जीवन होता । उसके
नैतिक राजनीति प्रोड पर
है । शक्ति वह इनके

कर्मभोजन ही-साधना,
एक बार शक्ति प्राप्त से
ही न ही । फिर वह
शक्ति आत्म-अनुमान
ही है शक्ति, शक्ति है

इसकी संपूर्ण इच्छा है ।
प्रति है ।

शक्ति विधा है ।
हीता है । शक्ति प्रोड

शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति
शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति
शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति

शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति
शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति

कर सड़ा हो जाए तो क्या होगा ? कुछ कहें कि मैं अपने फल को छानने से रक्षण
नहीं होने दूँगा, तो क्या होगा ?

कटे फल का बीज नष्ट हो जाता है । सूखे फल का बीज सूख जाता है ।
धमकी स्वस्थ बीज पूरी तरह फके हुए, रंगमय फल के भीतर ही निवार होता
है । वही बीज फिर पृथ्वी में जाकर नया वृक्ष जनता है ।

राजनीति में जनता का मतही सर्व यही है । राजनीतिक पुरुष की कला-
मठिन जब संपूर्ण होती है तो उसके कम बीज को जगता करते क्षेत्रों में (जीवन
में) बोती है, रूपक जनक हो जाता है और उसको धरती में सीता जैसी शक्ति
निश्चली है ।

सीता एक शक्ति थी—वह राम की थी न शक्ति की । पर शक्ति क्षण
शक्ति को कोई एक दृष्टिवाचक रख देना चाहता है उगी क्षण से लगी राजनीति,
शक्ति की राजनीति शुरू होती है । फिर उस राजनीतिक संबंध में कोई किसी को
छानने स्वार्थ में धर्म का सहारा लेकर बतवाम देता है, कोई किसी को वृक्ष के
नाक-कान काटना है, कोई बर्तन में उसकी फली को उठा ले जाता है । कुछ
शक्त हैं । बल जाना है शक्ति विवश हीकर राजनीति के दोनों दलों, नक्ष
प्रोड प्रतिपक्ष में सम्पूर्ण होकर फिर उगी धरती में गमा जाती है, वहाँ से
निकली थी ।

शक्ति उगी पृथ्वी में पड़ी पड़ी फिर बिली तब तक किमान की प्रतीक्षा
कर रही है, जब तक कर रही है, जो तब जगता ही न दे, केवल सादर ही न लाये,
बर्तन की रक्षा करना रहे, लानी पर किसी एक राम के हाथ में न पड़े ।
शक्ति की गमान रूप में सबकी है—शक्ति राम की, उतनी ही शक्ति की ।
शक्ति को शक्ति हीनीकर बतना पड़े क्योंकि राम ने उसकी समानता हीन
नी । जगत्पिछ शक्तिप्रार है सबका, जो कुछ बरता है वह सबका है, सब समान
है क्योंकि सब उतव है यह सब शक्ति है ।

राजनीति की उगी पक्ष में धर्मिक शाना होता । राजनीति का शक्ति,
शक्ति में गतपद है राजनीति सातवीप शरासन पर वैजायिक हागी । अगर
राजनीति का धर्म जो विज्ञान ने महाशक्ति यही देना सकेगी, लगी राजनीति
केवल शक्ति है, सादरप्राप्त है विज्ञान है । शक्ति शक्ति वह देवी विभूति शक्ति
गई है । शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति ही राजनीति का शक्ति है । पर सर्वमान
राजनीति शक्ति का देवी विभूति नहीं गतगी । शक्ति वह शक्ति शक्ति
शक्ति है । शक्ति ही राजनीतिक शक्ति के साथ ही अनुमान में शक्ति शक्ति
है ।

शक्ति वह शक्ति है जगत् शक्ति है, शक्ति शक्ति नहीं है । शक्ति शक्ति शक्ति
है । शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति
शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति
शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति

दूसरा अध्याय

फल

गाव में मेरे घर के सामने मैदान में आम की बगिया में एक वृक्ष था आम का ।
विल्कुल इरा-भरा, पूरा, सुन्दर और स्वस्थ । मैं तब करीब सात वर्ष का था ।
उस पेड़ के नीचे बड़ा लंबा पेड़ा था । मेरी दादी जी डोडो हुईं माईं धीरे
थुके उस वृक्ष के नीचे ये खींचनी हुईं बोंनीं—खबरदार, इस वृक्ष के नीचे कभी
मत खेलना । यह मयगुन है, अभागा पेड़ है । इसमें फल नहीं आता ।

जिसमें फल नहीं वह अभागा, मयगुन वृक्ष । उसके नीचे कोई नहीं जाता ।
उसकी हरी-भरी छाया में कोई नहीं बैठता, यह कौती बात है ! पर इस पर
फंसी तो बैठते हैं । यह किटनाः खानादार है । पर छाया से क्या, अंधे फल
नहीं तो सब निष्फल । मैं दूर से ही उस आम के सुंदर वृक्ष की निहारता और
सोचता रह जाता, यह कौसी अजीब बात है । फल नहीं तो जैसे यह आम का
वृक्ष ही नहीं ।

तब मैं दस साल का हुआ और देखा उस पेड़ में चौर साधे हैं, और वह
पेड़ एक दिन शाम के फलों से भर गया । बहुत गांठे लोग खाये इस पेड़ के
नोखे और उसके फलों को बेचकर प्रसन्न हो गये ।

अब तक उस वृक्ष का कोई मालिक नहीं था, अब तारा गाव उसका
मालिक हो गया । जो खाना, अंजा मरकर फल तोड़ ले जाता । अच्छे-तवान
उस पर बड़े रहते और दिन-भर उस पर हंटा, ईंट-पत्थर से मार पड़ते । मार
के जवाब में अब वह फल देना । बड़ा ही मोटा फल । कब खाने से अब उसका
अभागापन दूर हो गया । अब वह मयगुन वृक्ष ही गया ।

तब फल खाने से वह इनका पिटा, हलना तोड़ा और लड़ा गया कि अगले
दो वर्षों तक उसमें फिर फल नहीं लगे । अब वह फिर वही अभागा ही गया ।
अब दोमरे बग फिर उसमें फल आम तो वह फिर मूभागा ही गया ।

इस घटना से मेरे निहार हृदय पर कभी कभी आता लगी । तब से मैं
बराबर सोचने लगा कि वृक्ष अपने सामने वृक्ष क्यों है । उसका मांग मूल्य
उसके फल से है । यह कैसा स्वाधे है ? पर उस वृक्ष का तो तो जाना स्वाधे

फल

है । तो स्वाधे ही फल ही
तब बड़ा हुआ, पड़ने
हृषा तो सोचने लगा— पर
फल खाने नहीं था, तो
मोटा का तो फल खाने
यह तो परिणाम था उस
बड़े दुखों को है । जगता,
उसका फल नहीं है ? वह
फल नहीं है ? नहीं, फल
था लगे । और तब उसका
वृक्ष का भाग क्या है ?
वृक्ष तो फल व रत
सोचि, पथे-सोचि को हलो-
जो हमारे जीवन, सभिय को
मुझे अपने भारतीय जीवन
तब किसी वृक्ष में फल
का एकमात्र अर्थ ही । तब
फूल परफलन फल लगे क
सनेमान के जीवन में आनंदि
मे फल दिन फल खाने व
लक्ष्य ही वृक्ष का । पर नहीं
सभ में तावी वृक्ष का बीज
कलां करना पड़ता है । वह
महज ही अपनी भूमिका अदा
फल में अब तब भर जा
जाता है तब वह फल हुआ
पुखी पर लू पड़ता है—पर
ताकि वृक्ष तब वृक्ष उस नके
वही बीज, पर ही वृक्ष सोचने
रहा है । तब से तबफल, आरं
इस गति में कही भी जाया नहीं
भारतीय मालीन ता वह है जो
होते के लिए ।

उसका आम खाने में उदा
दिन वह कच्चा आम पर रहा

गुठली गुदे में अलग हो रही है। सारा फल वृक्ष में अवश ही रहा है। और एक दिन पेड़ के वधन के आम गूरी तरह छात्राच होगा। इसी में उसकी गणना है। पक्ष से चिके, लगे रहने में यह मद लागता। फिर इसका बीज भी पक्ष ही जाणता।

रक्षणनीति में, मत्ता में, कुर्मी और पक्ष ने चिके रहनेवाला अणत क्या होता है? इससे ले क्या फल निकलता है? अब कुछ तो निष्फल हो जाया है।

जीवन के सगातन मत्त के विनाय फल ही बनल सफलता ही जाए और मत्त कुछ अभी फल पर आकर एक डाल, इनके वही विकृति और नया होगी।

पक्षे फल में जहां एक और डाल रूपजोर और गुदा मुलायम होता है वहां दूसरी ओर गुठली (बीज) नक्ष होकर नये प्राण, नये सृजन की पृथी प्राप्त करती है। इसी तरह हमारे भीतर भी क्षय और निर्माण की शिवाय माध-माध चलती रहती है। हमारे जीवन में भी बाहर के ह्रास के साथ सांघिक वृद्धि होती है।

त्रि-वृ सांघिक जीवन में मृत्यु की वही इच्छा मत्त प्रथम रहती है, इसीलिए मनुष्य को अपनी राह पर मरिणिति के लिए, जोकर संघीत पूरा हो जाए इसके लिए साधना करनी पड़ती है। वृक्ष को उत साधना की जरूरत नहीं होती, क्योंकि उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं है। वह जी है, वही है, उतना ही है। पर मनुष्य, मनुष्य के घलावा अपनी समाज इच्छाओं का दाग है - मत्ता की इच्छा, पक्ष और अतिरिक्त क्षति की मुख। यह इच्छा, यह मुख ही उसे केवल पक्ष पर चिके जान के लिए प्रेरित करती है।

सारा प्रयत्न पक्ष-प्राप्ति के लिए, पर फल प्राप्त करने ही उत पर इ रहने की नामता हमें संचित निष्फल और अणफल बनाकर छोड़ देती है।

हमारे कर्म का सारा चरण जिस दिन अभी फल पर आकर टिक गया, उसी क्षण से मत्त और क्षति की निभंम राजनीति हमारे जीवन में शुरू हुई। नृकि मत्त कुछ अभी सफलता पर एक गया। इसीलिए फल की होर में, और फल को पक्ष रहने के प्रयत्न में कर्म का सारा फल डाल के विपके-निपके मड़ते गया है। योग भावना का कर्म-बीज, जोकर-बीज संघट में है, मत्त होने का है।

हम देखते हैं राजनीति के लोगों की - रांत गिर रहे हैं, दरौर माध छोड़ रहा है, सारी हांडियां कवःव दे रही हैं, जीवन अपनी यात्रा के अंतिम पड़ाव पर पहुंच रहा है फिर भी जीजान में अपने पक्ष में, ताता से बुरी तरह चिके रहा है। क्षण भर के लिए उगलियां डीपी नहीं होने देते। यहा तक कि जीवन की साधियों धरिया उसी दुर्दशा में डीपती है कि मृत्यु के बाद भी उसी की इच्छा मत्त हो। इसी का परिणाम यह है कि राजनीति में भी कुछ भी मिला उसे प्राप्त नहीं किया, जो नहीं मिला उसी के लिए दर क्षण तड़पते रहे।

सभी ठीक एक दिग्गु, जैसा परिक है राजनीतिक का। जो देखा हमारे के हाथ में, उसी के लिए सफल पड़े। जो राथ में प्राया, हर क्षण अचभीत कि

कोई आकर छीन न ले। जिसके हाथ में मत्ता गया, जिसका हाथ में मत्त जाता और हम तक में रहता कि मीक

यहां फल के जाने ता

जानता: लहरना कि त्याग का फल जब वृक्ष को ह्रास बीज की पृथी सुरक्षित है।

क्योंकि नव एक वह लक्ष्य है, को, मोह की त्याग देता है।

मत्ता बीज देकर, अपने काप

फल गिरेगे अभी नये मे परती पर आता पड़ता है।

अन्यथा वह विकलाग हो जा के संघन में आता है और के माटी संघन को तीकर

में उमका नया जन्म होता है में और निश्चित ग हाथ्या म

हम वृक्ष के फल की था बना चुनना। मृत्यु के साथ

हृषा वह माध एक जीवित प चरनेवाला। पर मृत्यु में

एक विशेष मत्त और भी है में एक और उपसर्ग पर गया

तथा नये सान का दान्य प हुमा तो दूष हो जाया

प्रकृति के माध मनुष्य में एक के प्रकृति पक्ष की साधना को

तथा ज्यों-ज्यों मनुष्य अपने चतुर्गर्भ में छाया, ज्यों-ज्यों

को सीमा में बाहर जीवित के बाह्य जगत् और साधनों में

लगे। परिणाम यह हुआ कि और मर्यादाओं को नष्टकर वा

कारण ही नहीं रह जाता। नव

हो रहा है। और
। उर्मी में उनकी
किर उमका बीज

बासा प्राण क्या
कल्प ही जाना है।
नता ही जाए और
और क्या रोना।
साधन होगा है वहा
तन की गूले प्राण
की क्रियाएं नाप-
के माप सांस्कृतिक
इच्छा क्या प्रदान
के लिए, जीवन
का जो उन साधना
ही है। वर ना है,
ममान उच्छिद्यो
भूत। यह इच्छा,
करनी है।

उस पर न समने
ती है।
र विक्रमण उमी
में पुन हू, नृकि
मे, मोन कल की
विषयके सदने क्या
ह जाने ली है।
गरीर काय छीद
के प्रतिन पदान
व बुरी तरह विषके
हो तब कि जीवन
बाध भी उच्छा की
हो बुद्ध हो गिना
सहपने करे।
ओ देखा हुनरे के
छम भदनीय कि

कोई कारण हीन न कि : जो हाथ में चला गया, हर वकत उमी के लिए रोना,
जिनके हाथ में चला गया, उनमें साजीवन बाधना। विभने जग भी चपका हे
दिभा वसने रुठ जाना और वसने की तरह मुहू कलाए रचना और हन ध्रण
इन नाक में रहना कि कौका गिले कि वदना कृभावा जाए।

यहा कल के माने लाभ, वेदक कृति, व्यापारी भंडकार। जो रक्ष नही
नभाना चाहता कि त्याग द्वारा ही लाभ संभव है। पूरी तरह पश्कत बुध
का कल तब बुध को त्याग देना है तभी उच्छा लाभ है, क्योंकि तभी उसमें
बीज की पूरी सुरक्षा है। नृकी ने लगे हुए कल के बीज में सृजन संभव है।
क्योंकि तब तक वर कच्चा है जब तक उच्छी में क्या है। जिस दिन वह वगत
को, मोद को त्याग देता है उनी दिन उसका काम पूरा हो जायः है पूरवी को
तथा बीज देकर, अपने वर्तमान के एक नये वर्तमान का अधिपणन करके।

कल गिरेसे तभी नये दिन लोग। जिधु को गां के गर्भ का आशय छोड़कर
अन्वी पर प्राता पचना है। वृकी पर आकर उच्छाए गरीर, मगिनक वदता है
अवस्था वह विकल्प ही जाना है। मा के नाही अंतन को त्यागकर वह गगन
के बंधन में आता है और अपने कर्मा में पककर एक दिन पूरवी और जगन
के नाही बंधन को तोड़कर वह मृत्यु के सामने खड़ा होता है और अंतनः लोक
में उच्छा तथा जन्म होता है। इस तरह गरीर में गणना न, गमान न निश्चिन
में और निश्चिन में आत्मः में आत्मः की परिणति होती है।

इस बुध के कल की बात कर रहे थे। आप कहेंगे बुध और मनुष्य की
क्या तुलना। मनुष्य के सामने बुध जड़ है। प्रकृति के हाथों मयव चमत्ता
हुआ वह मान एक जीवन परार्थ है। रोणको, हन और लःहरम में ही संभवत
नचनेवाला। पर मनुष्य में इन प्राकृतिक तत्वों के अलावा 'मन' प्रीन 'इच्छा'
एक विशेष वस्तु और भी है। इसके योग ने हमारे प्राणों, कर्मा और व्यवहारी
में एक और उपसर्ग बढ़ गया है। गगनव भीतन की प्राकृतिक उत्तेजनाओं के
साथ हमने मानो का आनन्द पा जाता है। मानो अविन न कित, मदी-कृतन न
हुआ तो बुध ही जाता है। मनुष्यकूल कल में मित्रा ही निराशा वह जाती है।
प्रकृति क माय मनुष्य में एक मानसिक संबंध भी आ चुका है। उच्च मनुष्य
के प्रकृति घन की साधना कठिन और अटिन हो जाती है। इस रूप में इस
तरह ज्यों-ज्यों मनुष्य अपने अंग के विकास में गजनीति एक अनिश्चित
चतुर्द में आया, त्यों-त्यों प्रिया में जो एक आनंद नचने है उसे हम आनंदनता
की सीमा के अहर सीधकर से प्राप्त। पर-परह की प्रकृति के दबाव और
काय उमानो और गगनो में हम कल और मानो की दोनों में एकदुःख घंठने
रके। गगिनक यह हुआ कि उच्छा जब एक वान अन्वी स्वाभाविक सीमाओं
प्रीन पर्याप्तों को तोड़कर बाहर आ जाती है ना फिर इसके करने का कोई
कारण ही नहीं रह जाता। तब वह केवल 'और चाहिए', 'और...और' की रट

मन, ज्ञान और प्रेम—कर्मफल: धर्म, विज्ञान और राजनीति है। ये तीनों परस्पर संबद्ध हैं। ये एक ही में तीन हैं। जहां एक रहेगा वहां दोनों अवश्य रहेंगे। यह पाठ्यो की बात है।

आज राजनीति अगर धर्म और विज्ञान विहीन है, तभी दुलनी भंगी और अकेली है। तभी इसमें दुलनी हिंसा है।

अगर राजनीति के फल को एकले देना है तो इसमें धर्म का प्रकाश और ज्ञान का अल धनियामें है।

धर्म, विज्ञान, राजनीति परम सत्ता के ही तीन पक्ष क्यों नहीं हैं ? है।

मेरे लिए यही सत् चिन् सानंद है। इसके छलावा और भवा है सच्चिदानंद ?

सुखें हम जगत् में जो कुछ भी दिखाने दे रहा है, वह उसी परम सत्ता का सांकेतिक रूप है सत्। जो भांग्यातिक सम्भविपनक ज्ञान है वही है धिद-विज्ञान। और सुखें जो प्रेम है, स्वाधीनता का बोध जो है, वही है धानंद तत्व। यही है राजनीति मेरी। पर राजनीति साधन है, वृक्ष है, इसका माध्यम वही फल है— सफलता। पर वह सफलता क्या है ? स्वकल्प, रक्षराज्य। अगर यह नहीं है तो पेड़ अभागा है, जिसे जिनका बड़ा ही वह वृक्ष, चाहे जितना: आयादार ही।

जो निष्फल है वह न धर्म है, न विज्ञान न राजनीति। सफल वही है जो उस कर्म वृक्ष ने एककर स्वतः सुखत हो जाय। स्वतंत्र, सुखत, धान्यमन्त्री— इगौरजमी ने आत्मजयी।

हर फल, धान है। धर्म का फल, ज्ञान का फल, राजनीति का फल— केवल धान है। अगर यह धान नहीं है तो धर्म, ज्ञान और राजनीति से क्या कर्मान, जिरि, विश्वारी और कोई नहीं।

कुश्मीर के पुड़ के बाद गांभों पांइयों ने एक बड़ा भारी यज्ञ किया। उसमें बहुत सारा धान दिया गया। सब आश्चर्यचकित थे उस यज्ञ की सफलता पर। यज्ञ समाप्त होने पर वहां एक नवला आवा जिनका आधा शरीर सुनहरा और आधा माया भुंग। वह नवला उग यज्ञभूमि की मिट्टी पर लोटने लगा। थोड़ी देर बाद उसने दरको से कहा— तुम सब झूठे हो। यह कोई यज्ञ नहीं, यह आधंवर है, दिखाना है। सुनो, एक छोटे से गांभ में एक निधन प्रारंभी रहता था। एक बार अर्थकर अज्ञान पड़ा। कई दिनों भूखे रहने के बाद एक दिन कहीं ने थोड़ा-सा आटा लेकर उसमें बार रोटिधा करी उसके पर से। वह आठमो, उसकी पत्नी, उसका बेटा, उसकी बहू—ये चारों जैसे ज्ञान खड़े, थोड़े एक और भूखा आठमो वहां आया। आठमो ने अपनी रोटी दे दी, फिर भी वह भूख का तड़पता रहा। उसकी पत्नी ने अपना हिस्सा दे दिया। और इन तरह सब ने अपनी-अपनी रोटी उसे दे दी। वह भूखा कुप होकर चला गया। ये चारों रान को

सुख ने पर पण।
आटे के वृक्ष का
शरीर सुनहरा तो
उसी तरह जोड़े
होग कर लू।

ज्ञान का वह
वृक्ष है—कर्तव्य
रक्षा और शांति
होती है। समस्त

प्रेम से जो
फल निम्नित है
कर्मफल का विषय

यह भी एक
कोई भी धर्म का
करने से नहीं रो

पर यह सत्
और अशुभ, पर
राजनीति

हमसे ऐसा थोड़े
क्योंकि हर कर्म
ले सकते। हम

को अच्छे और बु
फिर भी ज
जितना है

अपने आपको दे
को भी देखने प
जगह 'तुम' दिखे
आत्मभयाण, इन

एतु संपूर्ण
हममें दो

आप अर्थवत्, र
जिस चारों को
(मैं) एकत्र क

पर जो
होता है। अतः

राजनीति है। ये नीतियाँ
नहीं होंगी वहाँ वेप शीतों

तभी दण्डों जंगी छोड़ें

धर्म का प्रकाश और

बनो नहीं है ? है।

मलाया और क्या है

इसको परम सत्ता का

होती है निर्द-विश्राम।

है शान्तिद नन्द। यही

सकता माध्य वही फल

व्य। अगर वह नहीं

है विरता कथाशास्त्र

। सफल नहीं है जो

मुक्त, पापजयी—

नीति का फल—केवल

नीति से बना कथाल,

नी यज्ञ विधा। उसमें

वैश्व की गफलता पर।

और गुनहारा और शप

ने लग। छोड़ी दर

ज नहीं, यह साहचर

बनो रहना था। एक

दिन कर्त्तव्य छोड़ा-

वह आशयो, उसकी

बाँई एक और गुला

वह गुला से लड़ना

वह लड़ने कपनी-

। ये चारों शान की

पुत्र से घर गए। गुवह में उखर से गुजरा। जहाँ उस आदमी के धर जमीन पर
आटे के कुछ कण उभर-उभर विचरे थे, धीमे उन पर जोड़ लगाई, तो मेरा साधा
शरीर गुनहारा हो गया। उस समय तो मैं संसार-भर में घूँस रहा हूँ कि कहीं
उसी तरह कोई और जगह मिल जाए, जहाँ लीककर अपना वेप शरीर भी भुन-
हारा कर लूँ।

दास का वह भाव कर्मयोग से ही संभव है। नहीं तो सारा कर्मव्य केवल
दुःख है—कर्त्तव्य का गलत मागद ही अभी मधुर होता ही। कर्मव्य चक तभी
होता और आशाओं से बनता है। जब प्रत्येक परिस्थिति में प्रेम की निरुत्थाई लगी
होती है। अन्तर्गत कर्मव्य एक अविद्यमान चर्याण भाव है।

प्रेम से जो कर्मव्य किया गया वही कर्म ही जाता है। और हर कर्म का
फल निश्चिन है। प्रकृति वही सावधानी से हमारे कर्मों के अनुसार उचित
कर्मफल का विधान करती है।

यह भी एक बड़ी विचित्र बात है कर्म के अनुसार बिना फल उत्पन्न किए
काँई भी कर्म नष्ट नहीं हो सकता। प्रकृति को कोई भी शक्ति उसे फल उत्पन्न
करने से नहीं रोक सकती।

पर यह सत्य है कि ऐसा कोई भी कर्म नहीं है, जो एक ही समय में शुभ
और अशुभ, सन्तान और दुःख दोनों फल न उत्पन्न करे।

राजनीति यही कर्म है। और हम चाहे कितना भी प्रयत्न क्यों न करें,
हमने ऐसा कोई कर्म नहीं हो सकता जो पूर्णतः शुभ हो। संपूर्णतः अशुभ हो।
क्योंकि हर कर्म में मिश्र है। बिना दूसरों को हानि पहुँचाए हम काम नक नहीं
ले सकते। हम चाहे निरंतर कार्य करते रहें, परंतु कर्मफलों में शुभ और अशुभ
के कन्धे और बुरे का अन्विष्टानं गान्धर्व का प्रति नहीं होगा।

फिर भी वह कर्म क्यों ?

जितना मैं जान सका हूँ अर्थान् देल सका हूँ—कर्म इतिवृत्ति इससे मैं
घटने आशको देख जाता हूँ। मरने की देलने की प्रक्रिया में मैं धीरे-धीरे दूसरे
को भी देखने लगता हूँ। कर्म करने-करने एक दिन ऐसा आया कि 'मैं' की
जगह 'तुम' दिखेगा। राजनीतिक कर्म में यही अज्ञानता पायो को सिद्धा था—
आत्म-दान, अनानासिन।

वह संपूर्ण आत्मत्याग ही नारी नैतिकता की नींव है।

हममें दो वृत्तियाँ हैं—प्रवृत्ति और निवृत्ति। प्रवृत्ति माने किसी चीज की
और प्रवर्तन, गमन, जाना, बढ़ना। मतलब 'हमारा यह संसार', 'पह मैं', 'वह
मेरा' चारों ओर से जो कुछ मिले, उसे ले लेना और सबको अपने लक्ष केंद्र में
(में) एकत्र करने जाना।

पर जब यह वृत्ति घटने लगती है (जब उस चीज से विचर्नक, लौटना शुरू
होता है) मतलब यह निवृत्ति का उत्पन्न होता है, तभी नैतिकता और धर्म का

सारंग होना है। यम का यही फल है— यह न युग है, न सभ्यता, केवल पक्ष है, केवल फल : यह है, धर्म— हमारी किसी ने पीछे दूरवा नहीं।

आगे यम का धर्म ही यह है कि कर्म और भाग में पहले अपने सहभाग का यह करे फिर सभ्यता बनने का प्रायश्चित्त देयंगे।

हमारे यमों को दुःख हीनता करना है या जिनकी कधी मलाई जाती है। यम युद्ध का अर्थ है यह यमार्थ मान कि यह सभ्यता केवल हमारे ही भाग के लिए होता है— हमकी मृत्यु। पर यह हीन केवल संतुर्ण भोग में ही संभव है— नतीही युद्ध की मृत्यु पर इतनी खुशी हम मराने हैं।

ही रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे— हम यमों की हीनता के प्रति कधी भावना नहीं जो एक व्यक्ति के प्रति भाव की होती है। वह व्यक्ति की निगा खार करती है, केसा करती है बिना उगी का। वकला ही, पर जैसे ही यह भाग जो एक कल्प होती है, यमता धार्मिक-विरहता उदात्तता चर होती है, वो यह सभ्यता ही मानता है कि यम ही यमों में उनका कोई लक्षण नहीं।

परमहंस ने कहे जगत कहा है और यह त्रिभुवन सभ्य है, भीने सभ्यता में केला है, जिनकी कधी दुःखवता होती जाती कधी साधुता, भवतला का रूप यह धारण कर लेती है। यह तीनता वि मेरे ऊपर कोई निर्भर है। मैं ही यम, सभ्यता, परिवार का हिम कर सकता हूँ। सभ्यता दुर्बलता का चिह्न है। यह सभ्यता ही सभ्यता मानवित की यह है और हम मानवित में ही सभ्यता दुर्बल ही मानवित होती है।

भारतवर्ष में ज्ञान नामक एक युद्ध था है, जो सभ्यता ज्ञान के जावद्व सफल काम न हो सके, परन्तु इसके पुर जगदेव अथम म ही भिन्न थे। अथम हम ने अपने युव को महाकवि विद्या वेद के बाद राजा उत्तम (विश्वेश) के पास भेज दिया। विश्वेश अर्थात् जगदीश के पथ, राजा उत्तम ने अथम को अपने राज्यमंडल में राजा साकेत विद्यापीठ के प्रोच भूकदेव पर बोर्ड बनाने नहीं। एक दिन राजा ने भूकदेव के हाथ में दूध म भरा हुआ एक प्याली दिया और कहा— उसे पिकन दरवार की माल बाहर दरिद्रता करो, पर देखो, एक बंद भी दूध न मिले। भूकदेव ने राज दरवार के सभ्यता विद्यापीठ के बीच जाते परिव्रजमातृ पुत्री कर लीं, दूध को एक बूँद भी न मिली। वह राजा जलक ने कहा— देखो, तुमने तो प्याली की जात लिया है, रूपने पर लाओ। जिसने स्वयं पर पश्चिमाय प्रत्येक कर लिया है— हमने ज्ञान वादों की कोई भीक यमता प्रभाव नहीं हमें माननी। गली है स्वराज्य। गली है सभ्यता, राजनीति का लक्षण। यही स्वराज्य लक्षण का लक्षण, भूकदेव, अथम, दूध, राम-लक्षण परमात्म, विवेकानंद और महात्मा गांधी का। स्वराज्य यह है कर्म का। स्वराज्य फल है धर्म का, स्वराज्य लक्षण है राजनीति का। स्वराज्य माने पृथिवी।

हम अर्थ। धर्म म
निगा कोई भी मान
प्रकट है, एक लेनी
विद्यु जीवन विद्यु
अनुभव का प्र
वेदात्मक निम्न
उत्तमि यह जोरम
शुभ है, यम में,
गांधी कि हम भोग
धर्म, भोग, न
एक गांधी। पर हम
भाव। तुमि अर्थ
भीमता— पर भा
नहीं समता नहीं।
सभ्यता के वि
कल्पना कथित ने
हीनता का (दुर्बलता
हम यम हीन हीन
यह निर्माण कीर
हम विद्यापीठ
यह युद्ध हम लक्ष
वाकित का जगित
। जगित कि जगित है
न हम यम पर स
स्वराज्य लक्षण का

समष्टि का प्रतिपक्ष नहीं, विरोध नहीं, बल्कि समष्टि की आभिव्यक्ति का मूल माध्यम है। अभिव्यक्ति है तभी तो वृक्ष व्यक्ति है।

इस व्यक्ति का बुनियादी गुण है। और यह गुण है यह जीवन भाव, यह जीवन संकल्प—'हे देवकी ईश्वर, मर्त्या के लिए, उनमें भाग्य से ले जाओ। तुम भी हमें को जानता है। हमें पापी, कुटिलताओं ने बूढ़ करने की प्रेरणा दे।' हम यह नहीं कहते कि हमारी कुटिलता और पापों का प्राय हो, अपनी ओर से नष्ट कर दीजिए। नहीं, हम स्वयं अपनी बुराइयों से नष्ट। बूढ़, संकल्प को ही हमने बच माना।

हमने जीवन अनुभव से यह जाना कि हम माधन स्वीकार करने से वृत्त होना है। और यह भी अनुभव किया कि 'उत्तम भाग्य पर चलने के प्रयास में दो प्रमुख बाधाएँ हमारे सामने आती हैं—कुटिलता और पाप। और इन कृपवृत्तियों का, हम छुट संघर्ष कर, भोग कर, नाश करें। 'उपको वा' अतीतिभाव' का केवल यही यत्नपाःसक अभिप्राय है कि हम सतत सख्य रहकर अपनी प्रवृत्तियों को देखें। देखना प्रकाश में ही संभव है।

कर्मप्रधान जीवन ही हमारा जीवन था। इस प्रसंग में हमें इस रहस्य का भी पता था कि काम की शक्ति अजय होती है, यदि उसका उपयोग धर्म, निष्ठा, योग्यता, उत्साह और अनासक्त भाव से किया जाए। जीवन का मूल्य इसी में है कि उसका प्रत्येक क्षण दिया जाए—यही था हमारा उत्तम कर्म का प्रतीक। जो दिया नहीं गया वही था अंधकार हमारे लिए। क्योंकि जो दिया नहीं गया वह ही अंधकारित रह गया। अतीत के अंधकार में चला गया।

रथों के लेकर मानवप्राण के कल्पण की कामना से जो कर्म किया जाता है वही था हमारा 'योग'। योगयुक्त होकर कर्मरत होने का अर्थ होता है 'स्व' में 'पर' के भेदभाव से ऊपर उठकर कर्म करना, जो मेरे लिए और सबके लिए द्वैतकर हो और सबको अपने भीतर समेटकर शुभ की प्राप्ति में सहायक हो।

यजुर्वेद में हमने पढ़ा कि जो सभी प्राणियों को अपने भीतर देखता है और सब प्राणियों में अपने को पाता है, वह किसी प्रकार के संशय से रहित नहीं होता। जीवन वहीं भयस्त होता है जहाँ हमारे विचार संकीर्ण और दृष्टि हानि है। भय से शीनता का संसार होता है और उस शीनता में भय नव अमरुत गुना बढ़ता है, जो स्वभावतः और अंततः जीवन की निर्मूलता को दूषित कर देता है। तभी हमने कहा—आपके लिए और सबके लिए अभय हो।

यजुर्वेद में हमने पढ़ा—पीछे से और आगे से, ऊपर से और नीचे से हम सभी निर्भय रहें। मित्र से, अमित्र से, ज्ञान और अज्ञान पदार्थों से हम सभी अभय रहें। रात और दिन में भी अभय रहें। सभी दिशाओं में रहनेवाले कहे, भोवा हमारे पित्र बनकर रहे।

बरीनिगद् में हमने माना है गायत्री होकर कि परम ऐश्वर्य का अरुण तभी

संभव है जब हम

गोप के अ
विद्यमानता के
प्रत्येक करदवाने
अंध जन्मरहित
'मन्' है जिसमें
शक्ति के रूप में
सृष्टि-पाना, यथ
हमारे पला

जीवन के संवय
किया, यह ज्ञान
यह जीवन

(११) और य
स्वरतों में प्रकट

जीवन पर
करें वह प्राणियों
की ओर जो तु
तभी हमने स्व,
किया था। पर

यही कारण
कामना नहीं थी
की शक्तिओं के

अधिक उषों तप
अशोक भाव ने
हमारी संतान

भाते। जीवन
बिना हमारे क
संभव है, पर

हम अपने
तभी जागी था।

हमारा म
जीवन और अ
एक था। यही
अपन ऊपर नहीं
हर पानी हुई

मगन है तब हम मरना जागृत रहें।

मृत्यु के आरंभ में एक ही 'मत्' था फिर उत एक ही त से यह अनंत विदग्धताएं कौन पैदा हो गयीं? वही 'मत्' हम है—निर्माण का प्रयोग बन धारण करनेवाली विन् शक्ति 'मत्' है। तभी हमने माना कि मनुष्य में जो अंश जन्मरहित है, उसे जन्मस्वी करो। हमारा जो जन्मरहित भाग है, वही तो 'मत्' है जिसमें ग यह माया विशय प्रकट हुआ। वही 'मत्' हमारे भीतर रचना-शक्ति के रूप में है। यही है 'यह देखनेवाला, स्पर्श करनेवाला, सुननेवाला, सूँघ वाला, चखनेवाला, मंजला करनेवाला, कर्ना और जानी जीव गुण्य।

हमारे यहाँ 'मत्' और जान दो नहीं है। एक ही है। यही कारण है कि जीवन के संघर्ष में हमने जो अज्ञान पाया और अर्थों में, वाणी में उसे प्रकटीकृत किया, वह अज्ञान 'मत्' के प्रभाव और कृपा तभी है।

यह जीवन प्रवाह तब से आरंभ हुआ जब एकमात्र प्राणा था। ऐतरेय (१:१) और योगशास्त्र (४/३६/१६) के अनुसार ब्रह्म जगत् इस प्रकार अपने स्फंदनी में प्रकट होता है जैसे प्रकाश अशनी किरणों में, जल अपने कणों में।

जीवन-धारा वह रही है। बहती रहती, प्राण उभका इस्तेमाल करें या न करें वह आपकी प्रतीक्षा में रुकेगी नहीं। वह जा रही है उन अंतिम अवस्था की ओर जो सृष्टि के आरंभ के पूर्व में थी। यह जीवन रहस्य हम जानते थे, तभी हमने स्व, परिधाय, ममान तक जीवन का गहन अंतर् में डीग घनातल पर किया था। गहन केवल स्थापित के लिए नहीं, प्राणवान बने रहने के लिए।

यही कारण है कि हमने तब निर्वाण या ध्रुव में विनीत होने की अंधी कामना नहीं की। हमने कामना की मदीन भाव से, अपने भीतर और बाहर की परिस्थितियों में अक्षितवान बनकर कम से कम जो वर्ष तक या उल्लस भी अक्षिक क्यों तक जीएँ। यह नहीं, जीएँ। बेधत अंधेरी जीवन क लिए नहीं, मदीन भाव ने तब तो जीवित रहना चाहते ही थे, साध ही कामना थी कि हमारी मंजान भी और ही और हम अपने पूर्ण जीवन की प्रसन्नतापूर्वक भाँसे। जीवन का प्रत्येक क्षण, हमारे पराक्रम से प्रभावित है। एक भी अणु बिना हमारे कर्म और भाग के अछूता न शक्ति: जगत्। सब कुछ पुनः प्राप्त हो सकता है, पर शौर्य हुआ, अमूर्त अणु फिर कभी नहीं प्राप्त हो सकता।

हम अपने पूर्ण सज्जता से जीवन क प्रत्येक क्षण क कर्ता और जीवना थे, तभी जानी थे।

हमारा आचार व्यवहार टब क्या था, कैसा था? जीवन और आचार, जीवन और धर्म, जीवन और व्यवहार दो अलग-अलग चीजें नहीं थीं। दोनों ही एक थे। यही वक्त है कि आधी ने हिन्दुओं की तरह आचार, व्यवहार कनी भी अपने अंदर नहीं लाया। अज्ञा जो वही जाना है जो विजातीय होता है। और हर लक्षो हुई चीज हमें बोझ की तरह भवती है। बाह्य-का बहाना बिना दूरी

मानों दो रेशे नर शिष्ट हो, शिनका नाम श्राव है। वह धरति ही है जिसमें हमारे कानों का निर्माण किया।

हमारी शरीर इंद्रिया हमारी उत्पत्ति इच्छाओं भागनाओं की नाथी है। प्रावण्य है। उन इंद्रियों के इच्छापूर्ति की जाती है। पर फल है स्वयं कर्ता स्वयं इंद्रियों द्वारा इच्छा की पूर्ति : अगर हम कर्ता नहीं हैं तो इंद्रियों केवल प्रवृत्ति हैं। कर्ता ये ही हो सकता है। इंद्रियां पैरी हैं। अगर इच्छापूर्ति के कर्म में मैं, कर्ता नहीं हूँ तो फल कर्म है ही नहीं : वह केवल इंद्रियों का भाव है, प्रकृति है। हमने इच्छापूर्ति का स्वभाव ही नहीं उठता। इंद्रियां स्वयं नहीं हैं, और इच्छा केवल श्राव है, निष्फल है क्योंकि यहाँ कर्ता नहीं है।

वेदान्त का जो आत्मत्व है, आत्मा है जो उपनिषदों का, वह वही कर्ता पुरुष है। वह इच्छा की पूर्ति में कर्म करता है, और इन इच्छाओं की पूर्ति में कर्ता, भोक्ता होते हुए इस ज्ञान की सहायता प्राप्त होता है कि इच्छा की पूर्ति ही श्रेष्ठ हो सकती है। इच्छा में भीतर है, और इच्छा की पूर्ति बाहर है, दूसरे पर निर्भर है, फिर इसकी पूर्ति कैसे संभव है ?

पर हमने इन ज्ञान कर्ता और भोक्ता होकर। इसी को हमन कहते — 'भोग्य भोग्यायते नश्यत्'। भोग ही पूरा भोग हो जाता है। और जब हम कर्ता होकर भोग नहीं कर पाते तो हमारी इंद्रियां ही उपभोग करती हैं। उपभोग माने चलता। आत्मकार्य आत्मकार्य अकार्य रूप योकात्परम्।

वृक्षारोपक उपनिषद् में कहा है— हमने इच्छा की पूर्ति में ही अपने आरक्षी पाया। जो इच्छाओं के बंधन में बंधा है, वह क्या कर्म कर सकेगा नवा, प्रेम या कोई भी काम ? जिसने कामतापूर्ति का रहस्य या लिया है, उसी ने ज्ञान प्राप्त करा है। वही 'सकामकर्म' है। वही योक्त-वृक्ष में गये है।

पर ज्ञान बुद्धि में गहरी बरी गई। बुद्धि तो यथार्थानिक है, वह भी एक इच्छि है।

इच्छा की पूर्ति में ज्ञान विद्या, गहन और संपूर्ण कर्म की श्रमियां में हमने पाया कि यह भी वही वृक्ष है— जिसे ज्ञान के लिए मैंने उतारा संवर्ष, अम, रक्षित, यज्ञ दिया वह दुःख, दुःख है ही नहीं। सर्वमें वही आशय है। वह दुःख में ही है। मुझे अम हो गया था कि वह दुःख है।

वह ज्ञान, वह अनुभूति कि यह वृक्ष एक है (बिना अनुभव के नहीं, केवल ज्ञान कर, बुद्धि में स्वीकार नहीं, पूर्ण रूप में कर्ता होकर पूर्णतः भोक्ता) नहीं है हमारे वेदान्त—जहाँ गान ज्ञान का फल होकर 'सुखित' प्रसंग है। और जब हम यह जान लें कि एक परमाणु में अत्यंत पतुलक तक, उच्च तक के अचलन प्रणाली बंधन में है। इन पृथ्वी की असीमद मत्ता। मानवार्थता तक, जो कुछ इन विश्व में है, वे सब बुद्धि के निर्माण कर रहे हैं। यह सारा विश्व बुद्धि के लिए स्वयं का ही परिणाम है। इन विश्वास में प्रत्येक शब्द दूसरे परमाणुओं

में स्वतंत्र होकर अपने एक पर एक और साथ हुए है। प्रत्येक वस्तु में हमारा सारा धर्म इनो मुक्ति आत्मचेतन, और आत्मचेतन के सारा वेदान्त धर्म का स्वयं उद्घाटन निम्न-भिन्न जाणों के मध्यम रूप में आत्मज्ञान, अस्मिता, अस्मिता, अस्मिता धर्म द्वारा। यह कर्म क्या है ?

संसार के प्रति उपकार क्या है ? का कोई उपकार क्या सचते हैं ? क्योंकि सचचाई यह है कि संसार सकार जो निरर्थकता है। यदि मैं कभी न रहता, जैसा मात्र हम शब्दों समय के लिए अने ही जा जाएगा। मुझ और दुःख के हम क नहीं कर सकता। अगर दवाएँ जाएगा, तो वही दुःख रूप बदल तो अस्मिता दवा कीत करेगा ?

हमारे श्रुतियों ने, परमाणुओं उच्छेते पाया—संतुलन नाट हो वैश्वभवाव के कारण ऐसा है प्रसिद्धिद्वारा। ज्ञानने से फल ज्ञान की दिशा में तो पाएँ कि प्रत्येक ज्ञान की प्राप्त करने की चेष्टा कर पर यह बहुत रास है कि पूर्ण पूर्ण संतुलन हम संसार में कभी न के पूर्व ही क्षय संसार किंधी भी जाणा और क्या कोई प्राणी न

संसार का यह सर्वत्रक प्रकृति पृष्ठा नहीं कि हम ज्ञान और ज्ञान की पीछे ले जा रहा है; हमने ज्ञान ज्ञानता यह और हम इमान दूर की लान हैं, यह अगम्य है।

दुःख है सचता है हम एक सचता ज्ञान हैं। यही है कर्मयोग, जिसे

में प्रवृत्त होकर अपने पथ पर जाने की कोशिश में है, पर हमें उगे पकड़े और बांधे हुए है। प्रत्येक पशु में अंत विस्मय की प्रवृत्ति है।

हमारा मार्ग धर्म सभी पुक्ति के लिए है। अचेतन से चेतन, चेतन से आःअचेतन, और माःपत्तन से आरगमुक्त । बंधकर ही मुक्त । पुणःतीत ।

वेदांत धर्म का सबसे उदात्त उत्त्व यह कि मुक्ति के इस लक्ष्य पर हम निम्न अिन्न मार्गों में समान रूप में पहुंच सकते हैं : पैसा जिज्ञासा स्वभाव हो— वर्णमार्ग, अन्तिमार्ग, योगमार्ग और ज्ञानमार्ग । हम पहुंच सकते हैं। कैसे ? कर्म द्वारा । पर कर्म क्या है ?

संसार के प्रति उपाकार करने का क्या अर्थ है ? क्या हम सखपुत्र संसार का कोई उपकार कर सकते हैं ? निरपेक्ष पर्थ में 'तही', अपेक्ष दृष्टि से 'हां' । क्योंकि सचचाई यह है कि संसार के प्रति ऐसा कोई भी उपकार नहीं किया जा सकता जो चिरस्थायी हो । यदि ऐसा कभी सम्भव होता तो यह संसार इस रूप में कभी न रहना, पैसा मात्र हप हगे देस रहे है । हम किसी मनुष्य की भूख थोड़े समय के लिए भले ही शांत कर लें, परंतु बाद में वह फिर भूखा हो जाएगा । सुख और दुःख के इन मनादि ज्वर का कोई भी मदा के लिए उपचार नहीं कर सकता । अगर दवाइयों से अन्य उपचारों से शरीर का दुःख पावप ही जायगा, तो वही दुःख रूप बदलकर अब और मन में बृद्धि में बंध प्रपगा ही उसकी दया कीन नयेगा ?

हमारे अिणियों ने, मडापुण्यों ने देखा कि यह जगत् कैसा है, वैसा क्यों है ? उन्होंने पाया तनुन नष्ट हो जाने के कारण : अगना का अभाव, केवल वैगमभाव के कारण ऐसा है यह जगत्—सर्वत्र विरोध, प्रतिरोधिता और प्रतिद्विष्टता : वेधने से उता चलता है यह महाहन है, समंभव है । श्वर तल की दिसा है तो पाएँ कि प्रत्येक जलबिंदु फिर से सरनी सादि अवस्था, श्वर, शांत की प्राप्ता करने की चेष्टा करता है ।

पर यह कहु सत्य है कि पूर्ण निरपेक्ष भावता, समस्त प्रतिद्वेदी अिणियों का पूर्ण अनुनन इस संसार में कभी नहीं हो सकता । इस अवस्था को प्राप्त करने के पूर्व ही साग संसार किली भी शकार के जीवन के लिए सर्वथा अदीय वत जायगा और यथा कोई प्राणी न रहेगा ।

संसार का यह लक्ष्मण प्रकृति की एक बीज्य संशरवना है । इसमें श्राप पडा नहीं कि हम पंगे और गप । पर प्रचंड यकिशगानी कर्मचक्र यंत्र हम नभी को मीले ले ला रहा है; इसका वाहन निकलने के तबल दो ही उपाय है—एत संश चलतः रहे और हम अपने डुर रतः । मनभव, जिना भागे अथवी समन रामनायों को श्याग दे, यह समंभव है ।

हमारा रास्ता है हम इस संसार के धर्मक्षेत्र में कूड पडे और कर्म का रहरप जान लें । यही है कर्मयोग, जिसे देखा है हमारे भस्य में अपने-अपने ढंग से

तीया अध्याय

वृक्ष : हम लोग

हम लोग हिन्दू नहीं, भारतीय । बीज रूप में हम 'आर्य', 'आर्यों' गृणवाची नाम हमारा । बाहरी लोगों ने हम लोगों को 'हिन्दू' कहा । पर हिन्दू कहने से हमारा जो बुनियादी भारतीय रूप है, वह पूर्णतः अभिव्यक्त नहीं होता । क्योंकि हम भारतीय चरित्र की बुनियाद ही है तब वर्णों, संप्रदायों, धर्मों, संस्कृतियों, जातियों को संलग्नी कर, मिलाकर एक भारतीय जाति बना देता, अनेक धर्मों, अनेक संस्कृतियों को मिलाकर एक भारतीय धर्म और एक भारतीय संस्कृति तैयार कर देता । अर्थात् नौधो, ऋषिभूष, इन्दिइ और आर्य, कम से कम ये चार जातियाँ और संस्कृतियाँ थीं, जिनके परस्पर मिलन और मिश्रण से एक महाजाति पैदा हुई जिसे आर्यगणों ने 'हिन्दू' जाति कहा, पर वैज्ञानिक रूप से जो 'भारतीय' है । (सबसे पहले अलवरनी ने, आर्यही सही में हमें 'हिन्दू' कहा ।) भारतीय, यही वह वृक्ष है, यही अब तक हम लोग हैं, जिसका बीज 'आर्य' था । उस बीज से उगकर वह गौधा उपनिगदों के पुरातन तक आया । बौद्ध, जैन और गुप्त साम्राज्य के आगवत धर्म तक आकर वह गौधा पूरा एक वृक्ष हो गया । दूर-दूर तक फैला हुआ बौद्धिक और कलात्मक, यत्न-सुम्पी में भर-हुआ यह वृक्ष हो गया । पूरे मान्यविश्वास से रूपनी अड़ों पर पड़ यह वृक्ष अपनी उन्नततम संस्कृति पर गर्व करता है ।

उत्तरी और पश्चिमी भारत में उत दिनों गुंग, कन्न, चुनानी, शक और कुषाण राजा राज कर रहे थे तथा दक्षिण में मातवाहनों का राज्य था । भारतीयों की बुनियादी विशेषता है कि जब-जब इस देश में विदेशी जातियों, नस्लों और संस्कृतियों के लोग आ बसते हैं, तब, तब उसके भीतर से प्रगति का उचार उठके लगता है । जो जब यह प्रगति उचार उठना बंद हो जाता है, तब यह सभित-हीन होता है । चुनानी, शक और कुषाण लोग विदेशी थे किन्तु भारत आकर वे भारतीय हो गए ।

धर्मों के पतन से लेकर गुप्तों के उत्थान का समय ही इस भारतीय वृक्ष का वह समय है । यही वह काश है जब आर्य से हम लोग बदनकर 'भारतीय'

वृक्ष : हम लोग

तथा वैदिक धर्म परिवर्तित हो जाता है । यही वह काल है जब नैयार हो जाता है । अरके आते हैं और वर्तन की आर्येतर संस्कृतियों को अपनी धा, पर इसी काल में आर्य से जनना से छिटाए हुए थे, जनसाधारण के लिए कुलभ ह

यह सब ही हुआ, वृक्ष की बीमारी भी लग गई । बीज

आर्यवंद में रोग के चार प्रोषधि और मारोग्य । ठीक विद्या के चार खंग बने—दुःख धर्म के भी चार खंग विनाशित

बीज ही विवेक है । भाग स्वर पर इसे ही 'उपाय की' (बीज) से उपाय तक माने । अर्थात् स्वर से, बीज से, वृक्ष विकृत हो जाता है । इसीलिए विवेक करके रहे हैं ।

गनु ने कहा है—'धर्म की मतलब बीज की समष्टि के परीक्षण करते रहना परम धर्म माने में सिद्ध, भुक्ति, विज्ञान—कर्मिल भुक्ति ऐसे ही एक धर्म थे तीनों प्रायाग एक ही धर्म

पर हम वृक्ष-प्रवस्था में हुए, यन्त्र जो सिद्ध खंग था, संस्थाभी हो गया और जो सिद्ध दर्शन अलग, दर्शन में गई अ का सर्वगोण रूप अर्थात् हो गया

इस अलगाव में पहली व विरोधाभास मन, अर्थात् और का यह कथन 'सत्यपूर्ण' बनेत कहता, विवेक से पवित्र आधर

तथा वैदिक धर्म परिवर्तित प्रथवा परिपक्व होकर भागवत धर्म (हिंदू धर्म) हो जाता है। यही वह काल है जब रामायण और महाभारत का अंतिम रूप बनकर तैयार हो जाता है। अब स्मृतियाँ लिखी जाती हैं, आरम्भ के पुराण रचने जाते हैं और दर्शन की अनेक शाखाओं का विकास होता है। धार्यों ने अर्धशतक संस्कृतियों की अपनी संस्कृति में पचाने का जो अभिमान शुरू किया था, वह इसी काल में आकर पूरा हुआ। ब्राह्मण जिस गुप्त ज्ञान को उतने दिनों से जनता से छिपाए हुए थे, वह महाकाव्यों और पुराणों द्वारा इसी काल में जनसाधारण के लिए मुलभ हुए।

यह सब हो हुआ, बुद्ध पर पूर्ववर्तन फल भी लगे, पर इस बुद्ध में तभी बीमारी भी लग गई। बीज से बुद्ध होते-होते बुद्ध में रोग लग गया।

आयुर्वेद में रोग के चार अंग (विभाग) बताए गए हैं—रोग, निदान, औषधि और प्राणोपचार। ठीक इसी धरातल पर वैदिक परंपरा ले लेकर बुद्ध तथा विद्या के चार अंग बने—बुद्ध, निदान, मार्ग और मोक्ष। ठीक इसी प्रकाश में धर्म के भी चार अंग विरचित हुए—दर्शन, पुराण, कर्म और फल।

बीज ही अनेक है। आधा के स्तर पर बीज ही दृष्टि है। अभिव्यक्ति के स्तर पर इसे ही 'उपाय कौशल' कहा गया। लेकिन सच्चाई यह है कि दृष्टि (बीज) से उपाय तक आने तक इसमें अंतर या विकार प्रा जाता है। अभिव्यक्ति स्तर से, बीज से, बुद्ध (धर्म) तक आते-जाते कहीं कुछ स्वभावतः अशुद्ध, विकृत हो जाना है। इसीलिए हमारे ऋषि-मुनि शब्द और कर्म की शुद्धि निरंतर करते रहे हैं।

मनु ने कहा है—'धर्म की शुद्धि हमेशा समय-मग्न पर आवश्यक है'। मतलब बीज को समय के साथ देखते रहना, जमीन और जलवायु के साथ परीक्षण करते रहना परम आवश्यक है। इसके लिए देखते-बाले, परीक्षण करने-वाले में भिन्न, मुनि, विद्वान्—ये तीनों अंग एक ही में अनिवार्य हैं। हमारे वहाँ कतिन मुनि ऐसे ही एक अन्वयाग उद्वरण हैं, जिनमें भिन्न, मुनि और विद्वान् ये तीनों आयाग एक ही व्यक्ति में समाग रूप से हैं।

पर इस बुद्ध-प्रवस्था में आकर ये तीनों अंग ही एक दूसरे से अलग नहीं हुए, बल्कि जो भिन्न अंग था, वह गाँजित हो गया, जो मुनि या वह जंगलवासी संन्यासी हो गया और जो विद्वान् था वह वास्तवीय, कर्मकारी हो गया। धर्म से दर्शन आया, दर्शन से कर्म अलग, कर्म से उपलहार अलग, इए एकामिता से धर्म का सर्वशोण रूप नष्ट हो गया।

हम अन्वयाग से पहली बार भारतीय चरित्र में तीन चित्तंगदिवस, तीन विरोधाभास मन, क्षाणी और कर्म से यह त्रि-आधामी संकट उपस्थित हुआ। मनु का यह कथन 'सत्यपूर्तं त्वेतवाचं मनः पूर्तं समाचरेत्'—सत्य से पवित्र बचन कहना, विवेक से पवित्र आचरण करना—यह अस्त हो गया। इन्हीं चित्तंगदिवसों

में गुणवानी नाम
हूँ कहने से हमारा
ता। क्योंकि हम
धर्मों, संस्कृतियों,
देशों, अनेक धर्मों,
भारतीय संस्कृति
में, कर्म से कर्म ये
और विद्वान् से एक
वैज्ञानिक रूप से
इसे 'हिंदू' कहा।
बीज 'धर्म' का।
गया। बीज, जिन
पूरा एक बुद्ध ही
धर्मों के अन्वया
ग यह बुद्ध अन्वया
क्षानी, धर्म और
गया। भारतीयों
धर्मों, नरकों और
का उचार उठने
हव वह नवित्त-
भारत आकर वे

भारतीय बुद्ध
किर 'भारतीय'

से कर्म से कर्मकार का रूप धारण किया और व्यवहार में सात्विक का रूप लिया।

भारतीय चरित्र, भारतीय संस्कृति में यह रोग चौथी शताब्दी में प्रकट हुआ। इसी रोग के लक्षण थे—वर्ण में जाति का घेरा, फल को कर्म से अलग करना, और इसके लिए फल देनेवाले ईश्वर, भगवान (भागवत धर्म) की कल्पना करना।

हमारे बीज में, आद्य जीवन में ईश्वरवाद नहीं था, वहन कात्मा है, वृक्ष है। बिना कर्म के फल की कल्पना वहाँ नहीं है। जो बुरा है, अशुद्ध है उसे उसके बुरे फल से, अशुद्ध परिणाम से छुट्टी मिल जाये, इस अनिवायेता को वहाँ फुड़नाया नहीं गया है। पर अब यहाँ बुरे कर्म का बुरा फल हमें न मिले, इसकी रोक के लिए हमने ईश्वर को ला लिया। अपने कर्म का दायित्व दूसरे पर। जो अच्छा फल है, मीठा फल है वह हमारा, जो बुरा फल है वह दूसरों का। वहाँ ने तुम्हारा बूझ रोकते हैं—अर्थात् और बुरे में, नीचे और ऊँचे में, दुःख और सुख में।

पर यह रोग प्रचलित नहीं माना। बीज से वृक्ष बनने तक की प्रक्रिया में, बाह्य प्राकर्मणकारियों से हमारे जितने युद्ध हुए, तरह-तरह के युद्ध हुए, अपने देश के भीतर जितने परस्पर संघर्ष हुए, लड़ाइयाँ हुई, भारत का सांस्कृतिक सितेज जितना विशाल और विस्तृत हुआ, ईरान, चीन, सूनात और मध्य एशिया से हमारा भित्ति संबंध बढ़ा, इन सब कठिनाइयों और तूफानों का स्वाभाविक अन्तर उम बढ़ते हुए पीछे पर पड़ा था।

सुंग, सातवाहन, शक, कुषाण, चेरा और चोल के समय में (२०० ई० पू० से सन् ३००) जो इतना बड़ा आसानी समाज पैदा हुआ, जिनका व्यापार श्रीलंका, रोम, चीन, मिस्र, मेसोपोटामिया, मध्य एशिया तक फैला था, उसका सात्विक, नैतिक प्रभाव भी इस पीछे पर अनिवार्यतः पड़ना ही था।

जीवन-गति और विविध संस्कृतियों के एक बहुल बड़े नैताब का सामना करना पड़ा उस बढ़ते हुए वृक्ष को। उस सैलाब, उस बाढ़ का अनुभव कुछ की बहुत पड़ने ही हो गया था तभी तो उन्होंने कहा—'आत्महीने भव'। अर्थात्, इस बड़ाव में, जब प्रवाह में स्वयं डूब ही जाओ। बड़ो मत। अपने हीप की जमीन पर पैर रखना बड़े ही जाओ। अर्थात् मन और भावनाओं की अट्टरों में मत बड़ो। मन को देखो और आत्मन् हो जाओ, कर्त्ता हो जाओ।

वृक्ष होता हुआ वह भारतीय पीसा वेदक सूतहला था (स्वर्ण युग) दूर दिगंतों तक फैलती हुई उसकी बौद्धिक और कलात्मक साक्षात् पर, उसके सुदूरतम प्रति सुगन्धित पुष्पो और अत्यन्त रसमय दिव्य फलों पर किस बाहरी देश की लोलुप दृष्टि न पड़ी होगी!

फल और दृष्टि की, फल और कर्म की उसी निर्मलपति ने हम लोगों में

वृक्ष : हम लोग

कमजोरी और ह्रास के चिह्न दिखाए। इन के रस घाने, यद्यपि हम उन्हें रक्षता और कर्मणः से उत्तरी भारत नेहू ने अपनी पुस्तक 'भारत की स' 'प्राची सदी तक वह (हण) उत्तरी इनके बाद प्रतिभ कृष्ण भसाद, मध्य गाय मिलकर बड़ी कौशिल्य ने उत्तरी संघर्ष के कारण त्रिबुस्तान राजनीति में भी कमजोर पड़ गया, चीन हलों में बस जाने ने कमशः लोगों में एक जिन तरह और विदेशों से आतवाक भी कर लिए गए, नैतिक हनको छाया प्राचीन प्रादेश दुर्बल पड़ गए। हलों हद हज की कठोरता और अर्थरता के के युद्ध और गायन के व्यवहार भारत

सातवीं सदी में हर्ष के मन्त्र में की पुनर्जागृति होती है। नवीं सदी में को एक में मिलाकर उत्तरी और मध्य करता है। इसके बाद फिर प्यारहवीं एक पराक्रमी रूप में हमारे सामने राजधानी बनती है। परंतु इन कुछ म कि हम लोगों में भीतर कमजोरी बंध की बहिक रचनात्मक तत्त्व की ही मंद

क्या ही वह कमजोरी? वह रोग रोग के शहरी लक्षण थे—वर्ण से जाति साक्षार्थ, कर्म और फल के बीच में ड भय।

हमारे ऋषि मानते थे कि किसी पर उसमें मरना ठीक नहीं है। लक्ष्यों लिए पीछे के चारों ओर, सुरक्षा के हो जाता है तो सुरक्षा की वही वस्तु भीतर तक प्रवेशर उसे ही मारने लगती तभी ऋषियों ने कहा कि जिस संसार

१. 'दिलकवरी काय हजिया', जगद्गुरु महाराज

भार में घाटम्बर का रूप

श्रीधी उत्तरी में प्रकट
फल को धर्म से घन
भवन (भागवत धर्म) की

भा, वहा घाटमा दे, वहा
जो भुग है, मनुष्य है उसे
भाए, इस अनिवायता की
भा बुरा फल हमें न मिले,
भा अपने फल का टाण्डिल
भा, जो बुरा फल है वह
भुरे में नीच और ऊँच

वहने एक की प्रकिया में,
तरह के बुद्ध हुए अपने
दे, भासन का सांस्कृतिक
भा, युनात और पम्ब एशिय
र तुनानों का स्वाभाविका

समय में (२०० ई० पू०
भा, जिनका व्यापार चीक,
भा था, उगाका मानसिक,
भा ।

वड़े मजाब का गामना
भाई का अनुभव बुद्ध को
भातमहीपो भव । अर्थात्,
वही मत । अपने हीप की
और भारनायो की सहरी
भा हो जायो ।

हला भा (स्वर्ण युग)
भाक भावःओं पर, उसके
भा फलो पर फिस बाहरी

धर्मति से हम लोगों में

कमजोरी और ज्ञान के बिजुल दिताई देने लगे । पश्चिमोत्तर में गौरे हूणों के दल के दल माने, यद्यपि हम उन्हें मार भगाने रहे फिर भी उनका घाता जारी रहता और कमजोरे उनरी भारत में जम गए । इस वसंग की जवातरनाप नेहरू ने अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' में बहुत ही संक्षेपता से उल्लेख है— 'आधी सदी तक वज्र (हूण) उनरी हिन्दुस्थान में शासन भी करते हैं, लेकिन इसके बाद अंतिम गुप्त सम्राट, मध्य हिन्दुस्थान के एक शासक, यशोधर्मन, के साथ मिलकर अड़ी कोशिस से उन्हें देश से निकाल बाहर करता है । इस लंबे समय के कारण हिन्दुस्थान राजनीतिक दृष्टि में तथा लड़ाई की शक्ति की दृष्टि से भी कमजोर पड़ गया, और हूणों के बहुत संख्या में सारे उनरी हिन्दुस्थान में बस जाने ने क्रमशः लोगों में एक भीतरी परिवर्तन भी पैदा कर दिया । जिस तरह और विदेशों से आनेवाले यहाँ लम्बाविष्ट हो चुके थे उसी तरह यह भी कर लिए गए, लेकिन इनकी छाप अभी रही और भारतीय धार्मिकताओं के प्राचीन धादश दुर्बल पड़ गए । हूणों के जो बुराने वर्षान मिलते हैं, वे उनकी हद वर्ज की कठोरता और बर्बरता के व्यवहारों से भरे हुए हैं, और इस तरह के युद्ध और शासन के व्यवहार भारतीय धादशों से बिल्कुल विपरीत हैं ।"

सातवीं सदी में हूण के समय में राजनीतिक और सांस्कृतिक दोनों तरह की पुनर्जागृति होती है । नवीं सदी में गुजरात का मिहिरभोज छोट-छोटे राज्यों को एक में मिलाकर उनरी और मध्य भारत में एक केंद्रीय राज्य स्थापित करता है । इसके बाद फिर आठवीं सदी के आरंभ में एक दूसरा राजा भाव एक पराक्रमी रूप में हमारे सामने आता है और उज्जयिनी फिर एक बड़ी राजधानी बनती है । परंतु इन कुछ महत्वपूर्ण फलों के बावजूद हम वेगते हैं कि हम लोगों में भीतर कमजोरी बैठ गई, जो न केवल राजनीतिक प्रतिष्ठा को बल्कि रचनात्मक तत्व को ही मंद करने लगी ।

क्या थी वह कमजोरी ? वह रोग क्या है जो हमारे वृक्ष में लगा और जिस रोग के खाद्री लक्षण थे—वर्ण से जाति-पाति, कर्म में कर्मकांड, ज्ञान से शास्त्रार्थ, कर्म और फल के बीच में पंखरबाद, विस्तार से सरोच, धीरे से भय ।

हमारे अग्रि मानते थे कि किसी भी संश्रय में जन्म लेना तो ठीक है, पर जगमे मरना ठीक नहीं है । गर्भों में, मांजी, बाउ, लूकान में रक्षा के लिए रीप के चारों ओर, सुरक्षा के उपाय मान्यता है । पर जब पीवा वृक्ष हो जाता है तो सुरक्षा की बड़ी बस्तु वृक्ष के फल में, उसके पूरे मरीर में, उसके भीतर तक भंसकर उसे ही मारने लगती है ।

नवीं शताब्दियों ने कहा कि जिस संश्रय में जन्म लेना उसमें ही मरना नहीं ।

१. 'विस्मयरी काक इतिहास', जवाहरमाल नेहरू, पृष्ठ २५२

घराने सुरक्षा के बंधनों को स्वतः त्यागकर विकसित हो जाना ही धर्म है। मत-लब धर्म में सदा विकास होना अनिवार्य है। यह मंच कुछ हर क्षण बदल रहा है। बुद्ध ने सबसे बड़ी बात, सारे धर्म और दर्शन का सार यही तो कहा था— 'एहि परिमक धम्म'। आधी और देखो— यही धर्म है। बेसो, यहां हण क्षण सब कुछ बदल रहा है— यहां तक कि सत्य भी परिवर्तनशील है। देखता बौद्ध है? मैं देखता हूँ, कर्ना देखता है। देखने से ही संकल्प बनता है पर देखने के लिए, बलि देसने के मंत्रों में, उसके पहले चरण में बुद्धि की, तर्क की, धर्मान् विकल्प की जरूरत पड़ती है।

चौथी सदी (ईस्वी) में विद्वान्ग ने विकल्प की प्रकृति के बारे में, जब विकल्प का जाल चारों तरफ फैलना शुरू हुआ था, कहा था— शब्द की योगि विकल्प है, विकल्प की योगि शब्द में है। (विकल्प योग्यः शब्दाः विकल्पः परदोषः)।

विकल्प का कार्य है— बुद्धि का चिरम्य जलाकर छांटना, प्रलय करना, यह नहीं, यह नहीं— यह है विकल्प की प्रकृति। अर्थात् विकल्प निषेधारमक तत्व है। विकल्प जहां समाप्त होना है, वही से संकल्प शुरू होता है। पर यह अभी संभव है जब देखनेवाला स्वयं कर्ना ही। कर्ना वह है जो स्वयं जानता ही। संकल्प देखनेवाले और वस्तु के बीच, कर्ना और देखने के बीच कोई पर्वत न हो। पर्वत माने विकल्प, मंच, अहंकार, बुद्धि, निषेध। पर जहां सब कुछ विकल्प पर ही आकर धम जात, विकल्प ही जहां सारे शास्त्रों का मूलधार बन जाए— यही है वह रोग। इत रोग की सुनघात बुद्ध के समय में ही हो गयी थी, तभी तो बुद्ध ने कहा— जितनी केवल धूम्रता दृष्टि है, वे सहाय्य (रोगी) हैं। ठीक से न समझी हुई धूम्रता, साधारण लोगों का बिनाश कर देती है। धार्मिक विचार बड़ी प्रतिक्रिया करती है जैसे साप को ठीक से न पकड़ा जाए तो उलटकर वह बस लेगा।

भारतीय जीवन में सबसे विकल्प का राज हुआ, तभी से शुरू हुई शास्त्र रचना, विधि और प्रतिरोध। धर्मशास्त्र बना। तंत्र, मंत्र, वीक्षा, अतुलन, गुण साधनाएं शुरू हुईं। जादू-टोना, सामयक, मीमांसा का मन्दजाल, सास्त्रमाल, कर्मकांड का जाल, विकल्प की अमरुत दृश्य-अदृश्य दीवारें हमारी आंखों के सामने उभर गईं। इसका फल यह हुआ कि ब्राह्मण ने अकमूल्य किना जाल का, विद्या का, अत्रिप ने नष्ट किया शौर्य को, वैश्य ने नष्ट किया धीमार्थ को और बुद्ध ने नष्ट किया सेवा को।

बौद्धिक साहस, विद्या दृष्टि के रथात पर कठोर तर्कशास्त्र, धर्मशास्त्र धाने लगा। विद्या, धर्म, पंचशास्त्र, कला-साहित्य से गुणित विद्यालय सांस्कृतिक वृक्ष पर कट्टरता, अंधविश्वास, विरागविदों का तुषार पड़ने लगा। सारा नमोअ जातियों, वर्णों, संप्रदायों, धर्मशास्त्र के तंग घेरों में परस्पर छिन्न-भिन्न होते

वृक्ष : हम लोग

लगा। एक दूसरे से धार्मिक-साहित्य को क्षोभता करने लगीं

भय ने, बाहरी आक्रमण के भय ने अविधि की स्वतंत्र कर दिया। सब कुछ जंगे घण गया। एक से दूसरे का पारल को पहल पणालक थी, स्वयं धर्मशास्त्र के कारण रूप ही निर्विधि के तः पर मान लत तो सचि न रह गईं या उनके दिया गया। ब्राह्मण और शक्ति बालों को नीची निगाह में देख भगुभ, शास्त्र-अशास्त्र में उद्व

चौथी सदी से लेकर यतन भी उन्नति क्यों न की हो, पर वेदान में केवल वृद्ध ही सत्य में आकर पालंद के लिए खुशी तो अब ईश्वर हो गया और जो पारमाथिक है, वह तो वेदान ही जीवन है भी और नहीं भी है जितना अठ, अतिना पार्श्व जीवन व्यवस्था ही टूटने लगी। सदी में नालंदा के आचार्य धर्म तमः' छोड़ विकरार है उस पौर

वह और अंधकार क्या वा के धर्मकीर्ति ने पाप' लक्षण वत

१. अद्वैतचन को स्वतः प्र
 २. किली ईश्वर को इन
 ३. स्नानादि में ही धर्म
 ४. जात-पात में निवृत्त र
 ५. पाप के नाश के लिए
- जडना के इन लक्षणों में सु

१. वेदः प्रामाण्य करधरिक्तु'क'द स संशापावरमः पाण्डुनाय वै'उ अ

जाना ही धर्म है। नव-
कुछ हर क्षण बदल रहा
भार नहीं तो कदा वा—
है। देती, वहाँ हर क्षण
तर्कनील है। देवता की
बन्ता है पर देवता के
दि की, तर्क नी, अर्थात्

प्रकृति के बारे में, जब
ह्या था—कव्व की भोक्ति
गेनयः धन्दाः विकल्पः

अटना, धन्य करणा, यह
केरुण्य निर्यथात्मक तत्त्व
होना है। पर यह तभी
जो स्वधर्म जानता हो।
धर्म के बीच कोई परा न
क। पर जहाँ सब कुछ
मात्स्यो का दूलाधार बन
सभय में ही हो गयी थी,
वे सम्राज्य (रोगी) हैं।
तथा कर देती है। अस्मिन्
सकड़ा जाए तो उत्तकर

उभों से नरु हुई शासन
मंत्र, टीशा, अनुष्ठान,
शभ्रदान, शासनपाल,
रीवारे हमारी आर्थो के
अवमूल्यन किया जान
तट किना योवाधे को

ईशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि
विधान मानकृतिक कृषि
ले लगा। तारा समाज
रूपर विन-विन्य होने

सगा। एक दूसरे से अलग-थलग रहने की प्रवृत्ति पूरे समाज की रचनात्मक शक्ति को क्षीणता करने लगी।

भय ने, बाहरी आक्रमणकारियों, यवनों के भय ने तथा भीतर घपने अस्तित्व के भय ने व्यक्ति की स्वतंत्र क्रियात्मक स्फूर्ति, उत्साह और साहस को कुंठित कर दिया। सब कुछ जैसे अपनी-पपनी सीमा में बंधकर रुकता उप्पड़ोता चला गया। एक ने दूसरे का पारस्परिक संबंध जैसे टूटता चला गया। वर्षा व्यवस्था भी पहले गन्धारमक थी, स्वतंत्र थी, अब जति व्यवस्था के उदय और तदनुसार धर्मशास्त्र के कारण रुक ही गई। क्षत्रिय का काम देश की रक्षा में परंपरा निरति के नाम पर मात्र लड़ाई करना रह गया। इस काम में दूसरों की या तो रुक न रह गई या उनके लिए धर्म से बहू सदा काम निषिद्ध करार दे दिया गया। ब्राह्मण और क्षत्रिय, वाणिज्य-व्यापार, शिल्प तथा कारीगरी करने-वालों को नीची निम्नाह से देखने लगे। नय कुछ ऊन-नीन, अच्छा-बुरा, सुभ-अशुभ, धर्म-अधर्म में बढकर बिलरने लगा।

चौथी सदी से लेकर यवनों के आने तक भारतवर्ष ने ऊपर-ऊपर कितनी भी उत्थति क्यों न की हो, पर भीतर ही भीतर भारा समाज क्षण होता गया। वेदान्त में केवल ब्रह्म ही सत्य था और जय माया थी। वनी धर्म्य सब इस चरण से अदकर पालंड के लिए सुनी जमीन बन गई। यहाँ जो मूल्य है, भावना है वह तो अब ईश्वर हो गया और जो मत्ता तथा शक्ति है वही माया है। अर्थात् जो पारमार्थिक है, वह तो वेदान्त है, पर जो व्यावहारिक है, वह जीवन है। धीरे जीवन है वी धीरे नहीं भी है। धर्म दर्शन की इस भारतीय अवधारणा से जितना भूट, जितना पालंड और कर्मकांड निकला, उससे हमारी बुतिपायी जीवन व्यवस्था ही टूटने लगी। इसी घोर भारतीय लोक संकट को देखकर सातवीं सदी में नासंदा के पांचाये धर्मकीर्ति (बौद्ध नैयामिक) ने कहा : 'हू धिग् व्यापकं तमः' बौद्ध धिक्कार है हम घोर धर्मकार को।

वह घोर धर्मकार क्या था ? जड़ता का धर्मकार। और उस व्यापक जड़ता के धर्मकीर्ति ने पांच लक्षण बताये :

१. वेदवचन को स्वतः प्रमाण मानना।
२. किसी ईश्वर को इस लोक का कर्ता मानना।
३. रतानादि में ही धर्म की इच्छा रखना।
४. जात-पात में निरत रहना।
५. पाप के नाश के लिए आत्मतंताप करना।

जड़ता के इन लक्षणों से युक्त व्यक्ति और समाज को धर्मकीर्ति ने 'ध्वस्त-

१. वेदः शासक्य कस्याचिरमर्तुं वाद रतानेधर्मन्ता जालिवादावलेगः।
संज्ञाधाररममः पापनाताय चति ध्वस्तप्रज्ञानां वच मिद्वानि जाद्वे ॥

प्रजा' कहा। जड़ता के ये पाँचों लक्षण उस समय के पुरे समझ और धर्म में थे। पहले लक्षण में मीमांसक आते हैं, दूसरे लक्षण में भवन या भागवतधर्म, तीसरे में कर्मकांडी, चौथे में धर्मशास्त्री और पातकों में तैत्तिरीय।

कर्मवाद और ईश्वरवाद की इस विमर्शिता, इस जड़ता का आकार्य वगुबंधु ने चौथी सदी में ही देखकर कहा था अपने 'अभिधर्म कोष' में—'कर्मवैजानन और ईश्वरवाद, इनमें से किसी एक को ही स्वीकार किया जा सकता है। दोनों एक साथ संभव ही नहीं हैं—दोनों का परस्पर विरोध है।

हममें होती हुई प्रजा से स्थित प्रजा, फिर में बुनियाद का मूल पर स्थित करते का प्रयास पहली सदी में नागार्जुन ने किया और चौथी सदी में वगुबंधु ने, सातवीं सदी में धर्मकीर्ति ने, आठवीं में शंकराचार्य ने—पर आठवीं से आठवीं सदी तक केवल शास्त्रीय परम्परा का जड़ राज्य रहा। फिर इस घोर जड़ता के तिलाफ कबीर, भानक, तुलसी, रात द्वावेम्बर की वाणी ने विदीह किया। प्राधुनिक काल में उसी जड़ता के विरुद्ध रामकृष्ण, विवेकानंद, अर्धशिव और महात्मा गांधी के कर्म राक्षी हुए।

मुझे अगता है, हमारी भारतीय संस्कृति में जब-जब राजगर्भित रोगी हुई है तब-तब लोकजाति ने उदित होकर उसका निदान और उपचार किया है। जब-जब आह्वान जाति प्रवृत्ति शास्त्र शक्ति निर्मूल हुई है, तब-तब गैर-आह्वान परंपरा, अमण जाति ने आकर देश और समाज को नष्ट होने से बचाया है। बुद्ध, नागार्जुन से लेकर महात्मा गांधी, जयप्रकाश तक राजगर्भित के खिलाफ लोकजाति का यह अग्रगण्य संघर्ष—एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है हमारी भारतीय मनीषा का।

यह सब है कि वहाँ व्यवस्था से जब जाति व्यवस्था कमी, कर्म और फल के बीच जब भागवत धर्म लाया गया, तो उसके पीछे गिरिचित कारण थे और उस समय इसको बड़ी अर्थवत्ता थी। पर हर चीज, हर विचार, हर व्यवस्था एक समय, एक स्थान से चलकर जब दूसरे समय, स्थान पर पहुंचती है तो उसका सारा अर्थ, सारा संदर्भ और प्रसंग सर्वथा बदल जाता है। अर्थात् जो जाति व्यवस्था और कर्मफल विवर्धन तब मंगलकारी था, यही कालांतर में संप्रण, उत्पीड़न और आत्मविनाश का साधन और कारण बना। पर इसे बदलें कौन ?

जातिवाद में शास्त्रवाद और शास्त्रवाद ने कर्मफलवाद के उदय में पीरे-पीरे हम लोगों के जीवन में यह जान पर कर गई कि जो जीवन हुए जी रहे हैं, वह मलत है। हमें जो जीवन जीना चाहिए, और जो सही है, वह शास्त्रों में दिया हुआ है। इसका फल यह हुआ कि जीवन का नियामक तथा जीवन को बगाने और बदलनेवाली शक्ति अब हमारे पास नहीं है, वरन् शास्त्र है और शास्त्र में बताया गए ईश्वर के अवतार—देवी-देवता ही हमारे रक्षक हैं। इसमें हमारा सारा आत्मविश्वास धीरे-धीरे टूटने लगा।

तब यह बहुत बड़ी और पूर्व की ओरतांगी की तो आक्रमण करनेवाले जाति कर उन्हें अगता बना दिया थे आर्य धर्म में रहने हुए बन-ये रहें। पर ज्यों-ज्यों जातिवत्ताएं उभरी, ज्यों-ज्यों का विकास हो गया। और रंगों के अनेक कबीलों और विभिन्न देवताओं और भूत पर चलते हैं तो उन्होंने (एक ही समष्टि में विविधता ऐसा वर्गीकरण था जो मान और हमके पीछे हमारा वह हम सब समान है। जीवन है। पर यह बात केवल वि जातिभेद में घंटा, वह जन्म गया। हम लोग जीवन में लगा। हमारा धर्म बाहर—

पर जिसका 'धर्म' और और अपने भीतर के अंधक साथ उभरा योग ही प्रसंग ले पाता है। वह अपने धर्म और भीतर से टूट जाता है। धर्म के माथ-माथ सत्त्व रणों द्वारा अंधों के उत्तर के शनता है। ऐसा चिन ही स्वभावतः तभी प्रांश्रिक भे-ममः-अ-विन और लोक-वि-

वीज रूप में ऐसा ही वि-सदृश्य ही जाता है।) अब हम हो जाते हैं। उग विन मय विनाशों से आएं, विश्व हूँ वह सारे विश्व को आर्गि-वह चित्त इतना घसीम

समाज और धर्म में थे।
मा आपवत्तर्पणी, तीर्थ

को आपाये जम्बूद्वीप
में— 'कर्मापद्रव्य और
सकता है।' दोनों एक

याद या कूल पर निश्चित
पौषी मदी में जम्बूद्वीप
—पर घाटवी में स्थित
रहा। फिर इस और
की बायीं ने विद्रोह
विचाराद, धर्म

राजसिद्धि रंगी हुई
र उपाचार किया है।
सब-सब दूर-आस्था
होने से बचाया है।
जगत्पति के खिलाफ
है ह्नागी भारतीय

ती, धर्म और कल के
कारण थे और हम
, हर व्यवस्था एक
दुपत्ती है तो उम्मा
धर्मों की जाति
मालांतर म धांगण,
इसे बदने कोन ?

द के उद्देश में होने-
मन हम जी गत है,
है, वह मान्यता में
तथा जीवन को
सम्बन्ध है और शासन
क है। इसके हमारा

तब यह बहुत बड़ी बात थी जब हिन्दू धर्म ने भार्यों को, द्रविड़ों को और पूर्व की झोरगंगा की घाटी में आ भटकी बंगोल जातियों को, हिमालय पर से आक्रमण करनेवाले पारथियन, सीथियन और इण्डो को अपने धर्म में लींच कर उन्हें अपना धर्म लिया। अपना बनाने की प्रक्रिया में उन्हें यह छुट दी कि वे धर्म धर्म में रहते हुए भी अपने पुराने धर्मों की विधियों और परंपराओं को बनाये रखें। पर ज्यों-ज्यों कला-कौशल, व्यापारों की संस्था बड़ी और परस्पर जटिलताएं उभरीं, त्यों-त्यों धर्मों और पेशों के धामार पर सलग-सलग जातियों का विकास हो गया। और जब धर्मों ने देखा कि उनके यहां अनेक जातियों और रंगों के अनेक कबीलों और श्रेणियोंवाली जनसंख्या विद्यमान है और ये लोग विभिन्न देवताओं और भूत-प्रेतों की पूजा करते हैं, अपनी रहत-सहज की भावनाओं पर चلتते हैं तो उन्होंने (हमने) जीवनमें वर्णोत्थरण को अपनाकर उद ममको एक ही समष्टि में प्रविष्टित स्थापित कर देने का प्रयत्न किया। तब यह एक ऐसा वर्गीकरण था जो सामाजिक तथ्यों और मनोविज्ञान पर आधारित था— और इसके पीछे हमारा बड़ी विश्वास था कि सबसे उसी एक ब्रह्म का वास है, हम सब समान हैं। जीवन का लक्ष्य स्वकर्म द्वारा जाति सीमा से ऊपर उठ जाता है। पर यह बात केवल विचारों तक, भावनों में रह गई, जीवन एक बार जो जातिभेद में बंटा, बड़ा उत्तरोत्तर छोटा, असुन्दर और अनाकर्षक होता चला गया। हम लोग जीवन से भागने लगे। एक वर्ग सावकर अपने धर्म छिपने लगा। दूसरा वर्ग साहू- बंगलों में, साहूवरो और भूतों में शरण ढूंढने लगा।

पर जिसका 'स्व' और 'आत्म' से, स्वयं से, कोई संबंध ही नहीं वह एक और अपने भीतर के संघर्ष में भटकेगा, दूसरी और बाहर के बृहत् संसार के साथ उसका योग ही असंभव है। ऐसा व्यक्ति या समाज न कुछ में पाता है, न ले पाता है। वह अपने आपमें ही अवच्छिन्न हो जाता है। वह बाहर से पृथक और भीतर से टूट जाता है।

कर्म के साथ-साथ सतत प्रयत्नकर्ता बने रहना और सतत कर्मा और धारणों द्वारा अर्थों के उत्तर देने रहना—इसी सतत जीवित प्रक्रिया से हमारा चित्त बनता है। ऐसा चित्त ही बाहर की शक्ति को आत्मसात् करता है, और स्वभावतः सभी प्रांतिक भेद-विभेद दूर हो जाते हैं। यह व्यक्ति-चित्त से लेकर समाज-चित्त और लोक-चित्त तक सत्य सिद्ध है।

बीज रूप में ऐसा ही चित्त था हमारा और अदृश्य रूप में (बुद्ध में बीज अदृश्य ही जाता है)। अब तक हमारा वही चित्त है जिसके वर्णन कभी-कभार हमें हो जाते हैं। उस चित्त में हमें यह कहने की क्षमता थी 'सब लोग आएँ, सब दिशाओं से आएँ, विश्व के लोग सुनें।' क्या? 'मैं जानता हूँ, जो जानता हूँ वह सारे विश्व को आमंत्रित करके बुनाने योग्य है।'।

वह चित्त सना बसीय आत्मविश्वास देता है। यह चित्त प्रयत्न करने से

चिन्तन और भयन से मर्दात्त 'देखने' से बनता है। हम लोगों ने जब से भय और अध्यात्म के मलमल जीवन के प्रति प्रथम कदम छोड़ दिया, भारतवर्ष में जिग दिन से उसके सभोनोंक में चित्त की महानदी लूट गई, उस दिन से हम नाप, पद, देश अरु और संकीर्ण हो गया। अथ चित्त की मत्त, गिरफ बहनी हुई जीवन धारा सूख जाती है तब उस धारा के नीचे जो पश्यर, रोड़े पथ बने पड़े रहते थे, वे सब ऊपर आकर दारना रोक लेते हैं।

जब तक वृक्ष के पत्ते हरे-भरे हैं, तब तक जो भी हवा घाती है उसे वे छेपते हुए लेते हैं और वृक्ष के तने में उसका संगीत और उसकी गति, गुजरती हुई अक्षी तक पहुँच जाती है। पर सूखे पत्तों में हवा नहीं रुकती। हवा लगते ही पत्ते भर जाते हैं। हवा बिना वृक्ष को स्पर्श किए चली जाती है।

जो सूखी धारा के वे अंकुश-पश्यर सूखे वृक्ष की सूखी हुई पत्तियों का वह अपार संसार - गहरी है वह अर्थहीन शास्त्र, पुराण, मूर्ति पूजन, निष्कल आचार पूज, आनुष्ठानिक निरर्थकता और विचारहीन लोक व्यवहार—जहाँ से आगे चलने का सारा रास्ता ही रुक जाता है। पश्री है हम लोगों का वह भारतीय पानय जब पबलो में हम पराजित हुए।

उस पराजय से सारा कुछ स्थिर हो गया। आत्मरक्षा का केवल एक ही उपाय बेष रह गया। इस कदर हम लोग अथमीन हो गए कि हर चीज को, जीवन के हर तत्त्व को शास्त्र के सीलकों में बंद कर दिया। तेरहवीं सदी तक बंद होते, निकुटने और भुंकेते चले जाने की प्रकिया पूरी हो गई। उसी का सङ्ग है, मनुस्मृति, विज्ञानेश्वर स्मृति, भित्तेश्वर। आगे सत्रहवीं सदी में इसी का साथ है अद्वैतजी दीक्षित का 'सिद्धान्त कौमुदी' जहाँ सारा बल कर्ता, कर्म और क्रिया से हटाकर शेष अन्य कारकों पर दे दिया गया। जब कि पहलू पाणिनि का सारा बंध कर्ता, कर्म और क्रिया पर था।

तेरहवीं सदी तक आते-आते हम लोगों के उस चित्त विनाश और नारिजिक पतन के अन्त मङ्गल है - नश्यतागण्य बल कमा, और अस्मिन्वगुप्त का तंत्रवाद।

अबनों को भी अपने भीतर रवीकार कर हम लोगों के चरित्र में एक गुणारभक अंतर आया—परदे का। बुगरे कहीं हमें देख न लें, इस भय ने हमें अंधेरे में जा छिपने की विवश किया और वहीं से पनपा हुआ लोग और अज्ञान ही हमारा धर्म हो गया। क्रिया से हम प्रतिक्रिया के अगत में आए।

हम अपनी जड़ से ही न टूट जाएं, इसलिए जब भी तेज आँधी और भयंकर तूफान आया, हमारा यह वृक्ष उसी अनुपात में अपनी रक्षक के लिए जमीन पर झुकना और गिरना चला गया।

यह वृक्ष इस तरह अपनी जड़ से ही नहीं टूटा, पर इसकी डालों पर, टहनियों और पत्तों पर असंख्य आंधियों, और तूफानों के कारण जो इतनी मिट्टी, रतना मलबा, इनगी गंध, इतना कुड़ा-कबाड़, कचरा, पश्यर, रेत, जालू

वृक्ष : हम लोग

आकर पर गए
से हने उद्योग

पर इसका
की मर्दात्त कर
सुखाराम ने नि

गुण्य का

श्रेय में एक न

सम्बन्धन दिव्य

गढ़ भारतीय

संस्कृत आगती

सम्बन्धन रानी

न जाने किन

इग्लाम

हिन्दु धर्म प्र

अननः रानी

सारी ह

प्रांशिया ने वि

आतुरकर सदा

बड़ी भारतीय

अकाल में यह

तक कि आत्म

चित्तना

गना असंभव

हम भा

आया।

अरुबर

अकर के स

आज तक भ

इस फल

आदि बीज—

पर अथ

संकीर्ण पश्यर

और अपराध

भारतीय

छिनाया, इक

है। हम लोगों ने जब से पत्ते
करना छोड़ दिया, भारतवर्ष में
हुआ ही मूल्य गई, उस दिन से हम
ब बिल की सदन, निरव बहती
के नीचे जो पत्थर, रोने पय बने
लेते हैं।

जो भी हुआ प्राचीन है उसे वे संभवतः
और उसकी गति, गुजरती हुई
हवा नहीं रुकती। हवा लपकते ही
काए जाती जाती है।

हम की लुभो हुई र्णियों का वह
ह, पुराण, पुरि पूजक, निष्कल
भारतीय लोक व्यवहार—जहाँ से
है। वहीं है हम लोगों का वह
ए।

मात्परशा का केवल एक ही
व्यवहार हो गए कि हर चीज को,
बंद कर दिया। लेखकों सही तक
तो प्रक्रिया पूरी हो गई। उती का
छर। प्राण सतहही सदी में इमी
कोमुदी अहाँ पारा बल कर्ता,
पर दे दिया गया। अब कि पहने
पर था।

के उस चित्त विनाश और पारिजिक
मा, और अभिनवगुण का संनराद।
कर हम लोगों के चरित्र में एक
कहीं हमे देख न लें, हम भय ले हने
ही से पनना हुआ ईंग और पल्लव
चिन्मा के जगत में था।

हम वय भी तेज प्रापी और भयंकर
में सपने रक्षा के लिए जमीन पर

मही दृष्टा, पर इनकी जानों पर,
और लुफानों के कारण जो इनकी
हा-कवाड़, कबरा, पत्थर, रेत, वायु

चाकर पट गया कि इस पर से इतना झोका, उवाव, कूड़ा-कचरा ड़ाकर फिर
से इन उठाने का काम बहिन हुआ।

पर इसका प्रयत्न रुका नहीं। जीवन-मृत्यु और धार्मिक स्तरों में इस वृक्ष
की मर्काई करने और इन उठाने का महत्त्वपूर्ण प्रयत्न कबीर, मानक, नामदेव,
तुकागम ने किया, तुलसीदास ने किया।

मृत्यु बादशाहों तक धार्मिक-साहित्य हिन्दु भूमलमानों के योग से जीवन के पर्यक
क्षेत्र में एक बड़े सम्भवदायक सम्भ्यता का विकास शुरू हुआ—मेरी दृष्टि ने यह
सम्भ्यता न हिन्दु थी, न मुसलमान, न वैदिक न बौद्ध, बल्कि जो बौद्ध भारतीय थी।
शुरू भारतीय—मत्तलब मस को अपना बना लिया, स्वीकार कर लेगा, फिर भी
सभको अपनी निजी (धार्मिक, सामाजिक) स्वतंत्रता दिये रहता। यह भारतीय
सम्भ्यता तभी तो इतनी बेपिनाह चटक, बहुरंगी है, क्योंकि हमसे श्रम-श्रम
न जाने कितनी सम्भ्यताओं का योग और संयोग है। यही है 'संगमनों'।

इसनाम भारत में आकर भारतीय रंग में रंग उठने ने नहीं बन सका।
हिन्दु धर्म और इसनाम नाम दोनों ने एक दूसरे के गुण-दोष लिए—नर्तक
अंततः दोनों को एक ही भारतीय सम्भ्यता में मिलकर रचना था।

सारी हवाओं आधी-लुफानों को अपने पागम संपादित करना और इस
प्रक्रिया में फिर एक बार कूड़े-कबाड़ मिट्टी-पत्थर के मजबूत को अपने ऊपर से
काटकर सदा हो जाना हमारे इस वृक्ष की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है। हर
बड़ी आधी लुफान में यह वृक्ष बार-बार सड़ा हुआ है और हर अंशक, बाढ़ तथा
अकाल में यह जड़ से टूट न जाए, इसलिए जमीन पर लेट गया है और यहाँ
तक कि आश्चर्यजनक से हमने अपने प्राणको पतित होने दिया है।

कितना आश्चर्यजनक, विचित्र है यह भारतीय वृक्ष, जिसे दुष्टि से जल
गाना प्रयत्न है।

इस भारतीय वृक्ष पर सोलहवीं सदी के मध्य में अकबर नामक एक फल
काया।

अकबर इस भारतीय वृक्ष का ऐसा मूर्तिमत्त फल था जिसकी फल प्रक्रिया
अकबर के सैकड़ों साल पहले तो भारत में चल रही थी और जो अकबर के बाद
पाँच तक व्यवस्था गति से चल रही है।

इस फल का रस का 'अशरत' और इस फल का बीज नहीं था—वही
साहित्य बीज—'देखते' और 'लोकते' या प्रश्न करने की महान प्रवृत्ति।

पर अकबर के बाद धीरे-धीरे इस वृक्ष पर हिन्दु और इसनाम की पुरानी
संबंधी पत्थर-पुष्पी प्रवृत्तियों ने फिर से आघात करना शुरू किया। इस बीज
और अशरत भाव का महत्त्वपूर्ण उद्धारण है—पौरंगतंत्र।

भारतीय वृक्ष की जो मूल प्रवृत्ति विकसित हुई वह है—हर चीज को
विघ्नान, डककर रखना, हमारे की अजरोते बनाकर रखना, और सदा प्राण, भय

है। हम लोगों ने जब से पत्ते
करना छोड़ दिया, भारतवर्ष में
हानपी मूल गई, उस दिन से हम
ब बिल की सतत, निरव बहती
के नीचे जो पक्ष, रोड़े पय बने
लेते हैं।

जो भी हुआ प्राणी है उसे वे मेलते
और उसकी गति, गृहणी हुई
हुआ नहीं बकनी। इवा लपेटे ही
काए नती जाती है।

हम की लुभे हुई पत्तियों का वह
ह, पुराण, पुरि पूजक, निष्कल
आरहीत लोक व्यवहार—जहाँ से
है। वही है हम लोगों का वह
ए।

शतमरशा का केवल एक ही
प्रभौत हो गए कि हर चीज को,
बंद कर दिया। शेरजैवी सही तक
तो प्रकिया गुटी हो गई। उगी का
छर। प्राण सजहरी सदी में इमी
कौमुदी अहा सारा बल कर्ता,
पर दे दिया गया। जब कि पहले
पर था।

के तम तिन विरला और नारिक
मा, और अधिनवपुत्र का तंत्रवाद।
कर हम लोगों के चरित्र में एक
कहीं हमे देख न जे, इन भय ते हने
ही से पनपा हुआ डींग और पल्लव
चिया के जगत में था।

हए जब भी तेज प्राणी और भयंकर
में घपती रखा के लिए जमीन पर

वही टूटा, पर इनकी डालों पर,
और वृक्षों के कारण तो इनकी
हा-कवाड़, कंधरा, पत्थर, रेत, बानू

धाकर पट गया कि हम पर से इतना बोझ, उखाव, कूड़ा-कचरा हटाकर फिर
से हमें उठाने का काम कहिन हुआ।

पर इसका प्रयत्न हुआ नहीं। जीवन-मृत्यु और भौतिक स्तरों से इस वृक्ष
की मफाई करने और इसे उठाने का महत्त्वपूर्ण प्रयत्न कबीर, नामक, नामदेव,
तुकाराम ने किया, तुलसीदास ने किया।

मृत्यु बादशाही तक भाते-भाते हिंदू मुसलमानों के योग में जीवन के प्रत्येक
क्षेत्र में एक नई सम्भवता-मया सम्भता का विकास शुरू हुआ—जैरी दृष्टि से यह
सम्भता न हिंदू की, न मुसलमान, न वैदिक न बौद्ध, बल्कि जो कुछ भारतीय थी।
शुद्ध भारतीय—मनलक्ष मत्र को सपना बना लेना, स्वीकार कर लेना, फिर भी
सबको सपनी निजी (आत्मिक, सामाजिक) स्वतंत्रता दिने रहना। यह भारतीय
सम्भता तभी तो इतनी वैभिसाल चटक, बहुरंगी है, क्योंकि इसमें श्रम-प्रलय
न जाने कितनी सम्भलाओं का योग और मयोग है। वही है 'सामर्थी'।

इसलाम भारत में आकर भारतीय रंग में रंग उठने से नहीं बच सका।
हिन्दू वर्ष और इसनाम भयं डोनों ने एक दूसरे के गुण-शेष लिए—कौर्तिक
अंतः दोनों को एक ही भारतीय सभ्यता में मिलाकर रखा था।

सारी हवाओं आधी-पूकानो को अपने प्राणमें समाहित करना और इस
प्रक्रिया में फिर एक बार कूले-कवाड़ मिट्टी-पत्थर के मनबे को अपने ऊपर से
आवृत्त सदा हो जाना हमारे इस वृक्ष की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है। हर
बड़ी आधी लूकान में यह वृक्ष बार-बार सड़ा हुआ है और हर अंधड़, बाढ़ तथा
अकाल में यह जड़ से टूट न जाए, इसलिए जमीन पर लेट गया है और यहाँ
तक कि आरभरसा में इयने अपने आपको पतित होने दिया है।

कितना आश्चर्यजनक, विचित्र है यह भारतीय वृक्ष, जिसे धुड़ि से उल
गाना प्रयोज्य है।

इस भारतीय वृक्ष पर सोलहवीं सदी के मध्य में सखार नामक एक फल
काया।

सखर इस भारतीय वृक्ष का ऐसा पुतिनयन फल था जिसकी फल प्रकिया
सखर के सैकड़ों साल पहले से भारत में चल रही थी और जो सखर के अंत
प्राय तक अबाध गति में चल रही है।

इस फल का रस था 'उदारता' और इस फल का बीज वही था—वही
सावि बीज—'देसने' और 'खोजने' या प्रयत्न करने की गहन प्रयत्न।

पर सखर के बाद धीरे-धीरे इन वृक्ष पर हिन्दू और इसलाम की पुरानी
संकीर्ण पतनो-मूखी प्रवृत्तियों ने फिर से आपात करना शुरू किया। इस चार
और अपरस्य भाव का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है—चौरंगजेव।

भारतीय वृक्ष की जो मूल प्रकृति विहीन हुई वह है—हर चीज की
शिष्याता, डककर रसता, दूसरे की जड़ों से बचाकर रखना, और सदा पार, भय

में रहना। (बीज हल में 'हम' यह नहीं है। बहुत खुले हुए परदर्शी हैं हम।)
 इस भारतीय प्रकृति का अत्यंत शोकपूर्ण शिखर औरंगजेब हुआ।
 औरंगजेब प्रेमी था। और साथ ही हम प्रेम को पाग और धुनाइ भी
 समझता था। उमीलिये प्रेम को बंद देने के लिए वह अपने देवालियों के विताश
 में लगा रहा।

हमके बाव मनुष्य मनुष्य में, खंडित शक्ति से खंडित मनोकामनाओं के बीच
 जो संघर्ष शुरू हुए उससे परस्पर संबंध विच्छेद की प्रक्रिया बड़ी तेजी से पूरी
 होने लगी। विकला आन के भीतर से हम लोगों में एक और अहंकार अपनी
 चपम सीमा पर पहुंचने लगा, हमारी और मन और भावुकता के सिद्धांत बंधे
 चल ने से स्वार्थ भाव अत्यंत प्रबल होने लगे। मन का राज्य हो, भावुकता-भरा
 अंशम हो, स्वार्थमय जीवन ही तो यह संकल्पना निद्रा की होनी है, अतः, विवेक
 बुद्धि की गारी सिद्धकियां अपने प्राण बंद हो जाती है। फिर जैसे स्वयं में
 मनुष्य प्रकृति को रोक रोकवहार करता है, ठीक उसी तरह अर्थात् प्रान्ता-
 व्यवहार के जाल में भारतवर्ष आत्मबंदी होने लगा।

अपने प्रति अपना ही परिचय देने में हम लोग परमार्थ हुए। इस अपनी
 बाणी को चुके थे, सब कुछ जैसे वाणिज्य और व्यापार हो गया था। हम
 लोग अपने-अपने घरों, घरों, मंजशाहों, किलों और भोपड़ियों में दुबके हुए, अप-
 मान, दुर्बलता और हीनबुद्धि से भरे हुए थे। हम लोगों की ऐसी मनःस्थिति और
 चरित्र के सामने व्यापार और वाणिज्य की आड़ में अंगरेज आए। व्यापार की
 आड़ में साम्राज्यवादी राजनीति की ऐसी बुचकी शक्ति के साथ, जिसका उम
 समय तक हम लोगों को अपने हजारों साल के इतिहास में कभी पाला नहीं
 पड़ा था।

अजब नापट भेज में अंगरेज हमारे द्वार पर आए। हमारे घरों की गारी
 सिद्धकियां, सारे दरवाजे बंद थे और हम लोग आत्मरक्षा के लिए, जानपांड,
 सास्त्र, बिधि, सिद्धि, आचार, मय के संगों में बंधे भूपचाय बैठे थे अपने-अपने
 अर्ण मंडार पर हथ रने। दरवाजे पर जब अंगरेजों की आहट हुई तो हमने
 अपनी परंपरागुमार समझा कीर्त शक्तिव भाषा है, जो या तो हमारे घर का खंग
 ही जायगा या प्रसाद लेकर चला जाएगा। पर हम तब तक इतने भयभीत हो
 चुके थे कि अपने सम्मान की रक्षा करते हुए, उससे कहते कि भाई जरा रुको, हम
 दरवाजा खोलते हैं, पर हमारे बाणी तब तक बंद चुकी थी, इसलिए हम दर-
 वाजे को एक पतली सुराक्ष (स्वार्थ) से उरो जैसे ही देखने को हुए, उसने हमारे
 स्वर्ण मंडार का दरवाजा तोड़कर दण्ड के रूप में, घर में प्रवेश किया।

राज्य और सामन की आड़ में हमारा सब कुछ लुटकर इंग्लैंड ले जाया
 जाने लगा। भारत देश नहीं, एक बरबार होगे लगा, जहां से कच्चा माल ले
 जाया जाता, फिर उसमें पक्का माल बनाकर हमी को बेना जाता। हम ईदा

करनेवाले, रचनेवाले, बन
 विषय किम जाने लगे।

वृक्ष उम दिन कोई क
 विषयमय मामों, हिल जीव-
 से पटा पटा गा। संगे ही
 बंधन और रोगमुक्त करने

उत्तीसदी नाशाही उ
 हमारी नींद टूटी। हमने
 की गरिमा, पवित्रता और
 मानव के मिलन-तोषी प्रो

तब उम वृक्ष में फल
 की आजादी के संघाम का।

जो बीज अदृश्य हो
 हमारी, और जहां से हम नि
 बुद्धिवाद, उमी पर पुनः स्या

बंधता, मूलता, अहंका
 हो जाता है, इस गहरे संघ-
 लड़ता है यही है हम।

हजारों वर्षों की मात्र
 संस्कृतिया एकत्र हुई है, उन्हें
 यही देसता 'स्वराज्य' है।

'बीज' जब धरती के
 प्रकाशित हुआ था, तब उसके
 अलेंग, एक हीकर सोलेंग, स

कितना दुःख, कठिन थ
 पर और कोई संशोत भ

यही संशोत बुद्ध ने गाया
 ने गाया और यही संशोत रा
 वृंद-वृंद मिली गिबु है उ
 जाको भारत जाइए और

जुले हुए पारदर्शी हैं हम ।
 और खड़े हैं हम ।
 को एक छोटी गुलाब भी
 हने के बालों के विनाश
 शोभामानाओं के बीच
 धिया वनी नेजी के पुरी
 एक छोटी चंद्रकार सगरी
 भावुकता के छिछोरे बंधे
 राज्य ही, भावुकता-भरा
 ही ही है, अरु, विवेक
 ही ही है, फिर ईमे स्थान में
 सगह सर्वहीन आचार-
 समर्थ हुए । हम अपनी
 ही बना था । हम
 में युवके हुए, अप-
 ऐसी मनास्थिति और
 ही था । व्यापार की
 के साथ, जिसका उभ
 में कभी पाला नहीं
 हकारे धरों की मन्त्री
 के लिए, जातमान,
 व वीरों के अगले-अगले
 आहत हुई जो हमने
 ही हमारे पर का संग
 क हाने भवजीन ही
 भाई बना रक्त, उन
 वसन्तिर हम दर-
 ही हुए, उसने हमारे
 ही किया ।
 ही होकर ने अया
 में कच्चा मान ले
 जाना । हम ही

करनेवाले, रचनेवाले, बनानेवाले नहीं रहे हम केवल उपभोक्ता होने के लिए
 विवश किए जाने लगे ।

वृक्ष उस दिन कोई फल फल नहीं दे रहा था । गारा वृक्ष अंगनी भताओं,
 विषमय प्राप्ति, हिस जौव-जंतुओं और संशामक रांग फैलानेवाले कीट-पतंगों
 से पटा पड़ा था । ऐसे ही दुदिन के समय राममोहन राय आए उन वृक्ष को
 बंधन और रोगमुक्त करने ।

उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्ध में यह तेज हुआ चली मोह प्रकाश बुझि की ।
 हमारी नींद टूटी । हमने देखा शुरू किया वृक्ष में फल था । उन पुष्पों
 की गरिमा, पवित्रता और नीचर्य अपनी आंखों में भरकर हम बहुत दिनों बाद
 मानव के मिलन-तीर्थ भी खोज लगे ।

तब उन वृक्ष में फल लगा बहुत समाज का, श्राव समाज का और भारत
 की आजादी के संग्राम का ।

जो श्रेष्ठ मनुष्य ही गया था, उसे डंडा आने लगा । जो मुनिवाच थी
 हमारी, और जहां से हम स्विसकते-स्विसकते दूर हट गए थे—'स्व' 'राज्य' की
 बुनियाद, उसी पर पुनः स्थापित होने का संकल्प जगा हम लोगों में ।

अंधता, भ्रष्टता, अहंकार और स्वायं, जिनसे मनुष्य का मनुष्य से विच्छेद
 ही जाता है, इस गहरे अंधकार के खिलाफ जो मनुष्य मानव ऐक्य का मुक्त
 लक्ष्य है वही है हम ।

हजारों वर्षों की काल धर्या में यहां इस वृक्ष पर जितनी अनेक जातियां,
 संस्कृतियां एकत्र हुई हैं, उन्हें एक वृक्ष के रूप में देखना ही है—वही है वृक्ष—
 वही देखना 'स्वराज्य' है ।

'बीज' जब धरती के अंधकार को तोड़कर मंजूर के रूप में पहली बार
 प्रकाशित हुआ था, तब उसके दूधमूठे स्वर से यह गान फूटा था—एक होकर
 चलेंगे, एक होकर सोलेंगे, सब के हृदय को एक जांजमे ।

कितना दुःख, कठिन और साधनामय है यह गान ।

पर और कोई संगीत भी नहीं है ।

यही संगीत बुद्ध ने गाया, वही संगीत महायुग के उम और अंधकार में संतों
 ने गाया और वही संगीत राममोहन राय और गांधी ने गाया ।

बुद्ध-मुद मिली मिली है जुदा जुदा मन भाव ।

आका मारन जाइए कोई फिर पार, आका तारन जाइए कोई फिर तार ।

पांचवां अध्याय

बीज और फल : राजधर्म

फल में बीज, बीज में फल । बीज, पौधा, वृक्ष सब भक्तिमाल हैं उसी फल की ओर । सब परिक्रमा कर रहे हैं उसी शक्ति, सत्ता की ओर । और सब उसी फल के माध्यम हैं, निमित्त हैं, जिसका नाम है मुक्ति, स्वराज्य या मोक्ष । फल भी माध्यम है यहाँ । गता या यक्ति भी साधन है उसी एक साध्य का, जिसका नाम स्वराज्य या मुक्ति है । इस बीज से जो फल निकला है उसी का नाम है राजधर्म । अर्थात् बीज की, बुनियाद की राजनीति है राजधर्म ।

महाभारत में युधिष्ठिर के प्रश्न के उत्तर में भीष्म ने कहा है कि जनयुग में कोई शासन प्रणाली नहीं थी, कोई राजा नहीं था, धर्म से ही सब अपना-अपना संबंध करते थे । धीरे-धीरे लोग मोहग्रस्त एवं लोभी हो गए । तब समाज में एतन और विश्वराज देसकर देवताओं ने ब्रह्मा के पास जाकर सब कुछ बताया । ब्रह्मा ने पहले राजसत्त्व एवं दंतनीति को अपना की, बाद में जिष्णु की सहायता से एक राजा का निर्माण किया । उस प्रादिराजा का नाम मधु हुए था । एक दूसरे उपासकान के अनुसार एसी तरह पहले राजा मधु हुए । इन प्रकार व्यवस्थित कर्त्तव्य एवं धर्मज्ञान में स्थितिता आते ही राजा अनिवार्य होता है । और यह राजा कैसा हो, उसका राज्य कैसा हो, धर्मका धर्म क्या हो, इसी का नाम है राजधर्म । कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तरो में से ही दाराधिप हैं । अर्थात् राजा, मनुष्यत्व के पूर्ण विकास का साक्षात् स्वरूप है ।

महाराज युधिष्ठिर के अज में अंगद अर्ध के अधिकारी भगवान श्रीकृष्ण से । राजा कृष्ण अर्ध का फल भगवान का समर्पित करे, यह है भीष्म के राजधर्म का मूल । भीष्म और विदुर दोनों के अनुसार राजा भगवान (श्रेष्ठतम मूर्त्तियों) का प्रतिनिधि होता है । उसे राजकीय की रक्षा जनसाधारण के लिए करना पड़ती है । राजा जिज्ञेहिय बने, राजकीय का धन राजा के भोग के लिए नहीं होता । राज्य के भंगल के लिए है सारी अर्थव्यवस्था ।

भारतीय राजधर्म के विकास में क्रमशः दाने चरण हैं : शुक, बृहस्पति, मनु, भीष्म और कौटिल्य । यह ध्यान देने की बात है कि अर्थ, काम, धर्म और

मोक्ष—इन चारों फलों को बल दिया गया है । अर्थ

पा जाने है जिसका संबंध

गुणनीति के राजधर्म

शब्द में कहे तो यह फल

इसकी मर्यादा यह ही कि

सर्वोपरियों की नियुक्ति नहीं

जब तक राजा न निर्णय

सकता था । लेती ही प्र

घराने के कुछ अधिकार थे

के अनुसार मगर राजा

धारने का अधिकार एक म

वृहस्पति के राजधर्म

काम पर दिया गया है ।

और अर्ध पाता नाम क

मनु ने इस प्रयोग में

बताया धर्म की : मनु ने

जो बड़ारी जाना है, जिन

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र । और

संख्यात । परंतु धर्म का प्र

धर्म के चार लक्षण हैं—

इस मूल में भी वास्त

है, स्मृति से अधिक महत्व

एकबार और लक्षण है कि

आत्मधर्म । यह है मनु के

वर्ण में जन हो, जिन प्रा

'आय' के सूक्ष्म अंतर को

नंपूर्ण राजधर्म की ग

जितना राज्य का विषय है

है । धर्म महा पूर्णतः गामा

का चरम बिंदु है राज्य ।

नीचे में ऊपर विकसित हुई

जन्म से प्रलोक मनुष्य

और धानंद में जब समाज

साधारण धर्म विभाजन हो ।

भोज इन चारों कलों में राजधर्म के अनुगार पहले धर्म पर ही सर्वाधिक बल दिया गया है। धर्म के अंतर्गत कृषि, पशुपालन, आणिक्य और वे सारे कर्म आ जाते हैं जिनका संबंध मनुष्य की भौतिक समृद्धि से है।

शुक्नीति के राजधर्म का मूलधार है धर्म : शुक्नीतिसार का अंग एक शब्द में कहें तो यह शब्द का स्वराज्य है। ग्राम पंचायतें अत्यंत महत्त्वपूर्ण थीं। इसकी पण्डित यह थी कि मानवजन्म पदों पर ग्राम पंचायत के सदस्यों के निकट संबंधियों की नियुक्ति नहीं हो सकती थी। ग्राम पंचायतें स्वायत्त संस्थाएँ थीं। जब तक राजाजा न मिली हो, कोई भी सिपाही किसी गांव में दाखिल नहीं हो सकता था। खेती की प्रथा की बुनियाद सहकारिता पर थी। व्यक्तियों और घराने के कुछ अधिकार थे पर उसने ही कर्तव्य भी थे। शुक्नीति के राजधर्म के अनुगार अंगर गन्ध, आर्याधी या अत्याचारी हो तो उसके खिलाफ विद्रोह करने का अधिकार एक माना हुआ अधिकार था।

बृहस्पति के राजधर्म का मूलधार धर्म और काम दोनों हैं। पर चल बल काम पर दिया गया है। बृहस्पति के राजधर्म के प्रयोग में धर्म को साधन माना और माध्य माना काम का। काम में अधिग्रह, सुख, भोग और आनंद।

मनु ने इस प्रयोग में धर्म और काम इन दोनों को साधन बतलाया और साध्य बतलाया धर्म को। मनु ने धर्म को बहुत ही वैज्ञानिक रूप में देखा। धर्म का जो बाहरी ढांचा है, जिसे उन्होंने 'धर्मोक्त' कहा, वह है : चरम वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। और चार धर्म—सत्यधर्म, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। परंतु धर्म का मूल यह वर्णाश्रम व्यवस्था नहीं है। धर्म का मूल, या धर्म के चार लक्षण हैं—वेद, स्मृति, सदाचार और आराम की भी प्रिय जगें।

इस मूल में भी वास्तविक धर्म के प्रयोग में वेद से अधिक महत्त्वपूर्ण स्मृति है, स्मृति में अधिक महत्त्वपूर्ण सदाचार है और धर्म का सर्वोत्तम लक्ष्य नहीं पहचान और लक्षण है कि आराम को जो प्रिय जगें वही धर्म है। स्वधर्म नहीं, मातृधर्म, यह है मनु की वास्तविक धर्मदृष्टि। स्वधर्म का अर्थ है जिस वर्ण में जन्म हो, जिस धर्म में स्थित हो, उसी के अनुरूप धर्म। धर्म और 'आत्म' के मुख्य अंतर को मनु ने देखा है :

संपूर्ण राजधर्म को मनु ने इसी सामाजिक परिवेश में देखा है। धर्म वहाँ जितना राज्य का विषय है, उतना ही एक-एक व्यक्ति का विषय है, पुरुषार्थ है। धर्म यहाँ पूर्णतः सामाजिक संदर्भों में लिया गया है। उसी समाज-रचना का चरम बिंदु है राज्य। राज्य माने ऊपर से नीचे आती हुई गंगा नहीं, बल्कि नीचे से ऊपर विकसित हुई नृक्ष के समान एक मज्जीब सत्ता।

राज्य से प्रत्येक मनुष्य अपनी कार्यक्षमता से दूसरे से असमान है, पर भोग और आनंद में सब समान हैं। इसीलिए समाज की रचना, और रचना का आधार धर्म विभाजन हो। जो जित लायक हो, उसकी कार्यक्षमता के अनुरूप

धर्म

मान है उनी फल की और : और सब उनी शक्ति का भोज। उन भी साध्य का, जिनका नाम उनी का नाम है राजधर्म।

ने कहा है कि मनुष्य धर्म से ही सब धर्मोक्त लोभी हो गए। जब के पास राज्य सब कुछ जाये, बाद में मनुष्य राज्य का नाम मनुष्य राज्य मनु हुए। इस जगें ही राजा अनिवार्य, स्वधर्म धर्म गया ही, जगें में ही ही नृक्षिय स्वधर्म है।

असमान श्रीरक्षण थे। है भोग के राजधर्म मान (धर्मोक्त मनुष्य) आराम के लिए करने के धर्म के लिए नहीं

है : शूद्र, बृहस्पति, धर्म, काम, धर्म और

काम दिया जाए, यह राजधर्म का बुनियादी काम है और इसका लक्ष्य यह है कि कोई जो भी काम करता हो, उसे यह अनुभूत हो कि : पूरा समाज उसी के लिए है, उसी के कारण है, और पूरा समाज उसी की अनुमति से, प्रगल्भता से चल रहा है। इसी प्रकाश में सक्षमों उनकी क्षमतानुसार कार्य देना राज्य का परम धर्म है। यह काम ऐसा हो तबसे उनकी और उनके पूरे परिवार की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति हो। बुनियादी आवश्यकताएं प्रथमत्—स्वतंत्रता, समानता और आरपसता। उनकी उन आवश्यकताओं की पूर्ति हो, जिसे वह खुद आवश्यक समझता है। वह अपनी इच्छानुसार धर्म चुन सके, उसे जी सके। वह अपना संघ बना सके—जैसे ग्राम पंचायत के अनुरोध, जिसके निर्माण से उसका मत लभा है।

यह ग्राम पंचायत (प्रदेश) पूर्ण स्वतंत्र है अपने व्यवहार कानून बनाने में, विभिन्न वर्गों के बीच संबंध बनाने में और यदि आवश्यकता हो तो अपने वर्ग या मजदूरी का धर्म चुनने में। हर समय पांच वर्गों में बंटा होगा जहाँ पूरे गांव के सभी सदस्यों को समान दर्जा दिया जाएगा। इन्हीं पांच वर्गों से ग्राम पंचायत का चुनाव होगा। ग्राम पंचायत ही गांव की मालगुजारी वसूल करेगी, अधिकारी नियुक्त करेगी, खुद कानून बनाएगी और उन्हीं कानूनों के मुताबिक ग्राम का शासन चलाएगी। केंद्रीय राजमता इसमें तभी हस्तक्षेप कर सकेगी, जब उन पांचों वर्गों में कभी मतभेद पैदा होगा, या उस ग्राम में किसी भी व्यक्ति या संघ को निजी स्वतंत्रता के हनन का संकट होगा।

लघुतम इकाई व्यक्ति नहीं, परिवार है। पर उस परिवार में ये अधिकार्य सच्चाइयां हैं : (क) हर स्त्री और पुरुष समान है। (ख) घर-परिवार की आंतरिक व्यवस्था की सर्वमता स्त्री के अधिकार में है और बाहरी व्यवस्था पुरुष के अधिकार में। दोनों अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र हैं, समान है।

ग्राम की पूरी अव्यवस्था कुवि पर आधारित है, पर यह देखना है कि ग्राम का कोई भी व्यक्ति बिना किसी रोजी और रोटी के न रह जाए। यह है ग्राम की मार्क्सविक चेतना (पब्लिक सेक्टर)। परंतु ग्राम का कोई भी व्यक्ति अपना निजी काम-बंवा और उद्योग कर सकता है—ग्राम की आवश्यकताओं और पांगों की पूर्ति के लिए यह है ग्राम का निजी क्षेत्र (प्राइवेट सेक्टर)।

अनेक ग्रामों के ये पांचों वर्ग एक राजा को चुनकर करते—वही निर्वाचित राजा केंद्र अधिकारी होगा। वही राजा स्मृति-विधि के अनुसार और राज्य के प्रशासन के संग के रूप में कार्य करेगा। राजा का मुख्य कर्तव्य है, बाहरी हमलों से प्रजा की रक्षा।

समाज में कुछ व्यक्तियों के हृथ में अतिरिक्त धन इकट्ठा हो जाएगा, इसलिए समय-समय पर यज्ञ, दान-वर्षणा के रूप में सारा इकट्ठा धन मन्त्रों के समान रूप में बांट दिया जाए।

बीज और फल : गांव

जो भी व्यक्ति सम्पत्ति समाज में बांट शिक्षा राजा द्वारा जीत : योग। मन्त्रों ननु के राजधर्म में —भारी राजनीति गांव वर्गों में —समय-समय पर राज्य का धर्म धर्म के पालन उन तरह मनु का का मन्त्र पर। यह लोभ भनु के राजधर्म में धर्मवान है। यह ग्राम व्यक्ति में सर्वोच्च है। वेद (वेदधर्म), और (इन्द्र) शुद्धि शक्ति, कर्म और कार्यरत है अर्थात् : यही विशेष प्रकृति : यह सन्धे विद्वान की है। यह और प्रकृति (वर्षा, म जान इन्द्रिय है। इनके व्यक्ति से लेकर पूर्ण अर्थात् नहीं भी कार्य करने शक्ति (गुण) है और किन्हीं जगह, किन्हीं पदों शक्ति को उस पदार्थ के (यह जीवन शक्ति, जो ही रहा है—वही जी है और यह (यह समाज का वह है मनु का, मानव मन्त्रों में निरुत्त है मनु का धर्म का उपरा धर्म प्रवृत्ति-मूलक है, वह वर्गों का जीवन-चरण है जिससे

काम दिया जाए, यह राजधर्म का बुनियादी काम है और इसका लक्ष्य यह है कि कोई जो भी काम करता हो, उसे यह अनुभूत हो कि : पूरा समाज उसी के लिए है, उसी के कारण है, और पूरा समाज उसी की अनुमति से, प्रयत्नता से चल रहा है। इसी प्रकार में समझे उनकी क्षमतानुसार कार्य देना राज्य का परम धर्म है। यह काम ऐसा हो जिससे उनकी और उनके पूरे परिवार की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति हो। बुनियादी आवश्यकताएं अर्थात्—स्वतंत्रता, समानता और आरक्षकता। उनकी उन आवश्यकताओं की पूर्ति हो, जिससे वह खुद आवश्यक समझता है। वह अपनी इच्छानुसार धर्म चुन सके, उसे जी सके। वह अपना मघ बना सके—उस ग्राम पंचायत के अंतर्गत, जिसके निर्माण में उसका मत लगा है।

यह ग्राम पंचायत (प्रत्येक) पूर्ण स्वतंत्र है अपने व्यवहार कानून बनाने में, विभिन्न वर्गों के बीच संबंध करने में और यदि आवश्यकता हो तो अपने धर्म या रंग का धर्म चुनने में। हर संघ पांच वर्गों में बंटा होगा जहां पूरे गांव के सभी सदस्यों को समान दर्जा दिया जाएगा। इन्हीं पांच वर्गों से ग्राम पंचायत का चुनाव होगा। ग्राम पंचायत ही गांव की सालगुजारी समूल करेगी, अधिकारी नियुक्त करेगी, खुद कानून बनाएगी और जहाँ कानून के मुताबिक ग्राम का शासन चलाएगी। केंद्रीय राजसत्ता इसमें तभी हस्तक्षेप कर सकेगी, जब उन पांचों वर्गों में कभी मतभेद पैदा होगा, या उस ग्राम में किसी भी व्यक्ति या संघ को निजी स्वतंत्रता के हनन का संकट होगा।

सघुलम इसकी अवधि नहीं, परिवार है। पर उस परिवार में ये परिवार्य सच्चाईयां हैं : (क) हर स्त्री और पुरुष समाज है। (ख) पर-परिवार की आंतरिक व्यवस्था की सर्वमता स्त्री के अधिकार में है और बाहरी व्यवस्था पुरुष के अधिकार में। दोनों अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र हैं, समान है।

ग्राम की पुरी अर्थव्यवस्था कुवि पर आधारित है, पर यह देखना है कि ग्राम का कोई भी व्यक्ति बिना किसी योगी और गोटों के न रह जाए। यह है ग्राम की मार्क्सनिक चेतना (पब्लिक सेक्टर)। परंतु ग्राम का कोई भी व्यक्ति अपना निजी काम-बंधा और उद्योग कर सकता है—ग्राम की आवश्यकताओं और मांगों की पूर्ति के लिए यह है ग्राम का निजी क्षेत्र (प्रिवेट सेक्टर)।

अनेक वर्गों के ये पांचों वर्ग एक राजा का चुनाव करेंगे—वही निर्वाचित राजा केंद्र अधिकारी होगा। वही राजा स्मृति-विधि के अनुसार, और राज्य के प्रशासन के ग्रंथ के रूप में कार्य करेगा। राजा का मुख्य कर्तव्य है, वादी इंसानों से प्रजा की रक्षा।

अपराध में कुछ अपराधियों के राज्य में प्रतिनिधित्व धन इकट्ठा हो जाएगा, इसीलिए समग्र-समग्र पर, यज्ञ, दान-दीक्षा के रूप में मांग इकट्ठा धन समान रूप में बांट दिया जाय।

बीज और फल : राज

कोई भी व्यक्ति सम्पूर्ण समाज में बांटे शिक्षा राजन द्वारा जीता होगा। गवहन मनु के राज्यधर्म में —मांगे राजनीति पांच वर्गों में —समय-समय पर — राज्य का धर्म धर्म के पालन इस तरह मनु का का गल्प था। यह लक्ष्य मनु के शासन में वर्धमान है। यह शासन में क्रांति-रहित स्वयं (वैश्य), धर्म (पुत्र) बुद्धि, नक्ति नर्न प्री-कार्यगत है जहां। यही विशेष प्रकृति। यह समूचे लिये की है। यह और प्रकृति (पदार्थ, मंगल ज्ञान इत्यादि है : इनके व्यक्ति के लिए प्रकृति जहां कहीं भी कोई नक्ति अकिर (पुत्र) है और किसी अंगत, किसी पदार्थ शक्ति को हम पदार्थ में (यह जीवन-कार्य, यह हो रहा है—यही जीवन और बुद्धि (यह स्थान यह यह है मनु का वास्तविक अर्थ में निकला है मनु का धर्म का दूसरा आयाम है, वही अर्थात् समग्र-समग्र है जिससे

है और इसका लक्षण यह है कि कि : पूरा समाज उसी के लिए अनुपति से, प्रयत्नता से चल सार कार्य देना राज्य का परम नके पुरे परिवार की बुनियादी ताएँ समान्—स्वतंत्रता, समान् में की पुष्टि हो, जिसे वह स्वतंत्र धर्म चुन सके, उसे जी सके । अंतरगत, जिसके निर्माण में

अपना व्यवहार कायम बनाने यदि आवश्यकता हो तो अपने ही में बटा होगा जहां पुरे राज्य नहीं पांच वर्गों से ग्राम पंचायती भारतगुजारी बसूल करभी, और उन्ही कानूनों के मुताबिक में तभी हस्तक्षेप कर सकेगी, या उस ग्राम में किसी भी संबद्ध होगा ।

उस परिवार में ये भक्तिवादी हैं । (क) घर-परिवार की में है और बाहरी व्यवस्था स्वतंत्र है, समाज है ।

है, पर यह देखना है कि रोधी के न रह जाए । यह है बसूल पास का कोई भी व्यक्ति है—पंच की सामयिकताओं की सेवा (प्रोडक्ट डेवलप)

बुनाए करेंगे—वही निर्वाचित में के मनुष्य और राज्य के का मुख्य कर्तव्य है, बाहरी

तत यह हकट्टा हो जाएगा, में में सारा हकट्टा पन सवमें

कोई भी व्यक्ति उत्तराधिकार में पर-सम्पत्ति नहीं प्राप्त करेगा । ऐसी सम्पत्ति समाज में बाँट दी जाएगी ।

शिक्षा राज्य द्वारा नि:शुल्क होगी और छात्रों को मनुनाथन का जीवन जीना होगा । समस्त छात्र, वे जिस किसी के भी पुत्र हों, समान होंगे ।

मनु के राजधर्म के समाज में—

—सारी राजनीतिक दलित का विकेदीकरण होगा और सारी सत्ता उन्ही पांच वर्गों में बाँट दी जाएगी, जिसका आधार ग्राम पंचायत होगा ।

—समय-समय पर सनता और समाजता का परीक्षण होगा ।

—राज्य का अर्थना धर्म होगा, पर राज्य में रहनेवाली अग्रा अर्थ-धरने धर्म के पालन में स्वतंत्र होंगी ।

एक तरह मनु का समाज, व्यक्ति और राज्य बसूलो वर्गों में लोकतंत्र का सत्य था । यह लोकतंत्र मनुष्य के सनातन मूल्यों का साक्षी था ।

मनु के राजधर्म का 'धर्म' और 'वर्ण' तत्त्व प्रत्यक्षिक दुधम और अत्यंत पर्यवान है । यह आध्यात्मिक, भौतिक और शुद्ध भौतिक धर्मों में है । हर व्यक्ति में प्राकृतिक स्तर से चार वर्ण हैं—स्मि (शास्त्रण), वक्ष (अभिय), पैदा (वीक्ष), पैर (शुद्ध) । हर व्यक्ति में शक्ति के स्तर से चही चारों वर्ण हैं—बुद्धि, शक्ति, कर्म और वह स्थान जहां इन तीनों का प्रयोग हो रहा है—तीनों कोपरेत है जहां । यही है वर्णधर्म—सब वर्गों का अर्थ-धरना धर्म, अपनी विविध प्रकृति । यह मनुवाइ केवल एक व्यक्ति ही नहीं, मनुके समाज और समूह विश्व भी है । ब्रह्म की अभिव्यक्ति दो पक्षों में—पुरुष (शक्ति, इनर्जी) और प्रकृति (पदार्थ, मैटर) में हुई है । पदार्थ में पांच कर्म इंद्रियां और पांच ज्ञान इंद्रियां हैं । इनके अलावा दो और तत्त्व हैं, अहंकार और बुद्धि ।

व्यक्ति में लेकर पुरे जीवन-जंतु जगत् में जहां कहीं भी कुछ हो रहा है, जहां वही भी कोई शक्ति है उसके लोख निश्चिन रूप से काई न कोई एक धर्म (पुरुष) है और वह शक्ति ही शक्ति प्रदान कर रही है । वह शक्ति किमी जगत्, किमी पदार्थ में (प्रकृति) जापरेत है । काई एक चेत है जो उस शक्ति को उस पदार्थ से जोड़ रही है अर्थात् उसमें शक्ति और शक्ति दोनों हैं (उस शक्ति शरीर, या वृक्ष) और वह स्थान वह कोई जगत् जहां वह सब हो रहा है—यही तो है अस्तित्व (ब्रह्म), अस्तित्व (प्रकृति), पैर (जोड़नेवाला) और शुद्ध (वह स्थान जहां अस्तित्व है शुद्ध) ।

यह है मनु का वास्तविक धर्म और वर्ण का वास्तविक धर्म । इसी संसार धर्म में निकला है मनु का सनातन धर्म, मुक्तिदायी राजधर्म ।

वर्णों का दूसरा आधार है वर्णधर्म धर्म । वर्णों को पढ़ने धर्म में जहां प्रवृत्तिगुलन है, वहां वर्णधर्म धर्म में कर्मगुलन है । ब्रह्मधर्म साधन तैपारी का जीवन-चरण है जिसमें गृहस्थाश्रम में पहनकर मनुष्य पुरे तरह संपूर्ण धर्म

में जीवन भोग सके। शुद्ध स्व जीवन के भोग के बाद वानप्रस्थ है। वानप्रस्थ माने समाज सेवा, दुगरो की सेवा का चरण। जो अपने भोगों से स्वयं संतुष्ट नहीं है, वह दूसरों की सेवा क्या करेगा? इस तरह निजी क्षेत्र में बाहर निकलकर सार्वजनिक क्षेत्र (राजधर्म, राजनीति, परीक्षण) में जाने का चरण वानप्रस्थ ही है, इसमें पड़ते नहीं। संन्यास का चरण सबसे शुद्ध हो जाने का चरण है। यह वह अवस्था है जहां मनुष्य स्वयं से भी मुक्त हो जाता है - दीवा पके हुए फल की वह अवस्था जब वह वृक्ष की टाल से स्वतः झनक ही जाता है। जब वह फल अपने प्राणमें कैवल फल है (संपूर्ण जीवन का) और वह फल रावका है। मनु के राजधर्म में वर्धाधम की यह दृष्टि घनत्व है, अपूर्ण है। इन वर्ण व्यवस्था में राव कोई समान है। यह सचका, प्रत्येक का व्यक्तिधर्म है और इसी व्यक्तिधर्म का संपूर्ण योग मनु का राजधर्म है।

भीष्म के राजधर्म में धर्म, धर्म और काम तीनों हैं। महाभारत मूलतः राजाओं का चरित है। अतः भीष्म का राजधर्म 'राजा का धर्म' है। राजा के धर्म में संपूर्ण त्याग भलाते हुए भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा है कि "राजा के धर्म में सारे स्वार्थों का वर्जन होता है, राजधर्म में सभी वीक्षणों का प्रतिपादन होता है। राजधर्म में संपूर्ण विद्याओं का, संपूर्ण लोभों का संयोग है।"

राजधर्म से पालन के राजा की चारों आशयों के धर्म का फल मिलता है। राजा को धर्म का पालन करते समय अपने कुल तथा देश के धर्म का भी ध्यान रखना चाहिए। जो राजा धर्म का अनुष्ठान करता है, उसकी राज्य भूमि प्रस्थित तथा विनाश की ओर जाने लगती है। राजधर्म धर्मरिगा राजा के साथ ही उद्भूत है।

प्रजापालन राजा का मुख्य धर्म है। इस लोक में प्रजा को प्रसन्न रखना ही राजा का सनातन धर्म है। मृत्यु की रक्षा और श्वावहार की सरलता ही राजकीय कर्तव्य है। चारों वर्णों की रक्षा करना राजा का दूसरा प्रधान धर्म है। राजा को सबसे पहले अपने मन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। उसके बाद शत्रुओं को जीतने की चेष्टा करनी चाहिए। राज्य के सारों धर्म—राजा का अंगना शरीर, मंत्री, फौज, वंश (सेना) मित्र, राज्य और नगर इनकी सतत रक्षा राजा की अवश्य करनी है।

प्रजा और लोक के चरित्रगठन में राजा का दायित्व है। भीष्म के शब्दों में "राजधर्म ही सब धर्मों का मूल होता है। सब प्राणियों के गर्दचिह्न जैसे हाथी के गर्दचिह्न के नीचे बिलीत हो जाते हैं, उसी प्रकार अन्य दुनरे धर्म भी राजधर्म में बिलीत हो जाते हैं। राजधर्म बिगड़ने पर कोई धर्म नहीं टिक सकता।"

संसार में कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जो भक्तुविहीन हो। और मनु और मित्र को पहचानना सरल नहीं है। इसलिए दोनों के प्रति सतर्क रहना आवश्यक है। भीष्म के राजधर्म के श्रोता युधिष्ठिर ही मोक्षधर्म के श्रोता थे। राजधर्म

बीज और फल : रावक

का उपदेश देने के बाद फल मोक्ष है।

भीष्म का (महाभारत) संन्यासवाद (पंडित) अनात्मिक रक्षण जब जाता है तो यही पुनित्व धर्म के सर्वत्र का सुनिश्चित प्रतिफल है वह दुनरे के धनत्व है, धर्म है।

चाणक्य के धर्मशास्त्र में यहाँ राजधर्म का तात्पर्य गहरा मिली। चाणक्य के प्रधान हुआ। अब तक था, चाणक्य का राजधर्म वह धर्म विज्ञान और राजकीय संपूर्णता में देखता है।

चाणक्य के लिए, प्रजापालन, विज्ञान और धर्म का महत्त्व, योग और लोक जीवन हैं, सामवेद, ऋग्वेद का व्यापार। यही धर्म ही शासित हैं। अर्थात् राजा का महत्त्व, सुनियारी में इच्छाओं पर पूर्ण संयम सुनिश्चित है जिस पर सार्वभौमिक, विज्ञान, शासन में सधि करना—राजा का धर्म है।

अर्थशास्त्र को जीवन दिया है। अनिष्ट का व्यावहारिक हो गया है। के देने के अर्थ और म में देखना है। इस चाणक्य "कम से कम को ए सभी विद्याओं, धर्म और

आह वानप्रस्थ है। वानप्रस्थ
 की चरने भोगों से स्वयं संतुष्ट
 प्र तरु। निजी क्षेत्र में वाहर
 परीपकार। में जाने कर चरण
 चरण सबसे मुक्त ही जाने यह
 से भी मुक्त ही जाता है—
 की ज्ञान से स्वतः प्रलग ही
 है (संपूर्ण जीवन का) और
 की यह दृष्टि अनन्य है। अपूर्व
 ही सुश्रमा, प्रदेन का अकिर-
 का राजधर्म है।

तो है। महाभारत मुक्तः
 राजा का धर्म है। राजा के
 से कहा है कि "राजा के धर्म
 ही दीक्षाओं का प्रतिपादन होता
 का संयोग है।"

धर्म के धर्म का फल मिलता
 कुल तथा देश के धर्म का भी
 धन करता है, इसकी राज्य
 है। राजलक्ष्मी धर्मोत्तम राजा

क से प्रजा को प्रसन्न रखना
 और व्यवहार की सरलता ही
 राजा का दूसरा प्रधान धर्म
 करनी चाहिए। उसके बाद
 धर्म के सार्थक संग—राजा का
 अष्ट और नगर इनकी सतत

स्थापित है। भोष्म के शब्दों
 प्राणियों के पदाचिह्न जैसे हाथी
 र अन्य दूसरे धर्म भी राजधर्म
 धर्म नहीं टिक सकता।"

सही है। और वानु और
 के प्रति सतक रहना आवश्यक
 धर्म के श्रोता से। राजधर्म

का उपदेश देने के बाद ही उन्हें मोक्षधर्म का उपदेश दिया गया। राजधर्म का
 फल मोक्ष है।

भोष्म का (महाभारत का) राजधर्म और धर्मवाद (कीरव) और घोर
 संन्यासवाद (धोष्म) इन दोनों प्रतिवादों के बीच का राजधर्म है। फल में
 अनासक्ति रखकर अब धर्म के शास्त्रों का जो कल्याण के लिए प्रयोग किया
 जाता है तो वही भुक्तिवादी होता है। महाभारत के अंत में व्यास ने कहा है...
 धर्म के गर्वस्थ और सुनो और सुनकर उसे धारणगत करो—अग्ने लिए जो भी
 प्रतिकूल है वह दूरगों के लिए न करो। राजधर्म में धर्म प्रयोग तो यह कभीटो
 प्रत्यक्ष है, धर्म है।

चाणक्य के धर्मशास्त्र में राजधर्म पत्यंत भौतिक और स्पष्ट हो गया।
 यहां राजधर्म का साधन 'दंडनीति' है। इसीलिए उसे कुटिला (कौटिल्य) की
 संज्ञा मिली। चाणक्य से पहले तक का राजधर्म हृदयप्रधान था, यहां यह बुद्धि-
 प्रधान हुआ। अब तक कर्ण (गुरु, मनु, भोष्म) राजधर्म परमधर्म पर आधारित
 था, चाणक्य का राजधर्म देश, काल व्यवस्था पर आधारित हुआ। इसीलिए
 यह धर्म, विज्ञान और राज इन तीनों को धर्म, अर्थ और काम से मिलकर साथ
 की संपूर्णता से देखता है।

चाणक्य के लिए धर्मशास्त्री, वेद, धर्म और दंडनीति यही चार परम
 शास्त्र, विज्ञान और धर्म हैं। और यही है राजधर्म का मूलधार। धर्मशास्त्री
 सांख्य, योग और लोकायत (भौतिक, धर्मोद्धार) इन तीनों का मेल है। मूल वेद
 तीन हैं, सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, और धर्म से तात्पर्य है कृषि, पशुपालन और
 व्यापार। यहां धर्म ही राजधर्म का मूल है। पर इस धर्म में धर्म, काम दोनों
 सम्मिल हैं। धर्मशास्त्र का प्रारंभ ही है राजा के जीवनचरित्र से। राजा
 का पहला, बुनियादी धर्म है अपनी हृदियों पर अधिकार तथा शासनाधीन,
 इच्छाओं पर पूर्ण संयम। धर्म के लिए पराक्रम और उसकी सफलता राज्य की
 बुनियाद है जिस पर मारा राजशासन (दंडनीति) तंत्र खड़ा होता है।

संग्रह, विप्लव, प्राण (न्युटल) धान, मंसंग और एक से युद्ध करना, दूसरे
 से संधि करना—राज्य और राज्य की ये छह नीतियां हैं जो सतत हैं, गतिमान
 हैं।

धर्मशास्त्र की जीवन-धर्म के रूप में लेकर चाणक्य ने बहुत बड़ा कार्य
 किया है। अरनिपद और युद्ध का 'दिलनेवाला' धर्मशास्त्र में सारः परम
 व्यावहारिक हो गया है। परस्त्री को सारा के समान, दूसरे के धन को भित्री
 के इन्हे के समान और सभी प्राणियों की अपने समान जो देखता है वही वास्तव
 में देखता है। इसे चाणक्य ने सम्यक् दृष्टा कहा है।

"कर्म से जन भी एक-एक बूंद गिरने से कसदा भर जाता है, यही रहस्य
 सभी विद्याओं, धर्म और धर्म के संबंध में है। जो बीत गया है, वह (भूत)

नहीं है, फिर उसे क्यों बाढ़ रखना ? जो सभी भाषा ही नहीं (अर्थव्य) उनकी चिन्ता क्यों ? बुद्धिमान केवल वर्तमान में जीता है। धर्म, धर्म, धर्म और मोक्ष—इत नारी में मे जिम्मे परम एक भी नहीं, उन मनुष्य को जन्म बकरी के गले में लटकनेवाले धन के समान निर्मूलक है। धन ही विषय है और मत ही बंधन का कारण है। विषयों में घनताका धन सुनिश्चित का कारण है। धनः मनुष्य को मग ही बंधन और मोक्ष का कारण है। मुझे गुल तथा दुःख देनेवाला और वृमना कोई नहीं। जो कर्म मैंने किए हैं उन्हीं का भोग मैं कर रहा हूँ। इसलिए हे नारी, जो कुछ तुमने किया है, लक्ष्मी ही उपभोग कर। जो घनामस्ति, धर्म और शांति देनाना नहीं है, वह कोए की बोली के समान निर्मूलक है। फल और छायावाले मरान् वृक्ष का साध्य लेना उचित है। यदि आज प्रभाव से फल का समय नहीं है, तो छाया को क्यों हटा सकते हैं ?”

चाणक्य ने इन शब्दों का गहरा अर्थ है कि उसने राजधर्म के मूल 'धर्म' को कितने गहरे और व्यापक अर्थों में देखा है। इंदियों पर विचार—गहरी से संपूर्ण धर्मशास्त्र। इसमें भी आगे चाणक्य ने धर्म को लोक सम्बुद्धय और धर्म को निःशेष (मोक्ष, फल) में जोड़ा है। यह चाणक्य की महत्त्वपूर्ण देव है।

इस, बृहस्पति, शुक, मनु, विदुर, भीष्म और चाणक्य के राजधर्म का सार यही है कि राज्य का काम धर्म की शक्ति है। राजधर्म में धर्म उठ नहीं है, रुढ़ नहीं है, यह तत्वात्मक है, सजीव है। राज्य साधन है व्यक्ति के स्वराज्य का, व्यक्ति की स्वयंभवा, समानता और मोक्ष का। इस धर्म में धारा बल धर्मिता के पुरुषार्थ, कर्म और प्रयत्न पर है। और धर्म पुरुषार्थ (धर्म, धर्म, काम) का लक्षण है मोक्ष।

राजधर्म में जरूरी वा लोक गर्भीय है। उत्तरदायित्व में गुरु बलिष्ठ ने राम से जब पकू कहा कि जतना के कहने से सीता को मत छोड़ो, जतना की बात मत मारो, जतना प्रजाती है, प्रजाती है तो उसके अन्त में राम ने कहा कि यदि लोक की धारापना के लिए मुझे स्तब्ध, दया, पित्रता, सुख यत्ना तक सीधा को भी छोड़ देना पड़े तो मुझे काई चिन्ता नहीं। लोक का काई अक्ष भेरे बिना संशयान्वित नहीं।

इसी राजधर्म के राज उदाहरण है महा और लिच्छवि गणतंत्र, जो भारतीय गणतंत्र की मर्यादा परंपरा है, और दूसरी ओर सीधे सीधे गुप्त राज्य की समर लक्ष्यता। इस राजधर्म वृक्ष से जो साधारण फलें थी—प्रमाण आत्मा, बुद्ध को परंपरा के लिच्छवि गणतंत्र, जिसकी बुनियाद (प्रतीक) थी धर्मचक्र की ओर जिसका फल वा रक्तवत्ता, स्वराज्य। प्रकृति से यह विकेंद्रीय तथा की न्यायी। इसीलिए अब तक इसके मूल में धर्मचक्र नजता रहा तब तक यह पूर्यता-फलता रहा और जैसे ही धर्मचक्र रुका तब कुछ बिखर गया।

इसको दूसरी शा-
जिसका उदय या बी-
राजतंत्र में अब तक
तब तक हम भारतीय
यव तक सादरत्व के
भारतवर्ष, न्याय, गरी-
और नृगणकृत देश वा-
रुंभी थी— गैरी हट
करलो हूँ। हे राज-
जाता है। जतना को
अनुमानित नहीं के
अनुमान के राजा राज-
धर्म गुप्तारी उदाहरण

उस वही जीवन
और जतनी के साधक
के ही जगदों में हम
की रचना पूरी करने के
पालक, निमित्तकार, ध-
संश्लिष्ट व्यक्ति को
और भाषों में लिखत
राजनीति के फल उदा-
राजनीति संघर्ष का
जिम्मेवारी की जिम्मेवारी

वृक्ष में जो फल
ने जो फल साधक—वर्ष-
की देन के बीज से फल
पट्ट।

छठा अध्याय

निर्मूल वृक्ष : आज की राजनीति

करीब चार हजार वर्ष पहले की बात है ऊंची जाति के हिन्दुओं ने नीची जाति के हिन्दुओं के कानों में विषला हृषा रांगा डालकर उन्हें मर्द के लिए बहारा बना दिया ताकि उनके कानों में वेद मंत्र न पड़ सकें, उनकी जीमें काट नो गई ताकि उनकी ज्ञान से वेद मंत्र न उन्मूलित हों। वर्ण नहीं, जाति-व्यवस्था के अनुसार प्रकृत को वेदाङ्ग, वेदभक्षण दोनों वर्जित हैं।

करीब सत्ता तीन सौ वर्ष हुए गिवाजी की स्वीकार करना पड़ा था कि राजधर्म के अनुसार एक क्षत्रिय राजा को केवल ब्राह्मण मंत्री ही रखने होंगे। करीब सौ सौ साल हुए पानीपत की भाखिरी लड़ाई में भारत का राजवंश प्रयोगों के हाथ में चला गया क्योंकि एक हिन्दू सेनानायक दुर्गेश्वर हिन्दू सेनापति से इस-लिए नाराज हो गया कि वह अपनी ऊंची जाति के अनुसार अपना तंबू उससे ऊंची जगह पर गाड़ना चाहता था। करीब तीन साल हुए एक हिन्दू ने कोष में बाकर महात्मा गांधी की इतलिय बम फेंककर मार डालना चाहा कि गांधी खुदा-छूत को मिटाया चाहता था। आज भी मेरे गाँव का एक नार्थ महिन्दू के वक्ष काट सकता है पर किसी बखूत के नहीं।

जबकि इस जाति प्रथा के खिलाफ प्राचीन, मध्य और पाश्चिमी भारत में इतने बड़े प्रयत्न हुए हैं फिर भी इतका विनाश क्यों नहीं हुआ ?

दक्षिण के इतिहास में एक गिरोह से दुगरे गिरोह में कुछ वृद्धा और विजिता गिरोह ने पराजित गिरोह को नष्ट में ली मिटा डाला। किन्तु भारतवर्ष की यह विशेषता रही है कि उसने कभी भी पराजित गिरोह को नष्ट नहीं किया बल्कि उसे भी अपने में समेट लिया। एक, द्वेष, संगीन, अन्त में वेदक कांग्रेस में समाजवादी, समाजवादी में जनतन्त्र, जनतन्त्र में कांग्रेस, कांग्रेस में कम्युनिस्ट और अन्ततः जनता पार्टी में वह पूरा पराजित कांग्रेस गिरोह और पता नहीं क्या-क्या। इस तरह पिछले कई हजार वर्षों में भारतीय समाज अनेक गिरोहों में बँटा और इन गिरोहों का सम्मिलित बल जो आज वर्तमान में उसमें गांधी-लोहिया जैसे अनेक क्रांतिकारी भी स्वयं एक विरोधी गिरोह के रूप में समा

निर्मूल वृक्ष : आज की

जाते हैं। क्यों ?

हम लोग बहुत बड़े हैं। हम मुसलमान के गुनाह से गुलाम के भी गुनाह से छात्रकर उन डाकू राज लुटना होता था, जाति भेदके लक्ष्यरक्षण से लक्ष्य का नहीं है, देशी घोर मात पश्चिम मुसलमान विनाश किया। क्यों ?

राजा जीवता रहा है प्र

जब अपनी तबड़ों में छोटा घोर निर्रव हो

प्रजा, परजा—दुगरे से

राजा का भविष्यवदन में

प्रजम पेशा हुई है पर को

'प्रजम' ही 'दुपरा' (प

कर जाता है। हग कहे

हैं, हमे हराकर हमारे

रहा है। इसका मुख्य न

खिलाफ बगावत नहीं की

हमारा जो विश्वास है कि

स्थायी नहीं है।

हमारे भारतीय मंत्र

और अंततः है—'वह म

'पसुर' कहीं हुआ

मनाधि में चले गए।

मनाधि नहीं तो और क

अधरोह, भागवत 'सामान

संपूर्ण राग के सम पर

है—'वह और भिन्न, मु

बहुमय है। यह विराट

सदाभाव, २२ विराट

का था।

राजनीति

जाते हैं। क्यों ?

हम लोग बहुत दूर गुलाम हुए हैं। ऐसा नहीं है कि सिर्फ अंग्रेजों के ही हम गुलाम रहे हैं। उसके पहले मुसलमान थे हमारे मालिक, बल्कि मुसलमान भी मुसलमान के गुलाम थे। पहला राज्य गुलामवंश का ही था हम पर। पानी हम गुलाम के भी गुलाम थे। हम धरने हिन्दू-मुसलमान सब। मन्सुखीत राजाओं, खामकर उन हाक राजाओं की नज्दों में, जिनका खास मकसद धन और शौर्य बढ़ना होता था, जाति-पाति, हिन्दू-मुसलमान का कभी कोई भेद नहीं रहा। अफेजे निसूरवंश ने ऐसे दाव खाल खादगी बतल किए। पागला हिन्दू-मुसलमान का नहीं है, देशों और परदेसी का है। राजा और प्रजा का है। सफ़ियान मुसलमान पटान मुसलमान को खत्म करता है, चादिरशाह ने मुगल साम्राज्य का विनाश किया। क्यों ? क्योंकि परदेसी हमेशा जीतता रहा है देशी से। राजा मदा जीतता रहा है प्रजा से।

जब अंग्रेजी नजरों में हम खुद गिर जाते हैं, तो अपना देश अपनी ही नजरों में छोटा और निर्धन हो जाता है। ऐसा तब होता है जब राजा भी नजरों में प्रजा, परजा—दुबारे में पैदा हुई—हो जाती है। जो राजा है, जो खनिव है तथा राजा का भंडारमंडल जो बाहुल्य है ये वर्ग तो पैदा हुए एक तब से, पर जिससे प्रजा पैदा हुई है वह कोई दूसरा तब है। दूसरा, अर्थात् मछल। इस तरह जब 'अपना' ही 'दुबारा' (परजा) हो जाता है तब हर दूसरा 'परदेशी' हम पराक्रिय कर जाता है। हम चाहे हजारों को तादाद में हों, परदेशी चाहे इस-यांच ही हों, हमें हराकर हमारे राजा हो जाते हैं। इस प्रकार परदेशी हमेशा जीतता रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि हमने कभी भी संस्कृती घत्याचार के खिलाफ यथावत नहीं की। पश्चिमी दुनिया के और देश करते रहे हैं यह जगामत। हमारा तो विश्वास है कि जो धारा है वह बना भी जाएगा। यही कुछ भी न्यायी नहीं है।

हमारे भारतीय संगीत का स्थायी भाव है—'रहना नहि वेण विद्या है।' और अंतरा है—'वह संसार कागज की पुटिया, पानी लगे गलि जाना है।'

'अमुर' कहीं हमारे 'मुर' में बाधा न डाल दे, इसलिए आरमरशा के लिए समाधि में चले गए। भारतीय संगीत के अदि में यह जो 'आलाप' है, यह समाधि नहीं तो और क्या है ? समाधिस्थ होकर फिर नाचने शुरू—धारीह-मचरोह, गालथ 'आवागनन'। बार-बार 'रम' पर अना, फिर जाना और तंदूर राग के सम पर पहुँचना मतलब 'रम' पर आ जाना जहाँ सब समान है—अथ और भिन्न, मृदु और जम्द, पराजय और विजय, जहाँ सब कुछ ब्रह्मस्य है। यह विराट भाव केवल हमारे भारतीय संगीत का नहीं था, यह सनाभाव, यद् विराट समभाव हमारे संस्कृत नाटक, मूर्तिकला और विशालता का था।

के हिन्दुओं ने नीची जाति ई मदा के लिए बहरा बना जीने काट ली गई ताकि जाति व्यवस्था के अनुसार

कोकार करना पड़ा था कि अणु मंडी ही रखने होंगे। में भारत का राज्य अंग्रेजों के हिन्दु केतागति से सम-अनुसार अपना तब उससे त हुए एक हिन्दु ने कोष में समाजा कि गांधी सुधा-एक नाई अहिन्दु के मान

और प्राथमिक भारत में नहीं हुआ ?

हमें युद्ध हथा और विजेता। किन्तु भारतवर्ष भी यह को बट नहीं किया बल्कि सम में निकर कांग्रेस में अंग्रेज, कांग्रेस के धार्मिक गिरोह और तब। तर्कों कीय समाज अनेक गिरोहों वर्तमान से जसमें गांधी-गी गिरोह के रूप में अभा

हमारे नाटक में क्रांति, गहन और सत नहीं था। नहीं कोई चरमसोपा नहीं थी। अहा ते गुरू रोता था, वहीं लौट जाता था, वहीं तो स्थायीभाव है। यही तो स्थायी है। स्थायी यहाँ केवल भाव है और वह भाव सर्वव्यापी वस्तु है, सर्वत्र भगवत् है। तभी स्थायी और भिन्न चिन्त की तरह वाक्य में मात्र। दुःख एक मात्र वृद्धवान है, कोई कम नहीं है। हर खंड, हर दृश्य, संपूर्ण है अपने आप में और हर खंड एक वृद्ध है। वृद्धत्व संपूर्ण होना है। संपूर्ण में ही संपूर्ण का विशाल ने तो भी जेप संपूर्ण ही है।

कोई हमें यह न दे कि हम सशुद्ध हो जायें, धननिष्क हमने ज्ञान में ज्ञान की दीवारें धरने चाहीं और शीघ्र लीं। कोई हमारी जाति न छोड़ दे जाए। धर्मिष्ठ हमने धरने देवी-देवताओं, गिरी, विद्वानों यहाँ तक कि संघविद्वानों की धरने भीतर किलेबंदी की। इस जिले के वाहर और नीचे, कीत गजबंदी बड़ी क्या लक्ष्यवाहक न था है, हमने क्या नवलभ। लूटने है तो लूट को स्वयं हमें प्रशुद्ध मत करना। हमारे मंदिर के आरुं की को भी लूट लीं। मंदिर लूटेंगे तो न। मंदिरों के मंडपों के अलावा ही, लूट लीं, पर मेरे भीतर बड़े मेरे आरुं की को, मेरे भगवान की केंद्र लूटेंगे? इस प्रकार तभी से यहा हर हिंदू धरने भीतर एक मंदिर लिये रहता है, चाहे वह नास्तिक ही क्यों न हो। इस मंदिर में किभी 'दुखरे' का प्रवेश नहीं।

मैं एक के पीछे दृष्टा हूँ, गुन दूखरे से (परत्र) पैदा हुए हो। यही वह भगवत्त्व है जब यहाँ मृतभयान था। यही वह भावतत्त्व है, जब यहाँ मंदिर का, धर्म अर्थान् भगवत्त्व के लता हुए।

हमारा हिंदू धर्म सामूहिक कलाएँ, विश्वास आदि रचितर्मा सुद्विवादी प्रविष्टता में अस्वाभाव के, गतिहीनता के उदाहरण है। पर यहाँ भी एक कठोर मन्नाई है कि जिनका कुछ साधक, यहाँ की प्रजा या सामान्य लोगों ने एक प्रकृत ही धर्मों के महान कीर्तनयोग पड़ा है, यदि हमारा यह धर्म, कलाएँ, मानिष्ठ, विद्वान न होना तो या तो हमारी जाति ही लक्ष्य ही नई होनी, यथवा हम धर्म हीने भी ही केवल पाषाण, सर्वविधिया हीन, हममें नवृत्त का कोई लक्षण न होतः।

मुगलशाही का जब यहाँ आगत हुआ तो उन्होंने भारतीय समाज-व्यवस्था, विशेषकर यहाँ की प्राय जीवन व्यवस्था को कतई न सूझा। जैसा हिंदू राज में था, वही रहने दिया। अर्थात् तब दो अलग-अलग जातियों और धर्मों में साम्य-संपर्क या साम्यविरोध चाहे जितना रहा ही पर उनमें कोई राजनीति नहीं थी। मुगलों तक आते-आते दोनों तत्त्व में दोनों एक दूसरे को पूर्णतः स्वीकार ही लूके थे— जे मुसलमान से भारतीय हो चुके थे।

पर इस क्षेत्र में पहली बार राजनीति का अंगवेश किया अंगरेजों ने— मनु सत्तावत की क्रांति की देसकर, विशेषकर तब जब ईस्ट इंडिया कंपनी की जाइ

भारत की सामन

अनस्था में उत्तम

अनस्था अभिवा

अंगरेज का वृद्ध

योग दिया कि के

उत्सवर्ग के मुगल

वत मंगलके से दि

थो। एक दुर्भाव

एक पहाड़ ह

रहते और अपनी

मरकारों के वाक्य

नाथों और दुःखों के

का लोडिंग

कठम। यं प्रे ही के

लाहौर के जिले में

उन्हें लगाया। इस

वला लोनी है, यथो

इसकी वचां करत

दिखा है। अकर

रने से नाथ जेरे भी

काट में उनमें ही

माना हरे क्लो म्हा

रंका जे मन्ना है

आत् तो वरि जाधि

नेयन वरि। हमका

अथ मिल आता है

पर मरि कहा से

के, लक्ष्य के गमन

सुदि, कपती आरवा

आ चकता है, सर्व

पीय है वही मनु वि

कय लो, तावि तुम

है भविष्य के भय ही

एह है भारतीय

में आई कि कि मय

देश को लूट रही थी और भारत के राजसिंहासन के लिए तुर्क, अफगान और पठानों में परस्पर भयंकर संघर्ष छिड़ा हुआ था, उस समय हमारे पुराने सज्ज-राज्ञी, मुजनेह्वर, कोणार्क के उल्लेख विनाशाल मंदिरों के निर्माण में क्यों लगे हुए थे ?

अब दुःख और संकट प्यार और प्रसन्न हो जाता है तब हम पत्थरों में कुछ देखने लगते हैं। जब संगीत, नृत्य गतियां, मुद्राएं और जीवन आनंद का रहस्य हमसे कोई छीनने लगता है, तब हम उल्लेख युद्ध करने, उसमें प्रतिक्रिया में आने के बजाय पत्थरों में चही रचने लगते हैं—ताकि जो 'रवायी भाव' है, महाकाव्य है, अर्थात् वर्णमान क्षण है, वह घमर रहे। स्वर, लय, रत्ना, शब्द, फलर, क्षण, भाव इनमें मस्तिष्क को बांध देना, रोक देना, यही तो स्वरूप तत्त्व है धर्म का, शास्त्र का।

यही पदुषकर मुगल भारतीय हो जाते हैं। यही इनांग मिलकर हिंदू भारतीय हो जाता है। लालकिला, फतेहपुरसीकरी, ताजमहल, हमामुं का मकबरा, राम तोड़ी, मंदहर, जयन, शानमेन, अकबर, राम ललित, सम्माच, अलवरी नृत्य, रामलीला, रामलीला, ताजिना, मुहम्मद, नातक, रक्षा, रहीम, कबीर, तुलसी, अष्टमहा, अज्ञान और मीरज का आलाप—इसी आगतवर्ष की संज्ञक गहली बार देवदार मकरा मगा।

साधारण भारतीय मनुष्य को देखकर संभ्रंज मुस्ले से भर गया। भारतीय मनुष्य जो इतना शरीर है, जाहिल है, पिछड़ा और अंतरहू टूटा हुआ है फिर भी यह यह भाव होता है कि जो हूँ, जैसा भी हूँ, पूर्ण हूँ, संतुष्ट हूँ अपने साथ में। "मेरे रामरक्षण से बड़ा कौन है ? इतुमान से बड़ा ताकतवर कौन है ? मेरे अल्पाह, मेरे नबी से बड़ा कौन है ? एक बार उग रहीम, उग नीला को बार कर लेता, महज उभ 'हृक' को एक बार महसूस कर लेना, सिवारसपय सब जग जानी, कारी प्रणाम जोरि पुग पानी, जो लेना, बस इसके प्राये कही और कोई नहीं, कुछ नहीं। ऐसे मिरकिरे, असभव, अंधविश्वासी परंतु साथ ही अपने पनी, इतने संतुष्ट, इतने सीधे, महज भारतीय को देखकर संभ्रंज भय और लज्ज से भर गए।

हर पांव आने आग में संदूर्ण है, इसलिए यहां का हर व्यक्ति अपने साथ में संपूर्ण है। यहां की नाम व्यवस्था अक्षयनिर्भर है, कहीं किसी बाहर पर निर्भर नहीं। इसलिए यहां का हर निवासी आत्मनिर्भर है—आत्मसंतुष्ट है, इसका कुछ अभाव नहीं है, इसीलिए सब कुछ अपना है। गोबि से ऊपर एक-दूगरे में लुड़ा है। तब कुछ यहां भासिक भाव से लुड़ा है। क्षेत्र, जमीन, धरती मां है यहां, तुष पित्त है, हवा भाई है, जल बहन है। काग के बदले जं भोरन घना, वस्त्र, दुख मिलना है वह तो प्रसाद है। यहां हर वृक्ष देवता है।

संभ्रंज न हुगानी इसी जीवन व्यवस्था (धर्म) के लिधाक इसे पूर्णतः तोड़ दें, बाट दें के लिए जो अपनी नयी व्यवस्था हम पर आरोपित को—

निर्मूल वृक्ष : भाज की रा

वही है राजनीति का श्रोम
ऐसा वृक्ष जिसकी जड़ें आ
को 'दक्षिणवृक्ष' बनाने के

भारतीय 'व्यक्ति' नया

वैशेषिक सूत्र की परि

'व्यक्ति' है। यद्यपि में 'ने

जो प्रकाशित करता है वह

'सुनिश्चय' है, उदाहरण है

अमृत है। क्योंकि यह मरु

पुरुष या एक संघ, एक दैव

होकर इनके विपरीत

है, विद्व है, सण है। तत्परहर्ष

की प्रकथारणा में एक विकास

है। जैसा यह भयुदाग होगा

यह मनन, निरवेध नहीं है

स्वभावतः स्वतंत्र और निश्चे

भारतीय व्यक्ति और पा

अध्ययन करे तो पाएंगे कि

स्वरूप, अपने अंत का हो

मंत्र है स्वाध की गिद्धि

'दक्षिणवृक्ष' है।

व्यक्ति सर्वक है। 'दक्षि

मनीन के तिसरे दे दिया गया

के ही उत्तर पर है। यहां मस्ति

होकर इनके विपरीत भार

गया है। व्यक्ति इनका प्रकाश

है : पुन यह हो, 'अन्वयनि'।

वर्ष है : 'अहम्' और 'अहम्'।

सूक्ष्म है तथा उस भारतीय

समाज, देशी और परदेशी, भिन्न

अन्यथा शास्त्र से आभिजाती अ

अपराधी, अमान्य, लुटेरे, अना

लक्ष्य रहा है।

भारतीय व्यक्ति प्रतीक है

में (वह प्रकिया सब एक अथाप

बसो रहा है। इसकी शिकरियां मर्दव खुली रही है। आत्मरक्षा में वा भय के जंघ भी हमने अपने द्वार बंद किए हैं, अतः हमने बड़ा मुकाम हासिल है। हम इसी कारण कई बार पराजित होते पराजित हुए हैं और समाजिक क्रिया से, कर्म से, समाजाधिक प्रतिक्रिया (रक्त शोषण) के संघर्ष से हमने भी बचाव हुए हैं।

हमारे राष्ट्रनिष्ठ, 'संनमते दृष्टि' के पत्रों में सभी बंद-देही, शक्ति पुण्य, धर्म और नमो व, मानव और प्रकृति, मनुष्य और मनुष्यत्व प्राणी, एक मात्र इंसान और प्रकृति अलग आता है। भारतीय धर्मिण इस विचार, धर्म और दृष्टि का प्रणेता है।

इसका मत यह भारतीय धर्मिण इस भारतीय समाज व्यवस्था के संनमते एक संपूर्ण इकाई या तिसरी रक्षा के ही निमित्त राष्ट्र व्यवस्था को उठाने का एक संघ थी, जो स्वयं भी नव नव से संपूर्ण थी। सभी तो संपूर्ण से संपूर्ण निष्ठा, और संपूर्ण से संपूर्ण को निष्ठा ले तो भी एक संपूर्ण ही रहेगा :

श्री १२ पूर्णगिरि पूर्णभद्र पूर्णरूप
पूर्णभावात् पूर्णसंवाचनान्जले ।

यह भारतीय समाज व्यवस्था इतनी संपूर्ण थी कि इसमें मनुष्य की निहित श्रेणियों पर समाजता से निवारण किया गया था। एक दृष्टि में ही ही 'भेद' नहीं था। प्रत्येक व्यक्ति की समता और शीघ्र पर बराबर ध्यान था और हृदयगत नुकसे जीवन को बचाना बचाई गई थी। भारतीय जीवन का मूल्य था कि प्रत्येक व्यक्ति कर्मों, अपना कर्म करता रहा, स्वयंसे बंध के साथ जीवन, समाजता या मोक्ष प्राप्त करे चाहे भी 'नर' अपनी पात्रता और योग्यतापूर्ण अपने कर्म के साथ 'आचारण' ही गया है।

यह इन संदर्भ व्यवस्था की सारी शीघ्र (सर्वथा) भी थी—एक व्यवस्था की श्रेष्ठता समाज संवाचन करनेवाले को पर विचार करनी थी—प्राण पर (ज्ञान, धर्म), अर्थ पर (धर्म, कान), वैश्व पर (प्रवृत्त, सेवा)

इस व्यवस्था का कारण यह व्यक्ति को सृजनात्मक बनाने पर था। व्यक्ति के आगे उसके आध्यात्मिक श्रेष्ठता का आचारण निमित्त रहे वही दृष्टि समाज संवाचित करके रखी पर था। सभी इस व्यवस्था में सर्वश्रेष्ठ स्वयं अर्थिक, नैतिक, आर्थिक दृष्टि से महान्, कम से कम व्यक्तिगत जात या स्वार्थ पर जीवन विनाशवान् व्यक्ति को दिया जाता था। ऐसा ही व्यक्ति समाज रिक्त को भिन्न कर सकता है और ऐसा ही व्यक्ति समाज में भ्रष्ट और आस्था का निर्माण कर सकता है। वरना इसके अभाव में समाज निश्चय ही धर्म, नैतिक, सर्वपर और झूठ में कम जाएगा।

इस व्यवस्था में एक ही धर्म को समाज पर संपूर्ण रखा और अधिकार न देकर उसका विभिन्न वर्ग में मनुष्य विभाजन कर शीघ्र और मनुष्य निर्माण

कर्म का र
दिया गया

कर्मकार (६
जातियों पर

को राज्य से

एक धर्म

अभिनेता है

सभी धर्म

जाने लगे ही,

यह धर्म

अतीत का

को 'समाज'

कहा गया है,

तान दिया है

एक इस

राजनीति, य

समाज-नीति

सर्वोच्च जीवन

अर्थिक के दृष्ट

एक में सब ह

प्रभावित है।

के समाज को

तो एक ही

लोक अर्थिक

सुगमता समाज

को परिधि-वि

सर्वथा एक ही

समाज को

समान कुछ ह

राजनीति को।

को यह ह, वही

समाज को

कर्मों को नहीं ह

नहीं गई कि कि

की नौकरी, अर्थ

निर्मूलक वृक्ष का पत्र

प्रतिपक्ष में तो भ्रष्ट
बड़ा वृक्ष-पत्र...
है और समाजिक
के समर्थक व... की

देश-देशी, सभी पुरुष,
देश-देशी, यह मान
चेतन, राजा और दण्ड

व्यवस्था के अंतर्गत।
सिमा भी उगीं का एक
पुष्प के गर्भों स्थित,
रहेगा :

के इनमें अनुभव की
सम दृष्टि में रही भी
परायण ज्ञान या ही
य जीवन का महत्त्व
स्वयं बोध के साथ
अपनी वाचता ही

भी - इन व्यवस्था
करती थी - वाचन
व्यवस्था, वेदों :

जाने पर या - दण्डित
वित रहे पनी अधिप
ता में सर्वश्रेष्ठ - स्वयं
न व्यक्तिगत लाभ या
है। ऐसा ही व्यक्ति
समाज में कड़ा धर्म
में समाज निश्चय ही

सा ही अधिकार न
और अनुभव निर्माण

कभी यह महत्त्व प्रयत्न या । जिसे मान का अधिकार (वाचन) क्षेत्र का भ्रम
दिया गया उसे राज्य या संपत्ति का अधिकार नहीं दिया गया । जिसे राज्य का
अधिकार (अधिप) मिला उसे संपत्ति पर अधीन अधिकार नहीं दिया गया तथा
जातियों पर नियंत्रण का अधिकार भी इसे नहीं मिला । अंतर्गत के अधिकारी
को राज्य में सत्ता वर्म में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं था ।

इन व्यवस्था के अंतर्गत के नियम में एक ही मान्य बात है कि यह संपूर्ण है,
अधिकार है, इनमें से यदि एक भी मान या तत्व को हटा दिया गया तो वह
रूप में स्थान पर निर्दिष्ट हो गया तो फिर मान्य व्यवस्था ही पत्र के मान्य पर
नहीं रहेगी, अर्थात् इन व्यवस्था पर स्थित मान्य समाज, देश नष्ट होने लगेगा ।

यह संपूर्ण एक है । इसे या तो पूरा स्वीकार करना होगा अथवा इसे पूरा
अस्वीकार करना होगा । यही है भारत की राष्ट्रीयता, भारत की लोक-मनित
जो 'मानवता' है । यही है वह भारतीय मनीषा जिसे 'राष्ट्र' और 'संपत्ति'
कहा गया है जिसे ईसा के 'मिशन' कहा है, जिसे वीगद्वयान उपाख्यान में 'चित्ति'
नाम दिया है ।

हीन इसके विपरीत है पदिलमी (यक्ष्मी) समाज रचना । पदिलमी समाज में
राजनीति, धर्म-नीति (धिनोला भी), नैतिकता (अधिप), दर्शन (पैराधिपिक),
समाज-नीति (सोसियोलाजी), अर्थ-नीति (इकोनॉमिक्स), कानून, साहित्य, कला
आदि जीवन के सर्वथा अलग-अलग, स्वयं में संपूर्ण स्वयं क्षेत्र हैं । फलस्वरूप
प्रत्येक के पृथक् निष्ठा है । पर हमारे यहाँ विभिन्न धर्मों में एकतामयता है ।
एक में सब है । सब में वही एक है । जीवन के सभी धर्म एक ही आत्मा में
प्रभावित हैं । एक ही धर्म से वृक्ष की विभिन्न शाखाओं, उर्जा, पुरुषों और फलों
के समान भारतीय समाज-रचना के जीवन के धर्मों का विकास हुआ है ।

जो इस विचार और आचार को माननेवाला होगा वही व्यक्ति भारतीय
लोक-मनित का, राष्ट्र की चित्ति का वास्तविक प्रतिनिधि होगा । अतः यह
पुण्यपूर्ण इगो प्रतिनिधित्व अर्थशा, जो समाज के पुनर्जात करने हुए समस्त समाज
और अतिरिक्तियों के अनुसार अपने भारतीय चरित्र और मनीषा के अनुकूल,
सर्वथा एक नई भारतीय सामाजिक व्यवस्था प्रस्तुत करें ।

समाज की भारतीय सामाजिक व्यवस्था को जोड़ने और उनके स्थान पर हमें
अपना दाय न प्राप्त करने देने की भी मनीषा थी अर्थशा की वही उनकी
राजनीति थी । इन राजनीति में अर्थ और संपत्ति करने को हमारी का स्थिति
थी या न, वही है हमारी भारतीय राजनीति ।

सामाजिक राजनीति की बुनियाद यक्ष्मी वर्ष १९२३ में जब ईश्वर इंडिया
कानून की नई मसौदा की गई और अंतर्गत के कानून में इन भाषण को एक धारा
जाती गई कि किसी भी भारतीय को धर्म, देश, वंश या वर्ण के कारण कंपनी
की नौकरी, अधिकार सत्ता पद के लिए असंगत न समझा जाए । इसे व्याव-

शासकशा ने वा शय
ह्रा एकलप्य शय्या
है हीर रत्नभाषिक
संसार न रत्न ही

ह-हरी, रत्न-पुत्र,
शर प्राप्ति, यह नाम
भर, वरा और हुंष्ट

कवच के प्रसिद्ध
भी उन्ही का पुत्र
र्ण के संपूर्ण निष्कार,
रहेगा :

इसमें मनुष्य की
दृष्टि में ही की
शासन शास्य का और
जीवन का अन्त
कर्मों बोध के लिये
अन्तही शरणा और

भी उन्ही अन्तः
करती थी शासन
मन्त्र, नेत्र) ।

ने पर था : शासन
त रहे ही शासन
में सर्वोत्तम स्थान
स्वतंत्रता भाष्य का
। देखा ही अन्तः
समाज में अन्तः ही
समाज निरन्तर ही

ग और अन्तःकार न
और अन्तःकार निरन्तर

करने का सतत प्रयत्न था । जिसे ज्ञान का अधिकार (शासन) हीन या कर्म
दिया गया उसे राज्य या संपत्ति का अधिकार नहीं दिया गया । जिसे राज्य का
अधिकार (अधिकार) मिला उसे संपत्ति पर असीमित अधिकार नहीं दिया गया तथा
आतियों पर नियंत्रण का अधिकार भी उसे नहीं मिला । संपत्ति के रक्षिकारी
की शक्ति में कदावा कर्म में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं था ।

इस व्यवस्था के अन्तर्गत के विषय में एक ही बात बताने की जरूरत है,
प्रविष्ट है, इसके में यदि एक भी अणु या तत्व की हता दिसा गया था वह
अपने ध्यान पर निश्चित हो गया तो फिर संपूर्ण व्यवस्था ही पतन के मार्ग पर
जाने लगेगी, अर्थात् इस व्यवस्था पर स्थित सारा समाज, देश गूट होने लगेगा ।

यह संपूर्ण एक है । इसे या तो पुरा स्वीकार करना होगा अथवा इसे पुरा
अस्वीकार करना होगा । यही है भारत की राष्ट्रीयता, भारत की लोकप्रति
जो 'समाज' है । यही है वह भारतीय मनीषा जिसे 'राष्ट्री' और 'संसन्धी'
कहा गया है जिसे ईश्वर ने 'भिल' कहा है, जिसे हीनवर्णान उपाध्याय ने 'निर्णय'
नाम दिया है ।

दीक इसके विपरीत है पश्चिमी (प्रमं जी) समाज रचना । पश्चिमी समाज में
राजनीति, धर्मनीति (थियोलाजी), नैतिकता (एथिक्स), दर्शन (मेटाफिजिक्स),
समाजनीति (सोसियोलोजी), अर्थनीति (इकोनॉमिक्स), कानून, साहित्य, कला
आदि जीवन के सर्वथा अलग-अलग स्वरूप में संपूर्ण स्वतंत्र क्षेत्र हैं । फलस्वरूप
प्रत्येक के एक-एक नियंत्रण है । पर हमारे यहां विभिन्न अंगों के एकान्तरता है ।
एक में सब है । सब में सब एक है । जीवन के सभी अंग एक ही आत्मा से
प्रभावित हैं । एक ही बीज से वृक्ष की विभिन्न शाखाएँ, पत्तों, फूलों और फलों
के समान भारतीय समाज-रचना के जीवन के अंगों का विकास हुआ है ।

जो इस विचार और आचार को माननेवाला होगा वही व्यक्ति भारतीय
लोक शक्ति का, राष्ट्र को शक्ति का वास्तविक प्रतिनिधि होगा । अथवा वह
हृदयपूर्ण हृदयक प्रतिनिधित्व करेगा, जो राज के पूर्णतः अपने हृदय समार, समाज
और प्रतिनिधित्वों के समुच्चय अपने भारतीय अन्तः और अन्तः के समुच्चय,
सर्वथा एक ही भारतीय सामाजिक व्यवस्था प्रस्तुत करे ।

हमारी भारतीय सामाजिक व्यवस्था को लोचनी और इसके अन्तः पर हमें
अन्तः कृत न बना करके इनकी ही राजनीति की अन्तः ही वही उनकी
राजनीति थी । इन राजनीति ने लक्ष्य और संघर्ष का नतीजा ही हमारी ही शक्ति
भी था है, वही है हमारी भारतीय राजनीति ।

बनेगाय राजनीति की बुनियाद साली गई १८२३ में जब ईस्ट इंडिया
कंपनी को नई मसद दी गई और कंपनी के कानून में इन माध्य की एक धारा
जाड़ी गई कि किसी भी भारतीय को कर्म, दंड, अंग या वर्ण के कारण कंपनी
की गौरवी, अधिकार अथवा मद के लिए अयोग्य न समझा जाए । इन अन्तः-

हारिक प्रथम दिया लार्ड मेकाले ने। अंग्रेजी भाषा और भारतीय विज्ञान का जो उदया उमने मोना और तैयार किया उसका लक्ष्य था कि भारत में एक ऐसा नया शिक्षण वर्ग तैयार किया और उसे स्कॉलर, व्याचार-विचार और राजनीति इन सभी दृष्टियों से ऐसा चरित्र और संस्कार दिया जाए कि वह अपने ही स्वाधे में अंग्रेजों का स्वाधे लेले।

परार्थ का लोप करके स्वाधे निरुद्ध करना यह थी अंग्रेजों की प्रथम व्यापारिक संस्कृति के भीतर में उपजी हुई राजनीति। साम्राज्य शीम के भीतर वस्तुतः व्यापार लोभ था। भारत देश को हथियाने का लक्ष्य था व्यापार, लूट का शय्य था व्यापार। उनको गारी नीति, इनका साधन कर्म और निजत व्यापारी था।

दरमगन नैपोलियन की पराजय के बाद (१८१५) अंग्रेज व्यापारी वर्ग से यह दर पना गया कि उनके साम्राज्य पर सब कोई आंच उठाकर देख भी सकता है। दूसरी ओर उनकी औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप उन्हें मनोत्पादन के जो प्रबल साधन मिले तो इसके लिए अब कोई एक ऐसा तथा साम्राज्य चाहे या जहां की वृद्धि, कल्याण माल और साधन वे हड़प सकें और बदले में उसे अपने भाग, विचार और संस्कृति का बाजार बना सकें। इसके लिए उनकी राजनीति से यह खूबसूरत विचार उपजा—हे मनुष्यो! जगत के सुधार में, उन्नति और विकास में हमारा लाभ है। (क्योंकि जंगली लोग अंग्रेजों के साथ की तरीक नहीं कर सकते थे।)

उस समय भारत में जो अंग्रेज अधिकारी, व्यापारी और भ्रम प्रचारक प्राण वे भारत में यही कहते पाए गए कि भारतवासी, तुम्हारे शिक्षित, सफल, संपन्न और स्वतंत्र होने में हमारा हित है और नहीं हमारा लक्ष्य है। इसी आदर्श भाव (राजनीति) के साथ वे यहां के शिक्षितों के दिलों में अंग्रेजों राज के प्रति निष्ठा उत्पन्न करते थे। और संसार की दौड़ में जो-कौड़ी शक पिछड़ गए हम लोग उन (अंग्रेजों को) अपना देवता मानने लगे।

उस समय भारतीयों की बुद्धि एक गुलामी से निकलकर (अंधविश्वास, मुगलराज, सामंतशाही) दूसरी गुलामी में प्रवेश कर रही थी और अभी को 'स्वतंत्रता' कहने लगी थी। पठनी बार जिन्होंने अंग्रेजों राजनीति के दंत रहस्य को समझा वे दादाभाई नौरोजी, रामजी खादि साधुनिक भारत के विनामह है। उन्होंने देखा कि १८३३ में जो कानून बना, १८३३ तक बीस साल में उस कानून का नाम एक भी हिंदुस्तानी को न मिला। प्राथिक साम्राज्यशाही क्या है, और विहित राष्ट्र का रक्षणोपण किस प्रकार होता है, इसे समझ लिया दादाभाई ने। पूंजीवाद से पैदा होनेवाली प्राथिक साम्राज्यशाही कितनी भयानक है और उसके रक्त शोषण में उसके विनाश के बीज किस तरह छिपे हुए है—यह दादाभाई ने संसार के सामने रखा।

पर १९६८ में ही अंग्रेजों की दंत राजनीति की जमीन तैयार हो गई थी

निर्मूल वृक्ष

जब ईस्ट

(प्राथिक

धिकारी

इंग्लैंड प

जमाने क

कुंगो व

था, बरि

स्वामन्त

इन चीजों

कि एक म

इंग्लैंड वि

उसमें उल

गता। इ

केवल एक

गामान भा

व्यापार क

परनु

शायद हो

होने लगे।

वीकानो मि

सब व्यापार

सुन गया।

उम्दा तरकी

लिखित भ

पक्ष स

भी फलना

निम्न हो

मुगलराज

में कि

तिहाई दवा

(१७८६ में

किर भी

कि लूट की

इंग्लैंड को

बहुत नकर

भारतीय शिक्षा का जो
के भारत में एक ऐसी
विचार और राजनीति
था कि वह अपने ही

की परम व्यापारिक
के भीतर महान् व्या-
पार, लूट का लक्ष्य था
उन ध्येयगरी था।

अंग्रेज व्यापारी वर्ष
मौल उठाकर देश भी
हम उन्हें धर्मोपदेश
ऐसा नया साम्राज्य
थक करे और अपने में
हैं। इसके लिए उनकी
अपत के सुधार में,
य लोग अंग्रेजों के साथ

और धर्म प्रचारक द्वारा
सिद्धि, सफल, संपन्न
रूप है। इसी आदर्श
के अंग्रेजी राज के प्रति
वातक पिछड़ गए हम

लकर (अपविश्वान्त,
होती थी और उसी की
राजनीति के एक रहस्य
भारत के विनाश है।
के तक बीस साल में
आर्थिक साम्राज्यशाही
होता है, इसे सपना
साम्राज्यशाही कितनी
बीज किन तरह बड़े

बीज तैयार हो गई थी

अब ईस्ट इंडिया कंपनी का पुनर्गठन हुआ और इसे पहली बार एक नया चांडर
(अधिकार पत्र) मिला। तब उस महाजनो शासकवर्ग की बनाई हुई एका-
धिकारी कंपनियों का अन्त जाल तैयार हो गया था जिसने 'ह्लिय क्रांति' द्वारा
इंग्लैंड पर अपना पंजः जमा लिया था। भारत पर कंपनी द्वारा पूरा कब्जा
जमाने का मूल्य काल अठारहवीं सदी का उत्तरार्ध था। अभी तक ईस्ट इंडिया
कंपनी का प्रधान लक्ष्य अंग्रेजी माल के लिए भारत की जमाश करना नहीं
था, बल्कि उसकी कॉमिन्ग थी कि भारत और पूर्वी द्वीप समूह को वैदाचार,
संस्कृत ममाने, गुनी और रेशमी कपड़े का एकाधिकार उसे मिल जाए क्योंकि
इन चीजों की इन्ग्लैंड और योरोप में बड़ी मांग थी। व्यापार का यह नियम है
कि एक माल के बदले में दूसरा माल दिया भी जाए। परंतु उस समय तक
इंग्लैंड विकास की निम्न मंजिल पर पहुंच सका था (सत्रहवीं सदी का प्रारंभ)
उसमें उतनी पाश ऐसी कोई भी मूल्यवान चीज नहीं थी जो वह भारत को दे
पाता। हर मानी में भारत इंग्लैंड में बहुत समृद्ध था। उस वक्त तक इंग्लैंड में
केवल एक उद्योग का विकास हुआ था—ऊनी कपड़े का उद्योग। लेकिन ऊनी
साधान भारत के किसी काम का न था। फलतः शिबःराग, घोसा, घुसा-फिराकर
व्यापार बनने की तमाम हरकतें अंग्रेज करते थे।

परंतु अठारहवीं सदी के मध्य तक आते-आते कंपनी का जैसे-जैसे पूर्ण अनुभव
कायम होने लगा वैसे ही ओर-उबर्दस्ती के तरीके भी ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल
होने लगे। मसलन १७६५ में जब कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की
सोवानी मिल गई और मालगुजारी बसूल करने का काम कंपनी के हाथ आ गया
तब व्यापार के मुनाफे के अलावा, सीपी और बेतहाशा लूट का एक नया अध्याय
खुल गया। भारत को बिना कुछ दिए पट्टों की दीवत खींच ले जाने की इतनी
उम्दा तरकीब मिल गई। फिर जो लूट और तबाही हुई है, इस देश की अमका
लिखित समूत अंग्रेज खुद दे गए हैं :

"यह सुंदर देश जो अधिक से अधिक निरकुश और स्वेच्छाकारी शासन में
भी कथना-कूलता रहा था, अब हुकूमत में अंग्रेजों का सखमुच इतना बड़ा
हिस्सा होने हुए भी तबाही की हालत का गहूंच रहा है।" (१७३६ में
मुश्विनाबाद में कंपनी के रेजीडेंट 'वेचर' की रिपोर्ट)

"मैं विस्वायपूर्वक कह सकता हूँ कि हिंदुस्तान में कंपनी के राज का एक
तिहाई इत्ताका अब जंगल बन गया है जहां केवल डरावने जानवर रहते हैं।"
(१७८६ में गवर्नर जनरल लार्ड कार्नवालिस की रिपोर्ट)

फिर भी कंपनी की तरफ से बार-बार इस चीज की मांग की जाती थी
कि लूट की प्रामदनी को, चाहे जैसे, और बढ़ावा जाए क्योंकि उस समय के
इंग्लैंड को 'माधुनिक' और 'उद्योगपति' बनाने के लिए भारत की पूंजी की
बहुत जरूरत थी। इसी की पूति में १७६३ में लार्ड कार्नवालिस का इस्तरारी

बंजोवस्तु भारत के जीवन में एक ऐसी अज्ञातपूर्व शक्ति है जिससे पहली बार भारतीय जीवन व्यवस्था का मूल ढांचा ही टूट गया। दूसरी ओर अंग्रेज राजनीति जो व्यापार की दृष्टि में इस देश में आई थी उसे अपने अनेक उपायों की लुगो जमीन मिल गई।

एंग्लो ने जून १८५९ में लिखा था, 'हारे पूर्व की समझने की कुटी यह है कि वहाँ जमीन पर व्यक्तिगत अधिकार नहीं है। ...पर यह कर्म हुआ कि पूर्व के लोग भूमिगत मौर्य सामंतवाद तक नहीं पहुँचे ? जैसी सभ्यता में इसका मुख्य कारण वहाँ का अलगाव है। इसके साथ ही वहाँ की खास तरह की धरती भी इसका एक कारण है।'

अलगाव नहीं, परती नहीं, इसका मुख्य कारण है भारत की अपनी जीवन-व्यवस्था जो धर्म की धुरी पर गतिमान थी, जहाँ साम्यवादी स्वर पर कुछ भी किसी का नहीं था, परंतु यह कुछ नब का था। इसलिए भौतिक विग्रह था कि देखते ही जाँ।

अन्यथा में, यह विश्वास जीवन में लिया जाता था और भारतीय ग्राम इसका साधन था कि वहाँ सब कुछ ईशमय है, जैसी ईश का है। भारतीय शक्ति (हिन्दू राजा से लेकर मुगल बादशाहों तक) उसी ईश्वर का ही स्वयं है। इसलिए वहाँ कि धरती, वहाँ के खेत केवल पैदावार के दो स्रोत नहीं हैं, परन्तु वह धरती का है। पेट-पीछे देवी-देवता है।

भारत की यह जीवन-व्यवस्था जिसे 'राजधर्म' कहा गया है, यह एक संपूर्ण जीवन-व्यवस्था की धोज है। यह जिन संस्कृति से पैदा हुई थी, वह मूलतः साम्यवादी है। जिसका भार यह है कि कर्म कर्मों से सारे भौतिक जीवन को भीगा और देख लो कि भोग क्या है ? फिर छोड़ दो हमें। मुक्त हो जाओ।

वृक्ष फल को नहीं एकड़े रहना, फल ही अपने स्वार्थ के बंधन से तृप्त से लगा रहता है। जब स्वार्थ पूरा हो जाता है, फल के भीतर की सुरली, जब वृक्ष के भीतर रस से पूर्णतः पैना हो जाती है कि अब उस वृक्ष में नया वृक्ष, नया वृक्ष उगेगा तो फल का बंधन टूट जाता है। दुर्भाग्यवश हमारे देश का वृक्ष न अपने बंधन तोड़ने की कोशिश नहीं करती रहती, नारा कुल तक, साम्य होकर अपने प्राण टपकाने है। वही ही सौख भाग है। इसी तरह भारत की सभ्यता में राजा, हमारे वहाँ वर्ण, संस्कार, राजव्यवस्था सभ्यता, साम्य व्यवस्था, नाटक, नृत्य, संगीत, कलाएँ, यहाँ तक कि सेती, व्यवसाय, अयोग, दास कर्म-व्यवहार रखा गया है। वहाँ तक कि अग्निपुराण में गरुड की तुलना ईश्वर के, मंदिर में की गई है जिसमें जीव ही ईश्वर की प्रतिधा है, इस तरीके की पूरी आर्जुन से प्रकृति में ही बना है यह संपूर्ण रूप है। मूल उम देवमंदिर का द्वार है, मंदिर के ऊपर का भाग जहाँ दिखा जाती है वह मंदिर का कलश है, कंधा वेदी है।

मोक्ष के नश्व की वष
धनः त्याग को है। धीरे-
को कम १२०-१२५ रूप्य
कम करने हुए पावश्रमण
अथवा भारतीय धर्म का ल
शास्त्रीय शक्ति न. योग
नाद, कौशल किं विनयक
प्राधान्य में पुन हो जा
मौल हो जा, नंबर देवता
तीमरे बड़े नहीं, सभ्यता
नहीं है, यह एक मय है,
व्यवस्था में हमारी इती व्य

नाथ को नहीं जा प
स्वाधी एक हुआ, व्यवसाय
का पुनोदित था, राज मा
(५२। दिव) में केवल रा
सारे गावों के नाथ के लिये
शक्ति (रक्षक) था। प्राय
गया : जो एक थे, मिनी
धन सेतहीन, साधना, धर्म
अवकाश था, वैश्य, यह म
महात्मा न सुदामांर जो भ
का 'एरे' हो गया।

उस ग्राम व्यवस्था का
मिना, कौंगे विविध वात

'भारत की न छोटी-
राज तक नहीं आती है,
की मिनावाद और एक
जयना...पर बरुगे हल
जकरन की सभी वीज पैर
के ही काम में प्राता है
धारण करता। उपायिण
से जो था विभाजन पैदा
एक विशिष्ट भाग शरीर
जाता है।'

बंदोबस्त भारत के जीवन में एक ऐसी अभूतपूर्व घटना है जिससे पक्षी वार भारतीय जीवन व्यवस्था का मूल खंड ही टूट गया। दूसरी ओर संस्रोज राजनीति जो व्यापार की छाड़ में इस देश में आई थी उस अगली जड़े अर्थात् की लूरी जमीन मिल गई।

गणित्स ने जून १८५१ में लिखा था, "पंरु पूरव की समझने की कुओ एह है कि वहां जरीत पर व्यस्तगत अधिकार नहीं है।" पर यह कौमे हुआ कि पूरव के लोग भूमिगत और तार्यतवाव तक नहीं पहुँचे ? जेरो सम्भ में इसका मुख्य कारण वहां का जलवायु है। इसके साथ ही वहां की जास एह की घरती भी उगना एक कारण है।"

जलवायु नहीं, परती नहीं, इसका मुख्य कारण है भारत की शपमी जीवन-व्यवस्था जो घर्म की खरी पर गतिमान थी, अहं छायाःशिकःस्तर पर कुछ भी किमी या नहीं था, परंतु गम कृत एव का था। इतलिर, भौतिक निमम था कि देकर ही ली।

अपनार में, यह विश्वास जीवन में लिया जाता था और भारतीय राम इसका प्राधप था कि यहा गम कुछ इसमय है, उसी र्ण का है। भारतीय भावा (हिंदू राजा मे लेकर मुख्य वाददाहं तक) उती इंटर का ही स्वल्प है। दर्शनए यहाँ कि अरती, यहाँ के सेत केवल पैदावार के ही स्रोत नहीं हैं, परंतु यह मरती मां है। पेठ-पीधे देवी-देवता है।

भारत की अर जीवन-व्यवस्था जिसे 'राजधर्म' कहा गया है, वह एक संपूर्ण जीवन-व्यवस्था की पीज है। यह जिन संस्कृति में पैदा हुई थी, यह मुख्यतः पाप-पारिणक है। जिसका सार यह है कि कर्म करने सारे भौतिक जीवन की भीसो और देख लो कि भोग क्या है ? फिर सोड़ दो हमें। मुक्त हो जाओ।

वृक्ष फल को नहीं पकड़ें रहना, फल ही अपने स्वार्थ के वंपन से वृक्ष से चगा रहता है। जब स्वार्थ पूरा हो जाता है, फल के भीतर की गुठली, जब वृक्ष के भीतर रस में पूर्णतः नैगार हो जाती है कि अब उस वृक्ष में नया वृक्ष, नया वृक्ष उगेगा तो फल का अंधा रसतः टूट जाता है। पूर्णतः पके हुए फल का वृक्ष में अति अमल लीहने की कोशिश नहीं करनी पडती, नारा कुछ बंधनर अमपय होकर अपने आप टरन पड़ता है। यही जो मोक्ष भाव है। इसी अरकभाव की ध्यान में अन्कर हमारे यहाँ वर्ण, संस्कार, राजव्यवस्था समाज व्यवस्था, सामाज व्यवस्था, नरक, मृत्यु, संगीन, कर्माण, यहा तक कि सेती, व्यवसाय, अर्लीन गाना कर्म-व्यवहार रखा गया है। यहाँ तक कि अतिपुराण में शरीर की तुलना शंखर के मंदिर में की गई है जिसमें पीज ही इंटर की प्रतिधा है, इस मंदिर की पूरे अकृति स प्रकृति में ही बना है यह संपूर्ण पुरुष है। मुल उन देवमंदिर का द्वार है, सिर के ऊपर का भाग जहाँ लिखा जाती है वह मंदिर का कलश है, कंधा बेदी है।

मोक्ष के लक्ष्य का पथ संनतः स्वान की है। धीम-का कम अरति-कल्प दुय्य क कम करने हुए पावप्यनव अर्थात् भारतीय धर्म का ल शास्त्रीय मंदीन न योपे नोद, कौनवा फिर निमरक अवापमन ग मुन हो ज मोत हो गया, केवल इनके तीपरे को नहीं मरका प नहीं है, मय तक माय है, व्यवस्था में हवाई इती अ

गंध की करती जो क स्वाभी एन दुध, स्वभाव का पुरोहित था, छात्र (५२ - दिव) ने केवल का मारे पार्वी के नाम के गिरे हाकुर (रसक) था। छात्र गया। जो नयक थे, जिन्हे और सेतहीन, हाँधे अहीन प्रकयक था। वैश्य, पर मराजक ग मुरगोर हो का 'पुर्ण' हो गया।

उम शाम व्यवस्था का मिला, कौंगी निर्नर वान

भारत की न छोटी-छात्र एक यमी मानी है, की मिलावत, और एव वरनता... हर उरणी मय जहरन की गभी कीर्त पैर के ही काम में जाता है... धर्मिका मा रो जो अम विभाजन पैर एक निदिनय प्राग जगीर... जाता है।"

निर्मूल वृक्ष का कल

जिसकी पत्तों का
दूधरी और संतुल
में बदली नहीं समान

समझने को नहीं गह
र यह कैसे हुआ कि
मेरी समझ में इसका
की काम तरह की

त की शानती जीवन-
मक स्तर पर कुछ भी
भौतिक नियम था कि

और भारतीय ग्राम
है। भारतीय राजा
का ही स्वप्न है।
श्रीव नहीं है, मरत

या है, वह एक नए
हई थी, वह मूलतः
रे भौतिक जीवन को
। मुक्त हो जाओ।

के संघर्ष में वृक्ष को
की नृत्यों, जब वृक्ष
म तथा वृक्ष, दुमरा
थके हुए मन को वृक्ष
कुछ पककर, स्वभाव

। इसी चरमभाव की
आश्चर्यवस्था, चांसम
को, व्यवसाय, संघर्ष,
में शरीर की तुलना
प्रतिभा है, एक और

। मुझ एक संवर्धित
हृ संदिर का कलम है,

भोक्ष के लक्ष्य की प्रभावता देने के कारण भारतीय संस्कृति कर्म, भांग और
भंगनः त्याग को है। धीरे-धीरे तमारा को त्याग देगा, धीरे-धीरे स्वयं को, अन्न
को कम करते-करते सुख ही गमना, प्रकृतियों का, आवश्यकताओं को धीरे-धीरे
कम करने हुए आवश्यकता-रहित हो जाता, यह है भारतीय जोड़ने-बनानेवा
अर्थान् भारतीय कर्म का लक्ष्य। इसी का साक्ष्य अब तक मौजूद है—भारतीय
सामर्थ्य संगीत में, गाय में, नाच में, नृत्य में, कला में—बाद फिर प्रनाइड
नाद, पीटना फिर निमित्त कर शून्य में समा जाता, बाहर भागा, फिर लौटकर
प्रायागमन न भूक्त हो जाता—नाचना, गाना, खेलना, खीना और धीरे-धीरे
मौन हो जाता, केवल दर्शन रह जाता—एक के बाद दूसरे को दूसरे के बाद
तीसरे की नहीं, सबको एक साथ एक ही समय में देखता। यहां कथनः कुछ
नहीं है, सब एक साथ है, एक ही में सब है। सब में वही एक है। अर्थो-
व्यवस्था ने हमारी इसी व्यवस्था की समूल नाश देना चाहा।

गाव की पत्तों की घब तक सबकी थी, धरती भा थी, जैसे ही उसका
स्वामी एक दूसरे, स्वभावः दीप उसका मुँह देखने रह गए। जो कल एक गाव
का पुरोहित था, आज गाव के स्वयं का स्वामी होकर स्वभावः पुनर्हित
(पुनर्-हित) में केवल प्रादण हो गया। जो कल एक पुरका (गाव का प्रायः
सारे गांवों के नाम के पीछे पुर अब तक बना हुआ है—पुर माने, पत्थर)
आहुत (उपहार) था। आज केवल एक-दूसरे वतनर जगल का सर्वर सिद्ध हो
गया। जो मरत थे, विन्धी थे, गाव के अलाभन थे वे सब अनागत अन्न गृह
और खेतमिन, साधनाश्रीन हो गए। एक लीजा, एक ऊना। दोनों के बीच में जो
अच्छक था—वैश्य, वह नीच का लोचक और ऊपर का पापून हो गया। वह
मराजतः न हूरभोर हो गया, मनुष्य ने वह हूर भुवाडे, हर अ-पर्य और जीवन
का 'एनेट' हो गया।

उन सभी व्यवस्था का सबसे अन्तः अर्थात् पारम की 'पुर्गी' में एहन की
गिता, यैनी विरिच बात है :

“भारत की वे खोरी-खोरी और अत्यंत प्राचीन विधियां, जिनमें से कुछ
आज तक बली धानी है, जमीन के सामुद्रिक स्वामित्व, सेनी तथा दस्तकारी
की निजावर, और एक ऐसे अम-विभाजन पर आधारित हैं जो कभी नहीं
बदलना—एक धरती क्लृप्त नहीं हुई और अल्प-अल्प में हुए जोनी है तथा अपनी
जकमत भी नहीं खीने पेश कर लेती है। परिवार का मुख्य भाग तीधे शक्ती
के ही काम में जाता है और वह बाजार में बिकने वाले माल का रूप नहीं
धारण करता। इसलिए भारतीय समाज में कोई नीर पर, मालों के विनिमय
से जो अम विभाजन पैदा हुआ, अत्यंत महा उत्पादन स्वतंत्र है।” परिवार का
एक निश्चित भाग अगौर लगान के अनाज की अन्न में ही राज्य को दे दिया
जाता है।”

निर्मूलक वृक्ष का फल

जिसकी पहली बार
दूररे की ओर संकेत
में अपनी जड़ें जमाने

समझने को जूझी गह
र यह जैसे हुआ कि
मेरी समझ में इसका
ही खाम तरह की

त की शानती जीवन-
मक स्तर पर कुछ भी
भौतिक नियम या धि

धीर भावनीय ग्राम
है। भारतीय राजा
का ही स्वभाव है।
कोल नहीं है, यस्त

था है, वह एक संपूर्ण
हूँ थी, वह मूलतः
रे भौतिक जीवन की
मुक्त हो जाती।

के संघर्ष में वृक्ष को
की मूल्यों, जब वृक्ष
म तथा वृक्ष, दुपार
थके हुए फल का वृक्ष
कुछ पकता, तबमय
। इसी अरमभाव की
साज-सजवजा, साजसज
को, व्यवसाय, उद्योग
में शरीर की तुलना
वर्तिमान है। एक शरीर
। मुख उक्त वेवमंदिर
मंदिर का कलस है,

भीषण के मध्य की प्रधानता देने के कारण भारतीय संस्कृति कर्म, भांग और
भंगनः त्याग की है। धीरे-धीरे तैयार को त्याग देना, धीरे-धीरे स्वयं को, अहम्
को कम करने-रखने सुख हो जाना, अन्धकारों का, आवरणकलाओं का धीरे-धीरे
कम करने हुए आवरणकलाओं से हो जाता, यह है भारतीय जीवन-व्यवस्था
अर्थात् भारतीय धर्म का लक्ष्य। इसी का साक्ष्य अब तक मौजूद है—भारतीय
शास्त्रीय संगीत में, गाय में, नृत्य में, कला में—बाद फिर अनाइत
नाद, धीरे-धीरे निमग्न होकर शून्य में समा जाता, वादर आता, फिर लौटकर
प्रायागमन में मुक्त हो जाता। नाचना, गाना, खेलना, होना और धीरे-धीरे
मौन हो जाना, कबल रहने रह जाता—एक के बाद दूसरे को दूसरे के बाद
तोड़ने की नहीं, सबको एक साथ एक ही समय में देखना। यहाँ कथनाः कुछ
नहीं है, सब एक साथ है, एक ही में सब है। भय में नहीं एक है। यंत्रों
व्यवस्था में हमारी इसी व्यवस्था को समूल तोड़ देना चाहता।

गाय की धरती की घब-रक सबकी थी, धरती मा थी, जैसे ही उभवा
स्वामी एक दुपार, स्वभावः सदैव उभवा मुँह देखते रह गए। जा कल तक गाव
का पुरोहित था, गाव गाव के खेन का स्वामी होकर स्वभावतः पुरोहित
(पुरोहित) में केवल आस्था हो गया। जो कम एक पुरका (गाँव का प्रायः
सारे गाँवों के नाम के पुरोहित पुर अब तक लता रहा है—एक माने, परिचार)
डाकुर (रक्षण) था। गाव गाव का अमीदार वतनर जंगल का अर्द्ध विह हो
गया। जो गवत थे, जिन्हीं थे, गाव के अलाकार थे वे सब अनागत प्रष्टा गृह
धीरे धीरे, आधुनिकीय हो गए। एक लीचा, एक ऊना। दोनों के बीच में जो
प्रबंधक था—बैश्य, वह नीचे का शीशक और ऊपर का चाण्डाल हो गया। वह
महाजन में हूँदशोर हो गया, मनुष्य ने वह हूँद भुनाई, हूँद स-पाण और जोष्य
का 'पुत्रो' हो गया।

एक प्रथम व्यवस्था का सबसे अन्तः वर्तन धर्म की 'धृती' में पकन की
गिना, कीनी विधि का है :

“भारत की ये छोटी-छोटी और अत्यंत प्राचीन वास्तवों, विनम में कुछ
प्रायः एक नहीं आती है, जमीन के सामुहिक स्वामित्व, कभी तथा दरतकारों
की निजावर, और एक देगे अथ विभाजन पर पारंपारिक हैं जो कभी नहीं
बदलना—तब बसनी सब गरी हुई और अपने-आप में पूजे जाती है तथा अपनी
जगत्त की गभी नीचे पंदा कर लेती है। परिवार का मुख्य भाग नीचे बसनी
के ही काम में आता है और वह बाजार में विकन जाके मास का रूप नहीं
धारण करता। इसलिए भारतीय समाज में गोट और घर, मानों के विनमय
से जो अथम विभाजन पैदा हुआ, उसने जहा अनादन स्वतंत्र है। परिवार का
एक निर्दिष्ट भाग प्रयोग लगान के अनाज की शकल में ही राज्य को दे दिया
जाता है।”

ऐसी थी वह भारतीय श्रम, समाज व्यवस्था जिसे ब्रिटिश शासन के रूप में विदेशी पूंजीवाज ने जड़ से ही उखाड़ फेंक देना चाहा। अंग्रेजों ने पहले के तमाम विदेशी विदेशियों ने वहाँ की सामाजिक, सामाजिक सुविधाओं को कभी हाथ नहीं लगाया, तभी वे मात्र श्रम में विदेशी से भारतीय हो गए, परंतु अंग्रेज अपनी पूंजीवादी श्रम व्यवस्था और औद्योगिक राजनीति के फलस्वरूप सर्वत्र विदेशी बने रहे और उनकी राजनीति का कारण लक्ष्य रहा। अतः कि भारतीय भी अपने देश में विदेशी बन जाए। कम से कम भारतीय से 'इंडियन' भी हो जाए।

दूसरी ओर ब्रिटिश शासन के नीचे भारतीय जनता के दुःखों के साथ एक अंधापन प्रकार की उदारी भी मिली, क्योंकि उनकी पुरानी दुनिया तो विच्छिन्न रहने, मरने नहीं का नहीं पता न था। इससे पूर्व भारतवर्ष में पतनक गृह-युद्ध छिड़े हैं, विदेशी पतनक हुए हैं, पराजित हुआ है यह देश, अधनों से ही लूटा-कंका गया है, अक्षय पड़े हैं, जूझ रहे हैं, पर इनका प्रभाव कभी भी भारतवर्ष की राजनीति की मत्त में नहीं पड़ा। किंतु अंग्रेजों की राजनीति का जा प्रभाव इतनी की मत्त में नीचे पड़ा वह भयंकर था। पुरानी दुनिया का इन तरह विच्छिन्न जाना और नहीं का नहीं पता न जानना दुःखी भारत को पहली बार उदाम बना देता है। अब तक केवल दुःखी या भारत, अब अपने दुःखों के प्रति उदाम भी हो गया। और इसी भारतीय दुःख को पहली बार देखा गोपालकृष्ण गोखले ने, फिर गांधी जी ने। तभी तो गांधी ने गोखले को अपना 'गुरु' माना।

अपनी पुरानी दुनिया में विच्छिन्न जाने के मतलब हैं अपनी परिवाराओं और अपने संपूर्ण इतिहास में कट जाना। पुरानी की शक्तों की राजनीति विनाशकारी दुःखी शक्तिनी हो शूल बन गई थी, उतनी ही दुःखी रतार की भी थी।

१८६३ के पहले भारत पर ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार मिला हुआ था। १८६३ के बाद यह एकाधिकार तोड़ दिया गया और अब इंग्लैंड के पूंजीवादी उद्योग-धंधों के मान ने भारत पर लड़ाई बोलकर शोषण का एक नया प्रयास खोल दिया। फिर कंपनी ने जमींदारी की धंधे की प्रथा (जमीन पर व्यक्तिगत अधिकार, तथा जमीन के बेचने और खरीदने की आजादी) और इंग्लैंड का पूरा फौजदारी कानून (विनेय कोड) यहाँ लागू कर दिया। और हमारे भी एक कदम आगे भारत में बने हुए मालों पर सीधे-सीधे प्रतिबंध लगाकर भारी चुंगी लगाकर पहले इंग्लैंड में फिर यूरोप में आने से उन्हें रोक दिया गया। इसका फल यह हुआ कि भारतवर्ष की, जो पिछली कई सताव्दियों में अपना कपड़ा बाहर भेजता था, १८२० तक यह जालक हो गई कि वह उन्हे विदेशी कपड़ा मंगाने लगा।

इस युद्ध के दो तरीके हुए, पहला भारत की लूट की मदद से इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति हो गई। दूसरा भारत के अपने उद्योग धंधों के पुराने नगर

नष्ट हो गए और इन हमले गांधी के जीवन का दारो, दिना, देश के राष्ट्र

इंग्लैंड में शीले पानी की नई समस्या के बीच गंभीर इतिहास का संघर्ष हुआ कि ईस्ट इंडिया के, यों ही की भी (करी शोधकर्ता १७७६ में देश प्रवेश) के पिता जो

१८६३ में इंग्लैंड में भारत के व्यापार पर इंग्लैंड के औद्योगिक शक्ति हुआ। अब पूरे देश अधिकार मिल गया। भारत में जमीन खरीदने वहाँ बस जान का पूरा को पुरी तरह से लूटने

स्वभावतः इन युद्धों में हम बहुत व्यवस्था में अंग्रेजों के द्वारा यहाँ की सु-ने लूट हो गये। इनके वि-यहाँ के राजा थे, उनके औद्योगिक भाषा में 'राज' व्यापक व्यवस्था की घना के अनुसार गांधी, जिनके (लाय) पैदा करने ने व-काय और सफल कार्य ने संभाले ने।

दूसरी पाम इन के पद्धति के समर्थकों को शिक्षा जारी की थी, तो करना नहीं, बल्कि इनकी

ब्रिटिश शासन के रूप में
 संघर्षों में पहले से तमाम
 न्याय की कमी होव नहीं
 गण, परन्तु अंग्रेज सपनी
 के कमस्वरूप सर्वे विदेशी
 है कि भारतीय भी अपने
 'द्विपन' तो ही जाए ।
 दुःखों के साथ एक विशेष
 दुनिया ही मिश्रित गई,
 में अनेक गृह-युद्ध छिड़े है,
 मनो में ही पुटा-सूँका गया
 कभी भी आशात्म की
 की राजनीति का जा
 र था : पुनाही दुनिया का
 दुःखी भारत को पहली
 भारत, अब अपने दुःखों के
 दुःख की पहली बार देश
 की ने भोखने को अपना

की अपनी परंपराओं और
 की राजनीति, विनाश-
 के सुधम स्तर की भी थी ।
 ने एकाधिकार मिला हुआ
 गया और अब इंग्लैंड के
 शोषण शोषण का एक
 की अंग्रेजों प्रथा (जमीन
 शरीरों की पालादी) और
 में लागू कर दिया । और
 पर शीघ्र-शीघ्र प्रतिबंध
 रोप में जाने में उन्हें रोष
 की पिछली कई जनान्दियों
 बनत हो गई कि वह उन्हें

ट की मदद ने इंग्लैंड में
 शोषण संघों के पुराने तगर

नष्ट हो गए और इन नगरवासियों की भागकर गावों में शरण लेनी पड़ी,
 हमारे गावों के जीवत का भंगुलन विगट गया और शीघ्र आपसी भ्रष्ट, कोज-
 दारी, रिग, देव के सपुत्रे बनने लगे ।

इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति हो जाने से अब एक स्वतंत्र, खुला बाजार
 पानी की नदी सपरवा पैदा हुई जहां इंग्लैंड के सभी औद्योगिक अपना माल
 बेच सके । इसलिए यान्त्रिकी शरी के आखिरी पन्धस वर्गों में बड़ा उम्के लिए
 संघर्ष हुआ कि ईस्ट इंडिया कंपनी एकलौती ही क्यों भारतवर्ष में अपना माल
 बेचे, औरों को भी (यही शोषण का) अधिकार मिलना चाहिए । इस संघर्ष का
 शीघ्रणय १८७६ में ऐक्ट विधय ने किया था तो स्वतंत्र व्यापार के मन्तविसी
 अर्थशास्त्र के पिता और संघ युग (स्वतंत्र शोषण) के प्रवृत्त भावी जाते हैं ।

१८१३ में इंग्लैंड के अन्य कारमानेदारों और व्यापारियों की भीम हुई ।
 भारत के व्यापार पर ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार स्वतः हुआ और
 इंग्लैंड के औद्योगिक वृत्तोंवादी द्वारा भारत के शोषण का एक नया मन्दाय
 शुरू हुआ । अब पूरे इंग्लैंड के वृत्तानियों की मदद में अपना माल बेचने का
 अधिकार मिल गया । फलतः भीम तर्कों के बाद ही (१८३३ में) अंग्रेजों को
 भारत में जमीन स्वतंत्रकर बाय बाजारों और जमींदारों के मालिकों के रूप में
 गहां बग जाने का पूरा अधिकार मिल गया : फिर तो पूरा इंग्लैंड भारतवर्ष
 को पूरी तरह से लूट सके इसकी एकही तैयारी हो गई ।

सबभावा, इन बृहत् कार्य के लिए एक बृहत् व्यवस्था की जरूरत पड़ी ।
 इस बृहत् व्यवस्था में दो नीजों की जरूरत थी । पहला एक ऐसा मध्यस्थ
 त्रिकें द्वारा यहां की भू-संपत्ति, जन-संपत्ति की बड़े सभ्य और आधुनिक ढंग
 में लूट हो सके । इसके लिए अंग्रेजों ने यहां जमींदारी व्यवस्था तैयार की । जो
 यहां के राजा थे, उनके माध्यम से भी अंग्रेज यहां के मालिक हुए । वृत्तोंवादी
 औद्योगिक भाषा में 'राजा' और 'जमींदार' अंग्रेजों के एजेंट हुए । पर इतनी
 व्यापक व्यवस्था की चलाने, भारतीय संस्कृति की जगह एक अंग्रेजी संस्कृति
 के अनुसार मोचने, जीने के नए ढंग के लिए एक नया 'मध्यम' (एलिट
 क्लास) पैदा करने की योजना बनाई अंग्रेजों ने । इस योजना को एक सफल
 कार्य और सफल कार्य को एक पुरी व्यवस्था में बदल देने का काम किया जाई
 दिखाते ने ।

रजनी पाव दल के सद्यों में "जब संकाल ने भारत की प्राचीन शिक्षा
 पद्धति के समर्थकों को हराकर साम्राज्यवाद की तरफ से यहां अंग्रेजों दंग की
 शिक्षा जारी की थी, तो उसका उद्देश्य भारत के लोगों में राष्ट्रीय चेतना पैदा
 करना नहीं, बल्कि उसरी जड़ तक उसे और डालना था ।"^१

१. 'भारत—कॉमन और बाकी' पृष्ठ ५१७, पहला हिस्सा संस्करण ।

जमींदारी व्यवस्था के कारण अथवा एक राष्ट्रीय पर तीन शोषक शक्तियों का भार पड़ा-

- (१) जनकार (चंगेज) जी पालगुजारी,
- (२) जमींदार का नयात, और
- (३) साहूकार का मुद्रा।

मनजब यह जो कुछ भी पैदा करता था उसका केवल एक-तै-हार्ड इनके पास अचल था और बाकि हिस्से इसके हाथ में निकल जाता। लोग एक-दुसरे पर उग चुकनी दूरी हुई, ग्राम व्यवस्था (परिवार) का भी भार था जो सब परमात्मा से अमान्यताम होकर उभर उभर भवभीत कर रहा था। इस तरह भारत ने जमींदारी तथा कृषक का साथ (१) जमींदार और (२) साहूकार से दो ऐसे बर्त पैदा किये जिनसे भारत को तीन दिशाएँ देश को अपनी शक्ति के नीचे दबाकर हमारे शोषण के निमित्त एक ही सामाजिक आधार तैयार कर दके। वे हमें ऐसे हीते काहित किन्तु भारत की लूट में वे बंद टुकड़े मिलते रहें और अंततःगत्वा इन बर्तों का स्थान भारत में सर्वेजी राज का कायम रहने से हो। पर सभी सर्वथा व्यवस्था का एक बौद्धिक आधार 'नीकरशाही वर्ग' और तैकार हीना था—और यह कार्य पूरा किया केकाले से।

अंग्रेजी भाषा को मूल से रखकर हमने सर्वेजी वृद्धि (कालज, युनिवर्सिटी) सर्वेजी न्याय व्यवस्था (कचहरी, कोर्ट) सर्वेजी ज्ञान व्यवस्था (नीकरशाही, खासकरशाही) और सर्वेजी जीवन व्यवस्था (उपभोक्ता, मध्यवर्ग) का जो व्यापक और गहन जाल नीचे से ऊपर तक फैलाया और हमें जो नया सामाजिक वर्ग (मध्यवर्ग) पैदा हुआ उनके द्वारा हमारे देश के शोषितशोषित राज्य और ज्ञानन का स्थापन रहा पूरा हो गया।

गुलामों पर हमें गुलामों से आसन कराया, गुलामों को गुलामों से ही लड़ाओ और नीचे से ऊपर तक उड़-विधियों की एक लंबी सेना (नीकरशाही) फैलाओ कि वे नम, मन, मन (धर्म, धर्म, काम) हीनों दायों से बड़ी बोंचें कि अंग्रेजों के दिन में ही श्वाण ही है और उनके अहित में श्वाण अहित है।

कार्ड मेरकाफ ने कहा है, 'सर्वेजी शिक्षा को एक देश में मैं इसी पाठ्य से देखना हूँ कि हमने हमारे राज्याय का विस्तार ही।'^१

सर्वेजी शिक्षा के कारण, सर्वेजी अकनशाही और नीकरशाही के कारण, हम मध्यवर्ग द्वारा अंग्रेजों का शासन नष्ट भारत में, अंग्रेजों के यहाँ से चले जाने के बाद भी चलना रहेगा। सर्वेजी की यह मुख्य राजनीति काण मनमुल सती निकली। सर्वेजी राजनीति ने यह तथा साध्यात्म या विपका एक ही लक्ष्य या भारत के 'राजि' को 'इंडिविदुअल' में बदल दो। व्यक्ति विपकी

१. कार्ड मेरकाफ, लाहल थाक कार्ड मेरकाफ काग की, पृष्ठ २१२-२१४

निर्मूल वृद्ध : भारत की राज

मूल परलान है कि वह 'रघु' रघुत बनाकर 'इंडिविदुअल' बन 'अकन' और 'अधायन' (१) जमें मशीन का एक गुंजा के 'सर्वेजी राजनीति' के

हम राजा राममोहन राय तिलक, अरविंद को पहलक पीठी जब फिलवो पीछी की, नम पैदा के तब एक शोषण व्यक्ति और समाज केकाले को धराते में, उन्हें कुर्क्षित वर्षों तक पीक यही दल में भारतवर्ष में अपनी बुद्धि स्वार्थे करने में ही निग। ही सृष्टि का ज्ञान होना है। के समय हमारे आरिषियों श्री

हम संघ प्रापण्य तुम के राममोहन राय को है। उभर बनने का प्रयत्न किया। उत्रोकात्मक उन-उन अंगरेजों का अस्मिल विश्वकरण समष्टि हमें 'मध्य वर्ग' की हम आःगयन गम्य के लोको से छोड़ दिया ने सम्मन है। हम सब प्रका प्रार्थना का हमारा एक ही परम्परा व्यवहार सुनना।

एकपक्षीय (एक-धारा) राज्य का एक मध्य को राममोहन मानन पाठ्य का वा आनरि होकर दशा था। भारत ने क वृलाथा, 'विम मायं पर' इत्या विविरोध विगत सम्मन है। न नहीं, तो हमारे ऐतिहासिक म हीक हम व्यवस्था के वि सागकर हम पर राज करत व

क शारीर पर तीन द्वापक सन्तानों

री,

दा। उसका केवल एक निहाई उसके
मे निकल जाता। इस एक-निहाई
परिवार) का भी भार था जो अब
क भवनीय बन रहा था। उस तरह
(१) नवीकरण और (२) माहूकार
इस विद्यालय द्वा की अगली दशक
क होय सामाजिक आधार तैयार कर
की अन्त में ये नए दुबले पिजले चहरे
मे अंधों राज की कथम रखने में
द्विक सामान्य 'नीकरशाही वध' और
संस्थापने में।

अश्वेजी शक्ति (नानेज, पुनिर्वागटो)
श्री जी सामान्य व्यवस्था (नीकरशाही,
या (नानेजका, मन्वत्तर्ज) का जो
संस्थापना और इनके जो नया सामा-
संस्थाओं क शौराधिकार राज्य और
संस्थाओं, गुलाबी की गुलाबी में ही
की एक-एक की सेवा (नीकरशाही;
काम) दोनों में ही शक्ति कि
नके शक्ति न हमारा अहित है।
का जो इस देश में मैं अभी प्रकाश के
कार शोभा ।

रक्षाही और नीकरशाही के कारण,
भारत में, अंधों की यहाँ न चले
यह मूल्य राजनीतिक चाल गन्धर्व
नया सावधान्य था: जिन्हा एक ही
मूल्य के बदल को। व्यक्ति निम्नकी

की, पृष्ठ १६२-२६४

मूल्य पहचान है कि वह 'रचना' करता है। उस रचनाकार को केवल उपाधीकृत
वनाकर 'हार्डिबिद्वान' बन दे। जो सामाजिक है, पारिवारिक है उसे निवासी
'पत्थर' और 'स्वान्त' (गुटानमन) बना दे। उसके 'एक' 'देवता' को जीतकर
उसे नजीक का एक पुरजा और प्रकृति भी जीतकर बना दो

अश्वेजी राजनीति के इस भयंकर कात्यायन के खिलाफ, अन्त में लड़े लड़े
हए रक्षा रामगोहन राय, निर घान विद्यालय, २२ गी उत्तम, गोपले,
निलक, अनांत और अनांत भाभी किमी भी पारिवारिक के साथ अगली
पीठी जब पिछली पीढ़ी की एक दुग जब अन्ति पितृव गुण की सामान्य स्वीकार
कर देना है तब एक और ताप जान का जन्म हो जाता है और इसी और
अन्ति और समाज केवल अन्तिस्था में उठकर अगली बीजे और परंपराओं
को बचाते हैं। उन्हें सुरक्षित रखने में लग जाता है — वन पक्ष या हेड हवार
बयो तक कीक यही दसा भारतवर्ष के समाज और व्यक्ति भी थी। ऐसे समय
में भारतवर्ष के अगली बुद्धि का जातीय सिर्फ पुरानी चीजों की अन्ति और
अन्ति में ही निभा। इन गहर भूत ही था कि अन्ति और निर्विक से
ही मूल्य का जान होता है। अन्ति के पारिवारिक और अन्ति राज्य की स्थापना
के समय हमारे शक्ति और अन्ति की यही अन्ति हो गई थी।

इस एक सामाज्य युग के विद्यालय का अन्ति सजा करने का अन्ति राजा
रामगोहन राय की है। उन्होंने निर्विकारक भारतीय समाज की कर्म प्रवण
बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा, "निर्दिष्ट नरक अन्ति-भित्त अन्ति-भित्त
जीवात्मा अन्ति-भित्त अन्ति-भित्त को अन्ति देकर उभरकर निवृत्त करने हैं। उभो तरह
अन्ति निवृत्त समाज अन्ति अन्ति अन्ति देकर उभरकर निवृत्त करने वाले
अन्ति नया की इस अन्ति करने है। हमारी इस अन्ति को अन्ति अन्ति
अन्ति के अन्ति ने छोड़ दिया है फिर भी यह अन्ति पवित्र और अन्ति अन्ति
के अन्ति है। इस सब प्रकार की अन्ति के विद्या है। अन्ति अन्ति की पुजा-
अन्ति का अन्ति एक ही अन्ति है — अन्ति दसा और अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति
परन्तु अन्ति अन्ति ।

अन्ति (अन्ति अन्ति) ही अन्ति है अन्ति अन्ति अन्ति (अन्ति)
का एक अन्ति की अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति
अन्ति अन्ति अन्ति का जो अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति
ही अन्ति देना था। भारत के अन्ति, अन्ति, अन्ति अन्ति पर अन्ति अन्ति
अन्ति अन्ति अन्ति पर अन्ति अन्ति अन्ति, अन्ति, अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति
अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति
अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति
अन्ति, ही हमारी अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति
अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति

अन्ति एक अन्ति अन्ति के अन्ति अन्ति अन्ति और अन्ति अन्ति अन्ति के अन्ति अन्ति और
अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति

ये कि क्या भारत के लोगों की कोई एक कौम है ? लड़-लड़की की नस्लों, धर्मों के लोगों की जो जान-पात भाषा-बोली के तमाम वर्गों, भेदों में बंटे हैं, क्या हम भिन्न-भिन्न की एक 'राष्ट्र', एक कौम, एक जाति कर सकते हैं ?

१८५८ में सर जान स्ट्रैची ने घोषणा की कि "भारत नाम की कोई चीज वस्तुतः ही प्रयोग नहीं होगी।"

पर उत्तमोत्तम तरीके से 'अभिव्यक्ति' में जो नवजागरण हुआ और भारतवासियों को एक जाति, एक देश के रूप में जो आग उठे तो यह शक्ति ही जन्म लगी कि यह 'एकता', 'संघर्ष' अंग्रेजी राज की देन है। जबकि ध्यान देने की बात है कि सन् १८५७ के बाद जब से अंग्रेजों की पन्थ व्यावहारिक राजनीति शुरू हुई तब से उन्होंने हर तरह से यही साबित किया कि हिन्दू भूमिस्वामी दो अलग जातियाँ हैं। धर्म भाषा, जान-पात के आधार पर भारत पूर्णतः अलग-अलग क्षेत्र है। भारत की संस्कृति, विविधता की अत्यन्त 'राजनीति' का आधार बनाकर बाँटी और राज करी। नौरो-फोडो और इन्हें धमना धमना बनाए रखे। इसका ज्वलंत उदाहरण 'मोहम्मद कमील' से लेकर लार्ड माउंटबेटन तक की कितनी ही घटनाएँ हैं।

भारत में अंग्रेजी राज के शुरू होने के परिणामस्वरूप लोगों की जातबन्दी, भारतीय उद्योग बंधे का जो नाश तथा अंग्रेजों के कारण जो भारतीय जीवन-आत्मिकता में जो गहरा नैसर्गिक आघात, तथा इसके खिलाफ राजा राममोहन राय, धिरेन्द्रचन्द्र, दादाभाई नौरोजी, स्वामी दयानन्द, रामानन्द, गोक्षले, गिजक आदि ने जो सदियों में आत्मशिक्षा में रुके, अंग्रेजों और अंग्रेज देश के जवाबदा जो अंग्रेज राजनीतिज्ञों का यह हर होने लगा कि भारतवर्ष में यदि समय पर ऐसी लोक न लगाई तो कोई राज्य कानि हो जायेगी। उन्होंने सीधा कि बेहतर होना कि इस आंदोलन की जागहोर अपने हाथ में ही ले ली।

उसके उत्ती उद्देश्य से १८८५ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। जिसके संस्थापक थे ८० प्रमुख लोग, जो १८८२ तक सरकारी नौकरों में, फिर पेंशन लेकर कांग्रेस की स्थापना के काम (जाति की रोकने) में जुट गए। एक और लड़ और अपने एक युवकी और गुरु-निष्ठा नेताओं से सम्भोजता करने का यह आंदोलन नैसर्गिक अंग्रेज राजनीति की बुनियादी जान थी। इसी दमन में तो निकल: 'गर्मदल' और बकादारी की पुनर्कारणों में ने लिखना 'नरमदल'।

उस समय के आन्दोलन लार्ड डफरिन का उद्देश्य था कि कांग्रेस के जरिए 'बकादार' लोगों को 'बागियों' से अलग करके सरकार की मदद करने के लिए एक आधार तैयार कर दिया जाए। उन्होंने अपने इस उद्देश्य को कांग्रेस की स्थापना के एक वर्ष बाद, शिक्षित वर्गों की भाषाओं के विषय में अंग्रेजों के बहुत स्पष्ट सवरों में इस तरह बना दिया था:

"जिन काले आदमियों से मैं शिक्षा हूँ, उनमें काफ़ी लोग योग्य भी हैं और

बुद्धिमान भी। इन लोगों को प्रयोग कर सकता है। जब तक कि वे बहुत से ऐसे कामों का उद्योग में धारा सभाओं में अंग्रेजों के लोगों के पीछे काले आन्दोलन भारत सरकार मात्र की नस्ल है कि अंग्रेजों सरकार एक भाषा नहीं है और चारों दिशाओं रही है।"

अंग्रेजों और नरमदलियों के जन्म के साथ ही उद्योग प्रवृत्ति भारत के उद्योगिकों के लिए ब्रिटिश राजनीति का हर भी बना रहना था कि कानि हो जाए कि अंग्रेजों का सफलता ही जाए।

इस अंग्रेजों का अंग्रेजों की स्वतंत्रता-प्राप्ति के अर्थ में अंग्रेजों और भारत तथा ब्रिटिश राष्ट्र समूह में रहने।

अंग्रेजों को नक कांग्रेस के लोगों ने उनके लिए तैयार करने में कभी किसी रूप में भी नहीं कोई कल्पना नहीं की थी। अंग्रेजों उनके प्रतिनिधि पड़े रहने थे, वे डाक्टर, अधीन, अंग्रेजी अंग्रेजों पासक इससे मतभेदों की हैमियत में भी आ

पर अंग्रेजों ने नरमदलों को निरस्त कर दिया, अंग्रेजों लगी। इस नई धारा (गर्मदल) उनके अंग्रेजों नए नेताओं में अंग्रेजों के लाना लाजानराय के रूप में अंग्रेजों हुए। वे रक्षण करना चाहते थे कि प्रत्येक

हैं ? तरह-तरह की तन्त्रों, धर्मों, धर्म बगों, धर्मों में बंटें हैं, क्या तन्त्र कल सन्ने हैं ?

कि "भारत नाम की कोई भी न

व्याकरण हुआ और भारतवर्षों को वह धर्मों की जल जगों कि । जबकि क्या देते की बात है । अन्तर्गत व्यावहारिक राजनीति शुरू या कि हिंदू मुसलमान को अलग पर भारत पूर्णतः अलग-अलग की अपनी राजनीति का आधार हन्ने अपना गुनाह बनाए रखी । नेकर नाई माउन्टेन्ट तक की

सापेक्ष रूप से तो भी आ नवाजी, न के कारण जो भारतीय जीवन र क्षिणाक राश गाममोहन राय, रानाडे, मोलने, निजक आदि ने सन्ने हुए देश की अज्ञानता को अन्तर्वर्ष में यदि समय पर ऐसी थी । उन्होंने सोचा कि बेहतर में ही ले ले ।

राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई । १९ तक सरकारों नौकर थे, फिर न को रोकने में जुट गए । एक ही नेतृत्वों में सम्मिलित करने का नदी बात थी । इसी दमन में से में से निकला 'तरमदम' ।

उद्देश्य था कि कांग्रेस के अगिर् सरकार भी मद्ध करने के लिए अपने इन उद्देश्य का कांग्रेस की धर्मों के विषय में भाषण करते हुए

में काफी लोभ शेष भी हैं और

बुद्धिमान भी । इन लोगों की बफावारी और सहयोग पर कोई भी खिला तक आरोप कर सकता है । जब ये लोग सरकार का सम्बंध करने लगे तो सरकार के बहून से ऐसे कामों का जनता में प्रचार हो जाया जो आज उपकी विवाह में धारा सभाओं में अवरदनी कानून बनवाकर किए जाते हैं । और अगर इन लोगों के पीछे कानून आदिमियों की एक पार्टी की ताकत हो जाती है तो फिर भारत सरकार आज की तरह अकेली न रह जाएगी । मान लो मालूम होता है कि अंग्रेजी सरकार एक अकेली बहून की तरह तुषानी समुद्र में सीधे-सीधे सन्ने है और चारों दिशाओं से भयानक लहरें आकर उस पर एक साथ टूट रही हैं ।"

संघर्ष और सम्मिलित, 'तरम' और 'तरम' सहयोग और असहयोग, कांग्रेस के जन्म के साथ ही उसका यह दोरका रूप प्रकट हुआ । दरअसल यह दोरकी प्रवृत्ति भारत के पूनीवति वर्ग की प्रकृति से निकली जो एक और अपने स्वार्थ के लिए ब्रिटिश पूनीवति वर्ग से संघर्ष करनी थी, पर साथ ही उन यह सदा उर भी बना रहना था कि कहीं यह उन आंदोलन उठना तेज और तंभीर भी न हो जाए कि अंग्रेज साम्राज्यवादियों के साथ इसके भविष्य के हितों का भी सफाया हो जाए ।

इस संघर्ष का चरम फल १९४२ की जाति के बाद १९४७ में भारत की स्वतंत्रता-आदि के क्षणों में प्रकट हुआ जब कांग्रेसी नेताओं ने भारत के बंदवारे और भारत तथा पाकिस्तान के डोमीनियनों की स्थापना करने और ब्रिटिश राष्ट्र राष्ट्र में रहने की माउन्टेन्ट योजना को इशोकार कर लिया ।

श्रीम मान तक कांग्रेस उसी रास्ते पर चलती रही जो रास्ता उसके संस्थापकों ने उसके लिए तैयार कर दिया था । हर बात वहीं में उसके प्रस्तावों में कभी कभी रूप से भी स्वराज्य भी मांग नहीं की गई । यानी उसने राष्ट्र की कोई कल्पना नहीं की और उसकी कोई मुनिवादी मांग नहीं उठाई । क्योंकि अब तक उसके प्रतिनिधि वड़े-लिखे पण्य वर्ग के लोग थे । वे जनता के प्रतिनिधि नहीं थे, वे डाक्टर, वकील, इंजीनियर और व्यापारी वर्ग के प्रतिनिधि थे । फिर भी अंग्रेज वास्तव में सत्तक रहते थे । कांग्रेस अधिवेशनो में सरकारी मुन्नाजिम दर्शकों की हस्तियत से भी भाग नहीं ले सकते थे । ऐसा कहा हुआ था ।

पर जैन-धर्म तरमवली नेताओं से यह बात साफ हो गई कि उनकी वह नीति सफल नहीं, बने-बड़े अंग्रेजी वास्तव के विनाक संघर्ष की नीति उभरने लगी । इस नई धारा (गर्म दल) के नेता थे लोकपाल आलगांधर निजक । इनके अलावा नए नेताओं में बंगाल के विगिनचंद्रपाल, अरविंद घोष और पंजाब के लाला लाजपतराय थे । ये नए नेता, 'राष्ट्रवादी', 'कट्टर राष्ट्रवादी' के रूप में प्रसिद्ध हुए । ये राष्ट्रिय आंदोलन को हिंदूत्व और इस भावना पर सजा करना चाहते थे कि प्राचीन हिंदू अर्थात् आर्य सम्प्रदाय धार्मिक दृष्टि

ने पश्चिम की आधुनिक सभ्यता से श्रेष्ठतर है। यह भी कहा जाना था कि प्राचीन हिंदू धर्म ही राष्ट्रीय आंदोलन की जात है। तभी उस समय के आंदोलन के गणेश पूजा, दुर्गापूजा, राधापूजा, रामलीला, कृष्ण लीला को जोड़ा गया। उनमात्रम तक राष्ट्रीय चेतना और संघर्ष की राजनीति में जाने में हम प्रवृत्ति ने अर्धवै गणेश दिना पर एक बड़ी हासि यह हुई कि मुस्लिम शक्त का एक बहान बड़ा भाग राष्ट्रीय आंदोलन से कट गया और हमका साथे चलकर लाभ उठाया अपेक्षा में।

फिर भी राष्ट्रवाद की चेतना से इसका क्रांतिकारी स्वरूप प्रकट हो गया। लार्ड रॉलेट की बंग भां योजना से बंगाल ने जिन निःशस्त्र शीन सशस्त्र क्रांति-उद का जन्म हुआ उसकी एक राष्ट्रीय शक्ति को नष्टों की राजनीति के पक्ष में सही करने के लिए लोकमान्य तिलक का नाम गढ़ा गया किता जायगा।

इस प्रेरणा से एक 'क्रांतिकारी साध्यात्मिक राष्ट्रवाद' का चरण शुरू हुआ। और स्वभावतः इसके 'खिलाफ' हमन शुरू हुए। पर हमन में राष्ट्रवाद का यह विचार नहीं हुआ : भारतीय स्वीयता में ऐसा कभी नहीं हुआ। कंस ने दारुको पर जो हमने मर्यादाएं मर्यादा किता हमसे कृष्ण का अन्न नहीं हुआ पर जब यक्षुर्वी ने हेरा जन्म की कामता थी, अनन्त जब एक हुआ कि जेमें ही ऐसी शक्ति उसके शीघ्र पैदा हो तो उनकी मत्ता को वे स्वीकार ने। जोक हमी तरह भारतीय चिन के अनुसार राष्ट्रवाद भी एक अनुकरण है जो विश्वास और स्वोकार के भीतर ने होता है : यह एक महाशक्ति है।

ऐसा ही हुआ श्री: १९०४ में १९०५ तक काठिन के आंध्रदेश में आरम्भ होने लगे : एक नयेन ग्यामिनीना राष्ट्रीय आर संकठिन होने लगा। पर शीघ्र ही तिलक और गोखले से मन्भव हा गया। तिलक दादाभाई के संदेश— 'सांदोलन करो, अविभाजित सांदोलन करो, स दुःख निश्चय में एकता के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करो'—का अनुसरण कर रहे थे। विविनचंद्र पास तिलक के साथ थे। उन्होंने कहा—'इसकी राजनीति का सच्चा आधार तो राष्ट्रभक्ति ही हा सकती है और उनी पर राष्ट्रीय राजनीति की दोवार खड़ी ही सकती है।'

बंग संग योजना, भेदनीति अपेक्षा की राजनीति का उन्मूल उदाहरण थी थीक इसी त तिलक का राष्ट्रवाद, 'क्रांतिकारी साध्यात्मिक राष्ट्रवाद' वन। हमें जाना लात्रपत्रात और विविनचंद्र पास का योग महत्वपूर्ण है। विशेषकर राष्ट्रवाद की क्रांतिकारी साध्यात्मिकता में जोड़ने में सर्वविध की देन कति महत्वपूर्ण है कि 'साकलवाद में शीमिस, ऐंडीधीनिस, गिगामिस का दसंग वस्तुतः एक धारणा है— जहा विम स्तर पर शीमिस है, गिगामिस भी वनतः वही पहुंचता है—पर चेतन ग अतिचतन की साथ। जसरांतर गहर और गहरे नतीजा जती है।'

इसी दर्शन से निकल का 'राष्ट्रीय बहिष्कार' के चिकि विचारणी मान का हम क्रांतिकारी सफल के दो पक्षों की एक क कहने पक्षों में सदे एक तीये। दूसरा जब ऊपर के था मानद लेने वाले पक्षों में प्रवेश हो जाना है। उन पक्षों को छोड़ नहीं गि। फल माने रचना है तब य कुछ ही समय बाद जब हमें अपने फल माने गते है।

परविंद ने कहा : 'राष्ट्रीय मोक्ष पर भी उनी माया के भीर में पर गत था। यह माया थी हम विदेशियों की दक्षिण शीर सदा करने में उनी ने हमें वन गए।' उम माया जो कष्ट का फल जांच करे हम ऊपर निगाह उठाकर पक्षी हुएगा नहीं, हमारे हमारा स्वराज्य हमारे ही सांकेतिक भी हमारे सदन है।

हम तबोना राष्ट्रवाद (१) स्वदेशी, (२) राष्ट्रवाद, इस तरह एक शीन सशस्त्र क्रांति क्रांति की एक स्वरूप था है। दादाभाई इसके उदाहरण परविंद ने कहा है। हमारे ही न श्रेष्ठों क हम की तरह वंदीपुत्र से हमारे

जनता के अज्ञान घर में हुआ है उसी तरह यह राष्ट्रवाद संघासिधियों की गुफा में, फसलों के खेत में, युवकों के हृदयों में, जो लोग अश्वेत्ती का एक प्रक्षर भी नहीं जानते थे, अज्ञान जो मातृभूमि के लिए अविश्वसनीय हो जाना चाहते थे उनके अंतःकरण में और जिन पड़े-लिस्से लोगों ने उनका काम नूतन ही अपनी धन शैलित और पद प्रतिपत्ता को जान मात्रक लोक सेवा और लोक जागृति का इन कारण किया उनके जीवनों में यह राष्ट्रवाद, राष्ट्रप्रेम बनना और गया।

प्रथम राजनीति ने अखण्ड महाराजनीति की आधता और तैयारी के लिए गहिरा जाने अनजाने जुलाई १९०६ में अरविंद ने अपने देशवासियों के नाम एक अतिम पत्र में लिखा, "राजनीति में नीति ही मिला जाणी, परंतु नेता परदेवर ही दे सकेगा। जब तक ईश्वर अविश्वसनीय नहीं आता और हम परमेश्वरी शक्ति के आधिकार के मापन नहीं करते तब तक भड़े आवाहन शक्य रहते हैं, पर ज्यों ही वह आता है वे क्रिय प्रार्थि के लिए आगे बढ़ते हैं।"। इस परिस्थिति में हमारा चल नीतिक है, नीतिक नहीं। "राजराज्य अथवा परनिबंधन मुक्त पुनः स्वातंत्र्य हमारा लक्ष्य, स्वातंत्र्य और प्रतिष्ठा हमारा साधन है। इस लक्ष्य में किसी राष्ट्र के या हमारे देश पर राज करने वाली सरकार के प्रति द्वेष का समावेश नहीं।"

१९११ में बंग बंग का रद्द किया जाना, वहिष्कार आंदोलन की एक आंगिक जीत थी। १९११ के बंग में दिल्ली दरबार हुआ, जिसमें लार्ड कर्जन आने का राज्याभिषेक घोषित किया गया और भारत की राजधानी कलकत्ते से दिल्ली लाने गई।

भाषणिय राजनीति में गांधी के प्रवेश से पूर्व तत्कालीन नरम नीति का अंत करके पूर्ण स्वराज्य मिलने तक लड़ने वाली एक सेना खड़ी कर दी थी। १९१५ में अब गांधी ने पूर्णरूप से प्रवेश किया तो उन्हें लगा कि अब देश राजनीति का युग समाप्त हुआ और उन्होंने निश्चय किया कि भारत की निःशस्त्र आति की शोभा ही जाए। गांधी ने बड़े धर्म की बात पकड़ ली। संश्लेष इतने बड़े भारत देश पर कौन शासन कर रहा है? हमारे ही अज्ञान से। तो हमें चाहिए कि वह महयोग हम बंद कर दें और गांधी ने इनी को नाम दिया। 'अनहयोग संपान'।

गांधी ने १९०६ में एक संदेश कांग्रेस को भेजा था। उसमें उन्होंने लिखा था कि विद्वानों की सारी गुणवत्तों से छुटकारा पाने का राजवाण उपाय 'अनहयोग' है। और यह साधन आधुनिक नीतिक सम्बन्ध के उद्धार के लिए भी है जो कि कुछ विनाश भी और शीघ्र ही चला जा रही है। गांधी ने कहा था, "हमारे देश और आति की आधुनिक सम्बन्ध से बहुत कम सीखता है, क्योंकि उनका आधार और ने और हिंसा पर है जो कि मानव में देवी गुणों के अभाव को सुचित करती है।"

गांधी की राजनीति विश्वविद्यालय के उद्घरण जिने सम्पन्नितक अहम गरी और उन्हीं के मा...

१० मार्च, १९२०

अभिमान राज्य की जी ग होने वाला था। इसमें स्कूलों के विरोध का विरोध और कानून चालू करने की योजना थी।

जा राजनीति पर ज अने पत्र गांधी ने मसू...

१९२२ में यह पत्रों

गांधी किसी भी कीमत पर राजनीति की इस तरह के

शोध उनके समने पर छा...

की नातनीति का धर्म। ज...

ने आरंभों ने एक फल...

"धारा एक : आर्थी

की दुःख के साथ निरा...

हमारे कर डानी और उ...

"धारा दो : तब भी

है तभी हिमात्मक उपद्रव...

गांधी अहितक नहीं हुआ...

कि काम सविद्य अथवा...

स्थानीय कमेटियों को धार...

तथा दूसरे कर बंद कर...

वाहियों को बंद कर दें।"

प्रस्ताव के इन अन्तर्दे...

नेताओं ने, जो गांधी के म...

की बढ़ती हुई विपरीतता...

के लिए अंतरा पंदा हो...

पः।

हिया बनाम अहिंसा

१९२२ का यह राष्ट्रीय

राज्यों की गुफा
न एक मक्षर भी
कारने से उनके
त ही धारणी धन
लोक प्रगति का
मा हीन वश ।
घोर तपस्वी के
देशवासियों के
न बगुनी, परंतु
आतः घोर हन
क वडे राष्ट्रीय
लिए आगे बढ़ने
परराज्य अथवा
प्रतिकार हमारा
करने वाली सर-

राज्य की एक
सबे सच्चा पंचम
राज्यता कलकत्ते
रम नीति २० अंत
दी थी । १९१५
व वीर राजनीति
ने निःसंशय क्रांति
संकेत इनके बड़े
। अब हम चाहे
दिया । असह्यमान
मे उन्हेंने लिखा
राज्यता प्राप्त
के उद्धार के लिए
। गांधी ने कहा
: कम पीषण है,
: मे देवी गुर्दा के

गांधी की राजनीति का 'घोषणा पत्र' या फरवरी १९१६ में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के उद्घाटन समारोह में दिया गया। ऐतिहासिक भाषण, जिसे आण्डोलन कटकर भाषण के बीच में ही ममा मंडप ने डा० वेस्ट जनी एवं पीर अह्दी के साथ उपस्थित गांधे राजमंडलाया भी उठ सड़े हुए थे ।

१० मार्च, १९२० को गांधी ने असाहयोग आंदोलन की घोषणा की। इसका भीमकेंद्र नगराज की ही हुई आर्याजियों को खलने और तंत्र के अतिकार न होने वाला था। इनमें भाग स्वामी का, पदावधियों और कर्तव्यों का तथा स्त्री-पुरुषों का अतिकार शामिल था। इसके साथ ही हर धर में फिर से नवीन क्षेत्र लक्ष्य प्राप्त करने की बात थी। आंदोलन की अंतिम अवस्था में कर्तव्य की गोचर थी।

वो राजनीति अब तक केवल कुछ गड़े-लिपे लोगों के बीच की चीज थी, अब सब गांधी ने समूचे भारतीय जनमानस से जोड़ दिया।

१९२२ में यह आंदोलन रोक दिया गया—प्रश्न था हिंसा बनाम अहिंसा। गांधी किसी भी कीमत पर हिंसा का पक्ष लेने को तैयार न थे। जबकि अंग्रेज राजनीति की हर तरह से यही कोशिश थी कि किसी तरह गांधी अपना पक्ष छोड़ उनके सामने पर आकर उल्टे लड़ाई करें। पर गांधी लड़ जाते थे अंग्रेजों की राजनीति का मार्ग। इसका उदाहरण है १२ फरवरी को कांग्रेस कार्य समिति ने आंदोलनो में एक फैसला लिया। आंदोलनो के प्रस्ताव के मुख्य अंश वे थे :

“पहला एक : कार्य समिति घोषितचारा में भीड़ के इस अमानुषिक आचरण की दृष्टि के साथ निंदा करनी है कि उनमें पुनित वालों की आर्थिक दृंग से इत्याः कर नालो घोर अंधे होकर पुलिस के शान को जला दिया।”

“पहला दो : जब भी अहितय अज्ञा का जन आंदोलन आरंभ किया जाता है तभी द्विगारक उपद्रव होने लगते हैं। इसमें जाहिर होता है कि देश अभी काफी अहितक नहीं हुआ है। अतएव, कांग्रेस कार्य समिति फैसला करती है कि आम अहितय अज्ञा आंदोलन-कितज्ञाल रोक दिया जाए और यह स्थानीय कमिश्नरों को आदेश देती है कि वे किसानों को सरकार का लगान तथा हमारे अंग पदा कर देने की सलाह दें और हर तरह को हमलावर कार्य-वाहियों को बंद कर दें।”

प्रस्ताव के इन शर्तोंसे हमना अवश्य पता चलता है कि कांग्रेस के प्रभावशाली नेताओं ने, जो गांधी के साथ थे, अंतर्निम् आंदोलन की रोक दिया कि वे अज्ञान की बढ़ती हुई आशोलना से बच गए। क्योंकि शायद उसमें उन वनों के हिंसा के लिए ततना पैदा ही रहा था। अंतर्क साथ उन नेताओं का अज्ञान संबंध था।

हिंसा बनाम अहिंसा और अर्ध-स्वार्थ बनाम जन-संघर्ष के मद्देन पर १९२२ का वह राष्ट्रीय आंदोलन जो हुआ तो आगे पांच वर्षों तक राष्ट्रीय

या पक्षी के आलस में देखाजु
काँपने के संतर रहने इन नुताव
निक मोर्चे पर संघर्ष जमाने के

ताज इन पक्षी की पंखा के बन्द
न छोड़ने पर नए भयान दल बल
की विधाय जनात के बिन्दु नाट
भारतीय भयभीत न था। इसके
नए वरम था के नेत्र के रूप में
गदगदगणे हुआ। १९२६ के
'पूर्ववर्तमान' शक्ति का भीमला
तम का शीघ्रसंग हुआ। पक्षी
न'। पर हाउस के दिवा कि
हनी कर्तित जगजगत् आधिक
।"

की, कर्तित का भयान जगजगत्

की देवदार पत्राण अर्धवर्षों के
के मोषवेर न-नलन क्षुब्ध।
ई की रोचने या दगती निशा
हृदय में रचा गया कि आंशुगत
१९२६ के दिना में कहीं जगजगत्

की—पक्षी नभारों में पक्षीन
की रोचना बनाई गई। इसके
अर्धवर्षी राजनीति विजयी हुई।
विना सुगंधित गीतों की नभार

बंद कर दिया गया और केवल
अनन सदावशी के रूप में सर्वे

इसकीका द दिशा उदराने
जगजगत् परभेद है और वह
अनेक जगती के लिए परिभाषा एक
के उनको अर्धवर्षी में शायदा

गती है। इसके अलावा कांग्रेस में समाजवादी पक्षों का प्रभाव और संस्था बढ़
रही है। यदि वे कांग्रेस पर छा गए, तो अंतर्भव नहीं है, तो मैं नहीं रहूँगा।"

दसप्रसक्त १९२० में 'रिजल समाजवादी तन्त्र का बीच कांग्रेस में बोला गया
था प्रथम वह संकुचित हुआ और 'कायम जोशानिष्ट पार्टी' के रूप में (काँग्रेस के
अंदर) प्रकट हो गया था।

अब नया हमने दल कि अर्धवर्षी विद्य राजनीतिकी (वाचना, जड़ने अवा-
रुत, जातीयों हला, इत्या, भारत की 'ब्रिटिश दृष्टिगत वचना) यहाँ दल रहा
था, और इसके लिए जो भाषण उद्देश्यमान कर रहा था वह क्या था? उसके,
जिलाक जा आशीषाकारों भारतीय राजनीति यहाँ जनी वह एक स्वयं तन्त्र
प्रणाली और आनिशारक का लेकर क्या एक संसमाल्य विभूति (गोपी, जिसकी
जना पहले अर्धवर्षी ने की थी) के नेतृत्व में चल रही थी। यह था: निःशरत
जाति का मार्ग, जिसे महापक्षी काँतिशास्त्र कहा जाएगा। यह एक नया
आतमीय वृक्ष था भारतीय जीव का, अपने समय काल और परिस्थितियों में
जो यहाँ उगा। इस तरह के वृक्ष को जब से नीचा राजा राममोहन राय ने,
इसे खाद दिया आरामाई कीशेरी ने, इसे धूरा दी जिलक ने, इसकी रक्षा की
गालवे ने और संतर: इसके माली हुए गोपी।

इसी वृक्ष को तन्त्र त्थाइकर एक निर्मूल वृक्ष का रखा जगजगत्, नहीं था
अंतर्भों का नरम लक्ष्य।

अर्धवर्षी राज का (हो) अर्धवर्षी नहीं ने मराठा राज्य, निजाम का राज्य
और हैदराबाद का संसूच में ही तीन प्रमुख राज्य भारत में थे। सामूहिक रूप
में उन तीनों का मुकाबिला करने की ताकत अर्धवर्षी में नहीं थी। इनका ही
नहीं, एक के खिलाफ दूसरे की महाफला के बिना, किसी एक का भी मुकाबिला
के नहीं कर सकते थे। तीनों की परस्पर लड़ाई, दुगरी पौर तीनों में अर्धवर्षी
के अभावाजन बनने के लिए प्रविद्योगिता का भाव पैदा करना, यही थी उनकी
राजनीति।

पर अर्धवर्षी की यह राजनीति यहाँ क्यों सफल हुई, यह निर्मूल वृक्ष यहाँ
की वजहों, यहाँ के मानव में क्यों और कैसे बना, यह प्यार न देखने की चीज
है। भारतीय वृक्ष का वह 'फल' जिसका कर्मिक रूप या धर्म, अर्थ, भाव और
अनन: मोक्ष, उस फल में एक ही बीज है—संगम, सभ्यता शक्ति, जा जगजगत्
और समाज के तमस्त कायंकरणा को सुशचारिणी है। अर्धवर्षी में इसी बी
'जागृती' तथा 'जागृती' कहा गया है। इसी बी फलस्वरूप हमारे दल में एक
ऐसे अद्भुत संगम (परिहार) का निर्माण हुआ जिसके तत्कालीन विभिन्न
अर्थों, जातिषो नस्लों को एक भारतीय परिवार में घाले, मिलने की कल्पितद्विवां
याचक नहीं ही सकीं। राजाजी वर्यो की राजनीतिक एव ऐतिहासिक बाधाएँ भी
उसकी लोड़ने में समर्थ नहीं ही सकीं।

उस बीज ने 'संगच्छद्वं संगच्छम्' का जो महापत्र इस राष्ट्र के प्राणों में गूँसा था, वह अब भी हमारे भीतर कहीं छुड़े बैठा है। यही है चिन्ति तत्त्व इस राष्ट्र का, यही कारण है कि इतने विखंडनों, शाश्वतता एवं शोचनीयता के बावजूद वह संयम भाव, वह एकलोक मानव दुष्टता अब तक हममें बौद्ध है।

जब वही बीज भारतीय धरती में कहीं गहरे प्यकट्टर घुसपट्टा गया तो उस सूनी पत्थी पर जॉपन और दयन के फायड़े चलाकर, सुधार के हल चलाकर, विक्रम के जल सोचकर, फूट, कलसु मीर वटवारे की हवा चलाकर नत्ता शक्ति की श्रुप मोर राशनी में जो निर्मूल वृक्ष यहाँ पतगा, वही है भारत की वर्तमान राजनीति, जिसकी जन्मदात्री है ब्रिटिश इंडिया, जतक है औपनिवेशिक संघर्षों राज, बालक है पूँजीवाद और भय है समाजवाद भाष्यवाद के नाम पर एकाधिकार भाव।

तभी यह वर्तमान राजनीति अपनी प्रकृति में लुजब के विच्छेद है। यह अपने लच्छद्वारों में प्रतिक्रियावादी है। सपत्त चौरस ने यह गणितजीवी है। तभी उस राजनीति में अष्ट गामतवाद है, निष्कट पूँजीवाद है, पंचविश्वान समम जातिवाद, मानवाद, नरंनराधार और जट्ट अस्तित्वाद है। यह सूक्ष्मर्षि है, इतनी बुद्धिवाद हिंसा है। इसका फल सत्ता है। यह फल कभी पकता नहीं। मध्य वृक्ष ने (पर, कूर्मी) चिंता रहता है। जिस फल में रग नहीं लेना, उसका बीज कभी नहीं तैयार होता। रस में ही फल पकता है। फल पकते ही माने साध वृक्ष ने मनग ही जाता है।

पर वह जो नन्दात्ता पीघा है, समुल वृक्ष, जिसकी रक्षा में पाँधे ने १९३४ की हेमंत ऋतु में कापिंग को सङ्गता भी छोड़ दी, उसके बिनाक, उसे जट्ट से अक्षर केकन की लभार्ण अतफल कोटिमें निग राजनीति ने की, वह दरदसल देवनें की चीज है।

जब निर्मूल वृक्ष का भाग है राजनीति। इस समुल नन्हे पीधे का नाम है लोकनीति, पॉलिटिकी आण्णालिक राष्ट्रनीति। उसकी गत्ता राजसत्ता है। उसकी सत्ता लोक है, राष्ट्र चिन्ति है, उसका फल भय है। उसका फल स्वराज्य है, मोक्ष है।

इस समुल पीधे को संघर्षों ने १९३५ तक घाते-घाते देल दिया। उसे तप्ट करने का एक उपाय उन्हें सूझा। उन्होंने बढते हुए भारतीय भाष में फूट रूँदा करके प्राचीन रबापत्ता के नाम पर भाष्य को घनेषः टुकड़ों में काट देने की योजना तैयार कर ली। ब्रिटिश गलियमेंट ने १९३५ में एक गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट पास किया उस एक्ट में एक तरह का प्रांतीय स्वशासन और उसका एक संघीय उपाय रखा गया। पर ३५में इनने रोक और रोक के कि राजनीतिक और आर्थिक दोनों लच्छ की गत्ता ब्रिटिश सरकार के हाथों में ल्यों को लगे बनी रही। मतलब ब्रिटिश सत्ता से संचालित उस टुकूमती दाने में दक्षय देने या उसमें

सुधार करने के लिए ही नहीं था। इस स्वच्छिकम का कोई तहत कभी कोई का संघर्षों ने भारत के गहनी दोस्ती जोस्ती दारः परतता एक-दु दिया।

राजनीति में ही पट्टी में पत्ता। मतलब व्यक्ति का सूना क्षेत्र में धाज तक रितने विप फेला। फूट, उठे

चुनाव में राजीम सत्तावादी राजनीति और तीरुके का दां विषयना एक ही लक्ष तरद सत्ता से विपने

इसी प्रक्रिया का का यह विचार कि जि बने। इसी राजनीति और मुसलमान ऐसे सब भलग-भलग शा

राजनी पाम दल ऐसे लजामे का काम मिल सकता था। इस पदिया में अपने सत्ता

१९३६ में जब भारत की उगी तरह में किया। पर इन का दृष्टा, जिसके परिणाम दिया। उसके बाद सु

संघर्षों को संततः जिन्की अनुसार रवतय था : (क) देश विभाज

सुधार करने के लिए हिंदुस्तानी जनता के प्रतिनिधियों के लिए कोई रास्ता ही नहीं था। इसका न तो प्रतिक्रियावादी होने के साथ ही उगमें शासक, स्वविकास का कोई तत्व ही न था। यह ऐसा रहस्यपूर्ण विधान था कि इनके उद्देश्य कभी कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन ही संभव नहीं था। इससे एक और संशयों ने भारत के राजाओं, जमींदारों और प्रतिक्रियावादी शक्तिओं से घोर गहरी दोस्ती जोड़नी चाही तथा दूसरी ओर इनके पक्षक निर्वाचन पद्धति के द्वारा अस्वभाविक-दुबारे ने हुए और पृथक होने वाली प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया।

राजनीति में दोग, स्वार्थ, निजी लाभ, विजयी राजा प्राप्त करने का दर्शन यहाँ में पनपा। मतलब यह सब भरपूर हमारे जीवन में था हमें अब अपनी प्रति-व्यक्ति का खूना खेर मिल गया, चुनाव का खेल। यह अस्वीकार्य है कि तब से आज तक अतने चुनाव हुए—उतना ही हममें फूट, अलगाव और ईर्ष्या का विष फैला। भूट, दोग, हिंसा उतनी ही फैलती गई।

चुनाव में कांग्रेस की जानदार जीत हुई, पर वस्तुतः हम चुनाववादी, मत्तवादी राजनीति को विजय मिली जिसमें भारतीय मानस को निरंतर बाटने और तोड़ने का कार्य किया। इससे एक ऐसी राजनीतिक प्रक्रिया शुरू हुई जिसका एक ही लक्ष्य था चाहे कितना आदर्शहीन, गुणहीन होकर किसी तरह सत्ता से निपटें रहता।

इसी प्रक्रिया का फल था भारतीय राजनीति में भारत में अल्प गाम्भीर्य का यह विचार कि जिन प्रांतों में मुगलमान बहुसंख्यक हों वह एक स्वतंत्र देश बने। इसी राजनीति की देन थी कि हिंदुस्तान एक राष्ट्र न होकर उसमें हिंदू और मुसलमान ऐसे दो राष्ट्र हैं। देशी नरेश अल्प राष्ट्र हैं। दरिजल, मित्र, सब अल्प-अल्प राष्ट्र हैं।

राजनीति का दल के शब्दों में "संघर्षों के लिए भारत ने हमें एक कुबेर के ऐसे भजाने का धाम किया है, जिससे उन्हें मनचाहे विपाही और मनचाह पान मिल सकता था। इसी घत-व्यम में संघर्षों ने भारत को जीता। इसी में उन्होंने एशिया में अपने साम्राज्य का विचार किया।"

१९५६ में जब ब्रिटेन ने जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा की तो ब्रिटेन भारत को उगो तरह दस्तमाल करना चाह रहा था बिना तरह उसने १९१४ में किया। पर इस बार ऐसा न हुआ। कांग्रेस ने इस युद्ध को 'सांख्यिकवादी' कहा, जिसके परिणामस्वरूप १९३६ में सभी कांग्रेसी प्रतिनिधियों ने इत्तीफा दे दिया। इसके बाद शुरू हुआ, 'संघर्षों, भारत छोड़ो' आंदोलन।

संघर्षों की संततः १९४७ में भारत छोड़ना पना, पर कुछ शर्तों के साथ, जिनके अनुसार स्वतंत्र भारत की नई साम्य व्यवस्था का अधीनस्थ होने वाला था : (क) देश विभाजन। (ख) भारत की जनता को अपनी इच्छानुसार तर्क

सरकार का व्यवहार तथा करने का कोई कोई अधिकार नहीं। (ग) कांग्रेस को सरकार किस प्रकार का भारतीय संविधान देना चाहिए वह फैसला सभी के हाथों रहेगा। (घ) वही यह फैसला करेगी कि वह 'भारत' को किस विभिन्न भारतीय भाषाओं में, 'स्वतंत्र' करेगी।

यह भी कॉन्फ्रेंस मिशन की पुरानी योजना की जगह नई माउंटबेटन, योजना, जिसे कांग्रेस (भाषी मोहन, कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी, उग्र राष्ट्रवादी मोहन) और मुस्लिम लीग ने संतुष्ट किया। और इसका अन्तर्गत किया समाजवादियों ने, कम्युनिस्ट और उग्र राष्ट्रवादियों ने। क्योंकि उन भाषों के पीछे उग्र राष्ट्रवादी का अर्थ नित्य चरित्र कार्य कर रहा था। एक की ही में आकर दोनों को निर्मूल बनाया, मगर केवल कुछ अवैतनिकों के हाथ में रहे, मगर सभी भी जनता के हाथों में न आए।

उस राजनीतिक मादक के अनुसार भारत का व्यवहार हो जाने से भारत के लिए यह जरूरी बना दिया गया कि वह 'एक राजकीय और राज शक्ति' को प्राप्त करेगा। मगर इसकी स्वतंत्रता भी अनेक सीमाओं थी। यह एक तरह से 'अधःपनिवेश' या और इसका संविधान जनता को आधिकार जनवादी अधिकार देने के बाद ही, विदेशी साम्राज्यवादी हितों, मुख्यतया अंग्रेजों साम्राज्यवादी हितों से बंधे हुए एक जमींदार पूँजीपति राज्य का विधान था और अब तक है। अब तक पूँजीवादी राजनीतिक विधान है।

राज्य भारत की सामान्य व्यवस्था, पुरानी साम्राज्यवादी भाग्य व्यवस्था में कोई बात प्रवेश नहीं हुआ। कांग्रेस भाग्य उस का जगह का सर्वोच्च माना गया। वही नौकरगारी, वही मजदूरों, वही अंग्रेजी भाषा, वही पुस्तक और समतल की लगे। वही 'पेंसेल मोड' वही 'श्री ० भारत ० पी ० सी ०' वही कलकत्ता, वही पुस्तक व्यवस्था वही शिक्षा पद्धति सब तक १९३५ तक, और मजाक यह कि इसी वर्ष व्यवस्था के 'जनता मंड' स्थापित करने की कोशिश (गाने) की जा रही है।

भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई कई तरह से प्रसन्न लोगों ने, विभिन्न माधनों से लड़ी। कांग्रेस महात्माजी, उग्र राष्ट्रवादी, शक्तिवादी, विदेशी, आत्मनिर्भरवादी, साम्यवादी, हिंदू, मुसलमान, सिख, इगार, किसान, मजदूर, मजदूर, श्रम, निपाही, गोल, व्यापारी, वृद्धिवादी, स्त्री-सुख, बालक, जवान, बुद्ध मयने लड़ी। आंगरी मिली। पर क्या 'स्वतंत्र' मिला ?

वही समूह गन्धे वृक्ष के नीचे लदे होकर गांधी ने प्रश्न किया विशेषकर कांग्रेस से और सामान्यतः पूरे भारत राष्ट्र से कि 'स्वतंत्र कहां है ?' हां, कहां है ?

पूजा हो जाने के बाद सृष्टि को जल में प्रवाहित कर दिया जाता है।

कांग्रेस को प्रवाहित कर वह राष्ट्रविहायता पर न होकर। पर उस भाग्य संघर्ष के मध्यम में भाग्य

एक कथा है राजकीय के साथ विश्वात्मिकता आनिष्ठ भाग में विश्व कीजिए। विश्वानिष्ठ बड़ी सेना है, दुश्मन के सिर्फ घड़ी एक गाय है, सारा आनिष्ठ पूरा हो शोध पैदा हुआ। सोने कोई एगार नहीं, अंग विश्वात्मिक के साथ अंगे जचकेंती भागकर वे जाते हुई। गाय के पैर में एगेंसा फाटित हुई। इस और उन्होंने प्रथम प्राप्ता ही। विश्वात्मिकता

तब अंगरेज ने भाग्य से बंधे जाना है। वह रहता है। जनता बनाया बापग बनी गई।

एक कथा में वृद्ध विश्वात्मिक राजकीय राष्ट्रवादी का चरित्र मादक में न मिले तो स्वतंत्रता कोकनीति राजसता, स्वतंत्रता और स्वतंत्रता नाम ही मिला। जनता स्वतंत्र है। हर वर्ष भारतीय स्वतंत्रता के का प्रदर्शन संघर्ष हुआ। वही राष्ट्रवादी का लक्ष्य है स्वतंत्रता में 'स्व' कथा

प्रथिका नहीं। (ग) संघर्ष की एगो तरफ़ से उनी क हाथों ह 'मना' का किन निमित्तार

का संस्कारा हा जाने ने भारत मुट टाला और राज करी की संघे समद तक अन्तार रह। ए प्रेश गीमण् थी। वह एक जनता की धानिक अजादी थी जियो, मुल्फाया संघेजी अजादी राज्य का विचार था कि विचार है।

साक्षात्कार की प्रायः अन्तर्गत न की उनी क लो मफा। 'मना' संघे मया, वही एगिण और की मार की सी' वही इति एव तक १९०० तक कना राज स्थापित जाने की

कथा लो ने, विविध नाकनी संसारी विज्ञानी, मानकवादी मान, म कृता, गांधी-मो, लोप, मालक, अणार, वृद्ध मयवी म ?

गीवी ने प्रथम किना विरोधकर 'स्वराज्य कहा है ?' हा।

प्रहित कर विना जाता है।

काथेस को प्रवाहित कर दो काल जल में। जिनसे आजादी की लड़ाई लड़ी है, वह राजसिंहासन पर न बैठे, जनता के बीच चले लोक सेवा वल का मक हूकर। पर उस भाषा की कौन समझे। गांधी मकौने दिल्ली से बहुत दूर बंगाल के भद्रनौत गाँवों में पैदल वृक्ष रहे थे, स्वराज्य कहा है ?

एक कथा है राजपि विश्वामित्र और ब्रह्मपि वणिष्ट की। अपनी राजसेना के साथ विश्वामित्र जा रहे थे। रास्ते में वणिष्ट का साधम पड़ा। वणिष्ट ने प्रतिष्ठा पाव ने विश्वामित्र को कहा—महाराज, हमारा परतिष्ठा रक्षीकार कीजिए। विश्वामित्र ने कहा— तुम मेरा प्रतिष्ठा पसंने ? मेरे साथ इतनी बड़ी सेना है, तुम्हारे पास इतना साधन कहा है ? वणिष्ट ने कहा—मेरे पास सिर्फ यही एक पाय है, इसकी कृपा से सारा प्रतिष्ठा हो जाएगा। और सबमुक्त मारा प्रतिष्ठा पूरा हो गया। विश्वामित्र को अपार आश्चर्य हुआ। राजपि को लोक पंडा हुआ। बोले, अपनी पद पाय मुझे दे दो। वणिष्ट ने कहा—मुझे कोई मतवाट नहीं, हार यह पाय आपके साथ जा सके तो ले जाइए। गाय विश्वामित्र के साथ जाने का नयार न हुई। फिर विश्वामित्र ने कहा, मैं इसे अवसंती वावकर ले जाऊंगा। उस बात पर राजपि और ब्रह्मपि में युद्ध की घोषणा हुई। गाय के पेट से एक बहुत बड़ी सेना निकली और उसमें विश्वामित्र की सेना पराजित हुई। इस आश्चर्यजनक घटना ने विश्वामित्र के हृदय प्रभावित हुए और उन्होंने जन लिया—मैं भी मतवाट रहूंगा ताकि मुझे भी ऐसी शक्ति प्राप्त हो। विश्वामित्र अपनी कर्म ले कर गए।

तब वणिष्ट ने अपनी इस विजयी सेना से कहा—सब इस सेना को जहाँ ले गये जाना है। जहाँ जिध तत्व की आवश्यकता नहीं है, वहाँ उसे नहीं रहना है। वरना मनाचार और विनाश होगा। सेना जहाँ से भाई थी, वही वापस चली गई।

इस कथा में बहुत बड़ा जीवन मर्म लिखा है।

विश्वामित्र राजनीति के प्रतीक हैं और वणिष्ट लोकनीति के।

राजनीति का अर्थ है कि जहाँ भी शक्ति या जल इतिया लिया जाए— भांगने से न मिले तो अवसंती की जान।

वणिष्ट लोकनीति राष्ट्रनीति के प्रतीक हैं। सेवा, अज्ञा, विनय, कर्म, समता, स्वयंसेवा और रचना ही उसका अरिपगत मूल्य है।

युद्ध समय भी सेना साँत काल में काम नहीं पा सकती। हर शक्ति का अपना स्वधर्म है। हर धर्म का अपना विनिष्ट कर्म है।

भारतीय स्वयंसेवा के बाद एगो राजनीति और लोकनीति या राष्ट्रनीति का अरुण संघर्ष हुआ। राजनीति का अर्थ था मना, राजशक्ति। लोकनीति या राष्ट्रनीति का अर्थ है स्वराज्य।

स्वराज्य में 'स्व' क्या है ? उस समूल वृक्ष का 'स्व' क्या है ? जिस

नभय 'स्वराज्य' का यह बीजा भरती के भीतर छिपे उस बीज में फूटा था, उसी समय उसका अभिजात शुरू हुआ।

त्रिनेत्रानन्द, राजा राममोहन राय, तिलक, गोखले, सरावध, भगवानदास और महात्मा गांधी जैसे महापुरुषों ने स्वराज्य का स्वरूप हमारे सामने रखा। हममें से सर्वप्रथम महापुरुष हैं भगवानदास का 'स्वराज्य' चिन्तन सौ। उसकी व्यवधारणा जो १९२२ में प्रान्त इंडिया कांग्रेस कमेटी के कल्पना अधिवेशन में पहली बार प्रस्तुत हुई और सन् १९२४-२५ में गांधी ने उसे महान् स्वीकार और अंगीकार किया।

'स्वराज्य' में जो 'स्व' है—यह उसी भारतीय 'बीज' का ही फल है। स्वराज्य माने बाहर का राज्य नहीं, अपने भीतर, अन्तर का राज्य, राष्ट्र चिन्ति का राज। किसी देश पर अधिकार, मेला गुलामि और प्रतापन पर अपना अधिकार—यह केवल 'राज्य' है, स्वराज्य नहीं। अपने ऊपर अपना राज्य, आत्ममानुषानन यह है स्वराज्य का मूल। पर एक ही राज्य दूसरे पर, अर्थात् स्व पर राज्य न कर दूसरे पर राज्य करता, दूसरे को अपने अधिकार में, अनु-धामन में, दबाव में रक्ता वह है राजतंत्र स्वतंत्र नहीं।

स्वतंत्र तो स्वराज्य जुड़ा है। अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपनी परंपरा, अर्थात् अपने राष्ट्रीय 'स्व' से चिति से ही स्वतंत्रता और स्वराज्य फल है।

पर व्यावहारिक रूप में 'स्व' खुद 'रज' पर शासन नहीं करता। बुद्धि का शासन शरीर पर है। शरीर का भी शासन बुद्धि पर है। अविज्ञानी अपने में निर्बल पर शासन करता है। ऊंची बुद्धिया निम्न बुद्धियों पर शासन करती हैं। पर अन्तर निम्न बुद्धिया ऊंची बुद्धियों पर राज करने लगती हैं। जो जिस समय कमजोर पड़ गया वह अपने दूसरे पक्ष के अधिकार में आ गया। वहीं ही पक्ष व्यक्ति में, समाज में, देश में, राष्ट्र में।

उस समय संभारता से सोचने वाले अन्ध व्यक्तिओं ने त्रिनेत्र भी-प्रारंभ दशन, ट्रेडोर, सरावध मुख्य है, राजनीतिक स्वराज्य से आध्यात्मिक स्वराज्य के बुनियादी अन्तर और महत्त्व का बताया। इसी आध्यात्मिक स्वराज्य की कामना की स्वतंत्र भारत में त्रिनेत्रा, जे० पी०, लोडिया और दोनदाल उपस्थापन ने।

त्रिनेत्र 'स्वराज्य' की कल्पना, व्यवधारणा और अनुभूति नहीं, उसकी राजनीति केवल मन्तनीति, शक्तिनीति, हिमातीति हींणी, जो 'स्वराज्य' भाव से राजनीति में व्यापना, राजनीति उसके लिए लोकनीति, प्रजानीति, राष्ट्रप्रेम, मान्यप्रेम और संगतः मान्यनिर्वाण वा मुक्तिफलदायी हींणी।

पर इस 'स्वराज्य' पर हम सौ १९२० में लेकर १९४७ तक हंसते-मजाते उड़ते रहे। उसके बाद राजनीति हुंणी रही स्वतंत्रता पर, राज्य प्रजाक बर रहा है स्वराज्य पर ! ...

राजनीति
आ...

राष्ट्रीय राजनीति: संरक्षण
पेसैंस'। हम सा गांधी का
निरंकुश और स्वच्छंद हैं
का पक्ष स्वराज्य है। गांधी
वैदिक शब्द है, त्रिनेत्रा का
शब्द एक राष्ट्रीय आधिजात
का फल है 'स्वराज्य'।

गांधी के मन्तःग्रह पर
गोपालकृष्ण गोखले, रानादे
कुल से पाकर निजस्य क्रांत
का विश्वास था कि भवे ही
लेकिन यभीष्ट फल (स्वराज्य)
इसी तरह एह्ने के बहिष्कार
प्रहिता तरण को आध्यात्मिक
का परिणामकारी रूप दे वि

वरक्षण पर मार्त का
माहन राय ने किया और उप
के दृष्टा राजा राममोहन रा
रपष्ट स्वीकार किया कि गा
है वह साधुतिक चिन्ति संस्कृ
जब तक भारतीय संस्कृति
कर लेगी पर नर द्वारा न
नायक नहीं बन सकेगा। इसी
मासकृति विकास का काम वि
पर जोर दिया, राजनीति

ये उस वीज से फूटा था, उसी

की छत्ते, सारविद, भगवानदास
स्वरूप हमारे नामने रखा ।
वराज्य' चिन्तन और उसको
मेरी के कलक-गः अधिवेशन
में गांधी ने उसे मजबूत करने

ए 'वीज' का ही फल है ।
संसार का राज्य, राष्ट्र चिन्ति
न और प्रशासन पर शासन
। अपने अपने अपना राज्य,
का राज्य हमारे पर, अधीन
फले अपने अधिकार से, अनु-
नहीं।

पनी संस्कृति, अपनी परंपरा,
ती को स्वराज्य फल है ।

हमसे नहीं करता । बुद्धि का
ए है । अनिच्छाली अपने से
शुणियों पर शासन करती है,
अ कहने लगी है । जो कि
अधिकार से था गया । वही

व्यक्तियों ने जिसमें भी
ए स्वराज्य से आध्यात्मिक
। इसी आध्यात्मिक स्वराज्य
भी, लोडिया और डीनरवाल

अनुभूति नहीं, उसकी मात्र-
नेगी, जो 'स्वराज्य' भाव से
नीति, प्रशासनीति, राष्ट्रप्रेम,
गये लगे-

लेकर १९४७ तक संसत-
ही स्वराज्य पर, राज्य

सातवां अध्याय

राजनीति और सत्याग्रह :
आजादी और स्वराज्य

राष्ट्रीय राजनीतिक संघर्ष में हमें आजादी मिली, आजादी माने अर्थात् 'इंति-
पेंसेस' । इस आजादी का अर्थ है कि हम सब प्रकार की मर्यादाओं से मुक्त हैं,
निरंकुश और स्वच्छंद हैं । एही आजादी राजनीति का फल है । पर सत्याग्रह
का फल स्वराज्य है । गांधी के शब्दों में "स्वराज्य एक पवित्र शब्द है । यह एक
वैदिक शब्द है, जिसका अर्थ आत्मशासन और आत्मसंयम है ।" गांधी का सत्या-
ग्रह एक राष्ट्रीय आन्दोलन है । यह भारतीय संस्कृति का जीवन बीज है । इसी
का फल है 'स्वराज्य' ।

गांधी के सत्याग्रह या आन्दोलन को स्वीकार करने से पूर्व लोकमान्य तिलक,
दीवानकृष्ण गोपाल रामादे जैसे राष्ट्रीय नेताओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन को स्वराज्य के अनु-
कूलनवादी निःसम्भ्र आन्दोलन के रूप में प्रस्तावित किया था । लेकिन इस आन्दोलन में गांधी
का विश्वास था कि अनेक ही संशय का मार्ग हमारे लिए संभव हो जाय,
लेकिन असीम फल (स्वराज्य) मिलने की दृष्टि से यह मार्ग श्रेष्ठ नहीं है ।
इसी तरह हमें केवल एक ही मार्ग है : अग्रहीकरण से साक्षात् करने उन्हीं से
अद्वितीय शक्ति की आध्यात्मिक शक्ति और आशा के रूप में एक अद्वितीय आत्मशासन
का परिणामकारी रूप दे दिया ।

अग्रहीकरण यह मार्ग आध्यात्मिक आन्दोलन का वास्तविक जीवन राजा राम-
मोहन राय ने किया और उनका विकास गांधी ने करना चाहा । आधुनिक भारत
के दुःखदायी राजा राममोहन राय यह पहले निश्चित, आत्मविश्वास के रूप में निर्दिष्ट
रूप में स्वीकार किया कि भारतीय संस्कृति का जो वर्तमान स्वरूप हमारे सामने
है वह आधुनिक 'वैदिक संस्कृति' के सामने बहुत ही पिछड़ी हुई दशा में है । और
तब तक भारतीय संस्कृति आधुनिक यूरोपीय संस्कृति के बराबर प्रगति नहीं
करेगी जब तक हमारा राष्ट्र सत्य मार्ग की अराजगी में आजादी आने
वाला नहीं बन सकेगा । इसी लक्ष्य की पूर्ति में उन्हीं अपनी संपूर्ण आस्था से
आधुनिक विकास का काम किया । उन्हीं ने आध्यात्मिक, धार्मिक मुद्दों पर
पराजय स्वीकार किया, राजनीतिक और सामाजिक विकास पर रुक । उन्हीं ने यह

की गल्ट विभागा कि प्रोग्रेसी राज की सज्जहाया मे अपनी संस्कृति का विकास प्रसंभव है। "प्रोग्रेसी संस्कृति व्यक्तिवादी है उनका चरित्र ही है दूसरे को प्राणिक शोषण।"

यह एक महत्वपूर्ण और अलंकारणीय तथ्य है कि पहले प्रोग्रेस राजनीति के मुकाबिले में, उत्तर भारत में सांस्कृतिक आभरण हुआ। पर बहुत उल्ह उम समीचीन सुधार और सांस्कृतिक अवधारण में भारतीय राजनीति का जन्म लगभग १९७५ में दादाभाई नौरोजी तथा जगदिन रामादे जैसे लोगों के प्रयासों से हुआ। इन तरह उम राजनीतिक संघर्षवाद से भारत का ध्यान नये मनुष्य के निर्माण, उनकी नवचेतना की मूर्ति में हटकर राष्ट्रवाद की ओर झुकने लगा। उस समय के राजनेताओं को लगा कि जर्मनी, अमेरिका या जापान जैसे औद्योगिक प्रगति में पिछड़े हुए परंतु राजनीतिक दृष्टि में स्वतंत्र राष्ट्रों का राष्ट्रीय प्रयत्नात्म्य और उनकी राजनीति बनाने काम की नहीं। इसने हमारे राष्ट्र निर्माताओं की दृष्टि आजाद देशों की राजनीति और अर्थनीति में हटकर आयरलैंड और दूनो जैय, गुलाबी ने आजाद होत वाले देशों की विचारधाराओं की ओर खिंचने लगी। उगी दृष्टिकोण के कारण प्रायः चलकर उम राजनीति के दो फल प्राथमिक मान्य में हमारे सामने आए :

(१) उम राष्ट्रीय राजनीति तथा (२) सशस्त्र क्रांतिकारी राजनीति।

उम राष्ट्रीय राजनीति में 'बहिष्कार' को प्रायः फूटी और तिलक इसके नेता हुए। उनका विश्वास था कि यों ही भारतवर्ष में राष्ट्रीयता की भावना फैलेगी और संघर्षों की आरंभिक पता में यह भाव फैलेगा, भारत में प्रोग्रेसी राज टूट जाएगा। लोकमान्य तिलक, विधिवचंद्र पाल, लाला लजपतराय, श्री अरविंद इत्यादि राष्ट्रीय नीति के प्रतिपालक थे।

१८९५ से १९०५ तक के बीच में क्रांतिकारी राजनीति इस देश में चली। उस समय के क्रांतिकारियों का जयता या देशी नरेशों में से एकध की सहायता से अथवा प्रफगानिस्तान या नेपाल जैसे छोटे राज्य की मदद से भारत पर अंग्रेजी साम्राज्य में आजाद हो जाएगा, जिन तरह उरली, अरबिया को गुलाबी ने मुक्त हुआ। लेकिन बहुत ही शीघ्र यह स्थान केवुनियाम घोषित हुआ। यहां तक पहुंचकर जोबामान्य तिलक जैसे नेताओं को विश्वास हो गया कि भारत में जो भी क्रांति होगी उसका स्वरूप प्रजातंत्रीय होगा और चलने हुए नेता मख्यार्द के भीतर से पैदा होंगे और किसानों की संयुक्त ताकत से ही यह क्रांति होगी।

१९०० में गांधी ने जब 'बहिष्कार' के स्थान पर 'असहयोग' तथा राष्ट्रीय राजनीति में 'अहिंसा' और 'असहयोग' के तत्त्वों का मिलाया तो राष्ट्रीय राजनीति में एक बुनियादी फर्क प्राया। यह फर्क गुणार्थक था और इसने राष्ट्रीय राजनीति उगी सांस्कृतिक अवधारण से जुड़ गई जिसके मसीहा राजा राम-मोहन राय थे।

डागा में अपनी संस्कृति का विकास
 है। उसका चरित्र ही है हमारे का

यही निस्संभ्रम गहन प्रयोज राजनीति
 कागरण हुआ। पर बहुत जल्द उस
 में भारतीय राजनीति का जन्म
 अष्टमि रानादे जैसे लोगों के शक्ति
 से भारत का अन्ध नये अनुभव के
 पर राष्ट्रवाद की धोर भूकम्प लगा।
 ही, अपनीमा का ज्ञापन जैसे शीघ्र-
 दृष्टि में स्वतंत्र राष्ट्रों का राष्ट्रीय
 काम की गरी। इसमें हमारे राष्ट्र
 ति और अर्थनीति में टूटकर आयर-
 ने वाले देशों की विचारवादाओं की
 ग पागे चलकर उस राजनीति के ही

संगठन क्रान्तिकारी राजनीति।
 ति पागे फूटी और तिलक इसके नेता
 वर्ष में राष्ट्रीयता की भावना केनेभी
 केनेका, भारत में अर्थनी राज टूट
 ही, लाला लाजपतदास, श्री अरविन्द

सकोगे राजनीति इस देश में अपनी।
 नी नरसो में म एकाध की सहायता
 टे राज की मदद में भारत अर्थनी
 गृही, अरविन्द की गुन्गामी से मुक्त
 लेयाद सावित्र हुआ। यहाँ तक पहुँच-
 रदात हो गया कि भारत में जो भी
 गा और वहने हुए देश मन्वजन के
 क संकग से ही वह काति होगी।
 स्थान पर 'अमहयोग' तथा राष्ट्रीय
 की का विनयता राष्ट्रीय राजनीति
 वास्तविक था और हमारे राष्ट्रीय
 बुड़ गई जिसके मसीहा राजा राम-

इस तरह गांधी के व्यक्तिगत से भारतीय राजनीति, राजनीति न बहकर
 'नव्यायुह' हो गई। यह 'नव्यायुह' 'महिना' के पाठ में एक ऐसा सांस्कृतिक नव-
 जागरण बना जिसमें देश की आजादी में अन्धा मदत्तपूर्ण वह नया इमान हो
 गया, जो बुनियादी तौर पर नैतिक है, सामाजिक और मानवीय नव अंतना
 का वास्तव प्रणवी है। इसी राजनीतिक परिवार में अनेक अवप्रकाश, डा० लोहिया
 और श्रीरदवाच उपप्राप्य आए।

गांधी का महाप्राची आतिशाय प्रेम का नया शास्त्र या जिसमें अंतो की,
 विज्ञान की दृष्टि थी और बुद्ध, महावीर, ईसा, इज्जत गृहभ्रमद तथा वैष्णव
 प्रेम और नवमानववाद था। गांधी ने 'महाप्राची' मानववाद में बदल गया।
 अतद्वयग अज्ञान में परिणत हो गया और अज्ञान नवितय हो गई, और अंततः
 आजादी का अर्थ और प्रयोग यत्नयता नहीं, 'स्वराज्य' हो गया। इसमें अथ
 हिन्दू-मुसलमान, सिख-ईसाई, छूत-अछूत, देहानी-महरी, स्त्री-पुरुष, ब्राह्म-वालक,
 महा-विस्था और निरक्षर—संपूर्ण भारत का प्रत्यक्ष नागरिक युग रूप में गांधी
 में जुड़ गया। हजारों वर्षों की व्यवस्था गहरी बार टूटकर भारतीय संगमनी
 संस्कृति में नहाकर एक्यभाव में जुड़ गई।

गांधी का महाप्राची सांस्कृतिक आतिशाय अहिंसा के आग में अर्थनिष्ठ
 हो गया और एक अधोनिष्ठ तेज प्रकाश भारत भूमि पर फूटा। इसके प्रभाव में
 अहिंसा शासकों ने जो सहूलियतें मिलनी थीं और अरविन्द को कभी नहीं दी, उन्हें
 गांधी को देने के लिए भीतर में बाध्य जाना पड़ा। अरविन्द और तिलक अथपि
 अपने सिद्धांतों से निःसह्य क्रान्तिवादी थे परंतु अहिंसा शासकों को लगता था
 कि वे यहवुतः अहिंसा नहीं मानते। इसीलिए वेम्पफांडे, रीटिंग, इतिन और
 लिन्थियेणा के अमाने में (राष्ट्रीय अंदोलन के प्रारंभिक दौर में) गांधी को
 जो रियायतें मिली वे तिलक, अरविन्द को कभी नहीं मिली।

गांधी देश की आजादी की लड़ाई के भीतर में दरममन स्वराज्य, लोक-
 राज्य, आत्मराज्य, रामराज्य की साधना में लगे थे। परन्तु नहीं पूरे भारत-
 वर्ष को धरने मान लिए हुए। उनका स्वराज्य आत्मराज्य है, जिसमें कितो को
 भी बाध कृत्रिम संघन नहीं पालने होंगे और जहां अंधधारी राज्य संस्था की
 कोई अवश्यकता न होगी। यह आत्मराज्य लोकगता और समाजसत्ता से भी
 पर है और उसकी प्राप्ति तत्त्वावही अविन म्वानथ के जरिए ही हो सकेगी।

धार्मिक सामाजिक सुधारकों की तरह उनकी वृत्ति अतर्मुखी थी।
 विवेकानंद, राजा राममोहन राय और ईश्वर की तरह गांधी शक्यी गुन्गामी
 का कारण हमारे की वनिस्वद स्वयं को मानते थे। आत्मोन्नति और आत्मसुद्धि
 की ही वह स्वराज्य प्राप्ति का मार्ग मानते थे। उनका विदवात था कि आधुनिक
 यूरोपीय मम्यता की स्वीकार करने से हमारी उन्नति नहीं भवन्ति होगी।
 वह मानते थे कि देश और समाज के राजनीतिक तथा धार्मिक अथहारी-कभी

पर मे धर्म का विखंडन हट जाने से किसी भी संभवता का नाश अनिवार्य है।

गांधी की इस संपूर्ण दृष्टि को समझना और उसे धारण करना करना कार्य नहीं था। इसलिए हमारे राष्ट्रीय विचारों का यह वृक्ष जिसका दर्शन हमने प्राचीन और मध्यकालीन भारत में धर्म के क्षेत्र में किया, वही अब साधुनिक भारत में राजनीति के क्षेत्र में गांधी के रूप में हमें देखने की मिलता है।

भारतीय मनोपातः गहन है प्रेम। प्रेम को इस विरूप से वर्तमान भारतीय राजनीति में उन्का प्राबल्य उभरेकनीय है : १. कांग्रेस (रामाहर-लाल नेहरू), २. समाजवादी (जयप्रकाश, डॉ० मोहिया), ३. साम्यवादी (मधुसूदनाचार्य), ४. राष्ट्रवादी (दीनदयाल उपाध्याय) और ५. समाजवादी (दुर्गा गंधी)। इस समर्थ की मुख्यतः और परिष्कृत अर्थ में और अधिक गहराई से देखा जा सकता है।

गहन केवल प्रेम है, शक्ति है। पर विरूप कही महत्वाकांक्षा है कही क्रोध, कहीं विरोध है कही युद्ध, कहीं भावुकता है कही सहकार, और कहीं मय है। साधुनिक भारतीय कांग्रेस, समाजवाद, साम्यवाद, राष्ट्रवाद आदि का जन्म परतप भारतीयों की अवस्था में हुआ। इनमें से किसी का भी स्वयं राष्ट्र का वैभव बढ़ाने के लिए साम्राज्य विस्तार नहीं था, बल्कि भारत से भारत तक किसी न किसी गुलामी, दासता, परतपता से बाजार होना संभव लक्ष्य रहा है। इस प्रक्रिया में, कहीं वेदान्त का पुनरुज्जीवन, वैष्णव संत संस्कृति का नवजागरण, कही गांधी के साथ मार्क्स अधीन महात्मा के साथ वंग संघर्ष, कही गांधी के पूर्णतः विपरीत केवल वंग संघर्ष, कहीं भारत में फिर से हिंदू स्वतंत्राचार यहां विकसित हुआ।

हीमल का विचार है कि "राजवादा की अपनी अंतरात्मा की राजा है और राजसभा से ही गई सभा के माने हैं अपनी आंतरिक प्रेरणा या व्यावृष्टि का उत्कर्षण करने से प्राप्त दुःख।" इनके विपरीत साधुनिक भारत के वेदान्त में यह विचार पैदा हुआ कि अपनी अंतरात्मा के आदेश का पालन करने के लिए राजसभा के अन्यायी संघर्षों को तोड़ना हमारा आध्यात्मिक कर्तव्य है—गांधी, मोहिया, जयप्रकाश, मधुसूदनाचार्य, दीनदयाल उपाध्याय के विभिन्न पुरुष स्वर हैं।

पर इन स्वरों का जो आदि स्वर है, जहां से ये सारे स्वर पैदा हुए हैं, सुनें हैं, दूरे हैं फिर नूते हैं—महात्मा गांधी जिसका नाम है, महात्मा ही जिसका अर्थ है, उसका विचार था कि अगर नरेशों और नृजीपतियों के अहंकारवादी महसूसों से या उनके मानहृत राजनीतियों द्वारा साधुनिक भारत का निर्माण हुआ तो यहा लोकतंत्र स्थापित होने के बदले सामंतशाही का सामन जम जाएगा। गांधी के दिमाग में भारतीय लोकवादी का जन्म प्राप्त जनता को हमियार देकर नहीं, बल्कि उसका आत्मशुद्ध शक्ति करने से और अन्तर्निमित्त

होने वाले सर्वश्याम गांधी ने इस निकल लोकतंत्र कनेगा वह व वादी प्रवृत्ति के अफक

परंतु भारतीयों की जगह सारे अपने इल के विचारक नरेश ही गया। वही नहीं राजनीतिवा पतन के और फिर स्वातंत्र्योत्तर

राजनीति का स कापिस का अर्थ था कि स्वामी महत्कर श्री मर्यादाजित्क कथित नहीं रही। १९३७ में की विकारिश भी स्वयं नंतरवाजागी का

मनु १९५२ के वा में जाने लगी, हुआ ही महात्माकाक्षा की प्रति स्थान पर नये प्रकार के लगे। इसका कारण देश की आजादी के लिए जो वे अशा था, महात्मा अंग्रेजी राज स्वतंत्र होने अख कांग्रेस को संग कर पर नये राजनीतिक दलों विख्या गया साधुनिक

असमय होना यह से कोई भी क्रान्तिरीक स्वभावतः ही नई क्रान्तिवादी जाग, जिसे मार्क्स-निर्माण बुद्धिवादी, नृजीपतियों पर और अतः की कति में केवल ही महात्मा का

वृक्ष का नाम अनिवार्य है।
र उस धारणा करना गरल
वृक्ष वृक्ष जिसका दर्शन हमने
में दिष्ट। यही एक आधुनिक
के दोषन से मिलना है।

के इस विचार में वर्तमान
स है। १. कांग्रेस (जनसं-
लोचिका); २. गान्धीवादी
) और ३. गान्धीवादी (इतिहास
में ही और अधिक गहराई से

यही मन्त्रवाक्यांश है नहीं
है नहीं प्रहारा, और नहीं
मास्त्रवाद, राष्ट्रवाद आदि
इतने में किसी का भी लोच
न नहीं था, बल्कि आरंभ से
यहां ने पायाव होगा सबसे
अतीवर्षा वीर्यव संन मन्त्रुति
मन्त्रावर्ष के साथ जसे संघर्ष,
कहीं भारत में फिर से हिन्दु

अन्तरात्मा की आजा है और
निक प्रेरणा या व्यापकता का
वृत्तिक भारत के अन्तर्गत ने वह
म का गालन करने के लिए
आधुनिक कर्त्तव्य है—गान्धी,
की आस्था के विभिन्न पुरुष

हमें गारे रयर पैदा हुए हैं,
का नाम है, महात्माजी जिसका
र पनीतियों के राजदरवाजे
आधुनिक भारत का निर्माण
सामन्तवादी का आसन जम
को का जगम साप जवना को
करने से और हममें निर्मित

होने वाले सर्वेक्षणों अधसहयोग युद्ध तथा नातिमय कानून संघ से होगा।
गान्धी ने यह निष्कर्षा था कि भारतीय जनता में आत्मबल के संगठन से जो
लोकसंग्रह अभियान वह वाद्यों हमने के अक्षावा भीतनी नागःशाही व साक्षात्प-
वादी प्रवृत्ति से सफलतापूर्वक अपनी प्रथा कर सकेगा।

परंतु भारतीय जन-मानस में आत्मबल पैदा करने और संगठित करने
की जगह अन्ति-रूपने राजनीतिक दल को संगठित करना और वह भी दूसरे
दल के निनाफ लक्ष्मी के अन्ति संगठित करना यही राजनीति का मुख्य कर्म
हो गया। यही नहीं राजनीति की मुख्य प्रकृति स्वार्थलाभ नरना हो गई। इस
राजनीतिक गतन के उदाहरण १९३७ के चुनाव से लेकर १९४२ के आंदोलन
और फिर स्वातंत्र्योत्तर भारत तक लगा-आर हमें मिलते लगे।

राजनीति का अर्थ हुआ वाद्यों महीने चुनाव लड़ने की चिन्ता! जिस
कांसेस का अर्थ था भाग और तपस्या, उसी कांग्रेस की स्थिति यह हो गई
कि आदी पहनकर और चार धागे का सदस्यता मुक्त देकर कोई गुंडा और
मगसमाजिक स्वभाव भी उसका अंग हो सकता है। यही कोई निपम या नर्यावा
नहीं रही। १९३७ से लेकर आज तक किसी विध्वंसक और अफसर के नबादने
की स्फिकारिश भी कांग्रेसजन करने लगे। चारवावादी की लोकने की जगह
स्वयं चारवावादी का अंग हो जाता यही निपति हो गई।

सन् १९४६ के बाद राजनीतिक सत्ता एक और रूजीवादी समाज के हाथों
से जान लगी, दूसरी ओर उसे कुछ विभिन्न जोर अपने व्यक्तिगत स्वार्थ और
महात्मा-कक्षा की प्रति का साधर मानने लगे। पुराने जर्मीवादी और आर्मतो के
स्थान एन नये प्रकार के राजनीतिक सामन्तवादी-रूजीवादी भीष तैयार होने
लगे। इसका कारण यह था कि १९४७ तक जो लोग कांग्रेस में आए, वे उसे
देम की आजादी के अन्ति चलने वाला एक आंदोलन मानते थे। इंगीनिष् गान्धी
जो ने कहा था, महात्माजी मन्त्रावादी नहीं हो सकता। उनकी मन्त्राह थी कि
अपनी राज स्वयं होने के साथ ही आंदोलन का लक्ष्य पूरा हो गया है और
अन कार्यस को संग कर देना चाहिए। सुनिश्चित सिद्धांतों व नीतियों के आधार
पर नये राजनीतिक दलों की उद-स्थापना होनी चाहिए थी। किन्तु ऐसा नहीं
हिया गया—आधुनिक भारतीय राजनीति को यह सबके अर्थकर चटना है।

दरसमय होता यह है कि जो की राजनीतिक दल अपने संबंधों और आंदोलनों
से कार्य भी कांग्रेसी कार्य पूरा करता है, उस दल में हम संघर्ष की प्रक्रिया में
स्वभावतः जो नई शक्तियां दल पर अथवा प्रकृत जगा लेनी हैं—दल के निहित
स्वार्थी लोच, जिस 'हृ-दंभमान' कहा जाता है, और समाज का एक विशेष वर्ग
जिसमें बुद्धिजीवी, रूजीवात, अफसर आदि की परस्पर मिलीभगत रहती है।
मान और हम की कतिमो का उदाहरण सामने है। इस रहस्य को पूरे विश्व
से केवल दो महापुरुष जानते थे—महात्मा गान्धी और गान्धी। गान्धी की बात ही

नहीं मानी गई, उन्हें गोली मारकर उत्तरजाति के दूध से डी हटा दिया गया। वह महत्वपूर्ण कार्य केवल माओ कर सके। चीन भी 'सांस्कृतिक क्रांति' का मुख्य अंग यह था कि राजनीति, समाज और अर्थव्यवस्था में जो एक विशेष वर्ग पैदा हुआ है, उसे समाप्त कर दो। यह कार्य चीन के जनता और पार्टी नहीं हुआ।

भारतवर्ष की राजनीति में इसका क्या फल हुआ ?

एक ओर सत्ताधारी कार्यकर्तृओं और दूसरे में से टूटकर छलप निकलना समाजवादी दल : तीसरी ओर लोकतंत्र में अविधवात रखने वाला साम्यवादी दल। इनके अलावा धर्म और जाति के आधार पर विकसित अकांक्षी दल, राम-राज्य परिषद, हिंदू महासभा, उच्चिष्ठ मुनेष कपडम्, स्वतंत्र पार्टी, भारतीय क्रांति बल, विद्याल हरियाणा पार्टी, देशभंगा प्रजा समिति आदि क्षेत्रीय पार्टियां राजनीतिक क्षेत्र में कार्यरत हुईं। जबकि १९४७ के बाद का समय यह समय था जब हजार वर्षों की दारुणा में मुक्ति पाकर भारत की राष्ट्रीय भावना अपनी लोकतंत्रीय प्रकृति के अनुरूप राजनीतिक क्षेत्र में प्रकट होना चाहती थी। अंततः स्वतंत्र भारत की तृष्णाई एक नवीन चेतना के साथ कथनः इन तीन धाराओं में प्रवाहित हुई : (१) समाजवादी, (२) साम्यवादी और (३) जनसंघ (शार० एम० एन०)।

समाजवादी सामान्यतः उत्तर भारत के राजेशो और मुख्यतः बहरी मध्यवर्ग के व्यक्ति थे—जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, अशोक मेहता, आचार्य नरेन्द्रदेव, अश्विन पटवर्धन, एम० शार० ममानो, कदलादेशी जट्टी-पाण्ड्याय, पुरुषोत्तम बिष्णुदास, युमुक्त मेहराबली, गंगाधर सिंह आदि—सैद्धान्तिक रूप से ये अक्षयवाद की तीन विद्यित प्रवृत्तियों में विभाजित थे : (१) मार्क्सवादी, (२) अंधेरी मजदूर दल तरीके नामांतरित लोकतंत्रवादी तथा (३) लोकतंत्रात्मक समाजवादी।

जिन पर गांधी जी के विकेन्द्रीकरण विज्ञान तथा अविनय व्यवस्था के राष्ट्रवादी आंदोलन एवं वर्ग संघर्ष का प्रभाव था, इस प्रवृत्ति के मुख्य प्रवर्तक थे एम० शार० ममानो और अशोक मेहता। तीसरी प्रवृत्ति के नेता थे राममनोहर लोहिया और अश्विन पटवर्धन। समाजवादी भारत को महत्त्वपूर्ण अर्थ दिया जा० लोहिया ने "बहु अर्थ है अनाशक्ति का, अविनय और ऐसी चीजों के प्रति लगाव जन्म करने या कम करने का, ओह बचाने का।" इस अर्थ में वास्तविक रूप से भारतीय सांस्कृतिक क्रांति के बहुआपी आशय थे। गद्य ही इसमें बहु आर्थिक,

१. 'समाजवादी आंदोलन का इतिहास', डा० राममनोहर लोहिया, रा० एम० ममानो द्वारा विद्यालय न्याय प्रकाशन, पृष्ठ एक।

सांपादिक, राजनीति-स्वयंभू अरुण भी न

आकांक्षी मित्र

हस्तांतरण किया ता

दल) के नामने यह

प्रकार सही रूप में

परस्पर विरोधी नि

एक तीव्र विचारधारा

भाग में परस्पर वि

हुई। पहली प्रवृत्ति

तत्कालीन प्रधानमंत्री

पूर्ण घटना समझी ग

नीतियों में हम वास्तव

पुनर्मुख्यतः का

जिम्मे एक ओर कां

गया और इसके परि

किया गया।

दल प्रवृत्ति का

अण्डिते, ज्योति अमु

के प्रति प्रतिवादी वि

द्वारा उद्योग गण उन

साक्षात्पर्यवेष्ट, क्षान

अनितयों के विपक्ष थे

का संपर्क और भी

साम्यवादी आंदोलन

रहा था।

इसके अलावा सं

अल संघ और चीन के

साम्यवादी दल के भी

पाकि और आदर्शवा

और विचार की इस गु

एहसा विमटन हुआ।

पो० पार्टी०, फिलहाल

एम०० यह महत्त्वपूर्ण

जन्दी में जन्दी किरी

वृक्ष से ही उठा दिया गया।
 यही 'संस्कृतिक' अर्थों का
 व्यवस्था में जो एक विशेष वर्ग
 के अलावा और नहीं नहीं

का ?
 में से टूटकर अलग निकला
 प्रथम करने वाला साम्यवादी
 विकसित प्रकाशी दल, राम-
 स्वयंसेवक पार्टी, भारतीय क्रांति
 कादि क्षेत्रों पराटियां राज-
 काद का समय तब समय था
 की राष्ट्रीय आत्मा अपनी भोक्त-
 ट होना चाहती थी। परतलः
 प्रथम प्रथम इन तीन आगामी
 की और (२) जनसंघ (घार०

की और सुभयत, प्रहरी मध्य-
 और लोहिया, अणुभक्त मेरवा,
 मनाजी, कमलादेवी जट्टी-
 की, संवादण सिंह कादि—
 त प्रवृत्तियों से विभाजित थे।
 सामाजिक लोकसंघवादी, तथा

तथा मौखिक प्रवृत्तियों के राष्ट्र-
 प्रवृत्तियों के मुख्य प्रवृत्तियों के
 की प्रवृत्तियों के प्रथमक थे एम०
 प्रवृत्तियों के नेता थे राममनोहर
 की महत्त्वपूर्ण भूमि दिया था।
 त और एम० जी० की प्रति
 की इस प्रथम में वास्तविक रूप
 के। साथ ही एम० में वह प्राथमिक,

मनोहर लोहिया, राम मो० मधुवा

वास्तविक, राजनीतिक नवदृष्टि की थी जिन्के आधार पर १९४० के बाद
 स्वतंत्र भारत की नई रचना की जा सकती थी।

माजादी सिद्धे पर भारत के तत्कालीन शासकों ने जब दखिेन को सत्ता का
 हस्तांतरण किया तभी से भारतीय साम्यवादी दल (उस समय अविभाजित एक
 दल) के सामने यह समस्या रही कि सत्ता के हस्तांतरण के निहितार्थ का किस
 प्रकार नहीं रूप से सुझाकर दिया जाए। इस समस्या के बारे में दल के भीतर
 परस्पर विरोधी विचार प्रस्तुत किए गए और इनके फलस्वरूप दल के भीतर ही
 एक तीव्र विचारधारात्मक, राजनीतिक और संगठनात्मक संघर्ष उठ खड़ा हुआ।
 प्रायः दो परस्पर विरोधी विचारधाराएँ दो विशिष्ट प्रवृत्तियों के रूप में उभर
 हुईं। पहली प्रवृत्ति के अनुयायी कांग्रेस और इनकी सरकार की नीतियों की
 तत्कालीन प्रथममंत्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा की गई सामर्थ्यी दिशा एक महत्त्व-
 पूर्ण घटना समझी गई। इसके समर्थकों ने यह समझा कि सत्ताहस्त अंतर्गत की
 नीतियों में इन सामर्थ्यी परिवर्तन से सब कांग्रेस प्रतिक्रियावादी नहीं रही। इस
 प्रथमसंज्ञक के कारण उन्होंने 'राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे' का नारा सुनंद किया
 जिनमें अरु और कांग्रेस को और दूसरी और साम्यवादी दल को शामिल किया
 गया और इसके परिणामस्वरूप 'एक मित्रो-जुनी सरकार' बनाने का संकल्प
 किया गया।

इस प्रवृत्ति का दल के अन्य नेताओं ने कहा विरोध किया जिसमें प्रमुख थे
 लालदिवे, ज्योति बसु और तंबुदरो पाद। उन्होंने 'कांग्रेस और इनकी सरकार
 के प्रति वृत्तिवादी विरोध' का नारा सुनंद किया। यद्यपि वे कांग्रेस सरकार
 द्वारा उठाए गए उन कदमों को अर्थात् समर्थन प्रदान करते रहे जो वास्तव में
 साम्राज्यवाद, सामंतवाद, एकाधिकारवादी वर्गी और अन्य प्रतिक्रियावादी
 शक्तियों के विरुद्ध थे। तत्कालीन अविभाजित साम्यवादी दल में दल के भीतर
 का संघर्ष और भी अधिक तीव्र और कटु होता गया, क्योंकि यह अंतरराष्ट्रीय
 साम्यवादी आंदोलन में तेजी से बढ़ने हुए बाद-विवाद की परिस्थितियों में हो
 रहा था।

इसके अलावा मोक्षयत के साम्यवादी दल की दोसरी कांग्रेस के बाद सर्ववि-
 यत संघ और चीन के साम्यवादी दलों के बीच उत्पन्न विभेदों के कारण भारतीय
 साम्यवादी दल के भीतर सत्ताहस्त दल की विचारधारा के समर्थकों में अधिक
 शक्ति और आत्मविश्वास का भाव बढ़ा। राष्ट्रीय नहीं, अंतरराष्ट्रीय विरोध
 और विवाद की इस पूर्वपीठिका से ही १९६८ में भारतीय साम्यवादी दल में
 पहला विघटन हुआ। दूसरा विघटन अक्षयवाद को लेकर हुआ। प्रादि में मो०
 गो० पाई०, विश्वहाल संत में नी० पी० पाई० एम० एल०, बीच में मो० पी० पाई०
 एम०। यह महत्त्वपूर्ण है कि ये तीनों दल इस बात के विरुद्ध थे कि वे
 जल्दी से जल्दी किसी भी उपाय से सत्ता हथिया लें।

इस बीच भारतीय जनसंघ नाम के हिंदू चरित्र और हिंदू विश्वास का यह राजनीतिक दल विकसित हुआ जिसने यह बहुत गहराई से अनुभव किया कि हमें ऐसी व्यवस्था चाहिए जो औद्योगिक हो पर साथ ही राष्ट्रीय हितों में कभी कोई संशय नहीं लगे। भारतीय जनसंघ के भावी संस्थापक अन्वय डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने स्वयं यह भारत की प्रथम केंद्रीय सरकार में एक मंत्री बनकर यह अनुभव किया कि सरकार होने के बाद, कांग्रेस एक उच्चकोत संस्था के तौर पर अधिकार की स्वीकृति में समिद्ध होनी पड़ी है। समाजवादियों और माध्यमवादिनों के विरुद्ध अलग और स्वतंत्र दिशा में एक सर्वथा नए राजनीतिक चरित्र के माध्यम तंत्र में सरकार बन के विकल्प की आवश्यकता यह बड़ी तीव्रता से अनुभव कर रहे थे। अस्मीर के प्रति तथा पूर्वी बंगाल की विनाशनी स्थिति के प्रति देश की नीति में सुधार करना समझ में आ रहा था। इनमें ही ८ अप्रैल, १९४० को नेहरू-विद्यार्थक संसदीयों के अनुसार यह मान लिया गया कि पाकिस्तान स्थित अल्पसंख्यकों के प्रति भारत सरकार का कोई दावा न होगा। इस पर उसी दिन डा० मुखर्जी ने सरकार से अपना त्यागपत्र दे दिया। १६ अप्रैल, १९४० को उन्होंने मंसूर में कहा, "पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं की चिन्ता तथा प्रतिकारों ने यह आश्वासन दिया था कि यानी पाकिस्तान शासक में यदि उन पर आवश्यकता पड़ेगी तो स्वतंत्र भारत एक आसानी उभरकर सामने नहीं रहेगा।" २९ अक्टूबर, १९४१ को दिल्ली में रावोमल शर्मा कल्याण उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अखिल भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई। इसके प्रथम अध्यक्ष थे डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी।

भारतीय स्वतंत्रता के चार ठोस रूप विकृत हुए, जिसमें आजादी तो किसी, पर स्वराज्य अभी नहीं प्राप्त हुआ। स्वराज्य प्राप्त होना है सांस्कृतिक क्रांति से। आजादी के चार ठोस रूप जो विकृत हुए, जिसमें स्वराज्य प्राप्त में आधा हुई, वे हैं: (१) देश का संतुलन। (२) अन्तर्गत अंतर्गत साम्राज्य का अंत। (३) राजाओं, तपोदानों की ताकत का निर्भीक भी रूप में खतम करना। (४) नौकर-शाही तथा सेना की ताकत का राजकीय और राष्ट्रीय हितों रतनों पर बहने करना। इस राजनीतिक विचार का प्रभाव तीव्र हमारे राजनीतिक चरित्र पर पड़ा। साम्यवाद राजनीतिक दलों के चरित्र पर, जैसे राजनीतिक दलों का एक ही काम है - चुनाव लड़ना और किसी भी तरह जीतने की कोशिश करना, और फिर निर्णय लेना उन से विपक्ष रहना। राजनीतिक दल जैसे मनुष्य-यानों की मशीन हो। चुनाव के समय दल जीवित हो जाते हैं, चुनाव खत्म होते ही मर चुकते हैं। जैसे मरे हैं। डाकू हों, नृत के बाद राजमानियों के संस्था में आ छिपना। राजमानियों में अद्वैतों ने, फिर कांग्रेस हकूमत ने एम० सी० और एम० एल० ए० लोगों के जो निवागस्थान बनाए, लगना है वे ऐसे कैंटीन हैं, जहाँ कोई एक बार आकर गया के लिए मतला से और अपने कार्यकर्त्यों ने

कट जाता है। मैं
की शिम्बन भारत
युष्मान रा
के इस्तेमाल हो
यह पता है कि या
वगे के सेवक ने
पलट १९४१ परतो
संघर्ष और जनसं
छात्रों के पलट है।
कि जनसंघ समर
पिछले लोगों के अ
स्वरूप होगी।

आजादी के क
करने की रणनीति
विचार में जो युक्ति
सिद्ध प्रायः सभी रा
प्रभाव है। तभी द
में एक पराक्रम हुई
चुनाव लड़ा, राजा
ही नहीं रह गया।
पत्रोंकी राजनीति
प्रक्रिया में व्यक्ति
परस्पर श्रेयस की
का गहरा दोष।

एक ओर विर
तीव्रता और कोई
तभी मार्क्स राजनी
यह पता है कि प्राय
ओर सब अपने अपने
अर्थों का अनुभव,
चिन्तन प्रति है, कि
एक कार्य शाना अर्था
इस विरोधाभास
सामान्य लोगों के नि
की, परिवर्तन की

और श्री हिंदू विश्वास का वह
 न गहगर्द के अनुभव विना कि
 राष्ट्र ही राष्ट्रिय हितों में सभी
 भारी संस्थाओं सम्पन्न होना
 केंद्रीय सरकार में एक संघी
 त, कार्योत्तर लक्ष्यहीन संस्था
 की जा रही है। समाजवादीयों
 दिमा में एक सर्वथा नए राज-
 के विचारों को संवर्धन का वह
 न तथा पूर्वी बंगाल को विगड़ती
 भेद बन रहा था। इनमें ही
 के के अनुभार वह मान विद्या
 भाल सरकार का कोई राज
 र में अपना स्वायत्त दे दिया।
 ही बंगाल के हिन्दुओं की नीने
 साक्षात्कार सामान में यदि इस
 भोग दर्शक भाव नहीं रहेगा।"
 कार्य कला उत्तमतर साधक
 हुई। ३५५ प्रथम संवत् ४५

कट जाता है। सत्रियों के इतने विशाल दलिक टरावने शंकाओं में गैर रखने
 की विभक्त भारत की किसी जनता में हो सकती है ?

वर्तमान राजतन्त्र पहले लेती है, फिर देती है, पर तब तक इस उम्र राम
 के इच्छेपाल चीन भोग के लायक ही नहीं रह जाने। उम्र वृद्ध का मूर कारण
 यह रहा है कि भारत की राजनीति अभी तक कबल ऊंची जातियों और धनिक
 वर्ग के नेतृत्व में नीतिहीन रही है। ऊंची जातियों में जैसे परम्परा मरणा या उत्पत्ति-
 पन्थ हुआ जाती है। पहले जैसे राजाओं में परम्परा चुड़ होते रहे हैं। नही
 संघर्ष और उत्पत्ति-पन्थ कायेग, समाजवादी, साम्यवादी, स्वतंत्र और समर्थ
 खाति में प्रकट है। डा० जोशिया के प्रश्नों से यह एक नया पक्ष सामने आया
 कि सर्वथा सगर राजनीति के दायर को बदलना है, नो लोटी जाति और
 पिछड़े जातियों के सार नेतृत्व बनाना है, तभी भारत की राजनीति एक नया
 स्वरूप लेगी।

या रादी के बाद की राजनीति मुक्त-निर्वा (इन्डिपेंडेंस) बना शासित
 करने की राजनीति रही है और यह चूकि मन्तव्यहीन रही है एक ऐसे
 विचार में जो धुनियादी तो पर धुनियादी है और संस्कारों से जो सामंती है, इस
 लिए प्रथम सभी राजनीति इनो के नेतृत्व में चीन उसके कार्यकर्ताओं में भी राज का
 शभाव है। तभी इनके कोई विचारवादा करने क्यों में तब नहीं पायी। चूनाव
 में एक पत्राजय हुई त्यों कि सदा के लिए मन विचलित। और जो एक बार
 चूनाव रखा, द्वारा का विनयी हुआ, वह सदा के लिए किसी और काम के लायक
 ही नहीं रह गया। फिर उसका जीवन परजीवी (पैरासाइट) हो जाता है। इन
 राजकीय राजनीति में एक शीघ्र संपन्न व्यवस्था का जन्म होता है। इसी
 प्रक्रिया में व्यक्ति और समाज में हिमा, अकर्मण्यता, भ्रष्ट, साठंबर और
 परम्परा बोधण की नई संस्कृति पैदा होती है। इसी का डा० जोशिया ने, 'वैश्या'
 ना गया दो धा : और कहा था, "नई दिल्ली एशिया की नवम बड़ी शहर है।"

एक और विवाद औरत रहे स्थिति में, दूसरी और सतत फिगशीयता तथा
 तीसरी और कोई महत्ता नाभाजिक, राष्ट्रिय और वैश्विक साधन ही, धुल्य ही,
 तभी नार्थक राजनीति होगी। स्वतंत्रता-पर राजनीति का भयंकर विरोधाभास
 यह रहा है कि प्रथम सभी राजनीतिक दल कानि की, परिवर्तन की, बात करते हैं
 और तब अपने इच्छेपाल से नहीं अपने दलील से प्रेरणा लेते हैं। दल का अनीत,
 अनीत का नेतृत्व, कर्मी के भागड़े और चतुर्विध संघर्ष लेते हैं। वे जुगुप्से हैं,
 विभक्त होते हैं, फिर जुगुप्से हैं, फिर दूरते हैं, फिर गलत्य लेकर एक होते हैं,
 पर काठ अपना अनीत नहीं भूलते।

एक विरोधाभास का दूसरा पहलू यह है कि जिन समाज के लिए, जिन
 सामान्य लोगों के लिए वे लोच खाति या परिवर्तन चाहते हैं, उनमें लक्ष्य खाति
 की, परिवर्तन की कोई इच्छा नहीं, उमंग या चेतना नहीं है, उनमें इतनी

व्यक्त नहीं है, जागरण नहीं है, योग्यता नहीं है। इसलिए इस राजनीति की राजनीति ही यह है कि जिनमें व्यक्ति है, योग्यता है वही केवल क्रांति को जाने हैं और जहाँ क्रांति की अनिवार्यता है वहाँ क्रांति की चाह नहीं है। यहाँ सब कुछ उदास, निराश है, परस्पर फूट है, विश्वास है, उसका विश्वास केवल अदृश्य में है, वह और भी घनीत में घनेला हुआ है। इसी हिन्दुस्तान को पहली बार गांधी ने जपाया और संतुष्टि करता पाया था।

नार्थक भारतीय राजनीति की इस सच्चाई की रजोकार करना होगा कि हमारे समाज ने सदियों से अपनी सामाजिक विचार दृष्टि में बुद्धिपूर्वक परिवर्तन आना छोड़ दिया है। इस भारतीय समाज की बाह्य परिस्थिति में चाहे जितने परिवर्तन हो जाएं, लेकिन नमस्क-बुझकर वह अपनी सामाजिक दृष्टि में परिवर्तन नहीं करता। वह अपनी बुनियादी अज्ञता है। इसे तोड़ने के लिए राजनीतिक नहीं समर्थनीय आवश्यक चाहिए। निम्न समय देश का महान मर्म, पुरुषार्थ नेताओं की आवश्यकता होती है। उस समय यदि वे पैदा नहीं होते तो यही कहना पड़ता है कि उस देश के अधःपतन का समय आ गया है या उसकी संस्कृति का विनष्ट नजदीक है।

संस्कृति वृद्ध में अथ रोग लग जाता है तब महान पुरुषार्थी पुरुषार्थी फल उसमें नहीं खपते।

हमारी वर्तमान संस्कृति के वृक्ष में जो फल लगे हैं, उन पर शक्ति मन्त्रियों में हम विचार करेंगे।

राजनीति

संपूर्ण को संतुष्टि कर देना, यही आई। गांधी और नीति को उस दृष्टि रखते हमारी संस्कृति हमारा संस्कृति

यम एक प्रकार के बाल के कर्णों की और संयोज धारण

हम कल्पना को और वास्तविकता की होता ? संभव था कि नाहीं खपता हिंदू

है। क्योंकि, तब तक में संयोज, टूटने उसमें वह तब ही लाकर एक नून में

जैसे मधुमक्खी विस्तार उभी तरह क्षेत्र, धर्म और जाति

उस छत का मधु खसुका था। मधुमक्खी छत को ही अपने चने

ऐसे समय ही खने गए तथा हम

निर्मूलक वृक्ष का फल

मरण ही राजनीति की
केवल भाति की बातें
ह नहीं हैं। महा मव
सका विचारम केवल
इसी हिन्दुस्तान को
।

कार लरता हीमा कि
दृष्टि में बुद्धिपूर्वक
बाह्य परिस्थिति में
हू शान्ति सामाजिक
ता है। इसे नाटने के
समय देश का महान
य यदि वे पैदा नहीं
ना समय सा गया है

व्याप्य धुकरुण्यि कस

व पर शगने आरुण्यो

आठवाँ अध्याय

राजनीति नहीं प्रेम : महात्मा गांधी

संपूर्ण को खंड-खंड में बांटकर देना, अर्थात् हर चीज को एक-दूसरे से अलग कर देना, यही थी पश्चिमी दृष्टि जो अंग्रेजों के पाठ्यपुस्तक से इस देश में आई। बांटो और बाँट करो, ताँडो खींच तुलाम बनाओ, यही थी वह राजनीति जो उस दृष्टि से निकली। पर बटने और टूटने के गारे तत्त्व तब तक स्वयं हमारी संस्कृति में भी उत्पन्न हो चुके थे।

हमारा मौखिक पर तब तक जैसे बालू स बनी हमारत ही चुकी थी, हम एक भवता देने की जरूरत थी ताकि नव कुल दूर जाए, बंद जाए और बानू के कर्णों की तरह नव कुल बिखर जाए। वहीं जैसे अंग्रेजों ने किया, चीन संश्लेष अपने इस नाम पर स्वयं आश्चर्यचकित रह गए।

इस कल्पना कर सकते हैं कि यदि ईस्ट इंडिया कंपनी के अंग्रेज उदागारी और साम्राज्यवादी भयहर्षी-अठारहवीं सदी में यहा आए ही न होत तो क्या होता ? संभव था कि गिरते हुए मुगल साम्राज्य की भित्ति पर दिल्ली में मराठा-गाड़ी अथवा हिन्दू पादशाही स्थापित होती, पर वह कल्पना तर्कसा निगधार है। क्योंकि तब तक भारत स्वयं अपने भीतर चीन वाहर इनके छोटे-छोटे हिस्सों में बाँटकर, टूटकर इस कदर आत्मसुरक्षा के भय में लामोश हो चुका था कि तबमें वह तब ही पक्ष्य या तिमर के गहारे लोगों को उनके बंद धरों ने बाहर लाकर एक मूत्र में मगडिन किया ता सकत और उन्हें निर्मूल किया जा सकत।

जैसे मधुमक्खी आरुण्य होता है, तपाम छोटे-छोटे सुरासों, परों का विश्वास उमी तरह उग समय था आरुण्य था, जिनके तपाम राजे-महाराजे, क्षेत्र, धर्म और जातियाँ अपने-अपने तब सुरासों में अलग-अलग रह रही थीं। उग लने का मधु मया जा चुका था, तपाम मधु रूने वने यह विधान विस्मृत हो चुका था। मधु मय के स्रोत एव न जाने कहा पक्ष्य हो गए थे। मय जैसे उग लने को ही स्वामि मने थे।

ऐसे समय ही तुर्क, हूण, मंगोल, क्रु, यह हमें लूटने आए और लूटकर चले गए तब हम अपने-अपने सुरासों (धर्म, संप्रदाय, आश्रम, जाति, संव-

निश्चय) में ब्रह्म बजाए बैठे रहे। इसके कई गुना बुरी हालत में संजोज हमारे छत्ते में घाटा था। पहले तो प्राकमणकारियों में हमारी कुछ लचक्याही हुई, पर इस बार हम स्वयं पढ़ते-लिखते को बने नले गए। इसका कारण यह था कि योरोप में तब तक जो कई स्वायत्त संस्कृति निर्मित हो चुकी थी, हमसे बचकर लेने की गणना हममें नहीं थी। और यह माने बिना चले नहीं है कि तब तक हमारी तो संस्कृति थी, वह प्राचीन या मध्ययुगीन (आधुनिक का तो प्रयत्न ही नहीं आठना) किसी भी प्रकार के स्वराज्य-रक्षण या स्वराज्य-संरक्षण के लिए वह असमर्थ हो गई थी।

मुसलमानों का राज्य और उसमें से पैसा हूए, धनक हूए, राज्यों की भराटों ने जंजर और दिजोब कर दिया था और उन्हें ऐसी घाटा होने लगी थी कि वे भारतवर्ष के सार्वभौम सत्ताकारी बन जायेंगे। इसके में ही संवेगों ने उनके अत्यापहल की एक धक्के में ही उठना दिया और भारतीय हिंदू-मुसलमानों का यह यकीन करा दिया कि आधुनिक राष्ट्रीयता का पाठ इनमें नीके कदम तूंग इस दुनिया में रचना होकर नहीं रह सकती।

आधुनिक भारत के निर्माण में राजा राममोहन राय से लेकर इंदुभाई, तिलक, रानाडे, गोपाले तक, स्वामी इयानंद से लेकर छारविद तक अनेक महापुरुषों ने बहुत्वपूर्ण कार्य किया था। परंतु जिस समर्पण, निष्काम भक्ति और अनन्यनिष्ठता से गांधी ने भारतवर्ष की आधुनिक बनाने का काम किया वह अभूतपूर्व है।

१८९० ईस्वी में विदावाई का संत होने में प्राचीन व मध्ययुगीन भारत का अंत हुआ और आधुनिक भारत का इतिहास गांधी से शुरू हुआ, गांधी के चरित्र में, गांधी के कर्म में और गांधी के व्यक्तित्व में। जो अब तक टूट चुका था, जो अब तक एक संपूर्ण में खंड-खंड और अलग-अलग टा चुका था, गांधी ने अपने प्रेमरस से संयुक्त उसे नीचे मिट्टी का गा। ऐसा हीच बना दिया जिस सब एक कर्म रूप दिया जा सकता था। अनेक धर्म और जातियों के लोगों ने, इतने धर्मरूप खंड-खंडों में, पधुहीन होने के नीचेन गुरांतों में 'संगमनी', 'संगम', अर्थात् राष्ट्रीयता के लिए गांधी की जाय और सामंतशाही को हटाकर लोकशाही अर्थात् प्रजातंत्र की स्थापना कैसे की जाय—ये ही सबक उस भारत को योरोप से सीखने थे। यह जात अनुभूति के अंतर से बहुत भारतीय भूमि पर, बहुत भारतीय संस्कृति में, गांधी ने दिया।

गांधी ने सबको छोड़ केवल रोषने को अपना गुरु क्यों माना ? वह गोपाले ही थे जो सबभ भारत को अत्यंत करुणा, अथाह प्यारी, और अत्यंत उर्द में अभिभूत थे। उरगु केवल गान के रगर पर। इगीलिए जब गोपाले ने गांधी का अपना मिथ्य म गा तो उन्होंने इसकी सुकर्म से दिया, 'बाबा मोहनदास करमचंद गांधी, पूरे भारत में धूमकर, भारत माता की अपनी आंखों से

देख आओ।

देख आओ।'

सपूर्ण ने

या, उरिद, पा

संगीत में जो

गीता, कुरान

ब्रह्मा का पुत्र

बोध—विना

भारत धूमि में

अपनिष्क, गी

अन्वय में,

दिया।

व्यक्ति

और धर्म, म

एक बार विवा

'विचार' नहीं

लिए धर्म को

का संबंध कि

नहीं था—बुनि

या, जिसकी उ

गर्भ में,

१९१५ में जब

उस समय भा

इन दो के प

विधिनिहित

का प्रातःकार

सक गांधी का

बोटे थे। उन

निके इतना ब

रूपने निष्प

कहा, हिंदुत्व

बनाना।

गांधी का

अपनी अर्थात्

समय बिना :

मुना युगे राजन में अंग्रेज हमारे
मे हमारी कुछ लड़ाइयां थी
ले गए। इसका कारण यह था
कि निर्मित हो चुकी थी, उसमें
है माने चित्त नहीं है कि
मध्यमवर्गीय (बहुनिष्ठा का जो
अनुभव का स्वरूप-संस्थापन

मनेश हमारे राज्यों को भारत
है ऐसी बातें होने लगी थी
जाएँ। पहले से ही अंग्रेजों ने
देश और भारतीय हिंदू मूल-
राष्ट्रीयता का घाट हमसे भींचे
सकते।

मोहन राम से लेकर दादाभाई,
से लेकर शरद्विंद तक अनेक
समर्पण, निष्काम धर्म और
नेक बनाने का काम किया यह

प्राचीन व मध्ययुगीन भारत का
गांधी ने शुरू किया। गांधी के
केल से जो अब तक दूर चला
लगा-प्रलया ही चुका था। गांधी
एक ऐसा हीद बना दिया जिसे
धर्म और आत्मीयता के लानों में,
ने गुणों के 'संगमनी', 'नेक',
निष्ठा की स्थापना करवायी
ही सबक एक भारत को भारत
शुद्ध भारतीय भूमि पर, शुद्ध

प्रपना गुरु वर्षों मध्या है वह
आपदा पत्नी, यौन अर्थ-... २६
उत्पीलित जब गोखले ने गांधी
संज्ञ दे दिया, "जामा मोरत-
भरत माहा को अपनी भारत से

देश आओ। मैंने जिसे पुस्तकों में देखा है अब तक, उसे तुम अपनी मानों से
देश आओ।" यह अद्भुत गुरुसंज्ञ या त्रिसका धर्म और अर्थ गांधी ने माना।

संपूर्ण ने संपूर्ण को पहली बार देखा फिर जो गणार्थ में खंड-खंड था, विभक्त
या, इतिहास, अभावग्रस्त और अस्थिर था, गांधी ने अपने प्रेम से उस सबको
संगीत में जोड़कर पहली बार एक, संपूर्ण कर दिया। उस नए संगीत में रामधुन,
गीता, कुरान और वाद्विध थी। उस संगीत में कल्ल मीरव का राग था,
महा का गुरुदत्तन था। अस्थिर अस्मानित इतिहास में बड़ी विभक्ति
बोध—विज्ञान, सृजन और पालन लीनी तक साथ शुरू हुआ। जो मानवत बीज
भारत भूमि में न जाने कब से सुपात गया था, वह संदूरित हुआ। उसने अंध,
अज्ञानपद्, मोता, रामायण, कुरान, वाद्विध को राम, बुद्ध, मुहम्मद, ईसा,
अल्लाह को, जो जीवन में हृदयकर अलग हो चुके थे, सबको जीवन में जोड़
दिया।

व्यक्ति और समाज, घर और बाहर, विचार और प्रानरण, राजनीति
और धर्म, स्वाचार और नीति, यद्ग और इद्ग जो सब तक अलग-अलग था,
एक कर दिया। इतने को अर्द्धत करना, यही गांधी ने किया। और वह गांधी
'विचार' नहीं 'प्रेम' से क्योंकि गांधी के विचार का आधार धर्म था। उनके
लिए धर्म की अनुभूति ईश्वर से थी, और उनका ईश्वर प्रेम था। उनके धर्म
का संबंध किसी परंपरा, किसी कर्म कांड या किसी प्रवर्तित धारणा न कन्ई
नहीं था—व्युत्पत्ती तोर पर गांधी के धर्म का संबंध उन नैतिक कानून से
था जिन्होंने उन्होंने प्रेम या सत्य के कानून का नाम दिया है।

सबसे मैं, मुझे सब—इस अर्थ का ये पृथक्पृथ गांधी, जतवरी नन्
१९१५ में जब भारतवर्ष आए, उस समय प्रथम विश्व युद्ध चल रहा था।
उस समय भारतीय राजनीति में गोखले और तिलक के भारत-प्रपने दम थे।
इन दो के अलावा एक तीसरा दम नगरत क्रांतिकारियों का था। गोखले की
विधिनिहित राजनीति, तिलक का विरोधक राष्ट्रकार पीत और क्रांतिकारियों
का आतंकवादी धर्म से सभी एक तरह से उस समय अलग ही चुके थे। ऐसे
मध्य गांधी अपने स्वयंप्रभु अर्थ द्वारा दक्षिण अफ्रीका से सकलता प्राप्त कर
चौटे थे। उस समय बंबई के गवर्नर लार्ड रिनिग्टन से पहली बार के गांधी ने
निके हतता कहा—“मैं भारतीय गोखले का विध्वनू।” इसके बाद गोखले ने
अपने शिष्य को हर फिरोजशाह मेहता से मिलाया। फिरोजशाह ने गांधी से
कहा, हिंदुस्तान दक्षिण अफ्रीका नहीं है। यह नामकर धार्मे का कार्यकम
बनाना।

गांधी का वह कार्यकम, वह साधन और साध्य या 'नत्याग्रह', और उनका
अर्थपूर्ण अर्थोत करवरी १९१६ में अन्नी हिंदू विध्वनिध्वानय के उद्घाटन के
समय किया।

"राज हिन्दुस्तान अधीर व धानुर हो गया है। अतः भारत में अराजकों की एक सेना तैयार हो गई है। मैं भी एक अराजक हूँ, लेकिन दूसरी तरफ़ का। अगर मैं इन अराजकों से मिल सकूँ तो उनसे जबरन कहूँगा कि तुम्हारे अराजकतावाद के लिए भारत में गुजायत नहीं है। हिन्दुस्तान को अपने विजेता पर अगर विजय मानी है तो उनका वह तरीका मय का एक मयन है। इसका यदि परभाव पर पूर्ण विकास और भरोसा है तो हम किसी से नहीं डरेंगे। रक्षा-महासभाओं से नहीं, वाइसराय से नहीं, लुफिग पुलिस से नहीं और स्वयं जानें संभव से भी नहीं।...हमें यदि कभी स्वराज्य मिलेगा तो तभी जब हम स्वयं उसे लेंगे। हमें दान के रूप में स्वराज्य कभी भी नहीं मिलेगा।"

इस प्रथम ऐतिहासिक वक्तव्य में लोगों में यह नया धारणा हुई कि हिन्दुस्तान में यह कोई नया राजनीतिक तन्त्र जाना जा रहा है। डॉ० एनी बेसेंट (जो उन उद्घाटन सभा की अध्यक्ष थीं) ने कहा कि एक सैनिक के नाते महात्मा गांधी भले ही बहुत बड़े हों, लेकिन राजनीतिक दृष्टि में वह एक दुर्बल व्यक्ति हैं। अगर उन के लोग कहने लगे कि इनका सत्याग्रह करने वाला अधिकार योग्य है। अगर उन के लोग कहने लगे कि इनकी अहिंसा और राज्यनिष्ठ संन्यासीता है, इसलिए ये हमी में हैं। सुधारक कहने लगे कि यदि गांधी जी भी यही कहते हैं कि हमारी गुलामी के कारण हमें ही और जब तक हमारा सुधार न होगा हमें स्वराज्य न मिलेगा, इसलिए गांधी जी सुधारक हैं। धर्म सुधारक कहने लगे कि महात्मा गांधी अममलधर्म मंत्र है और हमारे धर्म सुधार का तन्त्र उन्हें भाग्य है। यन्त्रतन्त्र कहने लगे कि गांधी उच्च व्यवस्थापालक माननीय हैं। यह तो साक्षात् परंपरागत है। इसी के द्वारा यहाँ रामराज्य की स्थापना होगी। नास्तिक कहने लगे कि गांधी कहता है कि सत्य के बिना कोई धर्म नहीं है और सत्य ही परब्रह्म है। इसलिए गांधी नास्तिक है। क्रांतिकारी कहने लगे कि गांधी हमारी ही तरह क्रांतिकारी है, लेकिन यह इसकी अनुराध है कि यह अहिंसा और अहिंसा की भाँड़ ले रहा है। कुछ लोग कहने लगे गांधी सरकार का ही एक लुफिग है। पूरे भारत में लोग गांधी के बारे में गिनने पुरु उनका जाने करने लगे।

१९१६ के अंत में गांधी का ध्यान किसानों के विरमिदियों की दृष्टि की तरफ़ गया। विरमिदिया प्रथा को अंग्रेजों के लिए हिन्दुस्तानियों को वाक्यदा गुलाम बनाकर अंग्रेजों की प्रथा ही कहना चाहिए। गांधी ने घोषणा कर दी कि यदि ३१ मई, १९१७ के पहले यह प्रथा खतम नहीं हुई तो मैं सत्याग्रह करूँगा। तत्कालीन वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड को यह प्रथा भारत रक्षा कानून के तहत खतम करनी पड़ी। यह भी पहली विजय।

दूसरी घटना चंपारण की है। गांधी के सत्याग्रह में शेरों के जुलम और शोषण का भी हाथ पुराना काला अध्याय समाप्त हुआ।

राजनीति नहीं प्रेम : महाराष्ट्र

तीसरी घटना जनवरी १९२० में जिनके साथ करबंदी के लिए क्रांतिकारियों ने यह विश्वास प्रकट किया कि सत्याग्रह के सफल प्रयोगों में उग और फल मरना है।

असमय तक जो सत्याग्रह हिस्सा नहीं ले रहे थे। गांधी के लिए पूरे भारत के साथ संघर्ष के कि स्वराज्य का जन्म, जिसमें तर्क, बलि गत्याग्रह और राष्ट्रीयता की स्थापना संघर्ष का १९१९ को किया।

१० मार्च, १९२० को इंदी गांधी ने घोषणा की, "जो व्यक्ति बल या जाना है कि उसे कोई है, असहयोग।" महयोग से जा सामिक भावनाओं को खंड लगे

इसी आंदोलन के में विरमिदिया हुए और सत्याग्रह मुकदमा चला। इस ऐतिहासिक क्षुशी है कि नागरिक स्वतंत्रता (अ) भारत के अनुसार मुकदमा बिक मुकदमा चलाया जाना में

अपने निश्चित ज्ञान से पदम विषयों पर पहुंचना पड़ा। दोनों दृष्टियों से भारत को इतने नहीं था। गांधी के अंतर-धीरे-धीरे मृतप्राय होती जा रही उन्हें यह नहीं सूझता कि विरमिदिया गरीब श्रम जनता की इस प्रथा भी तरह के विरमिदिया अध्याय नहीं जा सकता, जो भारत के क्रांतियों के सामने प्रस्तुत करने हैं

। पत्र: भारत में राजाओं
 जकड़, लेकिन दूसरी तरफ
 उसे जकड़ करेगा कि तुम्हारे
 हिंदू मान को अपने विजेता
 का एक अंग है। इसका
 हम किसी से नहीं करेंगे।
 क्या बुद्धि में नहीं और वह
 य विजेता को तभी जब हम
 भी नहीं मिलेगा।”

वर्षा शुरू हुई कि हिन्दुस्तान
 डॉ. ए.पी. जेम्स (जो उस
 संत के जाने पर रामा गांधी
 से कर एक रूपरेखा अपने
 यह पहले बात: ब्रिटिश
 यहिसा और राजनीतिज्ञ
 उन्हें तब कि अरे गांधी जो
 है और अब तक हमारा
 भी तो सुधारक है। धर्म
 संत हैं और हमारे धर्म
 कि गांधी वगैरे वगैरे
 है। इसी के द्वारा यहाँ
 गांधी करता है कि सत्य
 इसके अर्थों में वास्तविक है।
 वास्तविकता है, लेकिन यह
 है कि वह है। कुछ लोग
 के मान में लोग गांधी के

परमिशन को प्राप्त की
 हिन्दुस्तानियों को शायद
 भी तो घोषणा कर दी कि
 तो है सम्भव कहेंगे।
 भारत का कानून के तहत
 यह में लोगों के जुल्म
 हुआ।

नीमरी फटना जनवरी १९१८ में खेड़ा जिले के किसानों से संबंधित है
 जिनके साथ कर्मचारी के लिए गांधी ने नफल सत्याग्रह किया। इससे भारत के
 किसानों में यह विश्वास जमने लगा कि ब्रिटिश सरकार को भी जो कि हम पर
 हुआ चलाती है, भुक्त देने की शक्ति गांधी के पास है। कारण और खेड़ा
 में सत्याग्रह के नफल श्रमियों को देखकर पढ़े-लिखे लोगों में भी यह भावना
 होने लगी कि यह हमारे उत्तार का एक ऐसा साधन प्रबन्ध है जो भारत भूमि
 में उन और फल सत्ता है।

उस समय तक जो राजाजी की लड़ाई चल रही थी उसमें गांधी ज्यादा
 हिस्सा नहीं ले रहे थे। गांधी स्पष्टतया राजाजी के भागे, 'अधिराज्य' प्राप्ति के
 लिए पूरे भारत के साथ संघर्षरत होने की बड़ी तैयारी में लगे थे। वह मानते
 थे कि अधिराज्य का जन्म, जिस तरह का प्रादोक्ष्य उस समय हो रहा था
 उससे नहीं, बल्कि सत्याग्रह के चल पर होगा। और इस स्तर पर गांधी ने
 राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह संघाम का भीगणेश रोलत कानून के खिलाफ २ फरवरी,
 १९१९ को किया।

१० मार्च, १९२० को इसी सत्याग्रह में से गांधी का असहयोग मंत्र निकला।
 गांधी ने घोषणा की, "जो व्यक्ति या राष्ट्र हिंसा को छोड़ देता है, उसमें इतना
 बन आ जाता है कि उसे कोई नहीं रोक सकता। हमारे सामने एक ही रास्ता
 है, असहयोग।" असहयोग तो जब अव्यवस्था व अपमान होने लगता है, या हमारी
 धार्मिक भावनाओं को छेड़ लगती है तब असहयोग कर्तव्य हो जाता है।

इसी आंदोलन क्रम में गांधी १३ मार्च, १९२१ को राजकोट के अधिवेशन
 में विरपतार हुए और महमदाबाद के जज इमफोल्ड के इजलाश में उनका
 मुकदमा चला। इस ऐतिहासिक मुकदमे में गांधी ने बयान देते हुए कहा, "मुझे
 सुशी है कि नागरिक स्वतंत्रता का गला घोटने वाले कानूनों की विरुद्ध १२४
 (अ) धारा के अनुसार मुझ पर अधिवेशन लगाया गया।" इस धारा के मुता-
 बिक मुकदमा चलाया जाना मैं अपने लिए गौरव की ही बात समझता हूँ।

अपने लिखित बयान को पढ़ते हुए गांधी ने कहा, "..... मुझे अनिच्छापूर्वक
 इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा कि अंग्रेजी हुकूमत ने राजनीतिक तथा धार्मिक
 दोनों दृष्टियों से भारत को इतना असहाय बना दिया है जितना यह पूर्व कभी
 नहीं था।" आशा है कि लम्बर रहने वाली भारत की ग्राम जनता किस तरह
 धीरे-धीरे मुतभाव ज्ञानों जा रही है, शहर में रहने वाले इसे क्या जानें? ...
 उन्हें यह नहीं सूझता कि ब्रिटिश भारत में कानून द्वारा स्थापित सरकार उस
 गरीब ग्राम जनता को इस प्रकार नृसने के लिए ही बनाई जा रही है। किसी
 भी तरह के विनाशवाद भण्डा घोषी धाँकड़ेबांधी से उस राष्ट्र को झुंलाया
 नहीं जा सकता, जो भारत के लाखों गाँवों में करोड़ों अस्मिपंजर हमारी खुली
 धाँकों के आगने प्रस्तुत करते हैं। मुझे तो इस बात में तनिक भी संदेह नहीं

। घन: भारत में अराजकों
जक हूँ, लेकिन दूसरी तरह
मे उल्ट करूँगा कि मुझे
हिन्दुस्तान को अपने विवेका
प का एक स्थल है। हमारा
हम किसी से नहीं डरेगे।
क्या पुनिय मे नहीं और मुझ
य दिनेगा तो तभी जब इन
भी नहीं विनेगा।

वर्षा मुझ हूँ कि हिन्दुस्तान
डा० एनी बेन्ट (जो उस
संघ के नाम पर महात्मा गांधी
से बाद एक सभ्य संघ के
सह गहने वाला अधिकार
सहिता और राजनिष्ठा
करने लगे कि अरे गांधी जी
हैं और जब तक हमारा
भी जी सुधारक है। अपने
में संग है और हमारे अर्थ
कि गांधी वगैरे अवस्था
है। इनके द्वारा यहां
क गांधी कहता है कि यह
इसलिए गांधी नमिन्क है।
कारिगरी है, लेकिन यह
है रहा है। कुछ सोच
रे भारत में नाम गांधी के

गारमिटियों की हाथत की
हिन्दुस्तानियों को आजादा
घी ने घोषणा कर दी कि
को मैं मत्यायत करूँगा।
संरक्ष रक्षा काभन के महद
सह से गोरी के सुल्य
हूँगा।

तीसरी घटना जनवरी १९१८ में खेड़ा जिले के किसानों से संबंधित है
जिनके साथ बरबरी के लिए गांधी ने सकल सत्याग्रह किया। इसने भ्रमन के
किसानों ने यह विवेकागत समझे लगर कि ब्रिटिश सरकार को भी जो कि हम पर
हुकूमत चलाती है, भुका देने की शक्ति गांधी के पास है। चंपारण और खेड़ा
में सत्याग्रह के सफल प्रयोगों को देखकर पड़ोसी-पड़ोसी लोगों में भी यह धारणा
होने लगी कि यह हमारे उद्धार का एक ऐसा साधन पवश्य है जो भारत भूमि
में उग और फल सकता है।

उस समय तक जो आजादी की लड़ाई चल रही थी उसमें गांधी ज्यादा
हिस्सा नहीं ले रहे थे। गांधी स्पष्टतया आजादी ने धागे, 'स्वराज्य' प्राप्ति के
लिए पूरे भारत के साथ संघर्षरत होने की बड़ी तैयारी में लगे थे। वह मानते
थे कि स्वराज्य का जन्म, जिस तरह का आंदोलन उस समय हो रहा था
उसमें नहीं, बल्कि सत्याग्रह के जन्म पर होगा। और इस स्तर पर गांधी ने
राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह संग्राम का अधिपति रोमर कानून के खिलाफ २ फरवरी,
१९१९ को किया।

१० मार्च, १९२० को इसी सत्याग्रह में से गांधी का असहयोग मंत्र निकला।
गांधी ने घोषणा की, 'जो व्यक्ति या राष्ट्र हिंसा को छीन देना है, उसमें इतना
बल मा जाता है कि उसे कोई नहीं रोक सकता। हमारे अंगने एक ही रास्ता
है, असहयोग।' असहयोग से जब अघातन व अगमन होने लगता है, या हमारी
धार्मिक भावनाओं को चोट लगती है तब असहयोग कर्तव्य हो जाता है।

इसी आंदोलन कम में गांधी १२ मार्च, १९२२ को राजकोट के अधिपति
में गिरफ्तार हुए और महादाबाद के जज क्रूमफील्ड के इजलाश में उनका
सुकदमा चला। इन ऐतिहासिक सुकदमे में गांधी ने बयान देते हुए कहा, 'मुझे
सुखी है कि न्यायिक स्वतंत्रता का गला घोटने वाले यानुनों की सिरताज १२४
(अ) धारा के अनुसार मुझ पर अधिधीय लगाया गया।' 'इस धारा के मूला-
विक सुकदमा चलाया जावा मैं अपने लिए गौरव की ही बात समझता हूँ।'

अपने लिखित बयान को पढ़ते हुए गांधी ने कहा, '---मुझे अनिच्छापूर्वक
इस निष्कर्ष पर पहुंचना पड़ा कि अंग्रेजी हुकूमत ने राजनीतिक तथा धार्मिक
दोनों दृष्टियों से भारत को इतना अग्राह्य बना दिया है जितना वह पहले कभी
नहीं था।' 'भाषा गेट आकर रहने वाली भारत की आम जनता किस तरह
धीरे-धीरे मुनप्राद होती जा रही है, गहर में रहने वाले इसे क्या जानें? ---
उन्हें यह नहीं सूझता कि ब्रिटिश भारत में कानून द्वारा स्थापित सरकार उस
गरीब आम जनता को इस प्रकार बूझने के लिए ही बनाई जा रही है। किसी
भी तरह के विपक्षवाद धरणा थोड़े सांकड़ेवादी से उस गाय को झुटलाया
शुकी जा सकता, जो भारत के लाखों गांधी में करोड़ों अधिधर्षजर हमारी सुखी
सांघों के साधने प्रस्तुत करते हैं। मुझे तो इस बात में तनिक भी संदेह नहीं

कि यदि हम सबके ऊपर डेक्कर है तो उसके दरबार में इंग्लैंड की और भारत के सहरी लोगों को इस खोर अणराध के लिए जवाब देना पड़ेगा। मेरे स्थान में तो मानव अंग के विकृत किए जा रहे उन अणराध जैसे विमान इतिहास में शायद ही मिलें। इस देश में कानून का अणयोग भी विदेशी शोषकों को सेवा करने के लिए ही किया जाता रहा है। इसलिए स्वायत्त शोष, सब भागके सामने यही एक रास्ता है कि जिस कानून पर अणमल करने का काम थापको सौंपा गया है, उसे यदि आप अणमलपूर्ण मानते हों और मुझे नानपुत्र निर्दोष समझते हों तो आप अपना एत स्थान दे और इस प्रकार अणमान में अणगीक होने में लगे। इसके विरुद्ध यदि आपका मत हो कि जिस तंत्र और जिस कानून को चलाने में आप मदद कर रहे हैं वे इस देश की जनता के लिए हिनकर हैं और इसलिए मेरी प्रवृत्तियां आंग्रेजिक कल्याण के लिए जानकारक हैं तो आप मुझे कटी से कड़ी मत्ता दें।^१

अणवभूती जेव जते हुए गांधी ने तमाम मिश्री और रीते हुए लोगों को मदेन दिया, "अनों के कहे कि हणएक हिंदुस्तानी शांति रखे। अर प्रएल से शांति की रक्षा करे। केवल खारी रहने और चरखा कते। कोय यदि पुझे छुड़ाना चाहते हों तो शांति के द्वारा ही छुड़ाए। यदि लोग शांति छोड़ देते तो याद रखिए मैं जेल में रहना पसंद करूंगा।"^२

अणवयोग आंदोलन की प्रक्रिया और प्रतिक्रिया स्वयं देश में अणटित दोषटनाएं चोरीचोरा आंद, और अणवरायिक दंगे स्वदेश के मानव और चरित्र के ऐसे उवा-हृण के जिसे गांधी ने बहुत ही गंभीरता से देखा। गांधी ने अणवहयोग आंदोलन रोक दिया और आह्वान किया कि देश रचनात्मक कार्य में जुट जाए। अणवु मांप्रदायिक दंगों के खिलाफ गांधी की अणवदन करना पडा।

देश में सब पुनः कोशल में प्रवेश की मांग और पकड़ने लगी। सी० आर० दास और मोतीलाल नेहरू के स्वराज्य दल ने इस दिशा में विशेष काम किया। देश के राजनीतिक मंच पर अणव गांधी से अधिकांश स्वराज्य दल का प्रमुख हो गया। गांधी ने अणवने तीन वर्ष तक निरंतर अणवने आपकी राजनीतिक विचारों में अणवण रखा। अणव अणव सोन रहकर अणवने से अणव की और राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे। इसके निमित्त सारे देश का एक छोरे से दूसरे छोरे तक अणवण किया। गांधी के पुनर्निर्माण के लिए उन्होंने अणवने अणवने में अणवने अणवण प्रकट अणवने शुरू किए। अणव अणविक और राजनीतिक स्वतंत्रता का एक दूसरे का पूरक पाठकर अणवने अणवने रहे थे।

१. 'आयस आण गांधी' पृ० १५०-१५२, महात्मा गांधी द्वारा लिखित और अणववर्णित अणवण की छोटी कृत।

२. 'अणवने गांधी आणवण', अणव २०, पृ० १३०

राजनीति नहीं प्रेम : महात्मा गांधी

गांधी ने इन तीन वर्षों में देश चरखे की एक शक्ति के रूप में देश के अंतर को उजाग और हिंदुओं के अणवने दुसरे आर आरों के प्रतीक रूप में गांधी के लिए चरखा एक और अणवने दूसरी और अणवने गांधी के सबसे ही कड़ी थी था। गांधी १९२० तक

हए, पर भारत के मानव और चरखे आंदोलन के लिए अणवण अणवण

२० अणवने, १९२६ का अणवण

हए। ११ मार्च, १९३० को अणवण

अणवण अणवण आंदोलन का अणवण

मार्च १९३० को गांधी ने अणवण

राज्य में अणवण आणवण के

आणवण अणवण का अणवण अणवण

गांधी के अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण गांधी का अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

अणवण अणवण अणवण अणवण

रवार में दुर्लोक को घोर भारत
 जलाव देना परेगा । मेरे कथान
 धनराज जैसे विमान दुर्लोक
 मेरे भी विदेशी शोधकों की तथा
 इसलिए व्यावाचीय महोदय, अक्ष
 मून पर धमक करने का काम
 र्ण मानने हों और मुझे पवधुच
 दे को उग प्रकार सम्पाय में
 यका मत ही कि जिग नच और
 है वे इस देश की जनता के लिए
 एक कल्याण के लिए दानिकारक

विशेष और रोने हुए लोगों की
 नीचे नाति रहे । हर प्रपल से
 चरका जाने । लीन गॉड मुझे
 । यदि योग नाति छोड़ देंगे तो

अम्बरुग देव में धरित दोपटनाम
 मानन और चरित्र के ऐसे उदा-
 । गांधी ने अम्बरुग सांशिलन
 एक कार्य में डूट जाय । परंतु
 शरदा पत्र ।

और पकड़ने लगी । मो० आर०
 क दिशा में विशेष काम किया ।
 क स्वराज्य दल का प्रभुत्व हो
 नें प्राणो राजनीतिक विचारों
 और की घोर शब्द का निर्माण
 छोर से दुम्मे छोर एक अमण
 विशेष मंडलों में अपने विचार
 नीतिक स्वतंत्रता का एक द्वारे

श्री विजय और श्यामशक्ति

गांधी ने इन तीन वर्षों में देश की सृजनात्मक शक्ति को जगाने के लिए
 चरखे को एक मदन के रूप में देखा । एक और जनका हृदय हरिजनों के जीवन
 स्तर को उठाने की चरित्रों के बीच उन्हें उचित स्थान दिलाने में लगा था,
 दुगरी और नादी के प्रतीक रूप में चरखे को उन्होंने ईश्वर शक्ति के रूप में देखा ।
 गांधी के लिए चरखा एक और संघवाद, भौतिकता के विरोध का मूर्तरूप था,
 दुगरी और उन्हें राष्ट्र के सबसे हीन और गरीब लोगों के साथ जोड़ने वाली
 कड़ी भी था । गांधी १९२७ का निर्देश भी तरह की राजनीति में सक्रिय नहीं
 हुए, एक भारत के मान्य और चरित्र दोनों को, १९३० के अविभक्त अलग
 सांशिलन के लिए चुपचाप तैयार करने में लगे थे ।

२१ दिसेंबर, १९२६ को राजीव लाल ने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास
 हुआ । ११ मार्च, १९३० को अपने नैतिक माहुर को नरम सीमा पर गांधी ने
 अविभक्त अलग सांशिलन का एगारम 'नमक कानून तोड़ो' से किया । १५
 मार्च १९३० को गांधी ने घोषणा की, "यदि स्वराज्य न मिला तो या तो
 रास्ते में परजाऊगा या सशस्त्र के बाहर रहेगा । नमक कर न उठा सके तो
 आत्म शोषण का दरादा भी नहीं है ।"

गांधी के साथ उम्र समुत्पूर्व सांशिलन में ७६ वर्षागरी थे । नमक सत्या-
 ग्रह को 'सिस्टम गांधी का संश्लिष्णोपन' बताया गया । किन्तु नमक कानून का
 उल्लंघन राष्ट्र की समर्था का प्रतीक बन गया । इस प्रतीक शक्ति का आभास
 सरकार को मिला । सरकार ने गांधी और जवाहर के साथ साठ हजार सत्या-
 ग्रहियों को जेल में डूब कर दिया । महिलाओं ने शराब की दुकानों तथा विदेशी
 कारों की दुकानों पर चरखा देना शुरू किया । इन सत्यग्रह में तमल सत्याग्रह,
 सत्यवादी दलाको में लगानबंदी एवं विदेशी कारों, बैंकों, जहाजों और बीमा
 कंपनियों के बहिष्कार को शामिल कर लिया गया । इस तरह इस सांशिलन में
 गांधी भारत देश, देश के सभी वर्ग के लोग अपनी सामर्थ्य के अनुसार सामीक्षर
 हो गए ।

दशमसल यह सांशिलन एक सास तरह, प्रणाली और आंतरात्म्य को लेकर
 तथा एक असाधारण विभूति के नेतृत्व में चल रहा था । यह राजनीतिक नहीं
 सांश्लिष्ण सांशिलन था । इसके 'जीन' धार्मिक भारत का हानशुख शुरू होने
 में परने ही जनता के हृदय में बीज जा चुके थे । मराठों को हार के बाद
 हिंदुस्थान पूरी तरह अंग्रेजों के अधिकार में आ गया था । इसी समय समय
 समाज-वादि के अग्रदूत राजा राममोहन राय ने जो सांशिलन शुरू किया, वह
 पूरी सांश्लिष्ण जागण का सांशिलन था । राजा राममोहन राय ने एक मम की
 बात दुरे निरुपनी की कि अलग देशों की सर्वेक्षा अपने दिलड़ जाने का काम
 अगर भारत को हो जाएगा तो, उसे असेत्र गुलाग नहीं रख सकेंगे । जिन
 संवेग चरित्रारिणों ने भारतवर्ष पर कब्जा कर लिया था वे भी इस सचवाई के

रवार में दुर्लभ को घोर भारत
 अकब देना पड़ेगा । मेरे कथान
 अनाथ जैसी विमान दुःखिताम
 मोक्ष भी विदेशी आंधलों की तरंग
 इसलिए स्वाभाविक महोदय, अक्ष
 अनुप पर धमक करने का काम
 में मानने ही घोर मुझ पवभुच
 दे ही एक प्रकाश सन्ध्या में
 एक मर हो कि जिग नच और
 है वे हम देना भी अमना के लिए
 एक कल्याण के लिए दानिकारक

मिथों घोर रोते हुए हाथों की
 मानी नति रखे । हर प्रपल्ल से
 परश्वः कसते । लोग मांड मुझे
 । यदि लोग शानि छंछ वेते तो

अस्वरूप देव में घटित दोयदनाएं
 मानन घोर उरित्र के गुंमे उदा-
 । गांधी ने अमहोपेय सांशोलन
 एक कार्य में डूट जाए । परंतु
 अरक्त पश ।

घोर पकटने लगी । सो० श्रा००
 का दिशा में विशेष काम किया ।
 एक स्वराज्य दल का प्रभुत्व हो
 अने आरंभो राजनीतिक विवादों
 और की घोर गन्दू का निर्माण
 के छोर से दुम्मे छोर एक अधमण
 विशेष मंडलों में अपने विचार
 नीतिक स्वतंत्रता को एक हुनरे

शरा विहित घोर अनाभक्ति

गांधी ने इन तीन वर्षों में देश की मृजलात्मक शक्ति को जगाने के लिए
 अरबों को एक मस्य के रूप में देखा । एक और उनका हृदय हरिणों के जीवन
 पक्ष को उठाते बीच हिंदुओं के बीच अंधे उन्नत स्थान दिखाने में लगा था,
 दुगरी और गांधी के प्रतीक रूप में चर्चों का उन्मत्ति ईश्वी शक्ति के रूप में देना ।
 गांधी के लिए चरखा एक और संशुवाद, भौतिकता के विरोध का घूर्तरूप था,
 दुगरी और उन्हें गांधी के शक्य हीन और परीच लोगों के साथ जोड़ने वाली
 कसो भी था । गांधी १९२० तक १९२० की तरह की राजनीति में सक्रिय नहीं
 हुए, पर अन्त के मानस और शक्ति दोनों को, १९३० के गांधीय अग्रणी
 सांशोलन के लिए चुपचाप तैयार करने में लगे थे ।

२१ दिसंबर, १९२६ को रावों के पर गुण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास
 हुआ । ११ मार्च, १९३० को अपने वैदिक भाह्य को परम सीमा पर गांधी ने
 गतिमय अग्रणी सांशोलन का आरंभ 'नमक कानून तोड़ो' से किया । १५
 मार्च १९३० को गांधी ने घोषणा की, "यदि स्वराज्य न मिलता तो या तो
 सन्त में पर जाऊंगा या सन्धम में जाहूर रहूंगा । गलत कर न उठा सका तो
 आसम लौटने का दरवाजा भी नही है ।"

गांधी के साथ उस समुत्पूर्व दांडी यात्रा में ७६ सत्याग्रही थे । नमक सत्या-
 ग्रह को 'विस्तृत गांधी का अस्त्रचिह्नोपन' बताया गया । निरनु नमक कानून का
 उल्लंघन राष्ट्र की सर्वोच्च कन प्रतीक बन गया । इस प्रतीक शक्ति का आभाम
 सरकार को मिला । सरकार ने गांधी और जवाहर के साथ साठ हजार गला-
 गरियों को जेल में बंद कर दिया । महिलाओं ने शराब की दुकानों तथा विदेशी
 कारों की दुकानों पर चरखा देना शुरू किया । इन सत्यग्रह में तपल सत्याग्रह,
 रैपतवाडी हलाकती में लगानबंदी एवं विदेशी कारों, जैकों, जहाजों और बीमा
 कंपनियों के अश्रिकार को शामिल कर लिया गया । इस तरह इस सांशोलन में
 पाग भारत देना, देना के अग्री वर्षों के लोग अपनी सामर्थ्य के अन्तार साक्षीदार
 हो गए ।

दरबमल यह सांशोलन एक नान शक्य, प्रणाली घोर आंतधायक को लेकर
 तथा एक अमान्य विभुति के तेनुत्व में चल रहा था । यह राजनीतिक नहीं
 सांस्कृतिक सांशोलन था । इसके 'जीव' धाधुनिक भारत का हानदास शुरू होने
 से पहले ही अन्त के हृदय में बीए जा चुके थे । मराठों की हार के बाद
 हिंदुस्थान पूरी तरह अंधेरी के शक्तिगत में आ गया था । इसी समय समय
 गमान-शक्ति के अग्रदूत राजा राममोहन राय ने जो सांशोलन शुरू किया, वह
 पूरी सांस्कृतिक जागरण का सांशोलन था । राजा राममोहन राय ने एक मम की
 बात दूर निकाली थी कि अन्त देशों की सर्वोच्च अपने लिच्छ जाने का मान
 अगर भारत को हो जाएगा तो, उगे अंग्रेज गुलाग नहीं रख सकेंगे । जिन
 पंगेज अतिशयियों ने भारतवर्ष पर अन्त कथ लिया था वे भी इस सन्धम के

वाकिक थे, "हमने भारत को नहीं जीता है, मोहकन वह हमारे मधीन हो गया है। जब अपनी प्रमली शक्ति का फल उसे लन जाणा, तब एक पल-भर के लिए भी उसे अपने दातु में रखना हमारे लिए समभव है। लाख-कैर लाख लोग धीम-बाइन करोड़ की संख्या बाने किसी राष्ट्र को मदा के लिए अपने अधीन नहीं रख सकने।"

गांधी के इन विशेष क्रांति-मार्ग, इस विशेष सांस्कृतिक आंदोलन के, जिसके जनक थे राजा राममोहन राय और नेता थे तिलक, गोखले, दादाभाई, फरकिस और टैगोर, भारतवर्ष को इतने के लिए अंग्रेजों ने प्रांतीय स्वायत्तता के नाम पर १९३५ में द्विराष्ट्रवाद की भयंकर राजनीति शुरू कर दी, और वे इसमें सफल हो गए। १९५० के बाद अंग्रेजों ने इस राजनीति की शुरुवात की उसकी पहली सफलता उन्हें १९३५ में 'गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट' लागू कर प्राप्त हुई। गांधी के नेतृत्व में अविनय सवशा आंदोलन की सफलता को देखकर अंग्रेज साम्राज्य को कि वह तो सारा वेण एक राष्ट्र हो रहा है। इसे तोड़ने की तैयारी अंग्रेज १९५० से ही कर रहे थे।

१९३५ में प्रांतीय स्वायत्तता के नाम पर भारत को अनेक टुकड़ों, वर्गों और इकाइयों में बांटकर ठाट में पड़ा राज करने की अंग्रेज शासकों की योजना पूरी हुई। दूसरी ओर संयुक्त राज्य की स्थापना के नाम पर वहाँ की लोक-तांत्रिक चेतना को अस्मायवादीयों की सहायता से अशक्त करने की साजिशें अंग्रेजों ने गोलमेज परिषद् के नाम पर की।

गांधी अंग्रेजों की इन सारी चालों और राजनीति को तथा साथ ही अपने आस-पास के लोगों, साधारण कामें और मुस्लिम लोग को पूरी तरह जानते थे। उन दिनों कांग्रेस और लोग इस बात पर विचार कर रही थी कि १९३५ के भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत दी गई प्रांतीय स्वायत्तता स्वीकार की जाए प्रथम नहीं। अंत में दोनों ने इस प्रस्वीयान करने का निश्चय किया।

ध्यान देने की बात है कि गांधी ने इस वाद-विवाद में कोई भी झिझा नहीं लिया, क्योंकि उनका दिल तो भारत के गांधी में था। "आप यह जान लें कि मेरा मन यहाँ नहीं है, और वहाँ में भी नहीं है। मेरा दिल तो गांधी में है।" और गांधी उस अवधि में अपने समय तथा अपनी शक्ति का उपयोग शान्त पुनर्निर्माण के कार्यों में करते रहे, जिसे उन्होंने अक्टूबर १९३४ में कांग्रेस से अलग होने के बाद हाथ में लिया था। हालांकि शेखमर्रा की राजनीति ने उन्होंने अपने आपको अलग रखा। उन्होंने यहाँ तक कहा :

"कुछ काम तो जरूर राजनीतिक सत्ता के बिना नहीं होते, पर असंख्य

१. अखिल भारत साहित्य परिषद, नागपुर, में २४ मार्च १९२६ को भाषण, 'संपूर्ण गांधी साहस्य', अंक ६२, पृष्ठ १७०

कार्यों के साथ राजनीतिक अंश विचारक विश्व का उपयोग कम से कम होत के हाथों में आए तब ला प्रटना चाहिए। ... जिस काम व्यवस्थित रूप से प्रयोग होता है। क्या यह वह वस्तुतः लोकनय नहीं करेगा तब ही होगा। ... जाने की आवश्यकता है। समझा की प्रथम उप विचार क्यों करे? न्यु मुझे ती हरी नाम-माजी लोगों के पास कि प्रत्येक पिंटा करना शुरू कर इस विषय में विचार कर बहुत ही प्रिय लगता है। प्रदर्शनों में मैं लगा हूँ उ हैं, उन्हीं में मैं बहुत से हैं।

गांधी का यह विचार है कि—"ध्यान की स्थापना होगी, तब तक कोई महान् प्रयत्न के नवान् का भी किभी भी क्षेत्र में कोई प्रक्रिया, मांग-माजी, शान्ति अर्थात् निरर्थक पानुम अंग्रेजी राजनीतिक अर्थव्यवस्थाव्यवस्था है, गांधी का होने पर कांग्रेस नेताओं के विशेष रूप से अवास्तविकता का एक ऐसा संबंध बना निश्चित करने में महत्वपूर्ण

१. 'हरिजनबधु' (गुजराती),
२. 'संपूर्ण गांधी साहस्य', अंक

आह्वान वह हमारे अर्थात् हो गया
 चला जाये। अब एक गल-भर के
 लिए अर्थभव है। जाल-डेह भाव
 को राष्ट्र को पक्ष के लिए अपने

एक सांस्कृतिक आंदोलन के, जिसके
 अर्थक, लोचने, दादाभाई, सरविद
 जों ने राष्ट्रीय स्वायत्तता के नाम
 के लिए एक कर दी, और वे इनमें
 इस राजनीति की शुरुआत की
 में एक माफ इच्छा एक लापू कर
 प्रादीलन भी सफलता को संभव
 एक राष्ट्र हो रहा है। इस तीर्थने

भारत को अनेक टुकड़ा, क्यों
 के की शत्रु व शासकों की योजना
 के नाम पर यज्ञ की लोक-
 परास्त करने की साजिशें खंचे

राजनीति को तथा साथ ही अपने
 लम लोग की पूरी तरह जानते
 के लिए कर रही थी कि १९२५
 प्रांतीय स्वायत्तता स्वीकार की
 करने का निश्चय किया।

विवाद में कोई भी हिस्सा नहीं
 था। "प्राग पक्ष जान लें कि
 में मेशा दिस तो गांधी में है।"
 अपनी गति का उपयोग प्राप्त
 अक्टूबर १९२४ में कांग्रेस ने
 के रोजमर्रा की राजनीति में
 एक कहा :

बिना नहीं होने, पर अर्थभव

कार्यों के साथ राजनीतिक सत्ता का कुछ भी वास्ता नहीं होता। इसलिए घोरो
 जैसा विचारक लिख गया है कि - "वही राजमता खची गिनी जाती है जिसका
 उपयोग कम से कम होता है।" मतलब यह कि अब राजतंत्र पूरी तरह अन्त
 के हथों में आए तब लोगों के जीवन में सरकार का हस्तक्षेप बढ़ने की जगह
 घटना चाहिए। "जिस राष्ट्र के अधिकार अनुप्य दाह्य सङ्घ के बिना अपने
 काम अक्षरिषित रूप में खचो तरह चलते हैं वही राष्ट्र लोकतांत्रिक शासन के
 योग्य होता है। जहां यह स्थिति नहीं है वहां का तंत्र लोकतंत्र कहा अने जाए,
 वह अस्तुतः अयोग्य नहीं होता।" हमारी अनेक प्रवृत्तियों का राजमता से कोई
 सरोकार नहीं होता। "राजनीतिक हेतु प्राप्त करने के लिए उस हेतु को भूल
 जाने की आवश्यकता है। सभी बातों में इस हेतु की निहित-प्रसिद्धि की चर्चा
 समस्या को धारण उलभाना है। जो भी हमारी पीठ पर लगे हुए हैं उसका
 विचार क्यों करें? पृथु जब तक था नहीं जाती तब तक क्यों मरें? इधोलिए
 अर्धे तो इरी माग-भाजी, हाथकुटा चावल आदि बातों में बहुत रन माल है।
 लोगों के आसात किस तरह माफ रखे जाएं, लोभ भरती भाता की जो मधेरे-
 मधेरे गंदा करना शुरू करते हैं, उस पार पाप से उन्हें किस तरह बचाया जाए,
 इन विषय में विचार करना, इस पाप के निवारण का उपाय ढुंढना मुझे तो
 बहुत ही प्रिय लगता है।" अनेक वर्षों के अनुभव से मैंने यह देखा है कि जिन
 प्रवृत्तियों में मैं लगा हू उनमें राष्ट्र की स्वतंत्रता हासिल करने के उपाय निहित
 हैं, उन्हीं में मैं शुरू में स्वतंत्रता की मुक्ति खी हूँगी।"

गांधी का यह विचार किमो राजनीतिक प्रवृत्तियों के इस प्रश्न के उत्तर में
 है कि - "आपको क्या ऐसा नहीं लगता कि अब एक राजनीतिक सत्ता प्राप्त में
 होगी, तब तक क्यों महान परिवर्तन नहीं हो सका? फिर हमें योतुटा आर्थिक
 रचना के तबाल को भी हल करना है। राजनीतिक तबलवना के बिना अर्थ
 किसी भी क्षेत्र में कोई तबलवना गभव नहीं है। इसलिए (आपकी) हरी
 रनिपां, माग-भाजी, पालिश किया हुआ और हाथकुटा चावल आदि यह सारी
 चर्चा निरर्थक सामूह होती है।"

राजनीतिक उद्देश्य प्राप्त करने के लिए उस उद्देश्य को भूल जाने की
 आवश्यकता है, गांधी का यह विश्वास किताम मूल्यवान है, फिर भी सावधानक
 होने पर कांग्रेस नेताओं का मलाह और पागं दर्शन देना उद्देश्य जारी रहा।
 विशेष रूप से जवाहरलाल नेहरू के साथ, मतभेदों के बावजूद भी गांधी ने प्रेश
 का एक ऐसा संबंध बना लिया था जिसने आने जाने ज्यों की घटनाओं की दिशा
 निर्दिष्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तबक कांग्रेस में इन नुधारवादी

१. 'हरिजनबंधु' (पुण्याली), ३ नवंबर, १९२५

२. 'सपुंग गोरी सादरक', खंड ६२, पृष्ठ ६२

त्रिभारधारा का प्रतिनिधित्व करते थे और राजनीति तथा धार्मिक मामलों प्रश्नों के प्रति गांधी के रुख से संतुष्ट नहीं थे। परंतु जैसा कि गांधी ने अगाथा हेरिंग्टन को बताया, "जीवन के प्रति हमारे दृष्टिकोणों के बीच की खाई बेशक लोड़ी हुई है, फिर भी दिलों में हम एक दूसरे के विरुद्ध तजदीक बाज हैं उतने शांतिर प्रवृत्ति अभी नहीं थे।"

एक अपने वृष्णाव की भांति गांधी चाहते थे कि मजदूर इतिहास अगस्त्य की लीलायाच है जिसमें हर व्यक्ति की भूमिका पहले से निर्दिष्ट है और तान्त्राई के साथ निभाई जाने वाली सभी भूमिकाएं अपनी अलग महत्त्वपूर्ण है। इसलिए, नेहरू ने इनने स्वभेदों के भावजूद सीने से इतना प्रेम था। नेहरू को आत्म-कथा की पाठ्यविधि पढ़ने के बाद गांधी ने लिखा, "आखिर हम क्या हैं? घटनाओं के प्रबल प्रवाह में रहने समझ-बूझ बिनेना मात्र ही तो।"

अहिंसा गांधी के संपूर्ण अस्तित्व की आधारशिला थी। इसका अर्थ था प्रत्येक मनुष्य के स्वभाव और स्वधर्म से उनकी आस्था। सुवार्क के एक भाषा-द्विक उत्र के अन्त के उत्र में गांधी ने कहा, "अध्यायी भांति से विश्व-भू न करने का अर्थ है मनुष्य के धार्मिक स्वभाव पर ही अविश्वस्त करता। सभी तक प्रयत्न।" यह तरीके अत्यंत सही इसका कारण यह है कि जिन लोगों ने इसके लिए कोशिश की है, उनके अंदर गहरी अड्डा का ही समाव रहा है। देगी वजन नहीं कि वे इस लक्ष्य को अगक गए हैं। जिस प्रकार अणुक रसायनिक मिश्रण को प्राप्त करने के लिए अन्की सभी लणों को पुरा न किया जाए तो अयोग्य परिणाम प्राप्त नहीं होगा, उसी प्रकार शांति को जतों को आसिद्ध पुन से प्राप्त नहीं प्राप्त हो जा सकती। "मैंने अनुभव से इस सन्वाई को परखा है कि गिरे से गिरे मनुष्य के लिए भी भालवता के बुस्किारी गुणों को अपने अंदर पैदा कर सकता संभव है। यही संभावना मनुष्य को परमात्मा द्वारा रचे गए अन्य प्राणियों से अलग करती है। यदि एक भी वडों व्यक्ति बिना गर्त लगाए स्वयं का रास्ता अपना ले तो हम शांति को साधार होने देख सकते हैं।"

गांधी की अहिंसा का अर्थ है प्रेम। वह प्रेम जिसकी परिभाषा संत जल ने (एक कोरिथियन १३ में) की है। गांधी ने अमरीकी लीको लोगों के प्रति-निधि-मंडल से एक भेंट में कहा है, "ऊपर से देखें तो जीवन आनुवंशिक अघर्ष और उत्सपात से घिरा हुआ है। जीव के विनाश पर जीव का अस्तित्व कायम है। किन्तु युगो पूर्व इस कुहलिका को अदक अचली अल्प के अर्जन करने वाले किसी द्रष्टा ने कहा था—मनुष्य अघर्ष और हिंसा के द्वारा नहीं, बल्कि अहिंसा के द्वारा ही इस अखाई को अश्ल कर सकता है, जिसे प्राप्त करने में उसका अरम अंग है और अन्की के द्वारा वह अपने अह्प्रानियों के प्रति अपने अक्षय का

१. 'हरिजन' (अंग्रेजी), १८ जुन, १९३८

निर्वाह कर सकता है प्रवल शक्ति है। उसे बाहरी प्रेरणा या सह-अंग जिसकी परिभाषा स्पष्ट मात्र का अन्त में अद के कुछ अंग अ-वाचक, अहिंसा का अन्त नहीं है, अस्तित्व के योग से के लिए उन अस्वा-अहित की कायना नहीं करना चाहिए। के अिक भूलों से अ-अजिती जा रही है। (किर भी) अहिंसा अ-इं इसलिए ही अक-गांधी ने यह अ-अनिकता के अंग-अचके लिए अंग-अक अकटर या अ-वेदी नई परिभाषा योग है।

आधुनिक विधियों महत्त्वपूर्ण अ-अं है अचका अर्थ-अ-अय अचर करते हुए अक अकटर अ-अ-अलाप करने के लिए गांधी किमी अ-१९३६ को अंग-अ-अं है। "हम अ-अ-

और राजनीति तथा सामिक मामलों में। परन्तु जैसा कि गांधी ने बताया कि दृष्टिकोणों के बीच की खाई ब्रह्मचर्य के जितने गहरीच आज है उतने

मानते थे कि मात्रव प्रतिपक्ष भावनात्मक पक्षों में निहित है और सत्ताई अपनी जगह महानपूर्ण हैं। इसलिए उनका प्रेम था। नेहरू की आश-ने लिखा 'दार्शनिक रूप से है? प्रतिपक्ष मान ही नो!'

वाचार्थीगता थी। इसका अर्थ था कि आश-ने लिखा 'भूयार्थ के एक मात्रा-स्वामी गति में विद्यमान न करने ही प्रतिपक्ष करना। अभी तक एक यह है कि तिन अर्थों से इसके का ही अभाव रहा है। ऐसी बात स प्रकार समूह समाजिक विषय को पूरा न किया जाए तो अपेक्षित प्रति की शक्तों की आशिर पुति में तुल्य में एक सचवाई की परला है के बुनियादी गुणों की अपने अंतर समुह को परभावता द्वारा उसे गए की वही प्रतिपक्ष विना सतं लघाए साकार होने देस सके है।'

प्रेम जिसकी परिभाषा सत पात्र ने अक्षरोंकी सीपी लोपी के प्रति-पक्ष देस तां जीवन चतुष्टिक मधुर्ष साध पर जोड का प्रतिपक्ष कायम अपनी सत्य के दर्शन करने वाले हिंसा के द्वारा तभी, अतिक प्रतिपक्षी है, प्रति प्राप्त करने में उसका अभावों के प्रति अपने अंत्य का

निर्वाह कर सकता है। यह विद्युत से भी अधिक सक्रिय, ईश्वर से भी अधिक प्रथम मानित है। इसके केंद्र में एक ऐसी शक्ति निहित है जो बिना किसी बाहरी प्रेरणा या सहयोग के सक्रिय रहती है। अहिंसा का अर्थ है 'प्रेम', वह प्रेम जिसकी परिभाषा सत पात्र ने की है। 'अहिंसा में केवल मनुष्य ही नहीं, सृष्टि मात्र का समावेश है। इसके प्रतिपक्ष अंग्रेजी भाषा में 'लव' (प्रेम) शब्द के कुछ अन्य अर्थ भी हैं, इसीलिए मुझे एक नकारात्मक शब्द (नान-वर्थिंग, अ-हिंसा) का प्रयोग करना पड़ा। पर यह किसी नकारात्मक शक्ति या शोकक नहीं है, अतिक ऐसी शक्ति का शोध करता है जो शेष नमस्त शक्तियों के योग से भी श्रेष्ठ है।' 'ही सक्षता है कि सामान्यतः मैं अपनी रीढ़ी के लिए उन सत्याचारियों पर ही निर्भर रहता हूँ; मुझे इन लोगों के प्रतिपक्षी कामना नहीं करनी चाहिए, लेकिन साथ ही इनके साथ सहयोग भी नहीं करना चाहिए।' 'अहिंसा आत्मविकास है। बिना किसी भावना या श्रद्धा के सिर्फ श्रद्धा और भाव का मतलब कुछ नहीं होगा। जब प्रतिक्षण जीवनभरित जीवनी जा रही है, तब भी ऐसी श्रद्धा संद नहीं बढ़नी चाहिए। लेकिन मैं तो (किर को) प्रतिपक्षी का आचरण करने वाले व्यक्ति का एक प्रति तुच्छ उदाहरण हूँ इसलिए ही सकता है कि मेरे उत्तर से आपका समाधान न हुआ हो।'

गांधी ने यह रहस्य गा लिया था कि सामाजिक श्रम और जीवन की नैतिकता के बीच घनिष्ठ संबंध है, इसलिए यदि उनका वश चलता तो वे 'सबके लिए शरीर श्रम को प्रतिपक्ष' का देते और ऐसी व्यवस्था करते कि 'सबका डाक्टर या जैरिस्टर उत्तर ही बेतन से जितना कि एक गधूर।' 'गोता में दो नई परिभाषा के अनुसार किसी भी काम को कुशलतापूर्वक करना ही योग्य है।

साथिक विषयों में भी गांधी के लिए नैतिकता का विचार तयान रूप में महत्वपूर्ण था। उन्होंने बताया, 'मांग और पुति का कानून मानवी नहीं राक्षसी है।' 'सच्चा अर्थशास्त्र वही है जो नीति में अर्थगः।' 'अन्यथासदास विद्वला के साथ लर्वा करते हुए गांधी ने बताया की थी, 'अनर हिंदुस्तान में जगह-जगह फल बरसाने लड़े कर दिए गए तो लूट-ससोड की नीयत से दूनरे देवों की अनाश करते के लिए हमें एक आंदरवाह की जरूरत पड़ेगी।'

गांधी किसी भाव में जाकर बस जाने का दखान देखते था रहे थे। एक मई १९२६ का सेनाप में समूहकीर की एक विषय, 'आतिरकार में सेगांव पर गया हूँ।' 'हम कल प्राण है। रात बहुत सुहावनी थी।'

१. 'हरिवन' (अंकेडो), १४ मार्च, १९२६

ऐसा लगता है, गांधी राजनीति को अपने वृक्ष के राजधर्म से जोड़ रहे थे। राजधर्म का अर्थ है—सारे धर्मों में जो श्रेष्ठ है, जिससे हम औरों पर ही नही अपने ऊपर 'राज' करते हैं। राजनीति को इसीलिए उन्होंने स्वराज्य प्राप्तिक का माध्यम या साधन बनाया। चूंकि गांधी और साधन की पवित्रता पर, गल्पना पर उनका समान बल था, इसीलिए उनकी राजनीति का आधार था—महिमा, अर्थात् प्रेम।

१९१४ की बात है। गोखले अपने शिष्य गांधी को अपनी मरणा सर्वेद भाफ इंदिरा मोमायटी का सदस्य बनाना चाहते थे। इस संबंध में गांधी की आत्मकथा में एक उल्लेखनीय तथ्य मिलता है—“मैंने मुझे लगा कि मुझे सोसायटी में दाखिल होने के लिए बहुत प्रयत्न करना चाहिए। मुझे यह भी जान पड़ा कि गोखले की प्रार्थना भी यही चाहती है। मैंने बिना संकोच के और दुःखपूर्वक यह प्रयत्न आरंभ किया। इस समय मोमायटी के लक्ष्य सभी सदस्य पुनः से मौजूद थे। मैंने उन्हें लगभग-बुझाना, प्रो-मेग विषय में उन्हें जो डर था उसे दूर करना शुरू किया। पर मैंने देखा कि सदस्यों में मतभेद था। एक पक्ष मुझे दाखिल कर लेने के पक्ष में था, दूसरा दुःखपूर्वक मेरे प्रवेश का विरोध करता था। दोनों का मेरे प्रति जो प्रेम था उसकी मरणा मोमायटी की ओर उनकी सकलता था। पर मेरे प्रति जो प्रेम था, उसकी मरणा मोमायटी की ओर उनकी चकाचकती शायद अधिक थी। मतभेद होने हुए भी हम बंधु और मित्र बने रहे हैं। मोमायटी का स्थान मेरे लिए तीर्थस्थल रहा है। लौकिक दृष्टि से मैं अपने ही उसका सदस्य नहीं बनना, आध्यात्मिक दृष्टि से मैं सदस्य रहा ही हूँ।”

राजनीति की आध्यात्मिक स्तर बना, इसकी परम लीलाकता को आध्यात्मिकता से जोड़ना यही था चरित्र गांधी का। गांधी राजनीति में क्यों प्रेम ? प्रेमवश। वे मूलतः धर्मवश थे और नरभी मेहता का अर्थ, 'धर्मवश उन से तेने कहिए जे पीर पराई जाणे रे'। उनका धिय भजन था। राजनीतिक गांधी के हृदय में सदैव कृष्ण रहे और उनकी जवान पर राम। उनका अंतिम अवस्था 'राम' था, जैसे कृष्ण हृदय से चलकर जब शरीर तक आते थे, तो वे ही राम हो जाते थे। लेकिन राम क्यों ? इसी के उत्तर में हम गांधी को देख पाएंगे।

पिरव के इतिहास में प्रत्येक राष्ट्र किसी विशेष विचार का प्रतीक रहा है जिसे उसने अपने देनवासी के जीवन में व्यस्त करने का हर अणु प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए, यूनान के लोगों ने 'सौंदर्य' का विचार रोमन लोगों ने 'कानून' का विचार, स्पार्टा के लोगों ने 'शक्ति' का विचार और अंग्रेजों ने 'वैधानिक शासन' का विचार रखा। इसी बुनियादी विचार के आधार पर उन लोगों ने चरित्र, स्वभाव, मर्जीया का निर्माण हुआ। ठीक इसी प्रकार यूनानी तथा रोमन लोगों ने बहुत पहले हमारे भारतवर्ष में अपने जीवन को 'धर्म' के

राजनीति नहीं

आधार पर चल
या जाती हैं जि
वेदों और उपनि
या। वह उन 'म

भारतीय म

तथा अद्वितीय
में गमनव्य शरत
है। अल्प प्राणि
स्वयंसे ही जान
होने का अंतरा
लिए है—पश्य

मनुष्य का

उत्तम संकल्पपूर्वक
कर लेना ही 'धर्म'
वह पूर्णता की प्र
समस्त क्रियाओं के
हैं। वह मनुष्य क

वास्तविक प

अभिस्थापित लोनि

साधारण के हीनि

जीवन पर तथा पु

और पूरे परिवेश

ने अपने-अपने ल

प्रयोग किया है।

गांधी का 'सत्याप

तो सृष्टि 'हिम-

उद्वेगीय दृष्ट करः

की विज्ञान दिग्ग

स्पर्श नहीं किया।

एकते तथा सगर

आधार तनिकता

है।

सत्य राम के

में जत्र लक्ष्मण ने प्र

उपन्यास करना था

ऐसा लगता है, गांधी राजनीति को अपने गृह के राजधर्म से जोड़ रहे थे। राजधर्म का अर्थ है—हमारे धर्मों में जो अंश है, जिससे हम औरों पर ही नहीं अपने ऊपर 'राज' करते हैं। राजनीति को इसीलिए उन्होंने स्वराज्य प्राप्तिक का माध्यम या साधन बनाया। चूंकि गांधी और साधन की पवित्रता पर, स्वयंसेवा पर उनका समान बल था, इसीलिए उनकी राजनीति का आधार था—महिमा, अर्थात् प्रेम।

१९१४ की शक्त है। गोखले अपने शिष्य गांधी को अपनी मरणा सर्वेद भाफ इंडिया सोसायटी का सदस्य बनाना चाहते थे। इस संबंध में गांधी की आत्मकथा में एक उल्लेखनीय तथ्य मिलता है—“मैंने मुझे लगा कि मुझे सोसायटी में शामिल होने के लिए मत्त प्रयत्न करना चाहिए। मुझे यह भी जान पड़ा कि गोखले की आत्मा भी यही चाहती है। मैंने बिना संकोच के और दुःखपूर्वक यह प्रयत्न सारंभ किया। इस समय सोसायटी के लगभग सभी सदस्य पुना से मौजूद थे। मैंने उन्हें सम्मान-बुझाना, धीरे-धीरे विषय में उन्हें जो डर था उसे दूर करना शुरू किया। पर मैंने देखा कि सदस्यों में मतभेद था। एक पक्ष मुझे दालित्त कर लेने के पक्ष में था, दूसरा दुःखपूर्वक मेरे प्रवेश का विरोध करता था। दोनों का मेरे प्रति जो प्रेम था उसकी मैंने देखा सकार था। पर मेरे प्रति जो प्रेम था, उसकी अपेक्षा सोसायटी की ओर उनकी चकाचौड़ी शायद अधिक थी। ‘‘मतभेद होने हुए भी हम बंधु और मित्र बने रहे हैं। सोसायटी का स्थान मेरे लिए तीर्थस्थल रहा है। जोकि दुष्टि से मैं अपने ही उसका सदस्य नहीं बना, आस्थात्मक दृष्टि से मैं सदस्य रहा ही हूँ।’’

राजनीति का आध्यात्मिक स्तर बना, इसकी परम लक्ष्यकता को आध्यात्मिकता से जोड़ना यही था चरित्र गांधी का। गांधी राजनीति में क्यों भ्रम ? प्रेमवश। वे मूलतः वैष्णव थे और सरसी मेहता का भ्रमन, ‘वैष्णव जन ते तेन कहिए जे पीर पराई जाणे रे’। उनका धिय भजना था। राजनीतिक गांधी के हृदय में सर्वेश कृष्ण रहे और उनकी खदान पर राम। अतएव अंतिम अवस्था 'राम' था, जैसे कृष्ण हृदय से चलकर जब झोकी तक आते थे, तो वे ही राम हो जाते थे। लेकिन राम क्यों ? इसी के उत्तर में हम गांधी को देख पाएंगे।

गिरव के इतिहास में प्रत्येक राष्ट्र किसी विशेष विचार का प्रतीक रहा है जिसे उसने अपने देववासी के जीवन में व्यस्त करने का हर अणु प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए, यूनान के लोगों ने 'मौदर्य' का विचार रोमन लोगों ने 'कानून' का विचार, स्पार्टा के लोगों ने 'शक्ति' का विचार और अंग्रेजों ने 'वैधानिक शासन' का विचार रखा। इसी बुनियादी विचार के आधार पर उन लोगों ने नारिण, स्वभाष, मर्जीया का निर्माण हुआ। ठीक इसी प्रकार दूनानी तथा रोमन लोगों ने बहुत पहले हमने भारतवर्ष में अपने जीवन को 'धर्म' के

राजनीति नहीं

आधार पर चल
या जानी है जि
वेदों और उपनि
या। वह उन 'म

भारतीय म

तथा पद्धति दोनों
में गमनव्य भारत
है। अन्त प्रणि
स्वयंभू ही जान
होने का अंतरा
लिए है—प्रत्य

मनुष्य का

उत्तरे संकल्पपूर्वक
कार लेना ही 'धर्म'
वह पूर्णता की प्र
समस्त क्रियाओं में
है। वह मनुष्य क

वास्तविक प्रो

अभिव्यक्ति लोभ

साधारण के ईनि

जीवन पर तथा गु

पीर पूरी परिवेश

ने अपने-अपने ह

प्रयोग किया है 'क

गांधी का 'हत्याप

तो सृष्टि द्विभ-

इंद्रवीर्य दह कश

की विज्ञान दिग्ग

स्पर्श नहीं किया।

एकते तथा मानव

आधार तंत्रिकता

है।

सत्य राम के उ

में जत्र लक्ष्मण ने प्र

उपवास्य करना आ

के राजधर्म से जोड़ रहे हैं, जिससे हम औरों पर ही इसीलिए उन्हीं स्वराज्य पर और साधन भी परिवर्तित करने की राजनीति का आधार

की ही प्रगती संस्था सर्वोत्तम है। इस नवधर्म में गांधी की प्रथम प्रतिक्रिया कि मुझे साक्षात्कार। मुझे यह भी मालूम है कि गांधी के और भी विषय में उन्होंने कहा कि महत्त्व में प्रत्यक्ष प्रयोग करने से ही प्रेम का उत्पन्न हो सकता है। गांधी की राजनीति में प्रेम का भजन, संस्थापक का भजन था। राजनीतिक प्रयोग में उनका प्रतिफल यह था कि गांधी ने विचार और प्रयत्नों के माध्यम पर उनका ही प्रकार प्रगती के जीवन का 'धर्म' के

साधारण पर चलाने का निश्चय किया। इसीलिए भारतीय धर्म में वे सब चीजें पा जाती हैं जिनसे प्रादुर्भाव मान्यता निमित्त होती है। मनातन रूप 'भोज' वेदों और उपनिषदों में था। पर उस मनातन मूल्य बीज को पृथ्वी पर उगना था। वह उन 'धर्म' के रूप में प्रकटित हुआ, जो लोकहितक बने।

भारतीय संस्कृति का मुख्य शब्द 'धर्म' है। धर्म के अंतर्गत जीवन की दृष्टि तथा प्रकृति दोनों आती हैं और यह मनुष्य के भौतिक तथा अध्यात्मिक जीवन में समन्वय करता है। जनाना धर्म का स्वाभाविक कार्य या उसका स्वभाव है। मनुष्य प्राणियों और पक्षियों के लिए जो स्वभाव है वह मनुष्य के लिए स्वधर्म ही जाता है। स्वभाव छोड़ने से जैसे अन्य प्राणियों और पक्षियों के नष्ट होने का खतरा है, ठीक उसी प्रकार स्वधर्म पालन की अनिवार्यता मानव के लिए है—अन्यथा वह मनुष्य से पशु बन जाएगा और नष्ट हो जाएगा।

मनुष्य का 'स्वधर्म' पहले उसी के द्वारा प्रगते भीतर हुआ जाता है, फिर उसे संकल्पपूर्वक कारण कर लेना पड़ता है। इसीलिए हमारे यहां यही कारण बन लेना ही 'धर्म' है। यही कारण है कि स्वधर्म छोड़ा नहीं जा सकता, प्रत्यक्ष यह पूर्णतः की प्राप्ति में बाधक होगा। यह सर्वोच्च धर्म है जो मानव की प्रकृति को ही प्रकट करता है। राम ही भारतीय धर्म के मनातन मूल्य हैं। वह मनुष्य रूप में सर्वत्र सदैव अपने स्वधर्म को जीते हैं।

राजनीति और तुलसी में स्वधर्म के वास्तविक नहीं बल्कि उसके मूल्य की प्रतिबिम्बित लौकिक और मानवीय स्तर पर की है। जिस रूप में यह जन-साधारण के दैनिक जीवन पर, उसके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भौतिक जीवन पर तथा पुत्र और पत्नी, शत्रु और मित्र पर, उसके सम्पूर्ण जीवन और पुरे परिवेश पर लागू होना है, उसी धर्म का वर्णन वाल्मीकि और तुलसी ने अपने-अपने ढंग से किया है। वाल्मीकि ने राम के लिए दो विशेषणों का प्रयोग किया है 'मत्याग्रह' और 'भूतव्रत'। सत्य धर्म का आगार है। यही है गांधी का 'मत्याग्रह' और यही है उनका 'धर्म'। यदि लोग सत्य को छोड़ दें तो सृष्टि छिन्न-भिन्न हो जाएगी। गांधी ने भूकंप को मनुष्य के पाप का वैश्वरूपी दंड कहा है। तमिल कवि कन्नन ने लिखा है कि हनुमान ने श्रीराम को विश्वास दिया था कि राजा जब सोना को ले गया तो उसने उसका स्पर्श नहीं किया। यदि वह स्पर्श करता तो "आत्म्यात मे तारे टूटकर गिर पड़ते तथा सागर मगने लगीं या शिमटन भूतना।" इसमें स्पष्ट है, सृष्टि का आधार नैतिकता है और जब लोग धर्म छोड़ देते हैं तभी उन पर कष्ट आते हैं।

सत्य राम के जीवन का आधार था। पर स्वधर्म जीते थे। वनवास प्रसंग में जब लक्ष्मण ने आग्रह अनशन की प्रकृति दी तो राम ने डांटा था कि जगत्सर्वकार का प्राण का स्वधर्म है, क्षत्रिय का नहीं। राम कभी दोगुही

वाते नहीं जोन्ने । स्वयं कोकेयी ने कहा, 'द्विर्नाभिभाषते' । अल्प ही राम के जीवन का साधारण भाग । मृत्यु के पानन के लिए राज्य को त्यागने में राम को जरूर भी देना न लगी, क्योंकि धर्म के निकले का एक पक्ष राज्य है, दूसरा त्याग । भारतीय धर्म और जीवन का यही फल है ।

गीता के मनोव्रत के विषय में कानाकूशी की संभावना भाग में राम ने जीता की अग्नि परीक्षा कराई थी । पर उम धर्म सिद्धांत के अनुसार कि मनुष्य को जीवन में मृत्यु होना ही पर्याप्त नहीं है बरिष्ठ दुर्गत्या को भी (लोक को) संभवया दिशाया चालिए कि वह सत्य है ।

यही है गांधी का राम । राम गांधी स्वयं हैं उनके जीवन की नमाम पटनाएँ, उनके चरित्र के धर्मः संदर्भ, रामचरित्र के समाग हैं ।

नैरणव संन नृकारण ने कहा है, "न शक्ते शोडा एसा हा सकात पर पीके चित्त दुगो होने ।" यह मव समसे देख नहीं जाता. सुमरी की पीडा में हृमरा मन दुगो हो ग ह । गांधी का राजनीति में ध्यान का धर्म यही नैरणव कहला थी सोन कुछ नहीं ।

मृत्यु का पाने की, स्वयं को जानने के रूप में स्वधर्म में प्रतिष्ठित होने की ही कथा गांधी की आत्मकथा है नभी गांधी ने इसे नाम दिया 'मृत्यु के प्रयाग' । जिन दिन १९२१ में उन्हें आत्मज्ञान (स्वधर्म जान) हो गया, उसी दिन उनकी आत्मकथा लेखक ने उनकी लेखनी रचतः रुक गई । उन्होंने लिखा, "इसके बाद का मेरा जीवन इनका आर्षेकनिय हो गया कि साधन ही कोई चीज ऐसी है जिसे जानना न जानती हो ।" "मृत्यु ने भिन्न किसी परमेश्वर के होने का अनुभव मुझे नहीं हुआ है । गल्पपय होने के लिए महिना ही एकमात्र मार्ग है ।" ऐसे व्यथक गल्पपरमण के साक्षात्कार के लिए जीवमन के प्रति आत्मनः प्रेम होने को परम आरक्षण है और उसकी इच्छा रखने वाला मनुष्य जीवन के एक भी क्षेत्र के बाहर नहीं चर सकता । इसी से गल्प को मेरी पूजा मुझे राजनीति में बधीर ले गई है । जो कहता है कि धर्म का राजनीति में संबंध नहीं है, वह धर्म को जानता ही नहीं यह कहने में मुझे संकोच नहीं है । "आत्मशुद्धि के बिना जीवमन के साथ एकता नहीं गथ सकती । शुद्ध होने के मने है मन, बचन और कामा में विविकार होना, रागद्वेष से रहित होना । "हिंदुस्तान में ध्यान के बाद भी मैंने अपने अक्षर ने छिपे हुए विकारों को देखा है, देखकर जरमाया हूँ, पर दिम्पत नहीं हूँ । सत्य के प्रयोग करने में मैंने रस नृया है । आज भी लुट रहा हूँ । पर मैं जानता हूँ कि मुझे अभी बिकट रास्ता तय करना है । इसके लिए मुझे गृन्धवत् बनना है ।"

अपनी आत्मकथा की प्रस्तावना में गांधी ने लिखा है, "मेरा कर्तव्य तो,

जिमके लिए मैं नीम ब है, मोक्ष है । मेरी मां दुष्टि में है और मेरा

आदर्श ही मे गांधी सफलता न नाजली न पर, बरिष्ठ साथ उभरे ही प्रयागि थी ।

एक बार इमने मेरे बारे में क्या विचार है जो इतने गांधी में तिम दुमरा साधन परात्मन केवल इनरे जाते हैं । चतना कश्चि है ।" तिम रिनी पलवी को दिया

१९२० में लोन्म

इस समय आत्मनः

१९२१ में रोक दिया

आश्रम की राजनीति

नदम जैसे नेताओं के

ने नेतृत्व गभाला ।

परिपक् के समय आश्रम

होने पर १९३२-३३ में

नेतृत्व में हुई थी ।

सांस्कृतिक मय ने वर्ष

किसी तरह जारी : उ

३। मृग सन्धार गेन,

गावाःतानार्थ, गुणायन

और लुः आश्रम में स

तय हुआ कि उन पर

बोले नियुक्त किया

आजाद मरत्य से । ग

१९३२ में मुआय

एक पुराना और एक न

डा० लोहोड्या प्रावि मु

कम मुके मे । राजेष्ट्र

उन्नीसभाषते'। सत्य ही राम के राश्व को जगते में राम को एक वक्ष मत्व है, दुनरा व्याग।

संभालना माध से राम ने सीता जत के पदमार्ग जि मरुध्य को लेया को भो। लोक को विश्वास

है-उनके जीवन को लयाम के समान है।

बोडा ऐसा हा अकात पर मोडे ता। दुपरो की पीडा ने हमरा का नयं छो देलव कछण

स्वर्ष में प्रतिष्ठित होने की ने नाम दिया 'मत्य के प्रयोग'।

ई ज्ञान) तो गया, उसी दिन एक गर्द। उन्होंने लिखा,

गया कि भाउद ही कोई बीज न्न किनो पन्मेदवर के होने

एँ पहिमा ही एकमात्र मार्ग के लिए जीवशास्त्र के प्रति

उसको श्चछा रखने वाला कता। इसी से मत्व की मेरी

हूत है कि धर्म का राजनीति कहने में मुझे संकोष नहीं है।

मि मध अकाले प्रोद्ध होने के राश्व से रहित होना।

मे छिपे हुए विकारों को देखर मत्व के प्रयोग करने से मैंने

ता हूँ कि भ्रुंसे सभी विकट ना है।"

लिखा है, "मेरा वातव्य तो,

प.२२१६

त्रिके लिए मैं नीतियों में सीसा रहा हूँ। आत्मदर्शन है, ईश्वर का साक्षात्कार है, संन्या है। मेरी सारी क्रियाएँ उसी दृष्टि में होती हैं। मेरा सारा विश्वास, इसी दृष्टि से है और मेरा राजनीतिक धर्म में अन्तर्गत ही इसी सत्य के प्रयोग है।"

ग्रामस्मिथ ने गांधी के लिए कहा कि गांधी एक ऐसे राजनीतिक थे जिसको नकलना त वादाकी पर आधारित थी और त किन्हीं सन्निक ज्ञानों या ज्ञान पर अधिक मात्र उनके व्यक्तित्व की दुपरो को कायम कर देने की प्रवृत्ति पर ही आधारित थी।

एक बार प्रकृतनन्द मोय ने मिस्टर गिबर्सन से पूछा कि चाणका गांधी के बारे में क्या विचार है? उत्तर में उन्होंने अपने दो प्रश्नों की दृष्टावा जो उन्होंने गांधी से पूछे थे। परना ज्ञान था—प्रायः महात्मम पूण क्या है? दुपरा कायरा महात्मम वीर क्या है? गांधी का उत्तर था, "पदले के बारे में केवल दुपरे जानते हैं, मैं नहीं। दुपरे के बारे में—जीव युक्त हैं इतने है कि एक चुपचा रहित है। ऐसा उत्तर केवल वैष्णव जत ही दे सकता है—जो अपनी किमी गलती को 'हिंसात्मक स्वर्ण' कह सकता है।

१९२० में लोकमान्य तिलक की मृत्यु के बाद गांधी कांग्रेस के नेता बने। उन समय भारतीय प्रजासत्ता का जो आन्दोलन देश में शुरू हुआ था, वह १९२४ में दब दिना गया। तब से १९३० का स्वातंत्र्य संग्राम शुरू होने तक कांग्रेस की राजनीति को आगदोर गांधी ने स्वराज्य पक्ष के पंडित मोतीलाल नेहरू जैसे नेताओं के द्वारा करवा। १९३० के आन्दोलन के समय फिर ने गांधी के नेतृत्व में बना। १९३० का आन्दोलन, उसके बाद १९३१ में गौंधेय परिषद् के समय कांग्रेस की तरफ से ब्रिटेन से हुई वातनीय और उसके अनकने होने पर १९३२-३३ में फिर से जिंदा आवापद, ने सब पदना गांधी के प्रत्यक्ष नेतृत्व में हुई थीं। १९३९ में तत्प्रायः की जो दूसरी वेतना निकली, वह सामुदायिक रूप से चली और बाद में व्यक्तिगत स्वातंत्र्य का रूप में १९३८ तक किमी तरह चली। उसके बाद गांधी ने यह सत्याग्रह भी लोक दिना और कांग्रेस का रूप सन्दार पटेल, जवाहरलाल नेहरू, मोलाना आजाद, राजेन्द्रप्रसाद, राज-गोपालाचारी, नृमनचंद्र बोस और जयप्रकाश जीने नये नेताओं के हवाने कर दिए और सुद आंदोलन में अलग हो गए। तब प्राचीं ने कांग्रेस पत्रिमहल बने तो वह नय हूय कि ज। पर निगरा को रखकर नयं वेत रखने के लिए एक पार्लियामेन्टी बोर्ड नियुक्त किया गया, जिसके सदस्य पटेल, राजेन्द्रप्रसाद और मोलाना आजाद सदस्य थे। यह गांधी की नलह की कि निगरा को रखा जाए।

१९३५ में सुभाषचंद्र बोस कांग्रेस के अध्यक्ष बने। उन समय कांग्रेस में एक गुरतना और एक नया ऐसा जो इन थे। जयप्रकाश, नरेन्द्रदेव, अच्युत पटवर्धन, राजेन्द्रप्रसाद आदि युवक नेता कांग्रेस के भीतर, समाजवादी दल की स्थापना कर चुके थे। राजेन्द्रप्रसाद, सरदार पटेल, मोलाना आजाद, पुरानी पीढ़ी के

नेता थे। जवाहरलाल नेहरू इन दोनों दलों के बीच में से छीर नए दल के नेता थे। जवाहरलाल हमलाफि गांधी के विचारों से सहमत नहीं थे फिर भी उनके नेतृत्व के खिलाफ नहीं थे।

पुराने नेताओं की नहीं पीढ़ी के नेता अपने भागों के पीछे मालूम होने से, पर गांधी को बैसा नहीं लगता था। कांग्रेस का कार्य और उसकी गति बढ़ाने के लिए इन नए नेताओं की आवश्यकता गांधी समझते थे। यही उनकी क्रांतिकारी प्रवृत्ति की विशेषता और उनके चरित्र की श्रेष्ठता थी। सुभाषचंद्र बोस की नीति इन दोनों दलों में प्रचलन थी। जब उन्होंने द्वितीय महायुद्ध छिड़ने की संभावना देखी तो उन्हें लगा कि कांग्रेस की तरफ से संसदों में भाग की जाए कि एक साल के भीतर भारत को स्वाधीन करने बरना हम प्रत्यक्ष आंदोलन करें और अपना स्वतंत्र राष्ट्रतंत्र कायम करके आजाद हो जाएं।

गांधी इन नीतियों से असहमत थे। इसलिए उन्होंने सुभाष से पत्राचार की शुरुआत की। इसी के फलस्वरूप सुभाष ने अपना प्रत्यक्ष पद त्यागकर कांग्रेस के सेंटर फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना की। महायुद्ध के चौदह दिनों बाद ही सुभाष ने जेल में बाहर निकलकर पूर्वी अफ्रीका में आंग्ल हिंद की एक अस्थायी सरकार बनाई और आंग्ल हिंद पोज सट्टी की तथा प्रसंगों के लोभे गुंड लेइ दिया। गांधी उसमें असहमत थे। अपनी नीति के विमोचन से उन्होंने नवंबर १९४८ में व्यक्तिगत मत्याग्रह आंदोलन शुरू किया। १९४९ में 'भारत छोड़ो' आंदोलन शुरू होने की ही था कि गांधी समेत सभी नेता अंग्लान्त कानिया गए। गांधी की भिन्नकारी ने उनके एककीय दिन के अंततः एक ही छ महीने की अवधि को गन् ४९ के आंदोलन का प्रथम कारण बनाया। इसके बाद का दूसरा कारण क्रांतिकारियों का है जिसके नेता के जयकारों और आत लोहिया।

गांधी की राजनीति तथा भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में उनके योगदान की चर्चा करते हुए आर्टे पॉथिक स्टार्लेस ने एक बड़े मार्क की बात कही है, "दो महायुद्धों के बीच के काल में हिंदुस्तान के स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व गांधी के हाथों में था। उस समय उनके भावने तीव्र माने थे—पहला था, ब्रिटिश जा अधिभार से उदको कृतज्ञतापूर्वक कक्ष्य करके उनके स्वराज्य की शिक्षा मिलने के जो भी अवसर मिले उनका पुरा-पूरा लाभ उठाना। स्वराज्य के लिए अपनी योग्यता की सिद्ध करने का यह मार्ग था। परंतु और पर अग्रज यही चाहते थे कि हिंद के लोग इसी समत से चलें। भारत के अनेक लोग की इस राहों को अस्वीकार करते थे। पर गांधी भी ने तीन कारणों से इन राहों को

राजनीति नहीं प्रेम।

दुकःशयः पहला, अ-व-चित्त संदेश वह रहा इसके बारे में उन्हें स्वराज्य स्थापित होने मिलने वाला स्वराज्य विकास के लिए पुरा की प्रसूना रहेगी जो गांधी जो अपने देशव उदारता में मान देंगे रहें, यह अपने वेद के इसके विपरीत

हो इस मार्ग को टुकम स्वरूप सरकार से घब में प्रेम के साथ ही नानून को तोड़ने से के प्रामोचोग का विकास पाषाणा सफाई, गोपी ग्राम आश्रम के सामूहिक स्वाधीनता के लिए है और सर्वत्र स्वाधीन आजादी की भाँ

संकल्पहीन देश को जा किण, क्वा-नरा उद्योग के ही आधार पर लहा महावीर, पातंजलि, ई है, लेकिन ये चित्तशुद्धि संत, निगम प्रावि कि गांधी भी समते थे के आचरण से यह विष्वा सिद्धांतों की परम प्राव हीना आवश्यक है। के काय लेकर सभ्य ने उ

गांधी के सारे निर देश ने उन्हें कःपू के ना कि वे पिता से बदकर

ठुकरामा : पहला, कांग्रेसों के उद्देश्य मन्थने होने के बारे में उनके दिव्य में दिन-दिन संदेह बढ़ रहा था। कांग्रेस यहां से अपना मायत कभी खूद उठाएंगे, इसके बारे में उन्हें शक था। दूसरा, इस रास्ते पर चलते में जिस तरह का स्वराज्य स्थापित होने की संभावना थी, वह ठीक नहीं लगता था। इस तरह मिलने वाला स्वराज्य गृहयुद्ध का रहेगा और तबमें भारतीय जनता के विकास के लिए पूरा अवसर नहीं मिल पाएगा। तबमें नरेशों तथा पृथीपतिवों की प्रभुता रहेगी जो कि यूरोपीय शक्तियों के दबैय्य बने रहेंगे। तीसरी बात, गांधी जी अपने देशवासियों के चरित्र को ऊपर उठाना चाहते थे। ब्रिटिश लोग उदारता से दान देने ऐसा मानकर लाचारी से राह देखते लोग आराम से बैठे रहें, यह रूपसे देश के लिए जोभा देने वाली बात नहीं है।

इसके विपरीत दूसरा मार्ग आत्मकवादी क्रांति का था, गांधी ने आरंभ से ही इस मार्ग को ठुकरा दिया और अहिंसक असहयोग का रास्ता पकड़ा। उसका स्वरूप सरकार से सम्बन्धीय करके शासन चलाना असंभव बना देना था। इनमें से प्रेम के साथ ही साथ देश की मोई हुई रचना अस्ति पैदा हुई। तमक कानून को तोड़ने से लेकर भविष्य कानून भंग तक, सूत्र कातवा से लेकर खादी पानाशोध का विकास और हरिजन कल्याण तक, व्यक्तिगत सत्याग्रह से लेकर गांधीवादी सफाई, योगी की सेवा तक, हरिजन, भंगी बस्ती में रहने से लेकर सेवा-साम आश्रम के सामूहिक जीवन तक—उनका संपूर्ण जीवन भारत की संपूर्ण स्वाधीनता के लिए संपूर्ण रूप से दिया हुआ जीवन है। सर्वत्र सत्य का प्रयोग है और सर्वत्र रसविभोर हैं गांधी।

पाजादी की अहिंसक सफाई के बजाने गांधी ने पूरे मोये हुए, विभक्त, संकल्पहीन देश को जपाना चाहा। इसके लिए उन्होंने क्या-क्या प्रयोग नहीं किए, क्या-क्या उपयोग नहीं किये किए। लेकिन उन्हें सत्य, अहिंसा आदि तथों के ही आधार पर लड़ना पड़ा। ये तत्त्व उन्हें पुराने ही थे। अहिल, बुद्ध, महावीर, गान्धर्व, ईसा, राम, कृष्ण आदि इन सभी महापुरुषों ने उन्हें बताया है, लेकिन ये चित्तशुद्धि के लिए कहे गए हैं। चित्त शुद्धि, एकांत, ध्यान और संन्यास, नियम आदि किण्वतों को हमारे पूर्वजों ने जितनी मान्यता दी, उतनी गांधी भी मानते थे लेकिन इसके अलावा बापू ने अपने कर्मों द्वारा, अपने आचरण से यह सिखाया कि गमान देना और लोकतांत्रिक के लिए भी इतनी विद्रोहों की धर्म आवश्यकता है। निर्वैय्य होना, दयावान होना, अहिंसक योद्धा होना आवश्यक है। लेकिन इसकी परीक्षा पर में नहीं होती, जब समाज का काम लेकर समाज में जोते हैं तब होती है।

गांधी के सारे निकटवर्ती जन उन्हें 'बापू' नाम से पुकारते थे। फिर सारे देश ने उन्हें बापू के नाम से पुकारा। राष्ट्रपिता भी कहा। विनोबा ने कहा कि वे पिता से बढ़कर माता थे। अपने देश की सम्यक्ता में एक वाक्य आया

ठुकराया : पहला, संशयों के उद्देश्य मूल्य होने के बारे में उनके दिम में विक-
 श-दिन स्पष्ट कह रहा था। संशय यहाँ से अपना माया कभी लुप्त उठाने, इसके बारे में उन्हें दाक था। दूसरा, इस रास्ते पर चलते नें जिन तरह का स्वराज्य स्थापित होने की सम्भावना थी, वह ठीक नहीं लगता था। इस तरह मिलने वाला स्वराज्य यदि यही रूप में रहेगा और तबमें भारतीय जनता के विकास के लिए पूरा क्रयम नहीं मिल पाएगा। उभने नरेशों तथा एजीपतियों की प्रभुता रहेगी जो कि यूरोपीय सन्तियों के दबैय वने रहेंगे। तीसरी बात, गांधी जो अपने देशवासियों के खरिद को ऊपर उठाना चाहते थे। ब्रिटिश लोग उदारता नें दात देंगे ऐसा मानकर साचारी से राह देखने लोग घाराम से बैठे रहें, यह अपने देश के लिए शोभा देने वाली बात नहीं है।

इनके विपरीत दूसरा मार्ग मार्तकवावी कति का था, गांधी ने प्रारंभ से ही इन मार्ग को ठुकरा दिया और अहिंसक असाहयोग का रास्ता पकड़ा। उमका स्वरूप नरकार नें प्रसहयोग करके शासन चलाना प्रसंभव बना देता था। इसमें नें प्रेम के साथ ही साथ देश की सौई हुई रचना शक्ति पैदा हुई। नमक कानून को मोड़ने में लेकर अविनय कानून भंग तक, सूत कातना में लेकर छावी प्रामोयोग का विकास और हरिजन कल्याण तक, व्यक्तिगत सत्याग्रह से लेकर गाव-ना सफाई, रोगी की सेवा तक, हरिजन, भंगी बस्ती में रहने से लेकर सेवा-पाप साधक के सामुहिक जीवन तक—उनका संपूर्ण जीवन भारत की संपूर्ण स्वाधोन्नता के लिए संपूर्ण रूप से दिया हुआ जीवन है। सर्वत्र सत्य का प्रयोग है और सर्वत्र रसविभोर हैं गांधी।

प्राजादी की अहिंसक लड़ाई के बहाने गांधी ने पूरे सोचे हुए, विभक्त, संकल्पित देश को जगाना चाहा। इसके लिए उन्होंने क्या-क्या प्रयोग नहीं किए, क्या-क्या उल्लास नहीं सड़े किए। लेकिन उन्हें मरु, अहिंसा धारि त्तों के ही पाधार पर खड़ा किया। ये उत नए नहीं पुराने ही थे। कविता, बुद्ध, महावीर, पातंजलि, ईसा, राम, कृष्ण आदि इन सभी महापुरुषों ने उन्हें बताया है, लेकिन ये चित्तशुद्धि के लिए कहे गए है। चित्त शुद्धि, एकान्त, ध्यान और संन्य, नियम आदि क्रियाओं को हमारे पूर्वजों ने जिनती मन्थ्यता दी, उननी गांधी भी मानते थे लेकिन उनके घलाया बापु नें अपने कभी द्वारा, अपने प्राचरण से यह तिलाया कि गमात्र सेवा और लोककान्ति के लिए भी इन्हीं सिद्धांतों की प्रथम आवश्यकता है। निबेर होता, दवावाने होना, अहिंसक धीका होना आवश्यक है। लेकिन इसकी परीक्षा पर में नहीं होती, अब प्रनाज का काम लेकर समाज नें जोते हैं तब होती है।

गांधी के सारे निकटवर्ती जन उन्हें 'बापु' नाम से पुकारते थे। फिर सारे देश ने उन्हें बापु के नाम से पुकारा। राष्ट्रपिता भी कहा। विनोबा ने कहा कि वे पितर से बढ़कर माता थे। अपने देश की सभ्यता में एक कथय प्राया

है—'सर्वज्ञ वितामों में एक मातः श्रेष्ठ है।'

गांधी से मतलब जो राजनीति की चीर है चाज उस राजनीति में एक कुछ माध्य है। गांधी ने इगो 'साराजनीति' का भारतीयन विरोध किया। गांधी को जहाँ जव भी गया कि राज्य की जगह सत्यता पैदा गया, यहाँ उन्होंने भारतीयन मापन ले लिया।

उपनिषद् में आता है—जिस भास हुआ कि मिल गया, उसको उर मिलः ही नहीं। यह प्राणिक नहीं भास है। जिस एकमुन मिल जायता वह तो चुप हो जायता। वायु को विनोद ने बहुत ही गाम से देखा था। वायु को सतत भास होता था कि यही चीर भास जाता है, और जहाँ जाता है वह यही दूर है। ये ऐसा कहते थे, लोगों को डगते नहीं थे परन्तु जो हममें उभ गये। वह जो दगो ही, अंतर था, वह भगवान ने साक्षिर में तोड़ डाला। यदि अंतर भगवद्-शक्ति रहे तो अन्तिम क्षण में वह अंतर भगवान के हाथों टूट जाता है। जैसे वृक्ष से फल टूट जाता है। इसी को अन्ति कहते हैं। विनाश करने करने एक क्षण होता जाता है यहाँ सास अंतर मिट जाता है। भस कुछ धूम्र ने मिलीन ही जाता है। यही है गांधी को अन्ति—हे राम।

गांधी की व्यक्तिगत जाति तो हुई। उन्हें मोक्ष मिला। राजनीति में साहिवा और सत्य के माधन से उन्हें उनकी मृच्छि (माध्य) मिली। पर राष्ट्रीय, जतीय और मानवीय स्तर पर कसबाः तीव्र भीमार्ण तीन विफलताएं गायते आईं। गांधी अपने तंपूर्ण व्यक्तिस्व से सुदृ भगतीय गर्नाया और संगमनी चरित्र के थे। पर अपने राष्ट्रीय जीवन में 'राम नाम', 'सत्य', 'अहिंसा', 'अर्थ', 'साध्यम', 'प्रार्थना यथा' प्रादि जो प्रचीन इन्दिने स्वीकार किए के यह 'रिडु धर्म' के थे। इसलिये गांधी के तमम प्रथनों, तपस्याओं और अन्तः सात्म-अनिराज के साधन समलमान, ईसाई और हिन्दू जातिधों के भाग भारतीय राष्ट्र धार (संगमनी) में संपूर्ण रूप से नहीं आ सके।

भारतीय मनीषा भी अपने यही विशेषता है कि यह अपने धर्म, विचार, राष्ट्र की सीमा, जाति, धारण, विश्वास, इन सबसे (टॉमिडेंट) ऊपर उठी हुई है। एक और सीमा में इसीम होती है इगरी और स्मून् में शून्य होती है। गांधी स्मून् में शून्य तो हुए पर धर्म, विचार, देश, जाति और राष्ट्र की सीमा में ही रहें जा सके।

गांधी की साहिवा, साधन की गतित्रय और साधक उनही सैन्टिना के मापदंड होते थे कि एक सास वर्ग के लोग, विशेषकर वैश्य लोग और उच्च वर्ग के लोग ही अपने उद्देशों के लिये स्वभावतः उभी वगे ने 'सास' भी

राजनीति नहीं ग्रहण : सत्य

उदाहरण।

गांधी के वैचित्र्य पा-

लिङ्ग 'साम्प्रदायिक' और

गांधी के राज्य में जि

सम्वाभाविक भोग-निष्पत्ति

गांधी के सत्यत्व की

इसीलिये उरका महान्तम

रीनतद में चल गया।

गांधी का सत्य स्वधि

'समन' से ही छोटा हो गा

बीर, कर्म और साधरण

सत्य के केवल एक ही

दिखने का साधन।

गांधी के सदैव ने ज

साथ नहीं गई और राष्ट्रीय

गांधी सासप्रेम के पु

हमसे भारा देना आ गया

हमोलिए गांधी को तो स

परार्थीन रह गया—इसे

गांधी ने अपने सत्य के

और सासप्रेम के कारण ही

चाहा। इसी अंतरविरोध

जो 'सै' है उसे ही स्वीकार

की कसूर ही गांधी युग

गांधी के निजी सत्य

समाज अन्ति का सत्य स

का साधक चारों ओर स

वया है, नया है, अता है।

जहाँ जीवन शीघ्र ही

प्रमुख हो जाए, यह सत्य

वी में संशुकर रह गई—अ

नीति, अन्ति और गमाज,

निरास, रिडु और सुन्दर

सांडना और अन्ति नने

इसका बुनिपायी कारण वह

उठाया।

गांधी के नैतिक महादेश ऐसे थे कि व्यक्तिगत स्तर पर किसी व्यक्ति के लिए 'आत्ममरण' और 'दोग' के भलावा और कोई विकल्प नहीं था।

गांधी के मरण से जितना झूठ, जतनी तपस्या और त्याग से जितनी अत्याधुनिक भोग-विभोग पैदा हुई वह किस सच्चाई का सङ्केत है ?

गांधी ने दससक की वयन की - रामराज्य, स्वराज्य, वानरस्वराज्य आदि इसीलिए अन्तःप्रधानतम भाव इष्टिया (प्रेम) कायना, आत्मत्व और कर्म-हीनता से बढल गया।

गांधी का मरण आत्मि से भी बडा था, इसीलिए गांधीयुग का अशक्ति 'दमन' से ही छोटा हो गया, कूटित, असुजत, असंगुट। विचार और व्यवहार के बीच, कर्म और आचरण के बीच भी अंतर राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुआ। उसे भरने का केवल एक ही उपाय था—दोग, झूठ, जितना छोटा उतना ही बडा दिखने का आदेश।

गांधी के अद्वैत में जो ईन पैदा हुआ उसमें अंततः 'कार्य' तो गांधी के साथ चली गई और पार्टी अवाहनलाल नेहरू के साथ।

गांधी आत्मप्रेम के पुरुष थे। उनका यह आत्मप्रेम इतना विशाल था कि इसके सारा देश आ गया। देश प्रेम के माध्यम से ही उन्होंने अपना प्रेम भोगा। इसीलिए गांधी को तो आत्मसुखित मिल गई पर सारा देश मानसिक रूप से पराधीन रह गया—इसे 'स्वराज्य' नहीं हासिल हुआ।

गांधी ने अपने मरण के प्रयोगों से अपना स्वधर्म बूझा, उसे प्राप्त किया और आत्मप्रेम के कारण ही उन्हें अपने स्वधर्म की दूमरों पर आरोपित करना चाहा। इसी अंतरविरोध से स्वधर्म प्राप्ति और जीने की धारा यहां एक गई। जो 'मैं' हूँ उस में स्वीकार नहीं करता—जो मैं नहीं हूँ वही बनने और दिखने की कसबा ही गांधी युग की राजनीति की कसबा है।

गांधी के निजी मरण का दूमरों पर आरोपण यही है यह वस्तु बिसने देश, समाज व्यक्ति का साथ बका हुआ है और उर्मी से जिस राजनीतिक संस्कृति का अंधकार चारों ओर छाया है, उसमें यह बेल पाना कठिन हो गया कि कौन क्या है, क्या है, क्या है।

जहां जीवन गौण हो जाए और राजनीति केवल जीवन के हर क्षेत्र में प्रमुख हो जाए, यह सच्चाई उस मासकृतिक विरमता से पैदा हुई जहां हर नीज ही में बंटकर रह गई। समीर और गरीब, गान और गहर, कर्म और राजनीति, शक्ति और समाज, वचन और कर्म, नीच और ऊंच, गायक और निरक्षर हिंदू और मुसलमान, गजर्न और शूद्र, आदि।

बादला और बंटते चले जाना, चाहे कोई राजनीतिक इल ही या समाज, इसका बुनियादी कारण यह व्यक्ति है, जो स्वयं की नहीं देखता, स्वयं को नहीं

स्वीकारता। वह स्वयं से दूसरा होना चाहता है जो कि यह नहीं है—गांधी ने इस अक्षय्य को देखा और कहा, "गांधी, देखो स्वयं का मेरा प्रयोग।" अक्षय्य समरकृत रह गए गांधी के स्वयं ने, और हम सब अपने-अपने स्वयं के प्रयोग से विमुक्त हो गए। हमने पाया कि स्वयं बही है जो हमारे के पास है।

गांधी अपनी पूरी सफलताओं और असफलताओं के बीच बंटे हुए माध्यम काज कर रहे हैं कि अंधेरा कभी हटना घना नहीं होता और न परिस्थितियाँ दतनी प्रतिकूल होती हैं कि वे प्रकाश के आगमन में बाधा बन सकें। वस्तुतः 'सुम्हारे' अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है।

संका

अवाहुरनाथ नेत्रक ने
की बाधा की। इस की
जल्दी यह अनुभव कर
द्वारा ही संभव है।

इसी समय नेत्रक
और सहसंस्था-प्रधान ने
की अभिवार्यता है। तीनों
कि साहित्य, कला और
कोई स्थान नहीं है।

नेत्रक की वे तीनों
और बेगना में प्रांतिकत्व
विदेशी नीति का निर्धारण
आजार्ज में इनके प
रिषद और निर्भीक व्यक्ति
और परिभाषित था।

दृष्टि महत्त्वपूर्ण है। उन
विभिन्न विस्तार है। उन
है। और उनकी स्थापना
भारतीय ने आजादी के
और इनके भारतीयों को
आजार्ज' अपने वाला स्व

पहले-पहले की कला
का उल्लेख सर्वत्र भारतीय
और अस्तित्व-भंगी के इस
की, हम उसे किम तरह

सूक्ष्म का फल

ही है—गांधी ने
प्रयोग ।” इस
सत्य के प्रयोग
के पास है ।
हैं हूँ दाजव
परिस्थितियों
सकें । वस्तुतः

नया प्रस्ताव

संकल्प से महत्वाकांक्षा : जवाहरलाल नेहरू

जवाहरलाल नेहरू ने १९२६-२७ में यूरोप विद्वेष कर फ्रांस, जर्मनी और रूस की यात्रा की । उस दौरान उन्होंने अपने जीवन में इनके पहले, ब्रिटिश दलनी जल्दी यह अनुभव कर लिया कि समाजवाद के ध्येयों की प्राप्ति केवल लोकतंत्र द्वारा ही संभव है ।

उनी समय नेहरू ने यह भी अनुभव कर लिया कि कृषि-प्रधान विास और बहुसंख्या-प्रधान देश के लिए विज्ञान और तकनीक द्वारा औद्योगीकरण की अनिवार्यता है । गोल्डरी निश्चित धारणा उनको १९३६ में यह जो चुकी थी कि माहिस्य, कला और संस्कृति के क्षेत्र में राजनीतिक विज्ञानों, मतवादों का कोई स्थान नहीं है ।

नेहरू की ये तीनों दृष्टियाँ वस्तुतः उनके विश्वजनीन ऐतिहासिक बोध और चेतना में प्रतिष्ठित थीं और दली चेतना में उन्होंने भारत और भारत की विदेश नीति का निर्धारण किया ।

आजादी ने इनके पहले नेहरू अपने चरित्र में, मातम में एक सुनिश्चित, स्थिर और निरंतर व्यक्ति थे । इसी दृष्टि में उनका संकल्प यथासंभव अद्वेषाणित और परिवर्तित था । लोकतंत्र और समाजवाद के इतिहास में यह निश्चित दृष्टि महत्त्वपूर्ण है । उनका 'व्यक्तित्व', 'बुद्धि' और 'व्यवहार' यह भी एक विशिष्ट विभूति है । उनका व्यक्तित्व गांधी का ध्यान धरम अपनी ओर खीनता है । और उनकी हमेशा बुद्धि और मीठ व्यवहार उनें बांधे रखता है । केन भारतीय के आजादी के बाद प्रथम प्रशासकों के रूप में जिन तत्व में विकसित और भारत मानवत्व का भाषा उगका नाम है । उनके प्रति 'विराध संकल्प भावना' अपने तथा जवाहरलाल नेहरू ।

'हिन्दुस्तान की कहानी' में नेहरू ने भारतीय राजनीति में गांधीजी के प्रवेश का उल्लेख अत्यंत भावुकता से किया है, "हम क्या कर सकते थे ? गांधीजी और परतंत्रमन्त्री के इस सम्बन्ध में जो हिन्दुस्तान की अनेक अदर सीधें गांधी जी, हम उस किम तरह बाहर जा सकते थे ? उत्तेजना, तकलीफ, उत्तम के

कुछ वर्षों में ही नहीं बल्कि लंबी पीढ़ियों के हगारी जनता ने अपने जून और मेहनत, प्राण और पसीने का सौँट डी था। हिन्दुस्तान के तरीर और आस्था में यह प्रतिक्रिया बहुत गहरी बस गई थी और उसने हमारे सामाजिक जीवन में दूर तक प्रत्यक्ष में जहर डाल दिया था। यह सब उस चीनारी की तरह था जो सभी, ताड़ियों चीन केकड़ों का भुग करती है और जिसमें मोन धोमि-धोमि लेकिन बकीनी नीर पन होनी थी... और तब आंखीनी का माना हुआ। गांधी जी लानी हवा के उस प्रबल प्रवाह की तरह थे, जिसने हमारे लिए एसी तरह फैलना और तहरी एंगे नेना संभव बनाया। वह रोजगरी की उत्त क्रिया की तरह थे, जो संघकार में पैर गई और जिसने हमारी मंखों के सामने से पदों को हटा दिया। "तब राक्षसीनिक आजादी की एर नई जन्म मासन प्राई और उतने से एक नया कार्य पैदा हुआ।"

भारतीय राजनीति में, विशेष कर गांधी के चरित्र में हम पर्थ ने नेहरू के विवेक की उम तरह सुना कि नेहरू भारत को 'देसह' में समर्थ हुए। जैसे कोई मनोविशेषज्ञ रोग के अतत में घुम जाने का संकल्प कर ले, वही निचा नेहरू ने। 'हिन्दुस्तान की कहानी', 'भारत की खोज', 'मेरी बाहानी', 'विश्व इतिहास की मांकी' उसी देखने, 'हुदने', 'पता लगाने' के ही तो साधक है। तन्मान ने पत्नीय में पुस्तक, जी भूतबोध के अर्थकार में छिप चुका है, जो प्रत्यक्ष है पर रोग के कारण शिक्षता नहीं है, नेहरू ने उस बीमार देश, अस्वस्थ समाज और व्यक्ति के सामाजिक विकार के कारण को जानकर उनके रोगी के सामने खोल देन की मार्थक कोशिश की और उम तरह उसकी हलके शोक में छुटकारा दिया देना चाहा।

यह संकल्प कई तनावित्तों बाद गांधी में फिर ने उगकर आगे जवाहरलाल नेहरू में एक स्वाभाविक सीमा तक एगादुत हुआ।

इसी संकल्प आक की वह मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया थी जो तिनने जवाहरलाल की उम विदेशी राज्य के सामने लके सरने से फिर भूतान रखने पर कार्य महसुस हुई, जिसने इसे निचा दिया था और इतना हमारा फयमान किया था। तभी उम संकल्प में यह एगादुत साधक था कि "चाहे नतीजा कुछ भी हो, सब आगे निच त आकाया जाए।"

जान मनु १९११ में लिग हुए उस गणतन्त्र पर नेहरू अपने जीवन के अन्तिम सरो तक प्ररिग रहे होते।

विश्वगत अर्थर एकात्म में उनकी एक सावित्री गुणगुण में उदराल गेन गइया एर थे। एकात्म ने कहा था कि "सुखमें और जिन्मा में क्या बात एकली है? वह एक सामाजिक है और गुम देशमभत ही।"

१. 'हिन्दुस्तान की कहानी', पृष्ठ ३५५-५६

देशभक्त के अर्थ के म नेहरू ने जोड़ा। उन्होंने का गवाल है, सुके गरी मरुतिन माती में, यह का इकठाल गरी थे कि भी निकजे में का फवा है और

राजनीति में गांधी गु रूप में चतक एने आसिद घनुभव तथा राजनीतिक क कितरंजन दाग, राजेउ प्र यकालत छोटकर, नशीओ लिए भी त्याग और नदर प्रतिष्ठा थी उनके तथा के साथ के प्राग-गाम जो एर उन्होंने एक साधक के निच वटा एगादुत किया है।

गांधी किनी अंतर्द्वि पर उनका मरुण विदवाग ही। दीक उमके निारीत प्र अपनी संकल्प एका पर उ

गांधी और नेहरू न की घुर ही बाने से, पर नेहरू चीर में उनेविन और इ समरणीय सांवाक्य की ही नेहरू भाये सांवाक्य की वैर काध्यात्मिक दृष्टि से देखने

एकप्रमाण गांधी की वा काय की चकते नही तनाया साधक और वैदिक सुनी क वह गांधी द्वारा पॉय गांधी को प्रभावित हुआ।

पर एतन्त्र क सामने व हरमणने ने शिक्षा ने एगादु

१. 'हिन्दुस्तान की कहानी', पृष्ठ

से हमारी जनता ने अपने बुल खीर
हिन्दुस्तान के जरीर और आस्था में
उसने हमारे सामाजिक जीवन में हर
सब उस बीमारों की उत्पत्ति था जो
ती है और जिसमें मोर-पों-पों-पों
व गांधीजी का समाप्त हुआ। गांधी
हमें, जिसने हमारे लिए दुर्गो परह
। पर चीपती की इस निरुण की
सबे हमारे माथों के सामने ने पड़े
की की एक नई शकल सामने आई

भी के चरित्र में इस अर्थ न नहक
रत को-देसमें में सम्पत्त हुए। जैसे
माने का मकल कर के, यही किया
को खीर, 'वेनी म्हातो', 'विश्व इति-
सगामे' के ही तो साक्ष्य है। नन्मगत
कार में छिप नुका है, जो प्रत्यक्ष है
ने उस बीमार का, अक्षरशः गमाज
की गन्कर उमें गांधी के मासने
तर्ह उमने उनके दाभ ने छुटकारा

में फिर ने उमने सामे जवाहर-
मादत हुआ।
असिक्ता भी थी जिसमें जवाहर-
ने करने न दिग् भूवाण स्वने
या और अना हमारा सम्मान
काट था दि-वाहे न ही का कुछ

पर देकर गांधी जीवन के अन्तिम

गांधीजी पुस्तकालय में जवाहरलाल
"मुझे और जनता में प्रेम का
देगभवा हो।"

देशप्रेम के अर्थ के साथ ही राष्ट्र की सीमा की चौकड़ी को पहली बार
नेहरू ने छोड़ा। उन्होंने इसी घोषणा के कथ, "जहाँ तक भरे देशभवन होते
न मकल है, मुझे नहीं माशुम कि इन दोनों में, एक म कम इस अर्थ के
संयुक्त मामों में, यह कोई एक विवेकता की बात है।" लेकिन इस बात में
इलाकाल नहीं थे कि वे नई राजनीति नहीं हूँ, अगस्त में राजनीति के
दिशि में साक्षात् हूँ और नका दिवाण बन गया हूँ।"

राजनीति में गांधी युग की एक विशेषता यह थी कि एक व्यक्ति ने रखाई
रन में अनेक ऐसे व्यक्तियों को यथा अनुगत बना लिया था जोकि ज्ञान, बुद्धि,
अनुभव तथा राजनीतिक सूक्ष्म बुद्धि में बढ़े-बढ़े थे। मोतीलाल, जवाहरलाल,
किशोरलाल शम, अजिज प्रसाद, गणेश प्रसेन जैसे व्यक्तियों ने अपना सकल
सकालन छोड़कर गांधीजी का अनुसरण किया। गांधीजी भौतिक माथों के
लिए भी स्वयं को तपस्या पर और देने थे। इसीलिए उनके अनुयायियों की
प्रतिष्ठा भी उनके स्वयं के अनुगत में ही होती थी। गांधी के अन्तर्गत जवाहर-
लाल के पाम-पाम की प्रभावशाली बना उनका प्रमुख कारण यही था कि
उन्होंने एक आदर्श के लिए तथा गांधीजी का अनुसरण करने के लिए अपना
बना स्वयं किया है।

गांधी किसी अंतर्द्वेष के अर्थ न करने थे और अपनी आस्था की प्रेरणाओं
पर उनका संयुक्त अन्तर्गत था, अर्थ ही उनमें अहिंसात्मक-अर्थ नहीं भूयां नगई
है। ठीक इसके विपरीत जवाहरलाल थे। वह बुद्धि के अर्थ न करने थे और
सपनी नकल अर्थ न उन्हें युग निरन्तर था।

गांधी और नेहरू के बीच सारे विरोधों का यही मूल था। गांधी स्वभावतः
नृप ही जाते थे, पर नेहरू गांधी पर झुकाते थे। फरवरी १९५२ में बीर-
बीरा में अर्जुन शोध द्वारा आने की आग लगा देने पर गांधी द्वारा संयुक्त
अनहयोग आंदोलन को ही स्थगित कर देना, जवाहरलाल का पक्ष नहीं था।
नेहरू सारे आंदोलन को अर्थात् दृष्टि में देखते थे, गांधी का आर्थिक और
सांख्यिकिक दृष्टि न देखते थे।

इसअर्थ गांधी जो गांधी और जवाहरजी में आर्थिकता का युद्ध जवाहर-
लाल को अर्थ नहीं लगा था। पर अर्थिक आंदोलन और अनहयोग के
या अर्थ और अर्थिक मुद्दों की अर्थ नेहरू आह्वान हुए और आगे अर्थ के साथ
वह गांधी आगे गांधी साथ थे लिए गांधी आगे पर दिग् आने आने अर्थ के
की प्रभावित हुए।

पर अर्थ के सम्मेल में गांधी और नेहरू दोनों ही और पर थे। अर्थिकता
मकल के दिशि में जवाहर गांधी के दिग्ने नवासाध था। दिग्ने नवासाध

१. 'हिन्दुस्तान की म्हातो', पृष्ठ ४५०-५५१

कन्तुएवा न कदा—'ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे।' नेहरू ने कहा 'वा ! ईश्वर क्या है ? मगर यह है जो मझरी नींद में सोया होगा ।'

उस पर गांधीजी हंस पड़े । कहा कि 'जवाहरलाल अनेक भागिनकों की अपेक्षा ईश्वर के अधिक निकट है।' जवाहरलाल पहली बार १९२१ में ६ दिसंबर को मद्रास की नोटिस बांटने में इलाहाबाद में विरपत्तार हुए और उसी गान लखनऊ जेल के लिए रवाना किए गए । जवाहरलाल नेहरू की जिला जेल लखनऊ की टायरी उम्र समय का महत्त्वपूर्ण अन्तर्विज्ञ है, जिसे नेहरू ने बहुत समय से लिखा है । कहीं भी कोई भावुकता नहीं ।

सन् १९२०-२१ में अपना राजनीतिक जीवन सारंभ करने के पूर्व नेहरू ने संयुक्त प्रांत (यू० पी०) का दौरा करना सारंभ किया । उन्होंने हर मौसम में देशकी इलाकों की जागबीन की—'उस यात्राओं की डीनों ने मेरे अध्ययन की भूमिका के साथ मिलकर मुझे पत्रों के प्रति एक अंतर्दृष्टि दी । जोरस बौद्धिक ज्ञान की एक शान्तिमय प्रहणशोभता मिली थीर, धीरे-धीरे भाग्यवर्ष के अंग मजानांक निरु के एक नई प्रवार्थना आई।' इस प्रकार धीरे-धीरे भारत के इतिहास की बुझवावनी, उनके उद्यमान-पतन, उसकी जद-परराज्य मेरे सामने उद्घाटित हुई ।'

जवाहर के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण अनुभव था, विशेषकर इसलिए कि यह वचन ने ही भारतीय जीवन के अंगना खोलां गे दूर रहे थे । राजनीतियों को भारतवर्ष की समझने के लिए गांधी में अज्ञाना गांधीवादो राजनीति का प्रधान अंग था । जवाहरलाल ने उन जीवन नीति के रहस्य को समझा था, 'हम लोगों के सारंभ करने में और लक्षण दूर । अवधारणा राजनीतिक दृष्टि से हम अशुचित, बड़ी-बड़ी भूल करते थे, लेकिन हम यह कभी नहीं भूले कि हमारा मूल्य उद्देश्य भारतीय जनता के जीवन स्तर को ऊंचा उठाना है, न केवल राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से बल्कि मानसिक और साध्यात्मिक क्षेत्र में भी । हम अपना ही मजबूती आचारिक अक्षि की ही बूड करना चाहते थे, क्योंकि हम जानते थे इसी में और सब अंगों की भी प्राप्ति होगी । हमें एक विशिष्टी मागन की दीन और लज्जाजनक टाकटा की कई पीढ़ियों का प्रभाव दूर करना था ।'

जवाहर लगातार देश भर में दौरा करते थे । उन्होंने यह समझा कि भारत की गिरम असाधेता को यह पकड़ नहीं पा रहे थे, अतःक उद्यम भारत के अन्तःगत में या उसके निरु-निरुओं की विविधता में नहीं, बल्कि किसी पथाह मज्जाई में थिया हुआ था, जिसको यह मार नहीं सके थे और जिसका उन्हें आश्रय माय कभी-कभी हो जाता था ।

यह तीन-दोस राष्ट्रीय संयाभ द्वारा भारत की राजनीति में गहरे उतरते गए, बंता-बैठे इनमें एक भीतरी विकास हो रहा था । भारत उनके लिए

बौद्धिक अन्वधारणा नहीं । सजीव रूप से रहा था ।

गांधी १९२६ में लखनऊ नवीन परिस्थितियों की रक्षा का निकट में अध्ययन विरोधः सम्पन्न में भाग महत्त्वपूर्ण कम्पुनिस्टों, गांधी साध्यात्म के भाग में लखनऊ विधा ।

उस समय नेहरू कम्पुनिस्टों के जितने कि भोक्तव्य पढ़े और उनकी महत्त्वता से अज्ञान हेमोक्रेट' लोगों की नीति-धर्म ।

नेहरू भाग्यवाद में हुए थे लेकिन उनके रस में वे पकड़ नहीं करते थे । गांधी भी आचारिक अंग धीरे-धीरे यह को पूरी तरह स्वीकार

इस प्रकार मार्क्सवाद काते हुए भी वे एक सारंभ खोले के बाद नेहरू ने एक प्रत्याग भारत के लिए साध्यात्मवाद विशेषी लाना प्रस्ताव रने ।

संसार आर्थिक अक्षि हुआ उनकी अध्ययन नेहरू वरी, १९२७ की गांधी ने लखनऊ की अंग पौरसि-साध्यात्तरी गुम पव भी १७ अक्टूबरी, १९२७ को कोई अन्तर्कला बंदिगु की स्वतंत्रता देता हू ।... तुम्हें चाहिए... मे तुम्हें अपना दूर, वकाश, योग्य और

हरे।" नेहरू ने कहा "आ ! ईश्वर का हाथ।"

"जवाहरलाल अनेक भाषितिका को जवाहरलाल पहली बार १९२१ में इलाहाबाद में गिरफ्तार हुए और गए। जवाहरलाल नेहरू की शिक्षा पूर्ण अक्षरविज्ञ है, जिसे नेहरू ने बहुत नहीं।

जीवन भारत बनने के पूर्व नेहरू भारत आया। उन्होंने हर मौकम भाषाओं और लोगों ने मेरे अध्ययन के प्रति एक अत्यंत प्रतिक्रिया की। भारत आने के लिए और पीछे-पीछे भारत वर्ष आया। एक प्रकार से पीछे-पीछे भारत-वर्ष, उसकी उप-पराजय मेरे

सुमन का विवेककर बनाने कि सोचों से दूर रहे थे। राजनीतिज्ञों में अकेला एंग्लो-वादी राजनीति का मत नहीं के रहस्य को समझा था, मैं। अक्सरवादी राजनीतिक दृष्टि लेकिन हम यह कभी नहीं भूने कि जीवन स्तर की ऊंचा उठाना है, न केवल मानसिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में ही दृढ़ करना चाहते थे, बल्कि ही भी प्रतिक्रिया थी। हमें एक अकेला ही कई चीजों का प्रभाव दूर

है। उन्होंने यह समझा कि ही या रहे थे, उसका अर्थ भारत में अकेला ही नहीं, अकेला ही अकेला ही नहीं उनके ही और जिसका उन्हें

भारत की राजनीति में अकेले उतरते ही रहा था। भारत उनके लिए

बौद्धिक समसाधना नहीं रहा था, बल्कि एक गहरी समात्मक अनुभूति का मजीज रूप ने रहा था।

मार्च १९२६ में तब १९२७ तक पठित जो यूरोप में थे। और उन्होंने नवीन परिस्थितियों और नवीन समाजशास्त्र, समाजवाद और उनके व्यावहारिक पक्ष का नित्य नै अध्ययन किया। फरवरी १९२७ में अमेरिका में राज्याध्यक्ष विरोधी सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन में इनका अनेक संसार के अनेक महत्त्वपूर्ण फलसुनिश्चियों, गौणसुनिश्चियों और उच्च राष्ट्रीयतावादीयों में हुआ। इस सम्मेलन में भाग लेकर नेहरू ने पहली बार अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन पर प्रवेश किया।

इस समय नेहरू फलसुनिश्चय के मार्कवादी सिद्धान्त में उत्तम अभिवृत्त नहीं थे जिनके कि सोवियत पद्धति की सफलता में। लेकिन वह व्यक्तिगत तत्त्व ने और उनकी सफलता में उन्हें विशेष प्रेरणा मिली थी। उनकी मूलना में 'सोवियत डेमोक्रेट' लोगों की गति-नीति और उनके सांस्करण को वे, अकेले नहीं मानते थे।

नेहरू मार्क्सवाद के अर्थ-व्यवस्था की स्थापना के प्रति आकृष्ट हुए थे लेकिन उनके वर्ग संघर्ष और समाजवाद के सिद्धान्तों के सिद्धान्तों को वे अकेले नहीं करते थे। मार्क्सवाद के ऐतिहासिक सिद्धान्तों के सिद्धान्तों को मानते हुए भी अतिरिक्त अर्थ और अर्थ-व्यवस्था की, उनके अर्थशास्त्र की सिद्धान्तों को पूरी तरह स्वीकार नहीं करते थे।

इस प्रकार मार्क्सवाद और समाजवाद की बहुत-सी बातों की स्वीकार करते हुए भी वे अकेले मार्क्सवादी नहीं बन सके। दिसंबर १९२७ में स्वदेशी आंदोलन के बाद नेहरू ने कांग्रेस कार्य समिति की बैठक में भाग लिया। उनमें एक प्रस्ताव भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता के संबंध में था। मुझे एक संकट और मार्क्सवाद विरोधी लोगों में मार्क्सवाद और अर्थशास्त्र के संबंध में भी उन्होंने प्रभाव रखा।

मदाम कामिले सांविजन के अर्थशास्त्र पर बहुत-से विचारों का सम्मेलन हुआ। उनकी अर्थशास्त्र नेहरू ने भी। मदाम कामिले सांविजन के बाद १९२७-२८ में, १९२९ की कांग्रेस में नेहरू का अर्थशास्त्र की, 'तुम बहुत तेज जा रहे हो। तुम्हें सोचने और परिस्थिति के अनुकूल चलने का समय लेना चाहिए था।' 'समाज नहीं तुम सब भी विशुद्ध अर्थशास्त्र में विश्वास रखते हो या नहीं।' '१९ जनवरी, १९२७ का गांधी ने अपना दृष्टान्त में किया, 'अगर तुम्हें कोई स्वतंत्रता चाहिए तो मैं उस अर्थशास्त्र के अनुकूल अर्थशास्त्रों में तुम्हें पूरी स्वतंत्रता देता हूँ।' 'तुम्हें मेरे और मेरे विचारों के अर्थशास्त्रों लड़ते अपनी आर्थशास्त्रों में तुम्हें अपना यह दुःख सिखा नहीं सकता कि मैं तुम्हारे जैसा बहुत-दूर, अर्थशास्त्र, योग्य और अर्थशास्त्र साथी खोजूँ, पर कार्यगति के लिए साथी-

पन की कुर्बानि करना पड़ता है।"

उस समय तंत्र पर गोपियत रूप शीघ्र अनाजवाद का विशेष प्रभाव पाने और उस बात में लक्ष्मी अत्यंत दुखी थे।

सन् १९२२ में नेहरू एक और अखिल भारतीय मुक्त युनियन कांफेस के अध्यक्ष चुने गए दूसरी ओर उन्होंने इसी वर्ष युवक संगठनों और युवक सांघोलन का भी नेतृत्व किया। स्थान-स्थान पर 'युव लीग' संघटित की गई। युवकों में नवाचारवादी और आतिकारी विचारों का प्रचार होने लगा।

१९२६ में लाहौर कांग्रेस के अध्यक्ष पद में नेहरू ने देश के लिए पूर्ण स्वाधीनता के संघर्ष की घोषणा की। उन्होंने वहाँ भी घोषणा की कि "मैं समाजवादी और प्रजातांत्रिक हूँ।"

सविनाश प्रपञ्च सांघोलन के कारण बंशी नेहरू अब यद्यत् सन् १९३४ में 'पेरौल' पर शिक्षा हुए तो उन्होंने पार्थी की एक लड़ाई पर विचार कर वहाँ अपने मन के समस्तोप और लोबीजी में अपने मतभेदों की चर्चा की। नेहरू ने अपने पत्र में लिखा :

"अब मैंने सुना कि आपने सत्याग्रह सांघोलन बंद कर दिया है तो मुझे कुछ दुःख है। ... ऐसा करने के जो कारण आपने बताए और आपके काम के लिए जो सुझाव दिये हैं, उन्होंने मुझे हृदय में डाल दिया। मैंने पत्राचार और लोगों में सहयोग किया कि गानो संगे भीतर की लड़ाई चीज टूट गई है। ऐसा संभव टूट गया, जिसकी घेरे लिए बड़ी नीमत थी। मैंने अपने को इस लंबी-लंबी दुर्घटना में अत्यान्त रूप में अक्षीयन स्पष्टता किया। ... लेकिन मैं तो ऐसा बह अभावक शीघ्र हार नहीं थी, बल्कि आस्थात्मक था, जो कि सफल अंतिक भवता है। ऐसा न समझिए कि मेरा हृदयान अंतिक में प्रवेश के सफल की हार है। उसे मैं बहुत महत्त्व नहीं देता। किसी हालात में इस अवस्थात्मकता समाप्तों में लुप्त जाने की संभावना कर सकता हूँ। लेकिन मैं आज अवस्थात्मकता समाप्तों में लुप्त जाकर काम नहीं, बल्कि वास्तव में मैं अपने एक आतिपात्री के लीर पर काम कर सकता हूँ, जिसका अन्ततः मैंने इसान में है जो कि युनियनकी और आतिकारी परिवर्तन आरम्भ है, वह वास्तविकता ही या सामाजिक, क्योंकि मुझे विश्वास हो गया है कि किसी और तरह की लड़ाई-लड़ने में अस्मान चीज दुर्घटना की न शक्ति मिल सकती है, न संतोष।"

पार्थी ने इस बात का उत्तर १७ अगस्त, १९३४ को दिया। ... मुझे विद्वान् विचारों का प्रभाव है कि तुमने मुझमें अपना साथी खोया नहीं है। मैं बड़ी ही गौरव तुम मुझे १९३३ में और उनके बाद में जानते हैं। ... मुझे देश के लिए तुने मर्त में संपूर्ण स्वाधीनता आदि और प्रथक प्रस्ताव, जिसमें तुम्हें पौरा हर्ष है, उसी वर्ष की स्थान में रखकर संघटित किया गया है। उन प्रस्तावों के लिए और उनकी नारी कल्पना के लिए पूरी जिम्मेदारी मेरी है। ... विचार-

हीन बागों के बारे में प्रस्ताव विशेष में उतमें एक भी प्रस्ताव लिखा रखा गया है। लक्ष्मी केना मुझे उनका स्थान पाने में है। क्यों न हो? बात यह है कि मुझे उनसे कहना है अक्षरशः मेरा यही पक्ष है परिभाषा करने में परत जतन

रहित जो न अपने लक्ष्मी और 'रीमेंट एंजेल एंड राई' में साक्षरवाद में प्रभावित हो है। उतमें प्रजातांत्रिक व्यवस्था रखने की चेष्टा की गई है। विचारों की सहस्रवैधी ४५५ वैधानिक सुधारवादी समाज अंतिक प्रभाव कांग्रेस के भी युवकों पर पना लिखितों में की।

१७ जनवरी, १९३६ को है, वह उनके समाजवादी लक्ष्मी के मन की कृती है। "प्रिय लक्ष्मी प्रेरणाओं को, अंततः है। शुरु-शुरु में अपने बहुत तो महत् बहुत अंतो कर दो नहीं रही और परत वह न रोकता है बल्कि हममें अंतक मेरी समझ में नहीं आता कि वे प्रमुख प्रेरणा तथा के लक्ष्मी वह सकते हैं। ... ऐसा वास्तविकता अंततः प्रजातंत्र राज्य के भीतर अंतकाल में लक्ष्मी को लक्ष्मी किया है लक्ष्मी का अंततः प्रदा ही है कि वह अंततः और विचारों का प्रदा है। अंततः लक्ष्मी

सौर समाजवाद का विशेष प्रभाव था
अन्य भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के
में प्रथम संगठनों और युवा आन्दोलन
'सौर समाज' संघटन की गई। युवकों
प्रभाव होने लगा।
यह वे नेहरू ने देश के लिए पूर्ण
वे यह भी घोषणा की कि 'सं समाज-

की नेहरू जब अगस्त 1924 में
एक लंबा वक्तव्य लिखकर उनमें अपने
संघर्षों की चर्चा की। नेहरू ने अपने
आन्दोलन बंद कर दिया है तो मुझे
संगठित करना और अपने के काम के
देश में काम किया। मैंने आचार्य
भीतर की आँसू लीज दूँ गई है।
भी सोच थी। मैंने अपने का इस
का स्पष्ट रूप किया: "अज्ञान मैंने
अधिक आचार्यिक रूप से, जाति
के मेरा उदाहरण भीड़ में प्रवेश
नहीं देना। जिन्हीं आचार्य में उन
कर सकता है। लेकिन मैं चाह
हूँ, जाति आचार्य, वे जिन्हें एक
अपना आचार्यिक रूप से उदाहरण के
होता है, वह नहीं आचार्यिक, वे
हैं कि किसी और तरह की तरह
मिल सकती है, न संतोष।
1924 को दिया।" यह उदाहरण
अपना साथी लाया नहीं है। मैं
उसके मानने की। "मुझे देना क
और प्रत्यक्ष प्रभाव, जिससे युवा
आरम्भ किया गया है। उन प्रस्तावों
जिम्मेदारी मरी है।" विचार-

हीन चर्चों के बारे में प्रस्ताव को निर्विकार होकर अछूट पड़ी। समाजवाद के
विषय में उनमें एक भी शब्द नहीं है। समाजवादियों का अधिक से अधिक
निर्माण रखा गया है। क्योंकि उनमें से कुछ के साथ मेरा घनिष्ठ परिचय है।
क्या मुझे उनका त्याग मालूम नहीं है? अगर मैंने देखा है कि सब के सब अल्पी
में है। क्यों नहीं? बात एतनी ही है कि यदि मैं उनकी तरह तेज नहीं चल
सकता तो मुझे उत्तम करना पड़ता है कि उहरी और मुझे प्रथम स्थान लेनी।
संस्करण: मेरा नहीं रखा है। मैंने शब्दकोश में समाजवाद का अर्थ देखा है।
परिभाषा पढ़ने से पहले जहां था, उसमें आगे नहीं बढ़े मरना।"

एडित जी ने अपने अस्कार्वा विचारों को अपनी पुस्तक 'विदर इंडिया'
और 'रोमेट एंड एंड राईटिंग्स' नामक पुस्तकों के लेखों में व्यक्त किया। उन
में मार्क्सवाद से प्रभावित आस्ट्रियार्थ समाजवादियों के विचारों की झलक मिलती
है। उनमें आचार्यिक व्यवहार और आर्थिक स्वतंत्रता के सिद्धांतों को एक साथ
रखने की चेष्टा की गई है। उस समय कांग्रेस के दक्षिणपंथी नेतागण नेहरू के
विचारों को उद्भवेशी कम्युनिस्ट विचार मानते थे और कम्युनिस्ट लोग उन्हें
सामाजिक सुधारवादी समाजवादी मानते थे। नेहरू के इन विचारों का सबसे
अधिक प्रभाव कांग्रेस के भीतर रहकर राष्ट्रीय आंदोलन में काम करने वाले
युवाओं पर पड़ा जिन्होंने साथ चलकर कांग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना
की।

17 जनवरी, 1924 को नेहरू ने लार्ड लॉथियन के नाम जो पत्र लिखा
है, वह उनके समाजवादी रूप और भावों के प्रभावसंभी व्यक्तित्व की समझने
के लिए की कड़ी है। "मिस्टर लार्ड लॉथियन, पूंजीवाद ने परिशुद्ध को और इन
राष्ट्रीय प्रेरणाओं को, जिसके हम छुटकारा पाना चाहते हैं, उत्तेजित कर दिया
है। अल्पसंख्यक में अपने बहुत अलार्ड भी की और उदाहरण बड़े-बड़े रहन-सहन
की अलग-अलग जगहों पर की। परंतु गार्ध होता है सब उसकी उत्थानिना
नहीं थी और आज वह समाजवादी दिशा में सब तरह की प्रगति को अतिरिक्त
संकेत है बल्कि हममें अपने-पुत्री माननी और नृत्तियों को बढ़ावा देता है।
मेरी समझ में नहीं आता कि जिस समाज का आधार परिशुद्ध ही और जिस
में प्रमुख प्रेरणा लाभ के हेतु की है, उनमें हम समाजवादी ढंग पर काम धारण
कर सकते हैं।" जैसा आचार्य कहते हैं, वह सब है कि पूंजीवादी व्यवस्था ने
अंतरराष्ट्रीय आराजकता पैदा नहीं की, वह तो महान उसकी वारिस है। हमने
राज्य के भीतर भूतकाल में गृहयुद्ध को पैदाया या काम किया है, पर हमने
बस यथार्थ को तेज किया है और वह इन सब तक बढ़ गया है कि भविष्य में
गृहयुद्ध का खतरा पैदा हो गया है। "समाजवाद कैसे आया? आप कहते
हैं कि वह उत्पादन और वितरण के साधनों के विश्वव्यापी राष्ट्रीयकरण से
नहीं आया। क्या उसमें लाभ और परिशुद्ध का हेतु समाप्त नहीं हो जाएगा?"

और उसके बजाय सामुदायिक और सड़कारी हेतु स्थापित नहीं हो जाएगा ? ...मेरे ख्याल से सिद्धांत रूप में लोकतंत्री उपायो से समाजवाद कायम करना मुमकिन है, बशर्ते कि पूरी लोकतंत्री प्रक्रिया अपनाव्व हो ! ... क्योंकि समाजवाद के विरोधी जब अपनी सत्ता को स्वतरे में देखेंगे तब वे लोकतंत्री उपाय को सन्वीकार कर देंगे । ... क्या इंग्लैंड में इस बात का अनुभव किया जाता है कि भारत के लिए गिछले कुछ अर्थ सँघ रहे हैं ? किंग प्रकार मानव औरव और शिक्षता की कुशलते के प्रयत्न में और तरीक के अधिन, आत्मा पर जो आघात हुए हैं, उन्हीं हिन्दुस्तानी जनता पर एक स्थायी घमट सँघा है । मैंने पहले कभी इतनी सख्ती तरह अनुभव नहीं किया कि कैसे सत्ता के अत्याचारी प्रयोग में, जो उसका प्रयोग करते हैं और जो उस प्रयोग में कष्ट उठाते हैं, उन दोनों का पतन होगा है ! ... क्या स्वतंत्रता और सत्ता का किला अज्ञातरित करने की यही कुमिका है ? अत्याचार की प्रतिक्रिया लोगों पर धन-धन्य होती है । कुछ हिम्मत सँभकर बैठ जाते हैं, कुछ और मगवून ही खाने हैं ।

सन् १९३७ के ग्राम चुनाव में नेहरू ने देश का लुभती दौरा किया । इंग्लैंड उन्हींने भारत के विराट पुरुष को उसके स्वातंत्र्य अधिकार से पुनर्जगित किया । १९३७ के ग्राम चुनाव में कांग्रेस की बड़ी विजय मिली । पर नेहरू ने उन १९३५ के 'गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट' में छिपे सत्य को पहचाना था जो उस प्रांतीय स्वशासन और संघीय डालि में निहित था । "इस तरह इस होने के प्रतिक्रियाचारी होने के साथ ही उसमें स्वविनाम का तो कोई भी बीज नहीं था, ताकि किसी कालिकारी परिवर्तन की नींव न साए । इस एक्ट से ब्रिटिश सरकार को खवाहों में, आर्षीदारों से और हिन्दुस्तान की दूसरी प्रांति-कियावादी जमातों ने दोस्ती और भी ज्यादा मजबूत हो गई । पृथक निर्वाचन पद्धति की उसमें बढ़ावा दिया गया और इस तरह सत्रम होने वाली प्रवृत्तियों को बढ़ाया मिला ।"

उसी सन्घाई के फलस्वरूप नेहरू का निजी मत था कि कांग्रेस को संवि-संघन नहीं बनाना चाहिए । लेकिन राष्ट्रीय में पाठिकाय लोग उसके लिए आनायित थे ।

१९३६ में द्वितीय महापुद्ध लिपुने के बाद ही पंडित नेहरू ने कांग्रेस की पुद्ध उपनिधि के सम्बन्ध की हैतिसता में एक वक्तव्य में कहा कि हमने इंग्लिजी हुक्मत के गायने भोश करने की भावना में अपनी माँगें नहीं रखी हैं । हमें सत्ता की स्वाधीनता मिलने और सत्ता की उस स्वाधीनता में भारत के स्थान का अविनात माना चाहिए । तभी हमारे और हमारे भी अधिक हमारे अधिक

१. 'कुछ पुरानी विद्विधा', पृष्ठ १६१-२१३

२. 'हिन्दुस्तान की इशानी', पृष्ठ ४६२

संरूप में महत्वाकांक्षा :

और हृदय के लिए युद्ध का प्राप्ति के लिए लड़ सभों के लिए उपयुक्त लोग ।

१९४० में गांधी के विनोबा भावे थे और दूसरे पर गोम्हपुन के अतिरिद्ध तब हमारी पिनती कम सभवः प्रतीक के रूप में हम स्वाधीनता के अधिकार चोरीते देते हैं जो हमारे

१५ अगस्त, १९४७ का

गा. भारत में सवाहात

सन् १९४७ में राजा व्याप्त थीं । समाजवादी वि-तैयारी में लगे थे । उनका छोड़कर इस प्रकार बने संविधान परिषद् का उचित कायम प्रतिमंडलों में लिख

कांग्रेस के भोगर, या पैदा हो गया था । कांग्रेस धारण कर चो भी । कांग्रेस लगाने वाले जेड वीट हुरना ने इस्तीफा दे दिया । उन्हींने

समानवादी लोग कांग्रेस और में दूर कहा जाना था देना चाहिए और उसके तयों चाहिए । बाद में गांधी ने भी

पर लामट रोज साफ लिखने के बारे में लिखा है कि हृदय पर प्रेमपूर्ण आधिपत्य भवस्य था, किन्तु उस रास्ते भाव और संयोग में नेहरू क

लेतु स्थापित नहीं हो जाएगा ?
 भाषों से समाजवाद कायम करना
 उपलब्ध हो । क्योंकि समाज-
 में देखने तक वे शीकतों उपाय
 समाज का प्रभुत्व किया जाता
 है ही ? किस प्रकार मानव शरीर
 शरीर में अधिक प्राणों पर जो
 एक स्थानों अथवा शरीर है : मैंने
 क्या कि की मन्त्र के अन्तर्गत
 इस प्रयोग में उचित उपाय है, उन
 और मन्त्र का किना हस्तोत्तरित
 अतिक्रम नों पर अलग-अलग
 और अलग हो जाते हैं ।

देश का मुक्तानी योग किया ।
 स्वातंत्र्य अधिकार में पुनर्जात
 नहीं विना मिला । पर नेहरू
 में जिने गन्ध की पहचान
 में निहित था । देश तरह उन
 स्वतंत्रता या जो कोई भी जीव
 में जीवन न था । इन एक से
 और हिन्दुत्व की दूसरी प्रति-
 लब्ध हो गई । एक निर्धारित
 रह प्रथम होने वाली प्रवृत्तियों

मत था कि कांग्रेस की गति-
 अधिकार योग उनके लिए

ही पंडित नेहरू ने कांग्रेस की
 कल्प में था कि हमने अंग्रेजों
 नहीं गाँव नहीं थी है । हमें
 स्वातंत्र्य के भारत के स्वतंत्र
 भी अधिक हमारे अस्तित्व

और हृदय के लिए कुछ का कुछ धर्म ही सकता है, क्योंकि तब हम ऐसे व्यय को
 प्राप्त के लिए लड़ सकेंगे जो शिर्ष हमारे लिए नहीं बल्कि संसार की जनता
 के लिए उपयुक्त होगा ।

१९४० में गांधी के व्यक्तिगत अतिथि अन्तर्गत में पहले मन्त्रिमंडली
 विधेया भावे थे और हमने जवाहरलाल । १३ अक्टूबर को अपनी गिरफ्तारी
 पर दोरनपुर के मजिस्ट्रेट के सामने उन्होंने बयान दिया कि निजी व्यक्ति की
 तरह हमारी गिरफ्तारी कम हो जा सकती है, लेकिन भारतीय जनता के प्रतिनिधि
 अथवा प्रतीक के रूप में हमारा क्या महत्त्व है । भारतीय जनता की ओर से
 हम स्वातंत्र्य के अधिकार की मांग करने हैं और किसी भी दूसरी ताकत को
 नहीं देते हैं जो हमारे इस अधिकार में बाधा दे ।

१५ अगस्त, १९४७ को भारत और पाकिस्तान दो स्वतंत्र देश स्थापित हो
 गए । भारत में जवाहरलाल नेहरू प्रथम प्रधानमंत्री बने ।

मन् १९४७ में साजारी मिलने के प्रद पर लोगों में अनेक मार्गक्रम
 स्थापन थी । समाजवादी विचारधारा के नेतागत देश में राजनीतिक भाँति को
 मूल्यांकन में लगे थे । उनको उम्र वात में विश्वास नहीं था कि अंग्रेज भारत को
 छोड़कर इस प्रकार चले जाएंगे । वही कारण है कि समाजवादी नेताओं ने
 संविधान परिषद् का बहिष्कार किया और भारा सभाओं में पहुँचकर भी
 कांग्रेस मंत्रिमंडलों में हिस्सा नहीं लिया ।

कांग्रेस के भीतर, समाजवादी मिलने पर सभा अधिवेशन का सान्नी उन्माद
 पैदा हो गया था । कांग्रेस के मंत्रिमंडलों में सत्ता की लोभलुपता अत्यंत रूप
 धारण कर चुकी थी । कांग्रेस के भीतर एक विचारधारा और एक नेता का उत्पन्न
 लगे जाने जो भी कुलवर्गी तो जो उस समय कांग्रेस के अध्यक्ष थे, अपने पद
 में हस्तोक्ता दे दिया । उन्होंने लगातार कांग्रेस मंत्रिमंडलों की कड़ी आलोचना की ।

समाजवादी लोग कांग्रेस की दक्षिणपंथी नीतियों में अमन्य थे । उनकी
 ओर से यह कहा जाता था कि साजारी की प्राप्ति के बाद कांग्रेस का संग कर
 देना चाहिए और उसके कार्यकर्ताओं को ताल मोक गंत रूप में कार्य करना
 चाहिए । बाद में भाषी ने भी इस विचार का समर्थन किया ।

'द लास्ट डेय दाय' प्रिंटिंग (२४) के लेखक निर्वाणार्थ मोसले ने जवाहर-
 लाल के बारे में लिखा है कि 'सर्वोच्च सत्ता की चींटी तथा भारतीय जनता के
 हृदय पर प्रेमपूर्ण आधिपत्य तक नेहरू के पहुँचने का मार्ग अंधकार था।
 अन्धकार था, किन्तु उस रास्त में इतने खँदक थे, इतनी साहसों की कि रास्ते
 भाग्य और संयोग ने नेहरू का रास्य नहीं दिया होता तो रास्ते से वह विचलित

है, स्वयं स्थापित नहीं हो जाएगा ?
 लोगों के समाजवाद कायम करना
 उपलब्ध हो ! ... क्योंकि समाज-
 में देखें तो वे लोकतन्त्री उपाय
 समाज का अनुभव किया जाता
 है ? किस प्रकार मानव शरीर
 शरीर में अधिक शक्ति पर जो
 एक स्थायी स्वर होना है । जैसे
 क्या कि होने गया है? अस्वाचार्यी
 इस प्रकार में कष्ट उठाने है, उन
 शरीर मना का कितना हस्तान्तरित
 शक्ति का लोभ पर चलन-चलन
 और पत्ररूप हो जाते हैं ।
 देश का नृकामी दौरा किया ।
 स्वतंत्र अधिकार ने पुनर्जापूत
 बड़े विचार मिली । पर नेहरू
 में ही तब की पहचान
 में निहित था । "इस तरह हम
 स्वतंत्रता का जो कोई भी चीज
 ही नोबल न दान । इन पत्र से
 और शिक्षा की हमारी प्रति-
 मन्त हो गई । वृक्ष निर्वाचन
 यह समय होने वाली प्रवृत्तियों
 मत था कि कांग्रेस की तृपि-
 अधिकारों की उम्मेदों लिए
 ही पंडित नेहरू ने कांग्रेस को
 कल्प में कहा कि हमने सबसे
 पटी गाँव नहीं गयी है । हमें
 स्वाधीनता के भारत के उपाय
 में ही अधिक शक्ति मिलेगा

श्री हृदय के लिए बुद्ध का कुछ पथ हो सकता है, क्योंकि जब हम ऐसे व्यय की
 प्राप्ति के लिए लड़ सकेंगे तो सिर्फ हमारे लिए नहीं बल्कि संसार की जनता
 के लिए उपलब्ध होगा ।

१९४० में गांधी के व्यक्तिगत गवितय चरित्रा कार्यक्रम में पहले मध्यवर्ती
 विभागा भाग में श्री दूनने जवाहरलाल । १३ अक्टूबर को अपनी विद्यमान
 पर मोरमपुर के पत्रिके के सामने उन्होंने ज्ञापन दिया कि तिजो व्यभिच की
 तरह हमारी दिननी कम हो जा सकती है, लेकिन भारतीय जनता के प्रतिनिधि
 कक्षा प्रतीक के रूप में हमारा बड़ा महत्त्व है । भारतीय जनता की श्रौर से
 हम स्वाधीनता के अधिकार की मांग करने हैं और किसी भी दूसरी ताकत को
 चुनौती देते हैं जो हमारे इस अधिकार में बाधक है ।

१५ अगस्त, १९४७ को भारत और पाकिस्तान की स्वतंत्र देश स्थापित हो
 गए । भारत में जवाहरलाल नेहरू प्रथम प्रधानमंत्री बने ।

मन् १९४७ में आजादी मिलने के प्रदन पर लोगों में अनेक पार्श्वगत
 व्यपन थी । समाजवादी विचारधारा के नेतागण देश में प्रजातन्त्रिय कार्य की
 नैवारी में लगे थे । उनको इस बात में विश्वास नहीं था कि संसद भारत की
 शोचकर इस प्रकार चले जाएंगे । वही कारण है कि समाजवादी नेताओं ने
 संविधान परिषद् का अधिकार किया और सारा समाजों में पत्रचर भी
 कार्यय समितियों में विस्मा नहीं किया ।

कांग्रेस के भीतर, आजादी मिलने पर मना स्थिताने का मानो उपाय
 पैदा हो गया था । कांग्रेस के मंत्रियों में सत्ता की अलुपता अत्यन्त रूप
 धारण कर चुकी थी । कांग्रेस के भीतर एक विचारधारा और एक नेता का उपाय
 लगाने वाले जो वीर नृपलानी ने जो उपाय समाज कांग्रेस के अर्थका थे, सत्ता पर
 ने हस्तोका दे दिया । उन्होंने मलाभागे कांग्रेस मंत्रियों को कड़ी बातों-बात की ।

समाजवादी लोग कांग्रेस की दक्षिणवर्ती नीतियों में असंतुष्ट थे । उनकी
 श्रौर में यह कहा जाता था कि आजादी की प्राप्ति के बाद कांग्रेस को मंच कर
 देना चाहिए और उसके कार्यकर्ताओं को लोक सेवा मंच के रूप में कार्य करना
 चाहिए । बाद में गांधी ने भी इस विचार का समर्थन किया ।

१९४८ लास्ट डेट चाफ रिटिंग १९४८ के लेखक निर्वाचन में जवाहर-
 लाल के बारे में लिखा है कि 'सर्वोच्च मना को छोड़ी तथा भारतीय जनता के
 हृदय पर अनेक शक्ति तक नेहरू के उद्योग का मार्ग निर्धारण का मार्ग
 अर्थका था, किन्तु उस रास्ते में दूतने स्वयं से, इतनी आहवां की कि प्रगद
 भाग्य और संयोग ने नेहरू का राय नहीं दिया होता तो रास्ते से यह विचलित

भी हो सकते थे। सुभाषचंद्र बोस को कांग्रेस तब वर्धावन नहीं किया, यह पहला कारण था। गांधी से नेहरू का भी तबमात्र सम्बन्ध नहीं, विरोधी के बावजूद बोसों उनमें अलग नहीं हुए वह दूसरा संयोग था। सरदार पटेल संतर एक बनने की लोड़ में नेहरू से राहते में नहीं आए यह भी एक संयोग था। श्री: अंतिम संयोग यह था कि समाजवादी लोग अब कापिल छोड़ रहे थे, जब भी नेहरू ने कांग्रेस नहीं छोड़ी।^१

किंतु संयोग भी सकारण उत्पन्न नहीं होते। उनके भी कारण होते हैं। कारण नेहरू की विद्वान्य ने था, चरित्र में था, विद्वान्य देशभक्ति में था और एक सजीव व्यक्तित्व में था।

भारतीय संविधान की कल्पना उन्होंने की। संवत्तावद्ध विकास का स्वप्न सबसे पहले उन्होंने ही देखा और समस्त संसार में भारत की क्या भूमिका होगी चाण्डिय, इसकी भी भावने देण के मानने उन्होंने ही प्रस्तुत की।

नेहरू आनिवाशी थे पर उनका निश्चय मुबार और विकास के दर्शन में था। बड़े आतिथिय थे, बड़े वैराग्यभाव भी था, पर सदा पर आरुह्य होने के प्रति उनमें जरा भी वैराग्य नहीं था। वे ऐसे राष्ट्रवादी थे, जिसके भावतंतु अंतर्राष्ट्रीयता से बंधे हुए थे। वह एकान्ती थे, मिश्रण थे, समाज जाति की लोड में थे, किंतु रिदनी से उन्हें पतन्य प्रेम भी था।

अपने चापके प्रति उनमें सरम्य विद्वान्य था। वे मानते थे कि मैं रिदनी भी विपण पर बोल सकता हूँ। किन्ता भी कठिन काम हो, कर सकता हूँ। पराधीन भारत में, आजादी की लड़ाई लड़ने हुए भी नेहरू स्वतंत्र भारत के भावने भिगोंल की भावने बहन बड़े निमाने पर मोक्षते थ। और उनकी ये बातें उनक वरिष्ठ गांधियों को पगर नहीं टापो सीं। वे उन बातों का हवाई समझते थे। श्री: गांधी को कठिनाई यह थी कि लन्दे गांधीवादिपों के बाब समाजवादी, गांधीवादी जवाहर को लेकर नलना पड़ता था। गांधी ने उस समय एक वल में लिखा हूँ, "पौरुता के बादे में जवाहरलाल की गारो कोप्रिण बेकार हैं, मगर वह ऐसी गंधी नीड में लून नहीं होना भी लडी नहीं हो।"^२

भारत क आर्थिक विकास के मामले में जवाहरलाल गांधी के बहुत में विचारों को विज्ञा समझते थे। और गांधी भी जवाहर की बहन-सी बातों को फालतु और भारत के लिए अनुपयुक्त मानते थे। गांधी का विचार था कि आजादी की आवश्यकता जितनी कम ही, उतना ही अच्छा है। जवाहरलाल का विश्वास था कि आजादी की आवश्यकताएं न होंगी तब उमका विकास कैसे होगा?

गांधी का मनुष्य 'अर्थिक' था, जवाहरलाल का मनुष्य 'रूडिबिपुसक' था। यद्यपि दोनों का औद्यिक विकास मेंकाले की अंधेरी निश्रा और भाषा के माध्यम से हुआ था, पर गांधी ने उस निश्रा, उस भाषा के तरे जाकर भारत को उसके स्वयंसे में देखा था। जवाहरलाल उस सीधा की नहीं लोड़ गए। इसका मूल

संस्कार में अन्तर्गत

कारण यह है कि
के धर्म का रहस्य
एक ही किस्सावा
के समतली वर
स्वाभाविक था कि

नेहरू का क
सर्वोत्तम आनीय
में जीवन का ज
जगमें पाए की व
मुझे अपनी मोर
हद तक तुपारी
का जीवन में क
योग ही को

किंतु इसे विश्व
की न पाए र के
उत्सोग। स्वयं
उपभोग का था,
में आभासों का

हम संयुक्त

योग्य है, मृतक
विधान नहीं। हम
आधी ने क
आविशरक का आ
भावी खान को ज
नीने उत्तरीयता
पेना, स्वयंसे की
स्वयंसे का आकर
और उत्तय नार्ति

कवल ग्यादा
की ली आर्थिक
अनुभव करना है,

१. गांधी जवादी, पर
२. गांधी जवादी, पर
३. 'आनिवाशी'। जवा

के कर्तव्य नहीं किया, यह पहला
सहस्रतियों विरोधी के आवृत्त
। सरदार प्रेमचंद एक बनने
एक संगीत था। और अंतिम
छोड़ रहे थे, जब भी नेहरू ने

ते। उनके भी कारण होते हैं।
निश्चय श्रेयभक्ति में या और

। अज्ञानावृद्ध विकास का स्थान
में भारत की स्व-शुभिका हीनों
ने ही प्रवृत्त की।

सुधार और विकास के दर्शन में
पर सत्ता पर धारण होने के
राष्ट्रवादों थे, जिसके माध्यम
निष्पत्त थे, अज्ञान धारण की
भी था।

था। वे मानते थे कि वे किसी
कठिन काम को कर सकते हैं।
ने हुए भी नेहरू स्वयं भारत के
सांचत थे। और अभी वे चारों

। वे उन चारों का हाथों नमस्ते
श्रीश्रीवादिनी के माय नमस्ते
। गांधी ने एक समय एक पत्र
की गांधी की शक्ति के कारण है, भारत
की नहीं था।

जवाहरलाल गांधी ने बहुत से
भी जवाहर की इष्ट गी गांधी की
। गांधी का विचार था कि गांधी
कहा है। जवाहरलाल का विचार
समस्या का विकास कैसे होगा ?

का मनुष्य 'हीन-विद्वान' था।
हीन विद्वान और भाषा के माध्यम
का के परे उत्तर भारत को उसके
की नहीं की जाए। हाथका मूल

कारण यह है कि नेहरू अपनी गारी विद्वाना, ऐतिहासिक दृष्टि के बावजूद भारत
के धर्म का अध्ययन नहीं प्राप्त कर सके। वह धर्म को उनके मते ही नहीं जान कि
एक दार्शनिकवादी भाव ने देखते थे। "मेरी प्रकृति दार्शनिक नहीं थी और धर्म
के दमनकारी बंधनों को मैं समझ भी नहीं करता था, इसलिए मेरे लिए यह
स्वाभाविक था कि मैं किसी दूसरे अधिन धर्म की आज करता।"

नेहरू का वह दूसरा जीवन धर्म 'अधर्म' का था, "मेरा अज्ञान जीवन का
सर्वोत्तम उपभोग करने और उनका पूरा तथा विविध अंतर्गत होने की धारण था।
मैं जीवन का उपभोग करना था और इस बात ने इनकार करना था कि मैं
उसमें रूप की कोई धारण समझ। भाषा ही मात्र ही और माहुर के कारण भी
मुझे अपनी चोर आकांक्षित करत थे। पिताजी की तरह मैं भी हर वस्तु कुछ
तब तक जुमारी था। पहले रूप का बुरा भी, और फिर अही-बुरी वाकियों
का जीवन के बड़े-बड़े आदर्शों का।"

भाग ही तो भारतीय धर्म का रहस्य है। पर जो धर्म की विना अनुभूत
विना इन अस्मिन् के 'रेडिक्ल' के धर्म में देखेगा, वह धर्म के प्रति किया यह
बोध न करके केवल प्रतिक्रिया का ही पाया। इन प्रतिक्रिया का ही धर्म है
उत्पन्न। स्वयं भारत के प्रति प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का दर्शन
उत्पन्न का था, इसलिए उनकी गारी उत्पन्न, अर्थव्यवस्था, आमतकव्यवस्था
के 'उत्पन्न' अन्तर्गत पैदा हुआ।

"हम अज्ञान करते हैं, स्वयं नहीं करते। हम उत्पन्न हैं, हीन नहीं। हम
अज्ञान हैं, उत्पन्न नहीं करते। इतिहास गांधी है विचारक अर्थ में उत्पन्न है, वह
विचार नहीं। हर वस्तु अपने अपने उत्पन्न है।"

गांधी ने २५ जनवरी, १९४९ का भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ६७वें
आधिवेशन के माध्यम में नेहरू ने कहा, "भारतीय भाषा में उत्पन्न प्रतिक्रिया
भारतीय भाषा को उत्पन्न देता है, जिससे भाषा और हीन-विद्वान ही। अज्ञान-
और हीन-विद्वान की भाषा अस्मिन्, अर्थ-प्रतिक्रिया या उत्पन्न ही उत्पन्न-
हीन, अज्ञान की उत्पन्न उत्पन्न के लिए फैलता होगा, जिसमें कि उत्पन्न और
अज्ञान का उत्पन्न उत्पन्न हीन रहे। फिर भाषा उत्पन्न पैदा करेगा, उत्पन्न उत्पन्न
और उत्पन्न हीनता यह होगा कि उत्पन्न जीवन उत्पन्न हीन हीन।"

केवल उत्पन्न उत्पन्न की अस्मिन् ही जीवन-उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न नेहरू
की हीन-विद्वान प्रतिक्रिया दृष्टि से उत्पन्न भारत का वह अनुभव विकास है जो
अनुभव करता है, "मुझे अभी कुछ विचार पर भव हीन ही का। शिक्षा पिकी, पर

१. 'हीन-विद्वान', पृष्ठ २२

२. 'हीन-विद्वान', पृष्ठ २२

३. 'प्रतिक्रिया' (भाषण), भाग-पाठ

ऐसा क्यों हुआ जवाहरलाल नेहरू के भारतवर्ष में ?

परमगण स्वभाष्यभंडार बोस, राजेन्द्र प्रसाद, जे. बी. कृपलानी, गन्दाधर तट्टेय, भीमराव साहाय, डा. अहिंसा, जयप्रकाश, आचार्य गणेश दत्त यादव की सहायता जवाहरलाल नेहरू अपने मनीषाओं, प्रयोग विचारों और हथों वाले ध्यायित थे। उन्होंने भारत की खातिर तो भी थी पर अपने जैसी चीज पर अविश्वास के कारण स्वभाष्य; स्वधर्म की कोख नहीं थी, इसका फल यह हुआ कि उन्होंने अपने विविध रूपों और मनीषाओं से कोई सम्बन्ध नहीं स्थापित किया। उन्होंने बहुत लिखा, बहुत बोले, अपने की अधिक वह एक कर्मवान व्यक्ति थे। पर इनमें क्या कोई ऐसा सुत्र है, जो इन सब प्रवृत्तियों को विरोधा है और इनकी एक सम्बन्धित दृष्टि बनाता है ?

नेहरू के राजनीतिक जीवन की कई मूर्तियाँ हैं—१९१८ से १९३३ तक गांधी के साथ, १९३८ से लेकर १९४७ तक दल और गांधी के साथ हमारी और अमात्यविरुद्धों के साथ, तीसरी मजिल प्रधानमंत्री के रूप में, १९५६ का यह समय जब दूसरी गीमा पर चीन के प्राथमिक फलस्वरूप हमारे देश की सीमा का अग्रहण हुआ, फिर १९६५ में चीन का बड़ा आक्रमण और हमारी पराजय। इसी तरह प्रधानमंत्री की नैतिक जीवन-यात्रा में भी कई मजिलें हैं। एक और समाजवादी, दूसरी और पूँजीवादी और इनसे कुछ अड़े मनीषावान परानों का उदय। एक और समाजवादी मूल्य प्रतिष्ठा के नाम पर डा. अहिंसा से उदय। वैत-विरुद्ध, दूसरी और जयप्रकाश का अपने मजिमेंटल में ले जाने का निर्माण। एक और गांधी का ताल-अहिंसा और दूसरी और १९४१ में हुए विमत और जीन स्कॉटलैंड, १९६३ में प्रकाश सिंह कैरी के उदय। प्रवृत्तियों, क्या इन सभी मूर्तियों पर जवाहरलाल एक संकल्पना अधिष्ठित रहे ?

क्या कोई ऐसी दृष्टि थी जो इन सभी मूर्तियों को जो उन विविध, अस्वच्छन्दों, परस्परविरुद्धों दृष्टियों को एक सूत्र में बांधती है ?

जे. बी. कृपलानी ने इन प्रश्न का उत्तर इस तरह दिया है, "अगर सूत्र में कोई ऐसी दृष्टि थी तो भी मैं उसे यादगी विरोधक और विचार्य क्षमता के पक्ष समझता हूँ।"

जवाहरलाल का अपने और अपने देश के लिए क्या जीवनदर्शन था ? यह नहीं है कि आचार्य के पहले भी यह अमात्यवादी चर्चा करने थे, किंतु उन्होंने अपनी आस्था नहीं की। उन देश के तभी न्यायवादी, समाजवादी लोगों यह नहीं स्वीकार करते कि नेहरू न समाजवादी और ही ताल-अहिंसा के लिए अपनी जोड़ी दधीन अपना दिया। या तो सरकार के नीचे नज़र ले लें तो दुर्भाग्य कर्तवी, या तो देश, मान-सौकर, किशोरलक्षी और साइबेर-निर्वाण

५. नेहरू : आत्मकथा (विचार), पृष्ठ २४-२५

संख्या में महत्वाकांक्षी

परकार ही नहीं रह
विधानन, अर्थशास्त्र,
सूत्र की, वह प्राथम
सूत्र नेहरू ने प्रा
अधिक धनी हुए हैं, ज
महत्वाकांक्षी

मे नि सब विधान क
का मत ही जाएगा।
मिथना करने वाली क
अनेक हथों, सरकार
परामर्श करते थे, और
लिए, यज्ञ, हवन, पूजा
पुरा पता था, जैसे कि
मंजिमंडल के बड़े वि
वेदमानी के बारे में पू
प्रवण और संरक्षण वा
कारीत्य, अमेरिकी लि
नाट लिखित 'पाठे लाइ
द्वितीय और जी. एम.
मुक्तकों में मिलते हैं।

एक मन्त्रा अतिरिक्त
उद्देश्य, लक्ष्य की पूर्ति
चुनेगा। अगर उमें ग उ
जवाहरलाल यह नहीं क
चाहते थे, इसका बंधे कु
नाम पर अहिंसा के बंधे

जवाहरलाल अहिंसा
नहीं कि राजनीय श्रेय के
जिंसा कि सब उन उद्योगों
करण क्षमता की शोभा
धाराएँ कपि ही होना
है। सम्पत्ति के प्राप्ति
क्रिया है। साठ प्रतिशत
कन्वी है और उस पर
उसे अलाभा पड़ता है और

में ?
 १८६५-६६ में, नरनाथ शर्मा,
 नरेश देव शर्मा की प्रोत्सा
 की श्रेणी रूपों को अर्थात्
 में श्रेणी की, पर अर्थात्
 का कल यत्त ह्या कि उन्होंने
 स्य नहीं स्थापित किया ।
 वह समय कर्मकाण्ड अर्थात्
 कृतियों का विवेक ही और

बदलाव ही नहीं रहा, थोड़ा उद्वेग और बढ़ावा दिया । उद्घाटन, गिनतगान,
 विमोक्षण, अर्थश्रुति, संभाषण, गद्देय शक्ति की जो कर्मकाण्ड परंपरा अक्षर-
 मूल की, वह आज वर्तमान राजनीतिक जीवन का भयकर रोग ही गया है ।

अक्षर-वाक्यांश ने सगण जीवन के आसिरी वर्षों में यह पंख किया कि "धर्मो
 अधिक धर्मो हुए है, धर्मो अधिक धर्मो ।"

यह कहा जाता है कि अक्षर-वाक्यांश विज्ञान के द्विभाषी थे । वह सोचते
 थे कि जब विज्ञान और उद्योग का अधिक प्रयोग हो तो हमारी सब सुखीवनों
 का अंत ही आया । उन्होंने कहा है कि "अधिकांश विज्ञान का है और विज्ञान से
 मिश्रता करने वालों का है ।" किंतु यह सर्वविदित है कि पश्चिम-देश के उनके
 अनुभव आधी, सरकार में बने रहते थे नहीं, इस बार में बगैर उद्योगियों से
 परामर्श करते थे, और वास्तविक और विद्यालय में राजनीतिक सफलताओं के
 लिए अन्न, हस्त, पूजापाठ कराया करते थे । और अक्षर-वाक्यांश को इस तथ्य का
 पुरा पता था, जैसे कि उन्हें अपने कई सुखीवनों और स्वयं अपने केंद्रीय
 प्रतिनिधियों के कई वरिष्ठ पत्रियों, किन्तु उच्च अधिकारियों के अष्टावार,
 वेदमंत्रों के बारे में पुरा पता था । उनके निजी गणितालय में कई अष्ट-श्रीग
 प्रवेश और नरक्षण या चुके थे, जिसको विद्वान् जानकारों और अनेक विद्वान्-
 कर्तरीतय, धर्मवीर लिखित 'मिमामंसा' आदि, 'मिथिल सर्वज्ञ', 'मम-श्री-गीतज्ञ-
 वा' लिखित 'माई-नाटक', 'जी-मम-भागवत लिखित 'इंद्रियाल-वाट-भोग', 'सूत्र-
 विवेकी और जी-मम-भागवत लिखित 'पौलिदिक-कर्मण्यत-एन-इतिहा' आदि
 कृतियों में मिलते हैं ।

एक सच्चा आंतिकारी, जिसकी कोई विचारधारा या जीवनदर्शन तो अपने
 तद्देश, तथ्य की पूर्ण के लिए निश्चय ही उपयुक्त और कार्यकर्ता
 चुनेगा । अगर उसे वे उपयुक्त मानन नहीं मिलते तो वह उसकी रचना करेगा,
 अक्षर-वाक्यांश यह नहीं कर सके । वह स्वयं भारत की आधुनिक-विकास
 चाहते थे, इसका अर्थ कुछ भी तो लेकिन सम्झाई वह है कि हम आधुनिकता के
 नाम पर अधिपत के बाह्य को किफ तबका ही कर पाए हैं ।

अक्षर-वाक्यांश भारत में कि हम देश का उद्योगीकरण ही । हमने सकेह
 नहीं कि राष्ट्रीय धर्म में कुछ सफलपूर्ण भारी उद्योग स्थापित हुए हैं । किंतु
 जैसा कि सब हम उद्योगीकरण का पता हुआ है । हमने अक्षर-वाक्यांश ही किन्तु उद्योगी-
 कर्मण कृषि की उद्योग करके उगा है । अर्थात् किन्तु ही देश के उद्योग का
 आधार कृषि ही होता है । उन गद्देय में अर्थश्रुति और कर्म में क्या अंतर
 है ? अर्थश्रुति ने अपने उद्योग की सर्वोत्तम विद्यमान कृषि के आधार पर अन्त
 किया है । काठ-प्रतिपत्त समस्योकी अन्त-देश-भर की प्रकृत का अन्त-प्रति-
 करती है और उद्योग पर भी अन्त-प्रतिपत्त अन्त-वह। ईश ही जाना है कि
 उसे अन्तः-पड़ता है और दूसरे देशों को अन्त-प्रति के लिए अन्त-रहता है । कल

है- १८६५-६६ में १८६६-६७ तक
 का और शोधों का साथ दूसरी
 श्रेणी के रूप में, १८६६ का
 का फल-फल-हमारा देश की
 बढ़ा-प्रारम्भ और हमारी
 भाषा में ही ही शोधों हैं ।
 इनमें कुछ बड़े गद्देय-वाक्यांश
 का नाम पर ही ही शोधों
 अर्थात् अर्थश्रुति में ही ही शोधों
 दूसरी और १८६६ में 'मम-
 श्रेणी के अर्थ-प्रतिपत्त, क्या
 अर्थश्रुति है ?

हम विवेक, अर्थश्रुति, अर्थश्रुति

हम क्या उद्योगीकरण का है ?
 हमको नहीं बताने है कि
 किन्तु अर्थश्रुति, अर्थश्रुति-
 अर्थश्रुति, अर्थश्रुति, अर्थश्रुति
 की अर्थश्रुति के अर्थश्रुति में
 अर्थश्रुति और अर्थश्रुति अर्थश्रुति

की खेती अमरीका जिनकी विकसित नहीं है और हत्तीलियु वह पौद्योगिक उत्पादन में भी अमरीका से पीछे है।

स्वतंत्रता के बाद नेहरू ने भारत राष्ट्र के निर्माण का रचनात्मक कार्य अपने हाथ में लिया। इसके लिए उन्होंने विविध नीतियाँ बनाईं :

१. योजना द्वारा आर्थिक विभाग
२. राष्ट्रीय एकता
३. गुंडी से चलना रहने की विदेश नीति।

उनके इन विविध कार्यक्रमों और नीतियों की वजह उनकी लोकतंत्रीय विचार-धारा में थी। उनका विश्वास था कि अगर इस विचार उपमहाद्वीप में रहने वाली विभिन्न नस्लों, जातियों और धर्मों को मानने वालों या एक राष्ट्र बनता हो तो उनकी जोड़ने वाली कोई बाधा नहीं पाएगी। यह आर्थिक संबंधों की ही कड़ी ही नकती है और अगर मानव की आर्थिक प्रगति लाभ जनता के कल्याण के लिए होनी है तो यह समाजवाद की अवधारणा और राजता की उसका स्थापन बनाने से ही संभव होगा।

जवाहरलाल मूलतः लोकतंत्रीय और लोकतंत्रीय योजना की सफलता लोक समर्थन पर निर्भर करती है। नेहरू को इसका लोक समर्थन शिक्षा था, बल्कि वह इतने नवे समय तक भारत के एकलव्य 'राजा' थे, फिर भी नेहरू की योजनाओं को उनकी सफलता क्यों नहीं मिल सकी, इसके दो ही कारण हैं। पहला नेहरू के संकल्प में समाज का अभाव, जिसके कारण निरवगत और स्वभावगत है। इस अभाव का जब भी उन्हें महसूस हुआ है— और प्रायः यह महसूस आधुनिक समाजों, कानों, सामूहिक योजनाओं के क्षयों पर उन्हें हुआ है और इन प्रतिबन्धों या अभाव का मजबूत अहसास सदा अचानक अचानक होकर उबल पड़ना, छोटी-सी अव्यवस्था, प्रतिबन्धिता पर उत्पन्न क्रोध ही जाना, उबलने-उफानने तक जाने क्या-क्या कहें उचित। वेदुद नाराज होकर भावुकतापूर्ण चेहरा बनाकर मंच में उतरकर तेजी से बोलें जाय। ऐसे व्यवहारों से दिया है। दूसरा कारण यह है कि उन्हें लोक का समर्थन प्राप्त था। इससे भी आगे वह लोक तो सोचा पड़ा था, बीमार था, भारतीय जब देशव्यथ पर था। त्रिने जिलाने और इलाज करने की कोशिश गांधी ने की थी, पर नेहरू ने इस लोक को केवल सरकारों लोक नृत्यों के ही रूप में देखा था, उसके पास वह कभी नहीं पहुँच सके। नेहरू के लोकतंत्रीय में लोक की छाती पर तब आकर बैठ गया : डा० मोदिया, जे० बी० कृष्णानी और जयप्रकाश के जवाहरलाल नेहरू के प्रति गांधी विरोधों, लक्ष्यों के पीछे यही मूल कारण था। इन तीनों ने अनुभव किया है कि 'नेहरू के राज्य में भारत का लोक भर रहा है — अर्थात् भारत स्वतंत्र हो रहा है।'

जवाहरलाल नेहरू का व्यक्तिगत इतना बड़ा था, भारी था कि उसके

संबन्ध से महत्त्व

नीचे 'लोक' हो न

इसका फल पर आ

उसके सम्बन्धी क

कांक्षा से पैदा हुई

अपने राजनी

अपनी नीतियों को

देखकर विस्तृत एक

सौलाना या भार म

...परन्तु मुझे प

में गुणों और ग

के बाद क्या वे अ

को छोड़ेंगे? यह

विस्मय हींभी दिन प

जितना प्रयास किया

आस्था की तरफों के

की शिक्षा के दिन

इन प्रकार है :

१. धर्म और का

की सारी व्यवस्थाओं

जधप और धाकार नी

पैदा होती है। द

संतुलित एवं समो-व

व्यवस्था है। गांधी

विरागत से नेहरू का

है, यह आधुनिक समा

अपने काम में नेहरू

से इनका गहरा अंतर्भ

कभी समझीता नहीं कि

२. राज्य का सर्वो

आंतरिक और बाह्य

लिए इन नीतियों का

बनी।

३. अर्थशास्त्र का

मंडल नियंत्रण का बीज

कर राष्ट्र हित की रक्षा

नीचे 'लोक' ही नहीं देना, मानों देश की सारी समस्याएँ उसके नीचे रख गईं। इसका फल यह भी हुआ कि उसका व्यक्तिगत इतना महत्त्व था कि उसके नीचे उनके वरगवरी के साथ अस्तित्व रख गए। अपनी सहम-भंगा, जो उनकी महत्वाकांक्षा में पैदा हुई थी, के कारण ही वे किसी अन्य व्यक्ति को उठा नहीं पाए।

अपने राजनीतिक जीवन के अंतिम चरण पर पहुँचकर जवाहरलाल अपनी नीतियों और कार्यों के अंतर्विरोधों और अन्तुसार उनके परिणामों को देखकर अत्यंत एक गर्व-भरा में मौनने जग थे। २२-२३ फरवरी १९५६ को मौलाना याज़द भाषण आयोजन के अंतर्गत भाषण देते हुए नेहरू ने कहा, "परंतु मुझे केवल यौनिक इच्छा की चिंता नहीं है, बल्कि अपने देशवासियों में पूर्ण और सद्गर्भ की भी है। औद्योगिक प्रक्रिया से अधिक प्राप्त करने के बाद क्या वे व्यक्तिगत सर्वांगीण और आरामदायक जिंदगी की खोज में स्वयं को सोचेंगे? यह एक दुःख घटना होगी, क्योंकि यह बात उन आदर्शों के विरुद्ध होगी जिन पर भारत मसीत में खड़ा रहा और वर्तमान में गांधीजी ने जिन्दगी प्रसार किया। क्या हम विज्ञान, टेक्नामोजी की तरफों की मन और आत्मा की तरफों के साथ जांच सकते हैं?"

कौटिल्य के तीन सूत्र विज्ञान, जिन्दगी नेहरू ने जाने-अनजाने प्रयोग किया, हम प्रकार है :

१. धर्म और शांति इन दोनों का मूल अर्थ है। धार्मिक व्यवस्था ही समाज की सारी व्यवस्थाओं का आधार है। इसी में समाज की धर्म व्यवस्था (मानवीय लक्ष्य और आचार नीति) और समाज की काम व्यवस्था (व्यक्तियों का सुख) पैदा होती है। इसलिये राज्य का जो विविध लक्ष्य है वह है इन तीनों का संतुलित एवं अन्वेषणाधिक विकास। यह सिद्धांत भारतीय मनीषा की धर्म उपलब्धि है। गांधी इन उपलब्धि के पहले विद्वान् हैं राजनीति में और इन्हीं विरासत में नेहरू का नाम उल्लेखनीय है। यह जो सर्वोत्तम, संतुलित वृद्धि है, यह आधुनिक समाजवाद की उत्तमोत्तम परिभाषा है। इस परिभाषा पर अपने अर्थ में नेहरू रुझान रहे। इन्हीं बिंदु पर हम सौ-वीन के भाषणवादियों में इनका महा मतभेद रहा। केवल यही आस्था का वह बिंदु है, जहाँ नेहरू ने कभी समझौता नहीं किया।

२. राज्य का सर्वोपरि धर्म है जन का सम्पुर्ण और अन्तर्गत हितों की रक्षा, आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की विद्योत शक्तिओं के संदर्भ में। नेहरू के लिए इन नीतिगत राष्ट्रीय हितों की रक्षा राजभवन का प्रमुख निर्णायक तत्व बनी।

३. अर्थशास्त्र का 'अर्थ गिज्ञान' नेहरू की विदेश नीति का आधार बना। पंडित विदुष का वीर यह है कि सत्त्व और मित्र देशों का आर्थिक संतुलन का राष्ट्रीय हित की रक्षा करना।

निर्माण तथा का फल

औद्योगिक उत्पा-

का उच्चतमक कार्य
नाई :

कीकर्मकी विचार-
श्रीप में रहने वालों
क राष्ट्र बनाती ही
आर्थिक संदर्भों की
ति प्राप्त करता के
य और योजना को

वना भी महत्त्व
समर्पण किया था,

में, फिर भी नेहरू

इसके दो ही कारण

रण चरित्रगत और

है—और प्रायः यह

के अर्थों पर उन्हें

अपना एक अर्थगत

पर इतना दृढ़ हो

हद नाराज शक्ति

जाना—एक साथ-
समर्पण प्राप्त था।

तीसरे तब अर्थशास्त्र

में की थी, पर नेहरू

था था, उनके पास

अभी पर यह आ-

प्रधान के जवाहर-

ए अर्थशास्त्र था। इस

लोक पर रहा है—

सारी था कि उसके

इसी संदर्भ में अर्थशास्त्र का जो सूत्र मंत्र है वह यह कि 'जयति क्रूरस्वम् शास्त्रविद्वान्निष्ठम्'। वह संपूर्ण रूप से विजयी होता है जो कि शास्त्रविद्वान्निष्ठ है और जिसे शास्त्र के प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती।

नेहरू को रत्न में ये प्राचीन भारतीय संस्कार प्रकट हुए हैं, यह आश्चर्यजनक है। अंतर्राष्ट्रीय नीति के इतिहास में यह अभूतपूर्व उदाहरण है कि बिना किसी बल प्रयोग के इस नीति का (विदेश नीति—गूट विरपेक्ष, सर्वे नीति—मध्वरथ) की प्रतिष्ठा हुई।

सायद इनका मूल कारण था कि इस अर्थ नीति का प्रयोग पहली बार भारतीय इतिहास में प्रयोग में किया और अणुबम सयोग से नेहरू के मानव के बहाने करीब था।

अवाहुरमान के आत्मविक मनुष्यपूर्ण जीवन कार्य का चिन्तन जय अर्थ के सामने खड़ा होता है, तब गणतंत्र अणुबम का स्मरण होता है। अणुबम चिह्न उन्होंने भारत के सामने रखा। सहाय्येगी सिंह खड़े कर दिए अणुबम के प्रतिष्ठा चिह्न के नीचे पर। सिंह पराक्रमी होते हैं, पर महीनगी नहीं। चीटी महीनगी है, लेकिन पराक्रमी नहीं, दुर्बल है। पराक्रमी और बलवान हों और महीनगी की अर्थवत्ता से यह देश फिर क्षुब्ध हो जाए, यही स्वप्न देखा नेहरू ने।

वह चाहते थे कि भारत पराक्रमी, बहादुर बने और निर्दोष बने। वैसे दुनिया में सब राष्ट्र बलवान ही छोड़ सब का परस्पर सहयोग हो—यही भी उनकी विदेशी नीति, यही था आधार उनके वैश्वीयता का, पर इसमें फल क्या लगा? हिन्दुस्तान-पाकिस्तान, चीन-भारत की परस्पर शत्रुता, अखंड भारत के अंदर भाषाभाषी शत्रुता का अभाव में नैर, भारे राजनीतिक इलों, वर्गी, अर्थियों की अभाव में अफरत—दरअमल महत्वाकांक्षी नेहरू ने इस देश के अंदर प्रतिष्ठा जो भी की (जिनके प्रतिनिधियों ने इस देश का संविधान तैयार किया था) निहायत महत्वाकांक्षी बनाया। महत्वाकांक्षी भावुकता की देन होती है और भावुकता का स्वरूप है अभाव। प्रेम का अभाव, पूँजी का अभाव, मायनों (रिनिमेंट) का अभाव, अर्थ का अभाव, अर्थव्यवस्था का अभाव, इन अभावों के फलस्वरूप नेहरू युग से जो राजनीति इस मूलक में शुरू हुई—उस अंगर एक दम में कहना चाहें तो यह अर्थ की दरिद्रता का फल है।

अर्थ प्रतिष्ठा महत्वाकांक्षी लोगों के अर्थों के तोषे लेख सारा भारतवर्ष कूचला जा रहा है। दरअमल अब तक उतना हिस्सा ही रहा है। अंगर अभाव ही तो वह भी भावुक और महत्वाकांक्षी बनाया जा रहा है।

नेहरू की महीनगी से जो छोटी राजनीति अर्थ उदित हुई यही है उसकी पहचान।

'आज का युग इतिहास का एक गतिमय युग है। इसमें जीवित और कर्मरत होना कितना अच्छा है—असे ही वह कर्म देहरादून जेल का एक अ

संरक्षण से महत्वाकांक्षी : ज

भीयता ही क्यों मही।" पं पत्र इन्हीं शब्दों के साथ समा है कि "हमाय युग मोह गंग है। आज हम क्या ऐशिया में और शीतियों में ने अनेक अर्थ गर्ई है। इसलिए नये पत्र न नृशंसता हम पर छा जाते हैं। अमल नहीं दीयता! अणुबम सेना इतिहास की गीत की म और विश्वास ही माड सिम संभावना सूचित करता है।

पही समय और विश्व राजनीतिक अधिक चरत है।

हमारे युग की क्या महत्वाकांक्षी नेहरू ने दिया है—वर्तमान युग में "अनों वनर उम अिनाती पहले पहल उन्हें जेल में डाला जा, कितना अच्छा है।

जीता, पर महत्वाकांक्षी अणुबम जैसे अर्थियों की भाषी और अभाव के जीवन-जगत के परि रत हो सका है?

भागीदार और कर्मरत अणुबमों की राजनीति अणुबमों की राजनीति"। "चाहे त कवकनन समझौता करना ही सके, लेकिन अणुबम अणुबम सक्षम मन्वाई की अर्थ यही किनी ने यह नहीं मीवा होता कचोदा है।"

गामी के बारे में अविधान देते हुए नेहरू ने अपने राजनी

१. राम विद्वान्निष्ठ, नेहरू अविधान
२. अवाहुरमान नेहरू के अभाव, म

तक एक अर्थरत्न प्रश्न उठाया है, "क्या हम पाखंडी हैं—क्या हम अपने को और दुनिया को धोखा दे रहे हैं? अगर हम पाखंडी हैं तो यकीनन हमारा भविष्य अगम्य है। विद्यों की छोटी-मोटी चीजों के बारे में हम पाखंडी हो सकते हैं, लेकिन जिंदगी की महत्व चीजों के बारे में पाखंडी होना अतर्क्यक है।"^१

ई सोचना शुरू करते किसी व्यक्ति की जिंदगी हो या देश की जिंदगी वह बहुत छोटी-छोटी चीजों से बनती है, और बनी होती है। ऊपर से गरीब का बच्चा, देश का हांवा किनारा भी सुगठित और महान् क्यों न हो पर यदि गरीब के भीतर या देश के भीतर छोटी-छोटी असंख्य रक्त शिराओं में कुछ रक्त नहीं बह रहा है, देश के भीतर उनसे देशवारी अगर अपने नहीं पुनर्धार्य भी नहीं पा सके, जीवन का कोई आदर्श, लक्ष्य नहीं पा सके तो सारा बाहरी हांवा पाखंड है, क्योंकि उतना कोई अर्थ नहीं है।

नेहरू ने समाजवाद उनके दूरदर्श का जो हांवा—जो आगद केवल हांवा, जो हमें प्राप्त हुआ उसका एक महत्वपूर्ण अर्थ तो है कि हमें कुछ भी बोलने, कहने करने भी आनादी है, और यह बहुत बड़ी देन है इस देश की संस्कृति की जिसमें नेहरू ने भी अपना योगदान दिया, पर नेहरू के नेतृत्व में जो राजनीतिक संस्कृति इस मुक्त में पनपी, उसमें आम आदमी का सूत्र यह था :

"उद्योग विज्ञान था कि मनुष्य स्वतंत्र है, इस हद तक कि वह आत्महत्या करे। वह आभार है आस्वाय महान के लिए, पाप भोगने के लिए, अपराध जानने के लिए, और नर्क पाएल होने के लिए।"^२

द्वितीय नेहरू ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिंदुस्तान की कहानी' इन बातों के साथ समा की है, "कब कुछ वक्त में हिंदुस्तान में आम चुनाव होने वाले हैं और मरग अजान इन चुनावों में लगे गया है। लेकिन चुनाव तो कुछ वक्त में खत्म ही जायेंगे, अब ? संभावना यह है कि ज्ञान राजा साह नुकान, उत्पात, संघर्ष और उथल-पुथल में भरा होगा। हिंदुस्तान में या और जगहों में आजादी के बिना शांति नहीं हो सकती।"^३

उसी तरह अपनी आत्मकथा, जहां नेहरू ने समाज की है, उनकी अंतिम संविदा है, "केवल कभी-कभी कम से कम इस दुनिया में थोड़ी बेर को सुदृश्या मिल ही जाता है। विश्वने महीने २३ दरस के बाद मैं काश्मीर हो आया। मैं वहां सिर्फ १२ दिन रहा, लेकिन वे बारह दिन बड़े सुंदर थे और मैंने जद्दूअरे उस देश की रमणोधना का भोग लिया। मैं घाटी के दूर-उधर घूमा, ऊले-

१. जवाहरलाल नेहरू के आत्मकथा, प्रथम खंड, पृष्ठ १७६-१८०

२. 'द्विस्तार आत्मकथा', भाग आठ, पृष्ठ ६७

३. 'हिंदुस्तान की कहानी', पृष्ठ ७८४

संरक्षण से महत्वाकांक्षी

अंधे पहलुओं की लीन जीवन भी एक काम

ये दोनों संघर्ष हैं, नेहरू की विद्यों की कहानी की विप हिंदुस्तान की जिंदगी आधुनिकता के जो फल वक्त में मांग पाना पड़ी रह गई है कि नृ गान नुकान, उत्पात, ने अपनी पुस्तक में शि नगर बिले की लेन में तिनर-बिनर का दिन आसन ईश्वरी मन २२ तक गितने चुनाव हुए निर्मूल राजनीति वृक्ष चुनाव ही हमारे प्रकृति में विम नैतिक है।

राजनीति माने राजनीतिक फल। हमें कहा, 'जीवन भी एक राजनीति के वा नैतिक का दुर्भाव था, लोग हैं। जीवन ही है कितनी मुक्त का— नैतिक जहां जोशरी है

२६ जनवरी, १९ कहा था, "राजनीतिक घटा है उतना पहले के हाथ में अमली राज शणाकी ने हमारी ग हम गुलाबी की ज

१. 'मेरी कहानी', पृष्ठ

अबे पहाड़ों की तर्र की चोटी एक खेतिघर पर चढ़ा और महसूस किया कि जीवन भी एक काम की चीज है।¹

ये दोनों खंड राजनीति और जीवन के धुनिवादी अंतर के ही साक्ष्य नहीं हैं, नेहरू की जिंदगी (मेरी कहानी) और हिंदुस्तान की जिंदगी (हिंदुस्तान की कहानी) की निगति के भी गद्य है। नेहरू ने अपनी जिंदगी के ही रूप में हिंदुस्तान को जिंदगी की देगना चाहा है, यह उनकी भावुकता है, पर इस भावुकता में जो फल इस देश को मिला वह सबके सामने प्रकट है। "कुछ बरस में आम चुनाव होने वाले हैं, यात्राएं हिंदुस्तान में हमारी प्रतीक्षा केवल यही रह गई है कि कुछ बरस में आम चुनाव होने वाले हैं और तब जाने क्या फल तुफान, उत्पात, संघर्ष और उथल-पुथल से भरा होगा।" यह बात नेहरू ने अपनी पुस्तक में किसी भी और बड़ समय था मार्च १९४५ जब वह अदमद नगर निगम की जेल में नजरबंद थे। जापान काय मन्दि के तदर्थ उधर-उधर शिर-विनय कर दिन भर थे... यहाँ अपने-माने सुओं में चले गए थे। दर-प्रसन्न उँची सन् १९४१ से स्वतंत्र भारत के पहले चुनाव से लेकर तब से आज तक जितने चुनाव हुए हैं— उन सबमें केवल यही फल बार-बार प्राया है इन निर्मूल राजनीति वृक्ष में— तुफान, उत्पात, संघर्ष और उथल-पुथल।

चुनाव ही मार्गे राजनीति का मूल कर्म है। चुनाव की सारी प्रक्रिया और प्रकृति में जिस नैतिक तत्व का सर्वथा अभाव है, उसी का प्रतिफल राजनीति है।

राजनीति माने नैतिकता-विहीन यत्ना-संघर्ष—यही है नेहरू युग का राजनीतिक फल। इसी फल की १९४० में इस वृक्ष में लपके हुए देखकर नेहरू ने कहा, 'जीवन भी एक काम की चीज है।'²

राजनीति के बाद जीवन को दुमरा दर्जा दिया जाता, यह नेहरू की राजनीति का दुर्भाग्य था, पर यह पूरे देश का दुर्भाग्य बन गया, इसके दोषों हम सब लोग हैं। जीवन 'ही' नहीं 'भी' हो जाए इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है किसी मुक्त का—जहाँ जिंदगी की हर चीज राजनीति है, और हर राजनीति जहाँ नीकरी है।

२९ जनवरी, १९३० के पूर्ण स्वाधीनता दिवस के प्रतिज्ञापत्र में नेहरू ने कहा था, "राजनीतिक दृष्टि से हिंदुस्तान का इजो जितना अंग्रेजों के अमाने में पड़ा है उतना पहले कभी नहीं पड़ा था। किसी भी सुधार योजना में जनता के हाथ में अपनी राजनीतिक यत्ना नहीं आईं!" संस्कृति के लिहाज से शिक्षा प्रणाली ने हमारी अड़ ही कष्ट दो है और हमें जो तालीम दी जाती है, उससे हम गुलामी की गंजीरों को ही प्यार करने लगे हैं।" अभाव-वर्धक दृष्टि से

१. 'मेरी कहानी', पृष्ठ ८४५

...पहाड़ी हैं... क्या हम अपने को
...पतंगी हैं जो यकीनन हमारा
...पीजों के बारे में हम पक्षी
...क वरुं मे पालकी होता ततरपाक
...जवनी ही या देश की जिंदगी वह
...भी होती है। उधर मे शरीर का
...महान् कपो न हा पर यदि शरीर
...रक्त सिगाछों ने शुद्ध रक्त नहीं
...अगर प्रपने मही पुस्कार्द की नहीं
...नके हो सार बाढ़ी जौना पावक
...जोवा--हां मायद कंधा उंचा,
...तो है कि हमें कुछ भी सोचने,
...को वेत है इस देश की मन्कृति की
...नेहरू के लेख में जो राज-
...शाहमी का मूल्य यह था :
...हम तब तक कि वह शास्त्रज्ञ
...की शोभने के लिए, अफसस जानते
...हिंदुस्तान की कहानी" इन शब्दों
...मान में आम चुनाव होने वाले हैं
...लेकिन चुनाव तो कुछ बरस में
...मे वाला माल तुफान, उत्पात,
...में या और जगहों में राजादी
...समाप्त की है, उसकी प्रतिम
...दुनिया में घोंटी देन को लुटकारा
...बाद में काय्मोर ही प्राण। मैं
...वड़े मुँदर मे और भी जादूभरे
...पी के हजर-उभर घूमा, ऊंचे-

हमारे हथियार अबदस्तूरी छीनकर हमें नामसँ बना दिया गया।....”

१९३० का जवाहरलाल भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू पर बड़ी अभियोग लगाता है जो तब उसके प्रतिजापत्र का मूल परिचय था— इतनी सारी योजनाओं, इतने निर्माण कार्य, इतनी ऊँची-ऊँची बातें, इमारतों, विचारों, विधि-विधानों के बावजूद जनता के हाथ में असली राजनीतिक सत्ता नहीं आई।

इसका मूल कारण यह है कि यह मरामत झूठ है कि श्री जवाहरलाल नेहरू महात्मा गांधी के राजनीतिक उत्तराधिकारी थे। बिल्कुल नहीं थे। संसार के राजनीतिक इतिहास में अकेले महात्मा गांधी एक ऐसे महापुरुष हैं, जिनकी नीतियों और योजनाओं का प्रयोग नहीं हो सका। बीज धरती में बोये जाने से पहले ही उनके फल के बारे में फेरान्दा ले लिये गया कि 'बीज बहुत पुराना है'....

भारतीय जीवन में गांधी सिना प्रयोग के २४ गण, इसके उत्तरदायी श्री जवाहरलाल नेहरू हैं।

विद्रोह से

जित राजनीतिक धर्म संकल्प के महत्वाकांक्षी की उदा राजनीति थी दुम्मा। यह विद्रोह का चरित्र उनके विचारों स्वतंत्र, अपने के अनु राजनीति था। नेहरू नहीं चुड़ा था, इमी राजनीति महत्वाकांक्षी थी का फल नोहित रोह पर लोडिंग ने कगत रहना पाठित; नहीं हुआ करती। फिर सरकारों के,

जितना भी पड़ा बार भारत भूमि के मिलकियत और मेरी घटान का!... किन्तु पड़ी, तथा के एक दुःख को खत्म करने का, पहला वर्ष या संवत्ति रहे ही नहीं।”

इस हमारे शर्वाङ्क

१. राममनोहर लोडिंग,

निर्मूल मूल का फल

स विद्या गया। ..."

शानमंती थी जवाहरलाल नेहरू
साप्ताहिक का मूल अभियोग था—
नी ऊँची-ऊँची बातों, हमारतों,
थ में असली राजनीतिक गता

है कि श्री जवाहरलाल नेहरू
शिक्षण नहीं थे। संसार के
एक ऐसे महापुरुष है, जिनकी
। बीज धरती से बोये जाये
गया कि बोले बहुत पुराना

रह गए, उनके अन्तर्गत ही थी

दसवां अध्याय

विद्रोह से स्वधर्म : राममनोहर लोहिया

जित राजनीतिक क्षण से और जित पारिविक क्षिु से जवाहरलाल नेहरू में संकल्प व महत्वाकांक्षा का उदय हुआ, उन्ही क्षण से और उन्ही विद्रु से नेहरू की नया राजनीति और उस परिवर्ण के प्रति राममनोहर लोहिया में विद्रोह पैदा हुआ। यह विद्रोह पतिक्रिया नहीं था : विद्रोह ही लोहिया का चरित्र था। यह परिवर्ण उनके विचारों का प्रकाश था। वेदवत्, अद्वय, स्वतंत्र भावना, वाणी से स्वतंत्र, कर्म में अनुशासित व्यक्ति उनका संकल्प था। संकल्प ही लोहिया की राजनीति था। वेदक का संकल्प लौकिक था, वह उनके स्वधर्म से, याज्ञिक से नहीं जुड़ा था, इगोतिव यह महत्वाकांक्षा में बदल गया। इमीजिए नेहरू की राजनीति महत्वाकांक्षा की राजनीति ही गई। पर जहाँ संकल्प ही राजनीति ही, उन्ही का फल लोहिया है। ३१ अक्टूबर, १९६४ को गरदार पंटेन जयंती समारोह पर लोहिया ने कहा, "मनसुर्वों की बीच-बीच में करतव की कगौरी पर कमते रहना चाहिए; तभी वे संकल्प होते हैं। और बिना संकल्प के राजनीति नहीं हुआ करती—आखिर, राजनीति में और है क्या? नहीं है (संकल्प) तो फिर तपकरी घेना, आकार कपड़ा बेचो, भाव मौल-जोव करो।"

जिनका मैंने पढ़ा और समझा है, मेरा विश्वास है कि लोहिया ने पहली बार भारत भूमि से समाजवाद का यह अर्थ दिया, "अह अर्थ है अतासक्ति का, मिलकियत और ऐसी चीजों के प्रति लगेत लयम करने या कम करने का, मोह घटाने का। ... किंतु जब रा समाजवाद के ऊपर कार्ल मार्क्स को छाष बहुत पड़ी, तब से एक दूसरा अर्थ ज्यादा सामने आ गया। वह है संपत्ति की संस्था को खत्म करने का, संपत्ति रहे ही नहीं, चाहे कानून से चाहे जनशक्ति से। पहला अर्थ था संपत्ति के प्रति मोह नहीं रहे, और अब अर्थ हुआ है कि संपत्ति रहे ही नहीं।"

हम दूसरे अर्थानुसार कम अपनी जाति करके १९१९ में ही संपत्ति को

मिया लुका। इसके बाद से मानी बुनिया में समाजवादी आंदोलन की एक ऐसी धारा बही जो संपत्ति को भिन्नाना चाहती थी लेकिन उसके साथ ही साथ उस के साथ जुड़ जाती थी। साम्यवादी कहते हैं कि यह अंतरराष्ट्रीय धारा थी, बिनेयी लोग कहते हैं कि यह देशद्वेषी धारा थी, पर लोहिया के शब्दों में "यह परदेशमुखी धारा थी।" तभी बहन पहले, इतनी कम उम्र में १९३० के साम-
 गाम जनयुवक लोहिया इस विचार पर पहुंच चुके थे कि "मायों और फांसे में कोई बुनियादी अंतर नहीं है।" मार्क्स संपत्ति का विनाश चाहता है और कोई संपत्ति का विनाश चाहता है। जो भी हो संपत्ति दोनों के मूल में है। साम्यवाद और पूंजीवाद दोनों के मूल में।

पर जब समाजवाद का अर्थ है अनासक्ति या मोह को घटाना, तब बरतुतः लोहिया अपने इस अर्थ के साथ मार्क्स से आगे बढ़कर गांधी के नाम आते हैं और गांधी के मज्जे राजनीतिक अंतराधिकारी होते हैं। अंतराधिकारी बगले नहीं, गांधी द्वारा कभी बनाए भी नहीं जाते, पर अपनी युद्ध समाजवादी दृष्टिगत से अपने पास गांधी के राजनीतिक अंतराधिकारी हो जाते हैं। समाजवादी बनते और सोच में जो फर्क है, वही फर्क नेहरू और लोहिया के राजनीतिक चरित्र में है।

गांधी के पहले संघर्ष में आने के बाद नेहरू ने संकल्प शक्ति जागी थी, पर लोहिया का सुलभुत बौद्धिक दृष्टिकोण विदेश आने के समय तक निरिधत हो गया था। इन दृष्टिकोण या जीवन-दर्शन के तीन अंगराम थे, गहनचिंतता, तर्क बुद्धि और संकल्प। ये तीनों एक में मिलकर व्यक्ति की आंतरिक शक्ति हो जाते हैं। लोहिया में विशेषतः इसी आंतरिक शक्ति की नींव पर लड़ा है। तभी इस विद्रोह में एक और अभाव कल्पना और समता है, और कर्म के स्तर पर यही उनका संकल्प है।

नेहरू के संकल्प में से महत्वाकांक्षा का फल निकलना पर लोहिया के संकल्प से विद्रोह का फल निकलना, ऐसा विद्रोह फल जिसमें बोज है स्वराज्य का, समता का, लोभी का, स्वतंत्रता और कर्म के नियंत्रण का। इसका बुनियादी कारण यह है कि राजनीतिक लोहिया के व्यक्तित्व के केंद्र में भारत का 'अपनित' है और नेहरू के व्यक्तित्व के केंद्र में पश्चिम का 'इंडिविजुअल' है। इसीलिए व्यावहारिक राजनीति और कर्म में जहां नेहरू का अपनी निजी सत्य शक्ति पर विश्वास था वहां लोहिया को अपनी ही संकल्प शक्ति के अभाव संपूर्ण सतुष्टता की संकल्प शक्ति में अंततः आरवा। इसी समस्या के फलस्वरूप लोहिया को सद्भय जाति की श्रुता, समता और अनेक अंतराधारा पर अद्विग विश्वास था। "लोहिया की जवाहरलाल नेहरू में तर्क और संकल्प शक्ति का मेल दिखाई दिया और साथ ही असाधारण संवेदनशीलता। जवाहरलाल की संवेदनशीलता की तारीफ लोहिया ने हमेशा की, उन दिनों भी जब राजनीति

में वह नेहरू के यह शक्ति अपने संस्कार पर

समाजवाद

भी उठे बाजार

वधन, अस्वी

विधि समाज की

यहो यह राज

कोई नभद्वि

पक्ष वर्णों की

लोहिया को प

और समाज

दुष्पते में अंतर

को केवल पक्ष

अन्य अन्त न

पक्ष है। लोहि

और बोल का।

पक्ष है और य

को तरेपना ले

लोहिया के

समता माधव

तो संपत्ति का

जीवन-दर्शन है

विज्ञान है। न

स्वार्थिता उन्हे

क्षेत्रों में भुङ्ग, प

द्वारे महा

के हा में धार

जिसके द्वारा

संस्कार के राज

और राज्य में

गोपी की प

१. लोहिया एक

पृष्ठ १२

समाजवादी आंदोलन की एक ऐसी थी लेकिन उसके साथ ही साथ हमने दे है कि वह अंतर्राष्ट्रीय धारा थी, थी, पर लोडिया के काल में वह अंतर्गत नव पक्ष में १९३० के आग-बूने थे कि समाजवादी आंदोलन में लोडिया का विनाश चाहता है और भोजपुरी आंदोलन के पून म है— समाजवाद

का जो मोड़ को घटाना, वह अनुसूचित जाति के समर्थन मांगों के समर्थन है। लोडिया की बातें पर समाजवादी आंदोलन का विचार ही जात है। समाजवादी लोडिया को लोडिया के राजनीतिक

लोक में संभव मानित जागी थी, पर लोडिया के समर्थन का निश्चित ही लोडिया का विचार था, मानवीयता, एक लोडिया की सांस्कृतिक मानित ही लोडिया की नींव पर खड़ा है। तभी समाजवादी, और, अमे के स्तर पर

उन निकला पर लोडिया के संकल्प समाजवादी है स्वराज्य का, समाजवादी का। इसका बुनियादी कारण के क्षेत्र में समाजवादी का 'उपनि' है और 'अंतर्राष्ट्रीय' है। इसीलिए लोडिया को समाजवादी मानित संकल्प लोडिया के समाजवादी का। इसी कारण के फलस्वरूप लोडिया अंतर्गत अंतर्गत पर अंतर्गत में तर्क और संकल्प लोडिया का समाजवादी है। समाजवादी की, उन दिनों भी जब राजनीति

में वह नेहरू के स्वधर्म विरोधी बन चुके थे, क्योंकि उस समय उनके मन में यह भाव उठने लगी थी कि नेहरू की संवेदनशीलता साम्यवादी थी या केवल सरकार और शिक्षा के साधारण में अभिव्यक्ति।^१

समाजवाद की राजनीति के अंतर्गत लोडिया के सोचने का तरीका कभी भी बदलना नहीं रहा। हमेशा उनको दृष्टि 'समझौते' थी, उनका लक्ष्य 'समाजवाद', 'समाजवाद' रहा, पर राजनीति और जीवन दोनों में जो कुछ दोनों उनके लिए समाज और एक ही रहे। उन्हें 'राज्यवाद' माना गया। अंतर्गत ने जो यह यह राजनीति नहीं थी कि हर चीज को दुःख में बांटना नहीं कोई समझौते नहीं रहे पाए। इसी राजनीति को यह समझना है कि हम समाजवाद एक संपूर्ण चीज में बांटकर देखते हैं। उनमें वंश, एक मात्र और बुद्धि के लोडिया को 'अनिवादी' के रूप में देखा है। ऐसे ही समाज के लोग को व्यक्ति और समाज, पुरुष और प्रकृति, पदार्थ और आत्मा को समाज-व्यक्ति और एक दूसरे में बांटकर देखते हैं, समाजवाद को और समाजवाद की राजनीति को केवल पदार्थ 'मैटर' मानते हैं। लोडिया का विश्वास था कि ये सब समाज-व्यक्ति तत्त्व नहीं है। उनमें समाज में विरोध नहीं है। ये एक ही तत्त्व के दो पक्ष हैं। लोडिया ने इसके लिए राजनीति में एक उदाहरण दिया है— बंदूक और मोटार का। और यह कि यह कि ये दोनों एक ही तत्त्व के दो अलग-अलग पक्ष हैं और प्रकृत में इनका विकल्प है समाज, विभिन्न ताकत-मातृ, बालू में बने लोडिया लेकिन साम्यवादी रूप से लोडिया।

लोडिया के समाजवाद और उस समाजवाद के लिए राजनीति में 'सामाजिक समता' मान्य और सत्य दोनों हैं। लोडिया का समाजवाद मुख्य रूप से न की समाज का विद्रोह है न समाज का। यह साम्यवादी नीतियों से ऊपर एक जीवन-दर्शन है। यह बहुमत जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समता एवं संयुक्त का सिद्धांत है। लोडिया का राजनीतिक धर्म इसीलिए मूलतः विद्रोह का दूसरा क्योंकि उन्हें राजनीति के साथ सामाजिक, सांस्कृतिक और सांस्कृतिक इन सभी क्षेत्रों में भ्रष्ट, पाखंड और अत्याचार के विद्रोह लोडिया होना पड़ा।

समाजवादी संरक्षित तत्व नहीं है, यह तो अंग्रेजी 'कलचर' मूल के अनुवाद के रूप में आया है। हमारे महा मूल है संरक्षित, और संरक्षित है वह प्रक्रिया जिसके द्वारा व्यक्ति अपने लक्ष्य के अनुरूप स्वयं साधन ही बनाते हैं। इसी कारण के कारण लोडिया अपने विद्रोह संरक्षित के अनुरूप विद्रोह के साधन और साधन दोनों ही गए।

दूसरी ही एकलपता लोडिया की। इसका मूल कारण यह था कि "मेरा

१ 'लोडिया एक समाजवादी आंदोलन', समाजवादी आंदोलन, 'संस्मरण', ११ सितंबर १९६७, पृष्ठ १३

सोचने का तरीका कभी भी बृद्ध वाला नहीं रहा।^१

इसीलिए, अन्ध समताओं की अपेक्षा लोहिया ने सामाजिक समता का प्रति-पादन अधिक गहन ढंग से किया। तभी जितनी भी सामाजिक विषमताएँ उन्हें दिखाई दीं, जानिप्रथा, नर-नारी की अयोग्यता, अस्पृश्यता, भाषा, रंगभेद नीति, भाषाव्यक्तता, व्यक्ति-व्यक्ति में माण-अण, रौंती-रौंती, न्याय-अन्याय की विषमता—इन सबके खिलाफ लोहिया ने पारमेश्वर विरोध किया।

लोहिया हर समस्या के मूल में जाते थे और बुनियादी तथ्य सामने लाते थे। उनकी खोज थी कि भारत में जितनी भी सामाजिक विषमताएँ हैं उनमें जानिप्रथा सर्वाधिक विनाशकारी है। उसका विनाश था कि "आधुनिक नैतिकतावरी और जानि-प्राप्ति युद्धों राखत है और अन्ध एक में लड़ता है तो दूसरे से भी लड़ता प्रकटी है।"^२ लोहिया ने जाति से जुड़े लड़वा के रूप में देखा है, क्योंकि जाति में अपनी जगह होती है जिसका जाति का अर्थ है दूसरी जाति में प्रवेश के लिए अयोग्य बना दिया जाता है। इस जातिवाद के कारण भारत का अन्ध जीवन निरन्तर है। आरक्षण संरक्षित और आरक्षणवाद, सामं-वाद और धर्मवाद का जोषक और जगह ही नहीं बल्कि जानिप्रथा का भी जनक और जोषक है। भारत की एक हजार वर्ष की इतिहास का कारण जाति-प्रथा है, प्रांतीय मतभेद और अन्ध-रूप में ही। लोहिया के विचार में अब भी किये देश में जाति के अन्ध हीने ही, तब वह देश विदेशी आक्रमण के समक्ष अयोग्य नहीं होता। भारतवर्ष में जातिव्यवस्था सर्वत्र अन्ध रहे है। इसीलिए जानिप्रथा के अन्धनी जातिगो भी सामाजिक, आर्थिक, अध्यात्मिक, बौद्धिक, राजनीतिक दृष्टि से लड़ कर डाला। फलतः वे सर्वजनिक कामों और देश की रक्षा खाति नैन मद्द् कार्य के प्रति अयोग्यता उद्योगीन रहें। जाति-प्रथा "अन्धे अन्धता को वर्जक बनाकर छोड़ देती है, वास्तव में देश की लक्षण दुर्घटनाओं के निरोध और अन्धता गूरे उद्योगीन लड़क।"^३

लोहिया ने जातिप्रथा उन्मूलन के कई मार्ग और उपाय प्रस्तावित। ब्रह्मजान और अद्वैतवाद की दृष्टि, आर्थिक मार्ग, सामाजिक और राजनीतिक उपाय। इसके लिए लोहिया पिछली जातियों को केवल नेतृत्व के पक्षों पर ही ध्यान नहीं करता चाहते थे, बल्कि उनकी अन्धता को जागृत करना और उनमें अधिकार भावना पैदा करना चाहते थे। इसके लिए उनमें आत्मसम्मान जगाने के लिए लोहिया ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए। उन्होंने विश्वासपूर्वक कहा, "अन्ध महात्मा गांधी भी आत्मसम्मान न रहा होता और एक बहुत ऊँचे पमाने

१. 'अन्धवाद की राजनीति'— राममनोहर लोहिया, पृष्ठ २
 २. 'जानिप्रथा' राममनोहर लोहिया, पृष्ठ १०,
 ३. वही, पृष्ठ ८४

का आत्मसम्मान, तभी और कर्तव्य की लड़ाई के लिए उद्योग लड़ सकता है।"^४

गांधी के मन्त्रे भारतीय राजनीति सच्चाई को ही नहीं की 'अन्धदृष्टि' अन्ध समता, अन्ध-अन्ध और कर्तव्य में, पदार्थों के मूल में,

"गांधी जी के आग्रहों के कारण नहीं है, अन्धता ही हम सब भारतीयों की वरी कर, वह १४ के लिए अन्ध अन्ध पर आग्रह अन्ध ही गांधी, यह भी

अन्धता अन्ध गलत ही या अन्ध वक्तव्यों और भाषण ही नहीं, अन्धे अन्ध अन्धता ही है। औरक उन्धता ही है। "ही मन्त्रा तो ही जान रहे, ही धर्म लन की धर्म, एक एक तरफ अन्धता की धर्म। इन दो

४. हा० लोहिया द्वारा
 ५. 'अन्धदृष्टि' रामम
 ६. 'अन्धदृष्टि' रामम

का ने सामाजिक शक्त का प्रति-
 ती भी सामाजिक नियंत्रण उन्हें
 था, सम्पृश्यता, भाषा, रंगभेद
 र, लोको-लोरी, भाषा-प्रयोग की
 इन विद्रोह किया।

और हुनियादी तथ्य सामने लाने
 सामाजिक नियंत्रण है उपाय
 वेस्वाय था कि "प्राथमिक तैर-
 प्रयत्न एक में प्रकृता है तो दुसरे
 को एक उद्वेग के रूप में देखा
 एक उपाय का अर्थिन दुसरे
 है। इस जातिगत के कारण
 हुनि और प्राकृतिकवाद, सामाज-
 नही वनि जातिगत का भी
 की शक्त का कारण जाति-
 लोहिया के विचार में तब भी
 नद रथ विदेशी आक्रमण के
 प्रथम सर्वप्रथम रहे हैं।
 रिक, जातिक, सामाजिक,
 त. वे सामाजिक शक्तों और
 शक्त: अस्वीकृत रहें। जाति-
 वास्तव में देश की शक्ति
 क।"

र वरथ पणनर। ब्रह्मनाम
 और राजनीतिक उपाय।
 त्व के पदों पर ही प्राकृतिक
 मान्य करत और उनमें
 उनमें सामाजिक शक्त जमाने
 उन्होंने विश्वासपूर्वक कहा,
 और एक बहुत ऊंचे विमान

का आत्मशक्तमान, तो वक्षिण शक्तीका में ने कभी भी विद्रुस्तानियों के अधिकार
 और कनेक्ष की लडाईं लड़ नहीं सकते थे। ... जो आदमी जनता है कि कहीं
 मेरी इज्जत लक्ष हो रही है, वही आदमी अपनी शक्ति और कर्तव्य पूरा कर
 सकता है।"

राष्ट्री के सच्चे राजनीतिक उत्तराधिकारी ने स्व में ही लोहिया वर्तमान
 भारतीय राजनीति में एकलें ऐसे व्यक्ति है, जिनकी राजनीतिक दृष्टि सांस्कृतिक
 मन्त्राडयों और तन्वी की शक्ति साथ लेकर चलती हैं। उनी का फल है लोहिया
 की 'परमदृष्टि' 'समलक्ष्य' और 'आशंका'। उनी का बीज है 'जागतिक' -तर-तारी
 समर्थ, व्यक्ति-व्यक्ति में समता, जेग-जेग में समता, लडाईं और अर्थ में, अधिकार
 और कर्तव्य में, गांव और शहर में, देश और विदेश में, अहम में उदम् में,
 परार्थ में सुधम में, भीम में वैचारण में समता।"

"आदमी तो हम सब एक है। सब के एक में दोष है। वही तु-तु में-में, वही
 शक्ति भक्त, वही राजपूत, वही ब्राह्म, वही स्वयं, उनमें कोई विशेष अंतर
 नहीं है, जिनका शक्ति गहरावानी करके अधिक को मार देना, पथ का देना।
 हम सब भारतीय हैं। पथिक अन्त-पालन है पर एक एक है—सर्वत्र अन्त-
 वरी का, यह पथ है मान्य का, यह पथ है विद्रुह समूहों और गरीब उद्योगों
 के लिए विशेष प्रयत्न का, यह पथ है जाति और जाति व्यवस्था का। इस पथ
 पर शक्ति ... तब कभी उदगी शक्ति की उन्नत की शक्ति मत भूल जाना। शक्ति
 ही शक्ति, यह भी वही है कि उल्लास पणन है तो उदासी मत भूल जाना।"

सन्साल भारतीय राजनीति में यदि कोई एक व्यक्ति बड़े लोगों द्वारा बहुत
 शक्ति रथ में सम्भक्त गया तो वह ही लोहिया थे। उनकी बातों को, उनके
 वक्तव्यों को भाषणों को आशंका में अिद्रुल जगह नहीं ही जाते थी। इनका
 ही वही, उन्हें झूठ और मसला में रणकर शक्ति जाता था। इस प्रथम में
 उन्होंने हमेशा कहा और माना कि "मेरे शक्ति का विभाग कौन टटाए ? क्या
 फायदा जाना है ? मेरा सुन विभाग का जाने किन रण ना है। अन्तर में सुद
 औरकर उतका दखना चाहूँ तो न जाने अन्तर में कौन-कौनसी शक्ति निकले।
 ... जो शक्ति तो हमेशा के लिए यह सबक शक्ति का शक्ति भद रहे, शक्ति
 जान रहे, जो शक्तियों की समदृष्टि के देवे। एक संगठन की शक्ति दुसरी शक्ति
 शक्ति की शक्ति, एक तरफ शक्ति की शक्ति, दूसरी तरफ शक्तिशीलता की शक्ति,
 एक तरफ शक्ति और कार्यक्रम की शक्ति, दूसरी तरफ शक्ति और शक्ति
 की शक्ति। इन दोनों में समदृष्टि शक्ति।"

१. डॉ० लोहिया द्वारा १० जुलाई १९५६ को हैदराबाद में दिय गए भाषण से।

२. 'परमदृष्टि,' राममनोहर लोहिया, पृष्ठ १-३

३. 'परमदृष्टि,' राममनोहर लोहिया, पृष्ठ ४५

काण हिन्दुस्थान की राजनीति में लोहिया की यह समदृष्टि भा पाती। स्वयं लोहिया में यह थी, पर उनकी समाजवादी पार्टी में यह कभी नहीं पाई। यही तथ्य ही गायब है पूरे भारतीय जीवन में। और लोहिया यही फिर से वापस ले आना चाह रहे थे। यह बहुत बड़ी बात थी, पर उनकी पार्टी हमेशा छोटी रही। वह जून इतने बड़े थे कि लोग उनके इनमें करीब, परम गायबता के स्तर पर भी मानकर उनके बराबर नहीं हो पाते थे। वे उनके सामने छोटे हो जाते थे। इस सम्बन्ध में लोहिया को बहुत चिन्त थी। समाज और समाजता का स्थान उन्हीं के घर में, उन्हीं के दल में इन रोज टूटना था।

मानना ताया कि लोहिया का समाजवादी दल उनके अपने समय में कितना भी छोटा नहीं न रहा, लेकिन बहुत महत्वपूर्ण रहा। उसने भारत की राजनीति में सच्ची बातों को समझकर विद्रोह पर समदृष्टि का यह पाठ पढ़ाना चाहा जिससे भारतीय जीवन में वह भव उत्पन्न होता जिसे मानवसूक्ति पत्र कहते हैं। पर एक पत्र के लिए यह था, यह नाशिव बल, यह आस्था प्रतिबन्ध है कि "एक तरह के चर्चों, चर्चों का और दूसरी तरफ गभीर रवों का गाय वाली। हमेशा दोनों दूरियों को गहरे रखो। कल सरकार बनने वाली है ऐसा सोचकर चलो और भावना ही बरक भी सरकार न बने ऐसा सोचकर चलो।"

परन्तु किसी भारतीय राजनीतिक दल के लिए यह चरित्र साधक प्रसंभव है। असा अभाव में से ही राजनीति निकली हो वहाँ यह कैय कहाँ? शक्ति जहाँ गरीबी और निर्बलता की अतिक्रिया स्वरूप हो, वहाँ यह फल कहाँ? इसी राजनीतिक से, यत्कि संस्कृतिक विद्रोह में लोहिया का विद्रोह समांतर तीन मोर्चों पर था—कॉन्ग्रेस सत्ता के विरुद्ध, दलबंदी के विरुद्ध और लुट भपने विरुद्ध। वे दरप्रसन्न इन तीनों मोर्चों पर रचनात्मक विकल्प की तलाश में थे। तभी लोहिया का 'विद्रोह' विद्रोह की भाषा और स्वरूपना को मास्था के जुड़कर 'संकल्प' हो गया। यह संकल्प और लोहिया की स्वयंसे प्रार्थि दोनों एकान्तर हैं। सत्ता के विरुद्ध विद्रोह में रहना प्रकृतन को निष्ठा थी। भारत के मास्कृतिक पतन, जिसका सबूत दलबंदी (जातबंदी, जीवनबंदी) था, इसके विरुद्ध विद्रोह करना उनका लक्ष्य था। और उनका आत्मविद्रोह इस सम्बन्ध से था कि 'भ्रमणने आग को चोकर देखना चाह तो न जान उसने कौन-कौनसी चंइरी निकले।' लोहिया का यह आत्मविद्रोह बरअसल भारत का आत्मविद्रोह था, जो सदियों की दुलामी, अन्याय और पतन का माक्ष्य था।

इन तीनों विद्रोहों के समांतर तीन फल थे—पक्ष या सत्ता के प्रति विद्रोह से प्रतिपक्षा का विफल का फल, दलबंदी के प्रति विद्रोह से लोह-सहित फल और आत्मविद्रोह से स्वयंसे फल।

मैं अनुमान करता हूँ लोहिया का जीवन इस मर्ष में 'सफल' था कि उनके पास ऐयकि की ताकत थी, धैर्य और अगार निष्ठा थी, फल्ट भेलने से लेकर

अयंकर भातना सतन करने प्रयफरता के बीच आश, लोहिया का विद्रोह भाव वह निष्ठा भी इस आरण बुनियादी परिवर्तन का वे विण प्रतिबन्ध मानने से। वह इस हार की हिन्दुस्थान विषयाम था कि वहाँ कांग्रेस को हिन्सा विरुद्ध आग का जब उनता का नत हिलता बुद्धि या हृदय खी पाव कि उसे अगार शिलाधो-क विफल पानी!

गांधी ने परतत्र भा भूषे जोग एक माव वल की भूल पंदा की। भूल को कोई भूल है। अभी तप गरी है, तड़पाने पाती है, वही ही भूल भी उनकी है के बारे में आज हमारी या गरी के बारे में हिन्दुस्थान अगार भारत की एकान्तर नदों मिलने है किनी काम तो मैं होना है। माया १९५० के बीच। अब न पके या दग बरग में पके।

यादावी की भूल को सगर्षीय हुआ सब का एक उम्मीद को कभी न छोड़ना तोय जमाना और तीव्र रचनात्मक पक्ष था। उन वृह वेहद महत्वपूर्ण प्रतीक पसपन, 'हिन्दुस्थान की ता

निम्नलक्ष्य का फल

हवा की यह समदृष्टि या शक्ति।
 पार्टी में यह कभी नहीं था
 जीवित थे। और लोहिया यही फिर
 ही बात थी, पर उनकी पार्टी हमेशा
 उनके होने करीब, एक समानता
 पाते थे। वे उनके सामने खड़े
 चिह्न थे। नरमता और समानता
 के बीच दृष्टा था।

उस उलझे प्रश्न के बीच में निम्नलक्ष्य
 रहा। अपने भारत की राजनीति
 समदृष्टि या वह याद दवाना चाहता
 कि साधनसूचि फल फलन
 का वह, यह भारत प्रतिबन्ध है
 और दूसरी तरफ, सभी रक्षक शक्ति
 फल सरकार बनने वाली है ऐसा
 कहते हैं। ऐसा मानकर नहीं।"

लिए यह परिवर्तन आवश्यक
 हो नहीं वह धर्म कदा? शक्ति
 हो, वही यह फल है? हमी
 या का विद्रोह सम्भार नीति मीचरी
 कष्ट और नृद अपने विद्रोह के
 की लक्ष्य में थे। तभी लोहिया
 समस्या से जुड़कर 'संकल्प' हो
 के दोनो एकाकार हैं। लक्ष्य के
 भारत के सामूहिक बनना,
 या, शक्ति विद्रोह करना
 सच्चाई से था कि 'अपने प्राण
 जीवन-कीर्तनी संर्धति निकले।'
 का स्वविद्रोह था, जो सदियों

—पक्ष या लक्ष्य के प्रति विद्रोह
 विद्रोह के जीवनगत फल और

धर्म में 'गफल' पर कि उनके
 था थी, कष्ट बनने से लेकर

भयंकर बातना सद्ध करने तक का धर्म था, अमान, अकेलापन, निराशा और
 मरणात्मकता के बीच साक्षात्, उल्लाम और मानस के प्रति अनन्य निष्ठा थी।
 लोहिया का विद्रोह भाव किमी प्रतिक्रियावत् नहीं, निष्ठावत् था। और
 वह निष्ठा भी हम साहसबोध से उगी थी कि भारत की पश्चिमिक धरती में
 बुनियादी परिवर्तन का बीज डालना है। कांग्रेस की हार की वह लोकतंत्र के
 लिए अनिवार्य मानते थे। वह मानते थे कि नाजिम हारिगी तमी देश जीएगा।
 वह हम हार को हिन्दुस्तान में एक गुण का स्रोत मानते थे। उनका ऐसा
 विश्वास था कि जहाँ कांग्रेस हारती है, वहाँ जनता के मन हिनते हैं और मन
 को हिलाए बिना या आनि के, परिवर्तन के बीज उनमें डाल ही नहीं सकते।
 जब जनता का मन हिलता है तब क्रांति के बीज उममें पड़ा करते हैं। मन,
 बुद्धि या हृदय को साक्ष इतनी बेमतलब और बाह्यात चीजों से भरा हुआ है
 कि उसे अगर हिलाओ-डुलाओ नहीं तो उसमें बीज डालने की जगह ही नहीं
 निकल पाती!

शक्ति ने परलभ भारत में आजादी की भूख पैदा की। सभी प्राजादी के
 भूख लोग एक साथ चल पड़े। लोहिया ने स्वतंत्र भारत में समता या बराबरी
 की भूख पैदा की। भूख तो जो संकड़ो वर्षों ने, पर पता नहीं था कि वह भी
 कोई भूख है। अभी तक वेद की ही भूख का पता था। आजादी की भूख त्रिनती
 पड़ी है, तत्पाने वालो है, लोहिया ने देखा और लोगों को दिखाया कि यह बरा-
 बरी की भूख भी अपनी ही गहरी और तड़ाने वाली है। बराबरी की भूख
 के बारे में साक्ष हमारी करीब-करीब वही हासन है जो १९२८ के पहले
 आजादी के बारे में हिन्दुस्तान की भूख थी। "इसलिए बराबरी नहीं चाहिए।
 अगर भारत को एकाएक दलारो-नालों की नाशर में उपहने हुए नीरव्यक्त
 गहरी गिरने है किसे काम के लिए तो बराबरी नहीं। दुखी मत होना। दुखी
 तो मैं हीन हूँ।" आजादी की भूख वाला सामना गया हुआ था १९२० से
 १९२० के बीच। अब कभी बराबरी की भूख का सामना पकेगा, जो बरत में
 पके या दम बरभ में पके।"

आजादी की भूख को मिटाना जैसे गवका समलक्ष्य था, जो उसके लिए
 समक्षोप हुआ तब का एक साथ, एकजुट होना, त्याग करना, कष्ट भोगना और
 उन्मोद को कभी न छोड़ना। समता और बराबरी के लिए वह समलक्ष्य, सम-
 बोध जनाना और लीज करना यह लोहिया की राजनीति का महत्वपूर्ण
 रचनात्मक पक्ष था। इस भूख को जमाने के लिए उमका उद्घाटन देने के लिए
 वह बेहद महत्त्वपूर्ण प्रतीक या विषय उठाये थे बाद-विचार चलाने के लिए।
 समलभ, "हिन्दुस्तान की नारी का प्रतीक सावित्री नहीं शोरी है।" लोहिया की

१. 'समलक्ष्य, समबोध', राममनोहर लोहिया, पृष्ठ ५

यह बात सुनते ही लोगों का दिल एकदम से उड़ेलित हो गया। कुछ लोग लाल-पीले होकर कहने लगे कि यह क्या सावित्री पतिव्रता नारी का प्रतीक नहीं है? बल्कि टोपरी, पांच पतियों की पत्नी, वंशी प्रतीक है?

लोहिया के मित्रों ने यह एक ऐसा विषय है जिससे भारत के घनीत को शामिल करने वर्तमान में नर-नारी के संबंध के सम्बन्ध में समाज में जवर्दस्त उपलब्ध-मुफल ला सकते हैं, वरावरी की भूख को जगा सकते हैं। वर सभी ती वरावरी की भूख पर चारों तरफ इसकी व्याप्ति काई जमी हुई है कि लग भूख को खोस सकत ही नहीं पाते। जब इस तरह का वाद-विवाद चलने का कुछ तो काई साफ होगी।

गैर-वरावरी, असमता, असमरूप, असमवाय जैसे मूल्य-सूक्तों के साथ लोहिया ने वर्तमान राजनीति को देखा। यथायुक्त को इस तरह देखने में लोहिया ने इसके कारणों को समझा और उसे गीधे, स्पष्ट और निर्भीक ढंग से अपने लेखन और बयान में व्यक्त किया। भाषा, जातिप्रथा, हिंदू और मुसलमान, नर-नारी, वर्ण और धर्म पर धारित सत्त्वात्मक हैं, जिनके कारण हममें गैर-वरावरी की प्रगपना है। इसकी लोहिया ने भारत की 'सुनिवासी साम्र-दायिकता' की संज्ञा दी है। लोहिया के अनुसार इस साम्रदायिकता का कारण बहुत कुछ भारत की वर्तमान राजनीति है। उन्होंने दिखाया है कि भारतीय राजनीति का आधारणत, समाज नहीं करने और न ही सम्य विज्ञातों का प्रचार कर साम्रदायिकता समाप्त करना चाहते हैं। चुनावों के समय मत और समर्थन की भाषा में उन्हें भाषण देना पड़ता है किनु उन भाषणों में भी वे हिंदू-मुसलमान, भाषा, जातिप्रथा, नर-नारी, गरीब-समृद्ध, शीघ-ऊँच के सम्यतीय के भय से कतराते हैं। इनमें परस्पर जो भी घृणा और द्वेष का भाव है, उसको साम्युक्तिक राजनीतिज्ञ क्यों का नहीं छोड़ देते हैं। जीवन के हर क्षेत्र में अग्र-मानता का जो पुराना कूदा-करकट पडा हुआ है, इसके प्रति भारतीय जनता में जो अलतकतभी है, अज्ञान है, उसी को उल्टे तलतनी दे-दिनाकर बीट लेना चाहते हैं। यह है समाज हमारे राजनीतिक जीवन की सबसे बड़ी बर्हमानी। इस बर्हमानी के खिलाफ लोहिया के विद्रोह के कारण प्रायः ऐसे सारे राज-नीतिज्ञों ने चहें वे किसी भी दल और विचार के क्यों न हो, लोहिया को अपना शत्रु माना है। लोहिया के विद्रोह जितना व्यापक प्रचार हुआ है वह एक ऐसा दगावेज है जहां लोहिया का तथ्य अग्राय है।

सतीत को न भूल पाना, प्रतीत को मलत ढंग से व्यद रूपने का सबूत है। जो समाज में है, वही सतीत में रहता है। लोहिया ने इसी दृष्टिकोण से 'इतिहास' को देखा। उन्होंने २६ अप्रैल, १९६६ को लोकसभा में एक उदाहरण देकर इसको स्पष्ट किया, "भंदिर टूटे मध्यकालीन युग में। अब उसका इति-हास में लिखा जात है। अगर सिर्फ उतना ही लिख दिया जाए कि मुसलमान

विद्रोहियों ने सा-सिर्फ एक पहलू है। लेकिन तथ्य है कि उस वकत कारियों को रोक-फिर इतिहास मु-

१९४७ के न

मत्संधाधो भी प-पार्टी के नेता के-नाम था, कपिन-दसके बारे में पार-मन्त्रवृणों बात न-गुठ अमर है, तो-गुठ सम्मेलन के म-से अन्तम करना है-हार जाता है। वि-और गैर-निष्पेक्ष-समाजवादी पार्टी

१९४७ में ही

के साथ 'उफान पु-नेहल से बिनने-कोई बात पहले से-हुई थी कि आपव-

थे। कुछ संगठित

यह है वह पक-

चने। महाभलेस्वर-

विचारों का समावे-

विचारों में परिवर्तन-

स्पष्ट रूप से स्था-

नेतृत्व मुत्पत्तः लोह-

पार्टी और कृपानां-

हुई थीं। तब तक

१. 'समाजवादी साधो-

२. वही, पृष्ठ ४३

उत्कृष्ट हो गया। कुछ लोग
विपत्तियों का प्रतीक नहीं
रखते हैं?

जिसे भारत के कर्तव्य की
विपत्तियों में समाज में जबरदस्त
संकेत हैं। पर अभी तो
बुझ ही है कि उस वृक्ष
का फल-फिरोर चलेगा तो कुछ

जैसे मुन्ना-पंकरों के साथ
जाना नष्ट होने में लौहिया
और निर्भीक इंसान अपने
जा, हिंदू और मुसलमान,
प्रत्येक कारण हमारे सं-
घर्ष की 'सुनिश्चिती' का प्र-
संग्रह-प्रदायितता का कारण
विश्वास है कि भारतीय
संघर्ष विपत्तियों का प्रचार
समय मन और समर्थन
भावणा में जो वे हिंदू-
संघर्ष के प्रसंगों के
का भाव है, उसको
के हुए धर्म में सम-
प्रति भारतीय जनता
के-विचारों को लेना
सबसे बड़ी बड़ी भावना।
जाय: ऐसे सारे राज-
नीति, लौहिया की प्रकृति
है वह एक ऐसा

रखने का सजुत है।
इसी दृष्टिकोण से
जा में एक उदाहरण
यस उसकी इति-
हास कि मुसलमान

विज्ञेयों ने आकर मंदिर तोड़ें तो बात सही जरूर है लेकिन मधुरी सही है,
सिर्फ एक पहलू है। ऐसा विचार तो इतिहास एक गुस्सा-भर खनकर रह जाता
है। लेकिन उनके साथ-साथ यह भी रखा जाए जो धर्म सच को पूरा बनाता
है कि उस सच के हमारे पुराने कितने तालायक थे कि वे पन्द्रहवीं शताब्दी-
कारियों को रोक न जाए, जो किसी हद तक इतिहास पूरा बन जाता है और
फिर इतिहास एक दर्द के रूप में हमारे सामने आ जाता है।"

१९४७ के फानपुर सम्मेलन के पहले समाजवादी पार्टी की राजनीतिक नीति
भाक्सवादी थी और संगठन तथा विचार दोनों ही क्षेत्रों में जयप्रकाश साराधन
पार्टी के नेता थे। गेजलिस्ट उन और उनकी पार्टी कांप्रेस के अंदर थी जिसका
नाम था, कांफ्रेंस सोशलिस्ट पार्टी। इसे लोहिया ने 'मिर्चगुट' की संज्ञा दी है।
इसके अंदर से भाक्स-विप्लव करने हुए लोहिया ने राजनीति के संदर्भ में एक
महत्वपूर्ण बात तलपती है, "किसी संगठन के अंदर ही उसका एक कामधेनी
गुट अंदर है, जो उसमें एक स्वाभाविक कमजोरी आ जाती है। वह कामधेनी
गुट सम्मेलन के अक्षर पर अपने प्रस्ताव रख देता है। प्रस्ताव पर अच्छी तरह
से बहस करता है, बहुत जदिया भाषण, फिर उस पर वोट ही जाते हैं, और
हार जाता है। फिर एक संतोष हो जाता है कि हमने तो अपना काम कर दिया
और गैर-जम्मेदारी की भावना उसके अंदर आने लगती है, जैसे भाज की
समाजवादी पार्टी है।"

१९४७ में ही इस 'मिर्चगुट' का अंत होता है और लोहिया और जयप्रकाश
के साथ 'उफान युव' शुरू होता है। लोहिया और जयप्रकाश दोनों एक साथ
नेहरू के मिलने वाले थे पर "आश्चर्य होगा कि जयप्रकाश की ओर हमारी
कोई बात पहले से होती ही नहीं थी! ... कितनी हालत हम लोगों को विगडी
हुई थी कि आपन में बातचीत करके फैसला नहीं करते थे, प्रकृति फैसला कर लेते
थे। कुछ संगठित प्रयास नहीं होता था, यह १९४६ की बात बताती है।"

यह है वह यथार्थ जमीन, जहां से लोहिया अपनी राजनीति के साथ आगे
चले। महाबलेश्वर और पटना में पार्टी की नीति और कार्यक्रम में लोहिया के
विचारों का सभावण हुआ। पर १९५२ के चुनावों के बाद लोहिया की अपने
विचारों में परिवर्तन करना पड़ा। उन्होंने अपने पंचगती भाषण में मार्क्सवाद का
स्पष्ट रूप से त्याग तो किया ही, यह भी प्रकट हो गया कि पार्टी का राजनीतिक
नेतृत्व मुन्ना-पंकरों की कर सकते हैं। उस पहले आम चुनाव में समाजवादी
पार्टी और कृषिवादी भी की किसान मजदूर प्रजा पार्टी दोनों बुरी तरह पराजित
हुई थी। तब तक समाजवादी पार्टी की परंपरा भाक्सवादी थी और किसान

१. 'समाजवादी आंदोलन का इतिहास,' राममनोहर लोहिया, पृष्ठ ४६
२. वही, पृष्ठ ४२

विकसित हो गया। कुछ लोक
विद्यता सारी का प्रतीक नहीं
रही है ?

जिसे भारत के कर्तव्य की
पदों में समाज में जबरदस्त
करने हैं। पर अभी तो
बही हुई है कि उस मुक्त
साव-विवाद चलना तो कुछ

जैसे मुक्त-संकरों के साथ
ता नष्ट होने में लोहिया
और निर्भीक इंधन से अपने
गा, हिंदू और मुसलमान,
उनके कारण हमारे सं-
ता की 'सुनिश्चिती' का प्र-
सम्प्रदायिता का कारण
विश्वास है कि भारतीय
सत्य सिद्धांतों का प्रचार
समय मन और समर्थन
भावणों में जी वे हिंदू-
संघ-संघ के प्रसंगों के
का भाव है, उसको
के हुए धर्म में समा-
प्रति भारतीय जनता
देशपालन वीर नेता
सबसे बड़ी बड़े-भारती।
गाय: ऐसे सारे राज-
नी, लोहिया की प्रस्ता
हुआ है वह एक ऐसा

रखने का सजुत है।
इसी दुर्लक्षण से
सा में एक उदाहरण
यस उसकी इति-
हाए कि मुक्तमान

विज्ञेयों ने आकर मंदिर तोड़ें तो बात सही जरूर है लेकिन प्रवृत्ति सही है,
सिर्फ एक पहलू है। ऐसा विश्वास तो इतिहास एक गुस्सा-भर बनकर रह जाता
है। लेकिन उनके साथ-साथ यह भी रखा जाए जो धर्म सच को पूरा बनाता
है कि उस सत के हमारे पुराने कितने तात्पर्यक थे कि वे पन्धरी मार्कण्ड-
कारियों को रोक न जाए, जो किसी हद तक इतिहास पूरा बन जाता है और
फिर इतिहास एक दर्द के रूप में हमारे सामने आ जाता है।"

१९४७ के कानपुर सम्मेलन के पहले समाजवादी पार्टी की राजनीतिक नीति
भाक्सवादी थी और संगठन तथा विज्ञान दोनों ही क्षेत्रों में जयप्रकाश साराधन
पार्टी के नेता थे। मोरारजिस्ट उन और उनकी पार्टी काँग्रेस के अंदर थी जिसका
नाम था, काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी। इसे लोहिया ने 'मिचिंगुट' की संज्ञा दी है।
इसके बारे में भाक्स-विश्लेषण करते हुए लोहिया ने राजनीति के संदर्भ में एक
महत्वपूर्ण बात बताती है, "किसी संगठन के अंदर ही उसका एक वामपंथी
गुट बनता है, जो उसमें एक स्वाभाविक कगजोरी आ जाती है। वह वामपंथी
गुट सम्मेलन के अक्षर पर अपने प्रस्ताव रख देता है। प्रस्ताव पर अच्छी तरह
से बहस करता है, बहुत जटिल भाषण, फिर उस पर वोट हो जाते हैं, और
हार जाता है। फिर एक संघोष हो जाता है कि हमने तो अपना काम कर दिया
और गैर-जन्मेदारों की भावना उसके अंदर आने लगती है, जैसे भाज की
समाजवादी पार्टी है।"

१९४७ में ही इस 'मिचिंगुट' का अंत हुआ है और लोहिया और जयप्रकाश
के साथ 'उकास युग' शुरू होता है। लोहिया और जयप्रकाश दोनों एक साथ
नेहरू से मिलने जाते थे पर "साक्षर्य होगा कि जयप्रकाश की ओर हमारी
कोई बात पहले से होती ही नहीं थी! "कितनी हालत हम लोगों को विगड़ी
हुई थी कि पापन में बातचीत करके फैसला नहीं करते थे, प्रकृति फैसला कर लेते
थे। कुछ संगठित प्रयास नहीं होता था, यह १९४६ की बात बताती है।"

यह है वह यथार्थ जमीन, जहां से लोहिया अपनी राजनीति के साथ आगे
चले। महाबलेश्वर और पटना में पार्टी की नीति और कार्यक्रम में लोहिया के
विचारों का सभावण हुआ। पर १९५२ के चुनावों के बाद लोहिया की अपने
विचारों में परिवर्तन करना पड़ा। उन्होंने अपने पंचमंडी भाषण में मार्क्सवाद का
स्पष्ट रूप से त्याग तो किया ही, यह भी प्रकट हो गया कि पार्टी का राजनीतिक
नेतृत्व मुक्त: लोहिया ही कर सकते हैं। उस पहले आम चुनाव में समाजवादी
पार्टी और कृषिालावी भी की किसान मजदूर श्रम पार्टी दोनों बुरी तरह पराजित
हुई थी। तब तक समाजवादी पार्टी की परंपरा भाक्सवादी थी और किसान

१ 'साजवादी आंदोलन का इतिहास,' राममनोहर लोहिया, पृष्ठ ४०
२. वही, पृष्ठ ४२

महादूर प्रजा पार्टी की गांधीवादी। दोनों दलों के मिलन से जो नई पार्टी बनी—प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, अपने मानसैतान और गांधीवाद का मिलन था और तब लीरिया ने सोचा कि इस संघम म देश के राजनीतिक जीवन में एक नये अस्त्राय का शारंभ होगा। पर यही में लोहिया को राजनीति में मानव भूतयदीनता के खिलाफ विद्रोह का जीवन गुरु हुआ। १७ १९५० १७० के जन्मकाल तक समाजवाद का स्वरूप आमर्षी राष्ट्रियता का रहा जिसमें एक नकली उपान था। "स्थाली पुनाव पकाने का मिललितना था। मभापं वृत्त बड़ी-बड़ी होनी थीं।" "जवाब लोगों पर वडा जउईस्त घसर पर। नानेजों और विष्वविद्यालयों में स्थनियत वाले जितने लोग होन थे वे हमारे लोगों के केने होते थे। हमारे लोगों के दिमाग घट गए थे। मैं तब भी कुडता रहना था मत श्री मन...किस बालू पर हमारी हमारन टिकी हुई थी। आमर्षी राष्ट्रियता के एक अंग वतक हम भागे बड़े थे..."

तब तक लीरिया ने अपने समरजवाद के बारे में निश्चित कर लिए थे : आमर्षी राष्ट्रियता, उधर्षी आर्थिकता, उधर्षी धार्मिकता, उधर्षी सामाजिकता और उधर्षी राजनीतिकता। इसी संदर्भ में लोहिया ने पंचमंडी सम्मेलन में कहा कि समाजवादी निहांत रहने की जितनी शक्यत है, उतनी ही आवश्यकता आत्मशान्ति के विकास की है। नई संस्कृति बनाने और जिंजी की नया प्रर्ष देने के लिए मानवता उत्कंटापूर्वक राह ताकनी है। "दिलीनीकरण से कृति तक" पहुँचने की उम्मीद करते हुए, लोहिया ने स्पष्ट किया कि सत्ता हानिय करने की गइरी चाह राजनीतिक दलों की सबसे बड़ी कसौटी है। पर इस देश में ऐसी इच्छाशक्ति की अजीब दंभ से दिगाने का एक वद रहा है, जैसे कि गतागिलग्या पाग है यः कोई बहुत बुरी बीज है। राजनीति में इस प्रकार के फासंड या दंभ की मिशाना चाहिए तभी आत्मशान्ति की सही अभिव्यक्ति मिलेगी। पर सत्ता की इच्छाशक्ति का श्रेष्ठ मानदंड भी धनिवाम है। इच्छाशक्ति जितनी साफ और सशक्त होनी चाहिए उतना ही इसे आर्थिक निबंलता और किरावट में सतर्क और सभधान रहना चाहिए। सभा की माकासा भूट, फरंव और हिस का इस्तेमाल नहीं करनी।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के जन्म-काल में लोहिया का यह मानस था। उसी समय फरवरी १९५३ में अयाहरलाल नेहरू ने जयप्रकाश को मिलन के लिए बुलाया। प्रसंग था नेहरू सरकार में सकार्य या गैर सरकारी स्तर पर सहयोग करने का। बाद में नेहरू क्रावानीजी और आचार्य नरेन्द्र देव ने भी मिले। "दिली जैसे चूर्णों के साथ लेज देखकी है वना ही लेल प्रजातर्षी में पलाया और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी को पंगु बनाने के लिए चंचू प्रवेश कर लिया।

१. 'भारत में समाजवाद,' राममनोहर लोहिया, पृष्ठ १०

विद्रोह ने स्व

नया। र. ले. क. हटी थी। य. फा. वडा, ले. सामने मानसैतान जैसे मानसैतान नाटक बना. लकनशा. अ. विरोधी दल. विभाग. अ. वंश. या. ना. वि. ना. ज. से चीन. राज.

म. व. म. के वि. र. के उ. न. न. वि. नि. र. र.

(१) प्र. अ. व. म. प. व. वि. और कृ. वि. से भी न. व. पु.

(२) प्र. ग. न. व. वि. जब अ. वि. के म. व. राज. चीन. व. के म. व. उनके म. व. का उ. म. वि. जोर व. व. ता. व. के ले. रेखा. व. के.

(३) प्र. का. व. म. अ. व.

१. 'लोहिया : वि.

हकीं के मिलन में जो नई पार्टी
उद होर काशीबाद का मिलन था
देश के राजनीतिक जीवन में एक
मोहिया को राजनीति में मान्य
पूछ हुआ । जो १५०० वी० के
राष्ट्रीयता का रक्षा जिनमें एक
मिहिया था । सभामें बहुत
जयदेश्य अंतर था । गांधीजी
लोको होने के वे हमारे लोको के
में । मैं नव की कुड़वा रचना
पुस्तक टिकी हुई थी । बागवंधी

रे संग विहित कर लिए थे ।
की धर्मिता, अर्थकी मागा-
सर्व में लोडिया ने (नमस्को
की विदनी जरूरत है, उगनी
ई संस्कृति बनाने की विदनी
राह तकती है । "विन्वीगी-
र कोडिया ने स्पष्ट किया कि
की सबसे बड़ी कमोटी है ।
से शिगने का एक बड़ा रक्षा
की चीज है । राजनीति में इन
कामधर्मि को सही कधि-
ई मानक भी अनिवार्य है ।
ए उतना ही हूये चारिचक
रहना चाहिए । समा की
करती ।

का यह मानक था । उसी
प्रकाश की मिलने के लिए
सरकारी स्तर पर मध्यम
ई नरेन्द्र देव से भी मिले ।
केन प्रधानमंत्री न बराना
चंचु प्रवेश कर लिया ।

महात्माजी का जीवन की प्रथम परम्परा में परम्पराओं में एक एक महान की करना
हूँ थी । एक जनता को अपने मन के आर को पार्टी के जीवन परती थी ।
कायदा को ही को नमस्को विविध कार्यकारण में दिखाने की करना के
सामने नमस्को विन्वीगी रण को हैमियन में पार्टी लगी हो चली थी । नमस्को
हैम नमस्को को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को का
नमस्को नमस्को के लिए नमस्को रण में विन्वीगी रण चारिचक था नमस्को, लेकिन
नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को
विन्वीगी रण के नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को
नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को
विन्वीगी रण के नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को
नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को
विन्वीगी रण के नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को
नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को

गोवा अधिनियम, राष्ट्रीय सरकार, अर्थिक कमिशन, मन्त्रालय आदि मन्त्रालों
के जिनकी यह शक्ति में विन्वीगी इष्टि माफ नमस्को नमस्को कर रहे थे ।
उत्तमि नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को
नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को

(१) प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, अर्थिक, राष्ट्रीय और मांगविका, जनों के
पक्ष में । कानुनिक और नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को
नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को
नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को
नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को

(२) प्रजा सोशलिस्ट पार्टी को अपने हित की राक्षसि में कर्क नमस्को
नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को
नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को
नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को
नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को
नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को
नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को

(३) प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी और नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को
नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को नमस्को

१. 'लोडिया - विद्वान और नमस्को' इन्द्रवि केशक, गुण २०२, २०३

(४) पार्टी का ऐन टोम घोर कालनिवृद्ध कार्यक्रम कांग्रेस या अन्य दल को मंजूर होने पर भी भंगभीत या सजुनत मंत्रिमण्डल के मांग में अन्य टका-रमें है। ऐसा कार्यक्रम अमल में लाने की दृष्टि से जितने तर्क दिरल-भिन्न पर निर्णायक हैं उतने ही निर्णायक स्थान उत पर अमल करने वालों घोर प्रयत्नता की हवा को है। अमल करने वाले धोर प्रत्यक्षता की हवा तभी पैदा होगी जबकि जनता कार्यक्रम अमल करके बहुमत में असा सुपुई करेगी।

(१) प्रजा गोमनिस्ट पार्टी, देश के अनिदायक सिपराय को तबवार बनकर हटा सकती है अ कि डान बनकर।

लोहिया ने अत में हशाग किया कि "इत पाच अह्ला-स्थानों के दूर जाना मात्पघातक सिद्ध होगा।"

उनका दृढ विदवाग था कि चोटी के नेताओं के कार्यक्रम मंजूर करने से कुछ नतीजा नहीं निकलेगा। अपनी हग अल्पता को स्पष्ट करते हुए एक भाषण में उन्होंने कहा, "हिन्दुस्तान की जनता श्री नरकर को हटाकर उनकी जगह सोशललिज्म को मत देकर श्री जयप्रकाश को विठाएगी जो गृह सूत्री होगी।"

उस प्रकार लोहिया और पार्टी के अन्य नेताओं के बीच अंतर बढ़ते लगे। जयप्रकाश के पक्ष के समर्थन में अशोक मेहता का यह सिद्धांत आया कि "सिखों ईई व्यवस्था की राजनीतिक गजबूरियां" होती है। इस भीतिम में उन्होंने लिख: कि हिन्दुस्तान जैसे अतिकसित देश में कांग्रेस जैसी पार्टी की नाकामवाची से जनतांत्रिक और अमोडोत राजनीति के बदलाग होने का अतथा मगर मौजूद रहता है। दो मगनों से इस अतरे का गुणधन इम प्रकार हो सकता है—

(१) जनतांत्रिक दलों में कार्यक्रम के आधार पर समझौता। (२) सहगति और अमहमति के धोर कीलय करना। उनका विचार था कि यदि एकाधिकारवाही वेवकूफी है तो संसदीय लोकशाही भी ज्यादा उपयुक्त नहीं है। यदि केवल दो ही दल अस्तित्त्व में रहेंगे तो भी विरोधी दल का काम विरोध करना है, ऐसा स्वयमिद सिद्धांत पानने से आधिक प्रगति कठिन होगी।

इम सिद्धांतहीनता से लोहिया का विरोध और समय इसी तरण से तीव्र हुआ। लोहिया ने स्पष्ट कहा कि पक्ष अम निरर्थक है। इसका अर्थ प्रस्थापित गाने दल जोड़ने का, या नया दल निर्माण करने का, या अपनी आह के दल की नाकत अक्षाने का है। एकदलीय या सर्वदलीय अमलों का नतीजा शानाशाही या निजी अतरे की पार्टी सडो करने का होता है। दल की सडुचनें या कम गोरियां दूर करने की अत अलस है। "मैंने भी अतीत में दल की अकारात्मकता, अरु दिरलवा, चुनाववाद, हिमाचल आदि शीयों पर अत किती गे अतदा माया में और देकर कहा था, किर भी मैं पानता हू कि दल ही एक रास्ता है और दल नष्ट करने से अस्ता नष्ट होगा।"

अतरे में अलाई की गरज मैं अलीभंगि समक सकता हूँ। तदच्छा

विद्रोह में स्वयं

की राजनीति पर सदृच्छा का अ सरवादिना का सदृच्छा के त का अतना ही त पार्टी नरु लोहिया में राजनीय गति

शारीक अंतर-प्रवेश होनी नरी चाहिए।

लोहिया ने अत मानने हैं, मैरी आजीवना अयन या।

पध-अमची है। "निरिक्त अ अधानमत्री के अ अतिक मापटता अधानमची कभी

अने मापट अत के रूप में अ आतरययता अत सकेग। अंशिया अारायण, अतके

सन १९५२ पार्टी का अरल अ अधिभूत गणधेन अत अंश को। और उद्योग लोहिया अत अत लोहिया द्वारा अ मिदने की भी त पार्टी का अतमरी और मैरी द्वारा अ लिय शोशाहि

कार्यक्रम कायम या अन्य दिन
 फल के मार्ग से अन्य कक्षा-
 से विभक्त उसके निम्न-स्थित
 र समय करने वालों और
 प्रशासकों की हवा तभी पूजा
 न गया गुप्त करने।

यदि विचारों को उत्पन्न
 न बढ़ा-सकाने से हुए जनक

के कार्यक्रम संयुक्त करने से
 स्पष्ट करते हुए एक माध्यम
 को स्थापित उनकी जगह
 की ही मुझे सूची दी।

के बीच संतुष्ट करने का।

विचार था कि "निष्पत्ती
 । इस दृष्टिकोण से उत्कृष्टि
 सभी पार्टी को गान-गगावी
 होने का अंतरा मदा भीरु
 स प्रकार ही गकता है—

भीतर। (२) समन्वय और
 कि यदि एक-पिकारशाही
 नहीं है। यदि केवल दो ही
 काम विरोध करना है, ऐसा
 ही।

पर संघर्ष दृष्टी चरण से
 निरर्थक है। इसका अर्थ
 करने का, या अपनी चाह
 नीय प्रयत्नों का तर्काला
 होता है। इस की अड़थकें
 भी कमीन में धल की
 यदि होगा पर अन्य किसी
 मानना है कि उस ही एक

के सकता है। सद्गुणका

की राजनीति पर और बेने की गरज भगदों की राजनीति से चलन है। लेकिन
 सद्गुणका का स्वरूप दुहरा है। यह आर्थिक कल्पना के साध-माध्य राजकीय प्रव-
 सरवादिता का भी स्वरूप है और एक को दूसरे के माध्य मिलाना बाधक होगा।
 सद्गुणका के आर्थिक और भावनात्मक पूर्वभूमि के फलस्वरूप में विद्वान् कांग्रेस
 का उठना ही जनसंघ और कम्युनिस्ट पार्टी का भी संभव है। इसको एक
 पार्टी तक सीमित करने का मतलब सद्गुणका की विद्युति और भाव्य संकेतन
 में राजकीय माजिग रचना होना।

"दार्शनिक सद्गुणका और राजकीय संघर्ष, दोनों मागधी कृत्तियों का परस्पर
 अंतर-अवेश होना चाहिए। फिर भी दोनों कृत्तियों की स्वतंत्र हस्ती को धुलना
 नहीं चाहिए।"

लोहिया ने स्पष्ट कहा : "कुछ सभी मुझे मोड़ना पटनाओं के लिए जिम्मे-
 वार मानते हैं, क्योंकि मैंने पार्टी का मावसेवादी आधार सफ़्त किया। लेकिन
 मेरी आलोचना अकारणवश नहीं थी थी। नया विचार बाधने का निश्चित
 प्रयत्न था।"

प्रधानमंत्री ने सभी स्तरों पर सरकार की मांग की, ऐसा माना जाता
 है। "लेकिन धी जयप्रकाश नारायण के मन में यह स्पष्ट हो गया था कि
 प्रधानमंत्री ने महसूस की बहुत प्रयत्न धार थी थी। हमारे माधियों ने
 आर्थिक स्वायत्ता के बारे में पूछा भी था।" लोहिया ने कहा, "मुझे डर है कि
 प्रधानमंत्री अभी भी इस बाधक का इस्तमाल पार्टी के विनाश कर रहे हैं।"

यह भी भाषण के अंत में लोहिया ने विरोधी इन के रूप में और सरकार
 इन के रूप में दस का कार्यक्रम बनाने के लिए कमीशन नियुक्त करने की
 आवश्यकता बताई, इसलिए कि ऐसा कार्यक्रम जनता का राजकीय निक्षण कर
 सकेगा। लोहिया की 'पार्लिये कमीशन' की सिफारिश के बावजूद जयप्रकाश
 नारायण, अशोक मेरता और अन्य मंत्रियों ने स्वीकार दे दिया।

सन् १९५३ के २९ से ३१ दिसंबर तक इलाहाबाद में प्रजा संग्रहित
 पार्टी का पहला सम्मेलन हुआ। सन् १९५० के बाद समाजवादियों का यह पहला
 अधिकृत सम्मेलन था। लोहिया ने सम्मेलन के नामने 'पार्लिये कमीशन' की
 स्वरूप को। २४ में नौजवाबराज, विकेरीकरण, आर्थिक समानता, कृषि
 और उद्योग नीति कार्यक्रम निश्चित और तीस घण्टा में फैल किए गए थे। तब
 जबत और तबम पूर्व से देश का आजावरण बढ़ा गया हो गया था। दरशासन
 लोहिया द्वारा इलाहाबाद के इस सम्मेलन में पंचमही और वृत्त का अगड़ा
 विधान की भी अधिष्ठ हूँ। उनी का परिणाम था कि पहली बार लोहिया को
 पार्टी का महामंत्री पर स्वीकार करना पड़ा। लोहिया अपने व्यवहारों भाषणों
 और लेखों द्वारा भारतीय जनता को व्यवस्था और नई सरकार में नरार्थ के
 लिए प्रोत्साहित करते थे। वे तरह-नरह की सिफारिशों और योग्य हुए जीवन

जवाहरलाल नेहरू की विचारधारा के अन्तर्गत ही उभरने लगे। उनके भाषणों को भाषा विकासक होने की संभावना में पूरा लगा देना अत्यन्त को नया सा लगा है। किन्तु जो लोग ही नहीं होते सही हैं। क्योंकि किन्तु की अपना मते कुलथा वे ही हैं जो इन विवेका के सामने पूरी प्रतिक्रिया को न गुरुरता को कोशकन बैठनी है, अन्तर्गत की कोविज नहीं है और पर भी नहीं है कि वह इतना विश्वास लेते हैं कि इसको भी तयकर बना दिया करनी है। प्रधानमंत्री नेहरूजी के विचारों ने विद्व किता है कि कोय साथ हुआ उस प्रवाची, कूर दक्षिणाती ने भी युवा हो सकता है। वेगो केवल ही विश्वीय है। एक युनिवा-अर में पासपोर्ट के विषय कफर बनना और दूसरी कि सायके पधारेतोंको काफी समझान भीवित रहे। इसविषय कि उनके गणराज के विचार होने वाले धर्मोरे युवा के कारण बनता इसको फिर एक बार जेक भोजे

जवाहरलाल नेहरू के राजनीतिक चरित्र ने लोकिय को जितना-य प्रेरक गुणा, एता तक कि अकरत ही वह यह कि भारत के सभी राजनीतिज्ञ इसी में नेहरू की उभारने कोर उभरे लोडने ही नाल चलन में। सभी दलों में नेहरू अपने भक्त पैदा कर रांटे और राज कर्मी को अश्रेष्ठ भोगि धरनाते थे। लोकिया का विदवाय था कि नेहरू भारतीय प्रजातंत्र के विकासक एका को कभी न भवत नहीं होने देगे। क्योंकि नेहरू भारतीय प्रजातंत्र का नाम पर एकाधन साधारणी बने रहना चाहते हैं। लोकिया ने जवाहरलाल नेहरू के लिए कहा है कि 'एक भारतीय वाले जवाहरलाल के विचारक दिवुत्तानी जन्मा को ज्यथा में ज्यथा प्रदर्शन करके उन्हें अपने आप नरने वाले भूट होने में रोचना चाहिए।'

कांग्रेसी राजनीति के गर्म को जितना लोकिया ने समझा था उतना सभ्यद किमी उभर साहनेवा में नहीं। नेहरू सरकार के बारे में उन्होंने कहा, 'दिवुत्तान को सरकार को संभवतः आलस्य मिलन रहेगे, क्योंकि हुए कहे हुए है। जन्मा सही हुई है, वैश विगडा हुआ है, एक ह्यान बहन का भोड़ है।'

लोकिया ने कांग्रेसी राजनीति, जिसे उन्होंने 'जन्मवादी राजनीति' को कहा की है, के रक्षकोद्घाटन में बताया है कि: "वह सरकार, अलग-अलग अंशकों को अलग-अलग मौकों पर उठाकर जन्मा के किमी न किमी भूट को अपने साथ नर निवा करनी है। क्योंकि अण्डा मुक्त बनना दूटा हुआ है, इतना कोभाय है कि अण्डा कोई न कोई तकरा किनी न किमी धान को मुक्तकर लुहा हो जाता है और नर सरकार के साथ विगड जाता है।"

उन राजनीतिक चाल को तोड़ने के लिए लोकिया ने दो कार्यक्रम बनाए: 'दिसा नरभाषों' और 'विदवा तंभव ही जनता में भाविक चेतना पैदा करी।'

- १. 'लोकिया', द्रुपति कलकर, पृष्ठ २६६
- २. 'देश गत्याम्ने', राजसगौर भोजिया पृष्ठ ४६

एकका भूत कारण नर
 ना नरमाली नहीं है।
 मान के लिए अशरी है
 साविभर, प्रभाव को
 पर वरे लोपी की को
 न नरमाली कोर कोर

आविज विदवा है
 देवा की विद्वोत नर
 साविज नरमाली के लु
 केवल साविज नरमाली
 कोर नरमाली, नर नर
 नरमाली नरमाली कोर
 लमना कोर नरमाली
 नरमाली नरमाली कोर

विद्वोत विदवा है
 युनिवादी विदवा के वि
 विद्वोत विदवा है
 भाषा के जान नर है।
 भारत अरम नरमाली
 है। उनके ही विद्वोत
 नरमाली के दिवुत्तान की
 ना कुल नरमाली की भाषा
 नरमाली नहीं है।

वर्षे विदवा का लु
 वय उम लुका क बनाय
 लमनाधन नरमाली विदवा
 का कोई भयभाव नहीं म
 विदवा का लुका नर
 प्रो विदवा के स्वर में
 विदवा के वीर गुल लु
 लुका। विद्वोत नरमाली
 वय लुका लुका की लुका
 प्रदरम लुका का लुका लु

से जाति की उत्पत्ति हुई।^१ विद्यार्थी बड़े सवर्ण और परमजित वर्ग शूद्र कह-
खाया। आर्थिक प्रक्रिया से सवर्ण पीरे-पीरे शूद्र को अर्थविश्वहीन, तेजहोन
बनाता चला गया। फलतः भारत बृद्ध समुदाय (भारत का तीन-चौथई
भाग) निर्जीव, उदात्त और अर्थवित्त्वहीन बनना चला गया। परिणामतः सारा
देश निर्जीव, उदात्त और अर्थवित्त्वहीन होता चला गया। इसी महान प्रसंग में
लोहिया ने कहा, 'जाति देना को नाश रही है। बड़े समुदाय, बड़े और निश्चलता
के अनुकूलन छोटे-छोटे जोशर बनाती हैं, हर एक पोषक से अपने छोटे-ते खरे
की भलाई में ही दिलचस्पी रहती है। मूल्यों की एक विपदा नीची ने हर एक
जाति को कुछ दूसरी जातियों के ऊपर लड़ा कर दिया है।'^२

पंचम विशेषाधिकार संघति है—रंगों में से गोपक और शोषित पैदा
होना है। पहले जड़ से भेदभाववरी की। इन तीन विशेषाधिकारों से चार वर्गों
का निर्माण होता है—पहला सामक वर्ग, दूसरा उच्च मध्यम वर्ग, तीसरा निम्न
मध्यम वर्ग और चौथा सर्वदाय वर्ग। लोहिया ने वर्ग सम्भूलन निर्मित वर्ग-
निर्माण के लिए उल्टा-दायी तन्त्रों के सम्भूलन का विचार दिया। उनका अंग्रेजी
पटाओं प्रतिपादन इसका महत्त्वपूर्ण अन्वेषण है।

सनत की रथापना के लिए विपन्नता को दूर करना लोहिया का एक
महत्त्वपूर्ण कार्य था। इनके अनुसार पार्थुनिक भारत में व्युत्पन्न और अधिक-
तम आय में एक और दस का समुदाय है। लोहिया समता के साथ संघनता
भी चाहते थे। इस प्रकार लोहिया का आर्थिक चिन्तन इतने विचारों से सम्पूर्ण
होना है—वर्ग सम्भूलन, जायतीन, मूल्य नीति, अन्न लेना और भु गेना, भूमि
का पुनर्वितरण, आर्थिक विकेंद्रीकरण, राष्ट्रीयकरण प्रवृत्ति समाजीकरण और
की सर्व सीमा।

लोहिया का राजनीतिक विचार समूह समुदाय के सम्पूर्ण वर्गों का लेकर
चलता है। समुदाय के मौखिक पांथकार का मूल्य ही उसकी राजनीतिक दृष्टि
का मूल है। उनका विद्वान था कि उसी मूल्य के साधारण पर समुदाय अपनी
संपूर्णता को प्राप्त हो सकता है। इस संदर्भ में लोहिया ने एक बुनियादी खोज
की है :—उसका ऐसा मतना था कि जब तक मानव के 'मूल' का ज्ञान (बीज)
तही प्राप्त किया जा सकता तब तक समुदाय की कोई भी कांति कभी संपूर्ण नहीं
हो सकती। आखिर जल ता अपनी तल पाने पर ही प्रशांत होता है। मानव
को तब क्या है? उसका लक्ष्य क्या है? इसका उत्तर प्राचीन भारतीय जन्म
'मोक्ष' से लिहित है, जिसका राजनीतिक अर्थ में समुदाय होता है स्वराज्य
और जिसकी व्यावहारिक व्याख्या हमें भी, विकास के लिए मानव और विचार
का संपूर्ण स्वातंत्र्य, और यही इसकी बुनियादी शक्ति है।

१. 'आविष्कार', राममनोहर लोहिया, पृष्ठ ४५

२. 'आषा', राममनोहर लोहिया, पृष्ठ ११३

विद्यार्थी से स्वधर्म :

इस सिद्धांत के
राजनीतिक अंतर्गत
जनसंघर्ष का महत्त्व
कर्म निर्वहन, अर्थ
समाजवादी व्याख्या
लोहिया ने भी है।
वर्गों और वर्गों के
वर्गों के दोन पक्षों

लोहिया के प
न्याय की चाह की
लाता है।^३ जब
व्यवस्था जीवन का
वले अर्थो-पाने की
है। किन्तु मानव
संसारः व्यवस्था के
उदात्तत अन्तर्गत
हेतु न्याय के आधार
किया जाता है तो

उन दोनो सिद्ध
के सांस्कृतिक अंतर्गत
में निहित अन्तर्गत
की तीव्रतर मानव
निर्माण कर सकता
स्वतंत्र, लक्ष्य और
कर सके। इनका
नृनीय मानव गरि

वर्गों और राज
के चार काम अन्तर्गत
अपने अन्तर्गत पर
यथावत् रचना का
प्रशिक्षण देना है
योगदान करना है।

१. 'प्रतिज्ञा वचन', पृष्ठ ३०

२. 'बड़ी', पृष्ठ ३०

प्रजापति की स्थापित करना था। प्रजापति माने सत्ताधारी वृक्ष के ही समान प्रतिफल का भी बलवान होना, प्रतिफल माने विस्मय, और विकल्प माने सत्ता-धारण की दृष्टावधि।

प्रजापति ने इसी प्रतिफल की मन्त्रीय और वसिष्ठवासी बनाये तथा कांसिभ आत्मन शक्तिव्यवस्था करने के लिए लोहिया ने प्रतीक रूप में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की अपने गहन और संपूर्ण विरोध का फल बनाया। दोनों नायक ने अपनी-अपनी भूमिका की। यद्यपि कांसिभ की पूरी कोशिश थी कि इन लड़ाई में लोहिया को सफलतापूर्वक भागिन कर दिया जाए। लोहिया के पक्ष में प्रजापति की आस्था थी, महात्माजी निष्ठा थी और माक में एक छोटी-सी पार्टी थी - प्रचार-समाज का न कोई भागन था, न स्वयं-संपत्ति की ताकत थी। नेहरू का सत्ता के पक्ष में सब कुछ था, अन्ततः उसे और भागत, नेहरू की स्थिति की महिमा, नारायण मन्त्रीय की संरक्षणा प्रचार-समाज। विष्णु कर्ण की तरह नेहरू की और कांसिभ ने लोहिया। वह निष्ठा मन्त्रियों की थी, परंतु माक ही अग्रिम मन्त्रियों थे। नेहरू के प्रति उनकी लड़ाई धर्मयुद्ध के समान थी। उत्तरी लोहिया, अग्रिम और अन्ततः दगाव करण ने बह धर्मयुद्ध उठोने लगा। अन्ततः धर्मयुद्ध की भीत-भीतों उभरे अन्ततः विष्णु कर्ण विचलित थे, जैसे जवाहरलाल नेहरू की प्रति का संजत नाति - प्रजापति के मन्त्रियों को यह सातमविज्याम प्राप्त हो कि एक साधनहीन, साधारण व्यक्ति भी किसी मन्त्री के लिए, स्थाय और आदर्श के लिए, बड़े से बड़े साधनसंपन्न, सत्तासंपन्न और महिमानय व्यक्ति से कुछ कम मत ना है।

स्वतंत्रता, अग्रिम और मानवीय शक्ति के भाव की प्रतिष्ठा के लिए वह बल लगा गया। नेहरू हृदी मन्त्रियों के लोहियावासी कहीं छोटे गीचे ही न रह जायें अर्थात् अन्त मन्त्रियों की महिमा की तोड़ना आवश्यक था। इस अर्थ में लोहिया द्वारा लगाया गया 'प्रजापतियों की नेहरू पर प्रति दिन २२ हजार रुपये कर्ज' का प्रश्न, 'तकलीफ, रईसखालम और भाउ' नामक मई १९६२ का उपहासक लेख, 'सुनाव दौर पर १०,२,०१६ रुपये और उद्धा-हन पर १,९२,२०० रुपये का खर्च', 'आनन्दन का सवाल', 'ब्रह्म प्रजापतियों कापण देने हैं', 'लोकसभा की गारन्टी', आदि वक्तव्य और लोहिया की आका-सभा के पानचै मध्य में सुन्धार २२ अक्टूबर १९६३ को नेहरू सरकार के प्रति अविश्वास प्रस्ताव पर लोहिया द्वारा बह, महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

लोहिया का महत्त्व विश्वास था कि भारत जैसे देश के विकास और कल्याण के लिए जवाहरलाल नेहरू से अग्रिम अलग एक नए युग के नेतृत्व की शक्ति जगता में एक ऐसे गुण की जरूरत है। 'गुना करना, चरणों पर फूल चढ़ाना और प्रशंसा से मोत बनाना जैसे काम बहुत ही चुके। राजनीति के मंच पर अन्ततः चलने वाले राज के लोगों नेता की अपेक्षा सत्ता नेता संभवतः अपनी

अनता का बहुत बाले, गुना कर लो विवेकशील लिए होना उन् और न मान्यता हन्ती की तरह का प्रतिनिधित्व

लोहिया के

इस देश का गवर्न

संस्कृति, भागा

समझता था।

श्री निरंजना म

कीर्तन या दर्शन

माया। हिन्दू-सं

एक ही विकल्प

उद्दिष्टाव के सम

ने सब पक्ष इन

तःकत फट शी

लोहिया के

उपकी नारी शक्ति

की है, उनकी अन्

है - एक राष्ट्रीय

निर्वाण की पर

अनपठित पर के

सूक्ष्म, वेदक अ

नारायण की प्रति

बाले सम्मोहक

प्राप्त किया और

की बननी जीवन

जीवन का अग्रिम

राजनीति में

बेदपर होगा कि

१. भारत का गवर्न
२. निरंजना के कर्

री वृक्ष के ही समान
र विकल्प माने मना।

की बनाये तथा कविने
रु हा में प्रथममंत्री
पत्र बनाया दोनों
कोटिया बो कि हा
द्रिया के पक्ष में प्रजा-
एक छोटी-सी पार्टी
की ताकत थी। नेहरू
नेहरू की मर्यादा की
वृक्ष वर्ण की तरह
थे, परन्तु राज्य ही
के समान थे। उर्जा
उन्होंने पड़ा। इस
प्रवर्धनमान नेहरू
परिनिष्ठाव प्राप्त हो
की लिए, त्याग और
सहिमानव व्यक्तित्व

प्रतिष्ठा के लिए
कही छोटे पैप ही
शिक्षक था। इस
हुक पर प्रति दिन
और भाई भायक
हुए और उद्वा-
के, जब प्रथममंत्री
और देखी लीन-
र मरणा के प्रांन
वेक है

काल और कल्याण
के भेष की और
की पर फूल चढ़ाया
रनीति के संन पर
ता सम्भवतः प्रपनी

जनता का बहुत अधिक आग्रह करिया। वह अपने चारों ओर जमाई देने वाले, पूरा करने वाले और तालवी सुसुधीरुता की भीड़ नहीं लगाएगा, वह जो विवेकशील और मेहनती देशभक्तों को हकदारा करेगा। वह किसी जायी के लिए रोड़ पड़ने वाला विकल्प या त्याग की मंत्री हिनाने वाला उधागीर नहीं बनेगा, और न आनंदमाल या नेहरू बनेगा, वह जो जनता का एक अंग हीगा, एकरम जहाँ की तरह जीवनयापन करने वाला। वह एक ऐसा नेता होगा जो जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करेगा बल्कि जनता ही जनता प्रतिनिधित्व करेगी।”

लोहिया के माने विद्रोह, आति और राजनीति का आधार और माध्यम देश का आधारेण 'छोटे' खादमी था। इति के प्रयोग से उन्होंने अपने देश की संस्कृति, भाषा, इतिहास, पुराण, लोकसभा और तर-नागी का देश और समझना चाहा। उन्होंने कहा है कि हिन्दुस्तान के इतिहास के संघर्ष के गाथ और निर्माण गृहिकत्व में सुदृशी-भर लोग रहे हैं। देश की करोटी समता परों लौंचके या दर्शक का काम करती रही है। उनीलिय राजनीति में बदलाव नहीं आया। हिंदुस्तान की राजनीति में यदि बुनिधारी परिवर्तन लाता है तो उसका एक ही विधान ही सचता है कि वे सब लोग जो पिछले तथा आठ भी वपी म इतिहास में संघर्ष के साथ रहे, वे सब दर्शक बन जाएं और जो दर्शक रहें हैं वे सब पात्र बन जाएं ताकि राजनीति का गाथ अतिन बदल सक, उनमें नई ताकत रहे और उसका पूरा दृश्य बदल सक।

लोहिया के राजनीतिक चरित्र में दुद नहीं था पर अनविशाल सचरय था। उनकी सारी शक्ति के मूल में जागर गती था। भभलत उनकी सदाय आथा के पीछे उनकी एपीम निराशा है। "मुझका काही समय में हीत ताह की निराशा है एक राष्ट्रीय निराशा, दूसरी संतरांष्ट्रीय निराशा और तीसरी मानवी निराशा।" पर निराशा के भी बलव्य होने हैं, एपी साह्या थी लोहिया की। समसहित पर अंतर्हा दुध में अकरुपित करने वाले और अपने ही व्यक्तित्वारी, मुहकद, वेदर स्रकारी, सौख्यधीम शक्ति पर अगहिणु, जिही, सक्षम भाव में तागत हो जाने वाले, विराधी के विदु समिष्ट भावा, शिवाएक वचन आलके थाने राममनाहर लोहिया न अपने इपी स्वभाव के भीतर में अदन स्वधर्म प्राप्त किया और नउ उनके लिए बहुत बरी प्राप्ति थी। यह स्वधर्म लोहिया की सगनी जीवगृष्टि थी जो १९६३ में शुरू हुई और १९६७ तक उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गई।

राजनीति में विद्रोह में स्वधर्म तक पहुचना, इसे समझने के लिए वही बेहतरी होगा कि लोहिया की राजनीति अमरुलनाशी के प्रति कम निर्भय बना

१. 'अस्त वा तकावा,' २६ मिनबर १९६२ का तागाईत गापड में दिण सप वकतव्य व।
२. 'निराशा के कलेव्य,' राममनोहर लोहिया, पृष्ठ ५

संघर्ष से लोकशक्ति : जयप्रकाश

भोलर जून १९५३ का प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के वित्तुल सम्मेलन में डा० लोहिया ने अपने जीवन का सबसे छोटा भाषण दिया था : पसंग यत्र था कि कांग्रेस पार्टी के साथ मिली-जुली व्यवहार बनान और सहयोग करने के विषय में बहुत खत्म होने न पहले ही पार्टी के प्रधानमंत्री अशोक मेहता, भातों संयुक्त मंत्रियों और जयप्रकाश नारायण (जे० पी०) ने राष्ट्रीय मामलों में इस्तीफा दे दिया । स्थिति गंभीर थी और यह आवश्यक था कि नीति में सजसूती के साथ-साथ दूर भी न हो ।

लोहिया का वह सबसे छोटा भाषण यह था, 'मैं चापसे प्रार्थना करूंगा कि चाप मुझे दो प्रतिफल दें, पहला कि चापकी तरफ से मैं बोलूँ और दूसरा कि मेरे इस संबन्ध छोटे भाषण के बाद चापमें से कोई न बोले । सम्मेलन की ओर मैं मैं अपने अमानित मापियों में विवेक करता हू कि वे त्यागपत्र जगस ले ले ।'

राजनीति में जयप्रकाश और लोहिया का रिश्ता यह है कि दोनों ने साथ-साथ कालियों का सामना किया है । दोनों ने एक साथ तारीख जेव में कड़ी-तम यातनाएँ सही हैं । जीवन में "उनके प्रतिरिक्त, भेरा कोई भाई न था, दुगसे बढ़कर उनके साथ मेरे संबंध के बारे में और उदादा कहना जरूरी नहीं है । और इसी वजा हीन है कि पहले हम आगम में अगड़े या अविष्य में अगड़े गबते हैं ।'

वह रिश्ता था जे० पी० का अर्धरिश्ता से । मे समझता हूँ कि जे० पी० का राजनीतिक रूप ही ऐसा था कि वह सबसे संबंध जोड़कर चलता था : वह संबंध चाहे दूर भी जात, पर कट्टू नहीं हो सकता था । हालांकि जे० पी० के राजनीतिक चरित्र का सारतत्व 'संधर्ष' है, विद्रोह नहीं, संघर्ष । विद्रोह सत्कारण : 'रैमैडिक' प्रकृति है । संघर्ष दूमेच्छा और साहमजुग्यात्म ने अन-

१. जून १९५३, १९५३ और वित्तुल सम्मेलन में दिए गए भाषण में

संघर्ष से लोकशक्ति

मता और चलत
रहा है । वह
कोई कूट नहीं
स्वयं से न सम
पचना है, क्योंकि
परिवार का नृति
प्रतिक्रम तथा
है, अन्तर्गत

जे० पी० के

बंद है । और
के लिए, यह
वह जो बुद्धि
करते लगते हैं ।
और पापों के नि
सकते हैं वही पु
सत्ता का पद क
में यह अधिम

वृत्तिगारी

मेहता, सुभाष
एक वंशों, सं
राजनीति और
मिन्ने के बाद
की राजनीति
इस खाई के ए
तट पर जयप्र
कि इन दोनों
राजनीति के

जयप्रकाश

का ही दुर्भाग्य
की राजनीति
अब-दूसरे म
राजनीति ने वि
ने 'संधर्ष' का म
पैदा होने ।

वित्तुल, वि

पना और फलता-फूलता है। विद्रोह स्रष्टकार है। लेने की पूरी गुंजाइश लिए रहता है। वह आजाद है। पर संघर्षकर्ता उस संघर्ष में आजाद नहीं है, वह कभी कोई छूट नहीं ले सकता। एका हद तक वह कभी मुक्त तक नहीं हो सकता, न स्वयं ने न समाज से, न देश, न मानवता से। उसे हर सश प्रतिबद्ध रहना पड़ता है, क्योंकि वह अपने चारों ओर तो जुड़ा हुआ है, जैसे किसी मनुष्य परिकार वः सुश्रिता सदस्य। वह है, क्योंकि उसने जुड़े हुए बांधे हैं। उसका अस्तित्व तभी तक है जब तक वह अपने समाज और देशकाल का अभिन्न अंग है, अन्यथा कर्ता भी है और निष्प्रेरणा भी।

जे० पी० के व्यक्तित्व और चरित्र का मूल, डॉ० लोहिया में समान उठे है। और इसी उठे के कारण उन्हें सर्वत्र सघर्षरत रहना पड़ा। जब संघर्ष के लिए बाहर कोई दूसरा नहीं होता तो वह आत्मसंघर्ष करते होते हैं। क्योंकि वह जो कुछ पाने हैं, 'देवने' है तो स्वभावतः उनका 'अधि' और 'परीक्षण' करने लगते हैं। उसके बाद वह फिर आगे बढ़ते हैं कुछ और तलाशने, दूढ़ने और जाने के लिए। बेहतर मनुष्य और बेहतर समाज बेहतर दन देने बन सकते हैं यही पुरुष संघर्ष जे० पी० का मूल राजनीतिक चरित्र है। संघर्ष किगो सत्ता या पद के लिए नहीं, कुछ पाने के लिए नहीं, केवल देने के लिए। भया में वह 'जीवन दात' और क्या था? परंतु वह देना क्या संभव हुआ?

वृत्तिवादी नीर पर आचार्य तरे-द्र देव, डॉ० लोहिया, जयप्रकाश, प्रधान सेवका, युसुफ मेहर खली, जे० पी० कृपलानी, प्रख्यात पदधर्मन, संवर्णानंद, एम० एम० जोशी, गंगाधरन सिन्हा, कमलजदेवी खादि के विचारों के अनुसार संघर्ष की राजनीति और शुभेच्छा की राजनीति के बीच कोई खाई नहीं थी। पर समाजवादी भिन्नते के बाद आमकर पक्षे चुनफव और समाजवादियों की द्वार के बीच संघर्ष की राजनीति और शुभेच्छा की राजनीति के बीच एक गहरी खाई पैदा हुई। इस खाई के एक तट पर लोहिया की विद्रोह की राजनीति शुरू हुई और दूसरे तट पर जयप्रकाश की संघर्ष और शुभेच्छा की राजनीति। पर वह भी सच है कि इन दोनों समाजवादियों के अन्तर्गत में विद्रोह, संघर्ष और शुभेच्छा की राजनीति के बीच यह खाई खाँवर उतनी ज चौड़ी है न गहरी।

जयप्रकाश के बारे में यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि राजनीति संघर्ष का ही दूसरा नाम है। यह भी याद रखना होगा कि संघर्ष की और शुभेच्छा की राजनीति का एक अन्त-अन्त होगा है। दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं, दोनों एक-दूसरे में मिल-जुलकर ही समरथ होते हैं। अतएव जे० पी० का ही वह राजनीति में विवेक योग है कि शुभेच्छा की मार्गवा करना चाहिए, तभी संघर्ष से रचना का संयोग होगा, अन्यथा उनमें दिशा, अनीति और समाज मूल्य पैदा होंगे।

वैतुल, एचमही और दुर्बोई में समाजवादी पार्षों के दो ऐतिहासिक सम्मेलन

जयप्रकाश

मूल सम्मेलन में डॉ० लोहिया प्रसंग यह कि कांग्रेस पार्टी करने के विषय में बहस चलत है, तीनों संयुक्त मंत्रियों और मिलि में इन्नीका के दिशा। ति में मंत्रद्वारी के साथ-साथ

नै आरमें प्रायेंता कलंगा तरफ में मैं बोलू और दूसरा कोई न बोलें। सम्मेलन की ता हूँ कि वे त्यागपत्र वापस

ता यह है कि दोनों ने साथ-साथ बाहोर जन में कटोम-त, मेरा कोई भाई न था, और अकार कठना जरूरी सम में भगदू या भविष्य में

समझता हूँ कि जे० पी० का जोड़ने चलता था। वह । हाथों जे० पी० के ह नहीं, संघर्ष विद्रोह और आजादगारण के जन-

वर्षों की लड़ाई के बाद भी
प्रायः ही जय का फल
प्राप्त नहीं हो पाया। जय का फल
प्राप्त होने के लिए ही
गोलियाँ फेंकनी पड़ीं।
जहाँ जहाँ गोलियाँ
फेंकीं वहाँ वहाँ जय
का फल ही ही प्राप्त

शिव की शक्ति की शक्ति
कम नहीं थी। इनकी
शक्ति का शक्ति के बाद
अपनी शक्ति का शक्ति
शक्ति में शक्ति का शक्ति
शक्ति का शक्ति का शक्ति
शक्ति का शक्ति का शक्ति
शक्ति का शक्ति का शक्ति
शक्ति का शक्ति का शक्ति
शक्ति का शक्ति का शक्ति
शक्ति का शक्ति का शक्ति
शक्ति का शक्ति का शक्ति
शक्ति का शक्ति का शक्ति
शक्ति का शक्ति का शक्ति

शक्ति का शक्ति का शक्ति
शक्ति का शक्ति का शक्ति
शक्ति का शक्ति का शक्ति
शक्ति का शक्ति का शक्ति
शक्ति का शक्ति का शक्ति
शक्ति का शक्ति का शक्ति
शक्ति का शक्ति का शक्ति
शक्ति का शक्ति का शक्ति

वर्षान नेता अपने में तो दूसरे दर्जे का गुण लेता; चुनें और इस तरह अपने दर्जे का नेता दूसरे दर्जे के नेता से परतकर काम करे। जो भी गोलियों के फल जोड़ करण करता तब तक जारी रखा जाए, जब तक कि वे पूरे विद्रोहवादी को न हरा दें। और बाद में कायम ही गई संघर्षों का हर एक समूह पहले की तरह दूसरे दर्जे का नेता चुनना होगा। दूसरे दर्जे के नेता आगे विद्रोहवादी के लिए सम्मिलित रीति से काम करें और अपने-आप प्रयोग में अपने-आप काम करे। जब जयप्रकाश महसूस करे, तब दूसरे दर्जे के नेता अपने में एक गुणिया चुनें, और वह गुणिया चुनने वाले चाहें तब तक नव भक्तों को व्यवस्थित करके उनको रक्षामार्थ करे।"

समाजवादियों में आचार्य नरेन्द्र देव सहितक वर्तमान के समर्थक थे। डॉ० लालिदा गोखलेवादी थे। जे० पी० माधववादी थे। और जे० ही जे० पी० में वैचारिक संघर्ष, विवाद का नाथन ही। नाथन के बुनियादी मूलान पर, अरु दूसरा या मनामनाही इस में अन्तिम अन्तर्भावही थे तब तक जे० पी० से नाराज ही गए। कारण बहुत स्पष्ट था। जे० पी० के वहाने लोग भाग उगलने थे, अरु इसकी मनामना करार नहीं थी ?

कारण में यथाय हीने के पहले जयप्रकाश ने गांधी से कहा था, "बापू मे कारण में यथाय हीना भारत ही।"

बापू चुप रह गए। परन्तु विरोध भारत में। उस क्षण विरोध नहीं किया। निर्मम इतना कहा, "बहुत बुरा उठाता रहेगा।"

जयप्रकाश ने उसे हकीमत कर लिया, और तब बड़े उसी संघर्ष में।

स्वतंत्र भारत स्थानी नई राजा की विचारों पर रहा था। जयप्रकाश इस स्वतंत्र राष्ट्र की स्वरूपता पूर्ण अन्तर्भाव और जनताधिकार प्राधान्य पर करता चाहते थे। देश में संविधान सभा स्वतंत्र भारत का संविधान निर्मित करने की दिशा में नहीं थी। जयप्रकाश ने संविधान सभा की बरकर अन्तर्भाव द्वारा निर्वाचित करने का बुनियादी प्रश्न उठाया और विरोध में संविधान सभा की स्वरूपता अन्तर्भाव कर दी तथा आजादी को अपूर्ण पापित कर दिया।

गांधी के विचार के बाद मार्च १९४८ के शुरू में ही कांग्रेस ने आकाशवादी निर्दय किया कि किसी दूसरी पार्टी का अन्तर्भाव कांग्रेस का अन्तर्भाव नहीं हो सकता। मुझे इच्छा कांग्रेस में भीतर से नवभक्तवादियों को बाहर निकालना था। डॉ० राजेश्वरदास के प्रस्ताव का बना इस निर्णय का फल में थे। इसका विचार था कि गांधी की निर्मम राजा के बाद, देश की अनेक विकट परिस्थितियों को संभालने के लिए कोई ऐसा निर्णय न किया जाए जिसके कारण उन लोगों को, जिन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए अपनी जीवनीया की है कांग्रेस छोड़ देनी पड़े। उन्हें यह था गांधी ने हमें साहसे से कि समाजवादी कांग्रेस में बने रहें। पर स्वतंत्रता ही अन्तर्भाव समाजवादियों को कांग्रेस में निकालने पर चुन गए

से । इसके अनेक कारण थे ।

कांग्रेस के इस नये नियम के बनने के बाद उसी मार्ग महीने में पुरुषोत्तम-दास विक्रमदास की अध्यक्षता में नामिक में समाजवादी पार्टी का अन्विष्टान हुआ । इसी में निर्देश हुआ कि सोशलिस्ट पार्टी के गज मर्त्य कांग्रेस से अपना संबंध विच्छेद कर लें । पार्टी के प्रस्ताव में कहा गया :

"कांग्रेस एक राष्ट्रीय मोर्चा थी । गांधीजी उसे 'जन्मभयक का जन्म' बनाया करते थे । उसे 'लोक-सेवक संघ' का रूप देना चाहते थे, पर उसने अपने को एक राजनीतिक दल में बदल डाला है । 'पक्षित का फल चम्बला' ही उसका काम हो गया है । एक तरफ सोशलिस्टों को कांग्रेस में बाहर निकाला जाता है और दूसरी तरफ उसमें प्रतीपतियों और मंत्राशयवादिओं को नामिल किया जाता है । कांग्रेस के लक्ष्य और क-पेक्ष सरकारों के व्यवहार में भारी खंड पैदा हो गया है । अथ कांग्रेस के अंदर जनतांत्रिक प्रक्रियाएं समंभव हो गई हैं । अथ वने रहना समंभव है । कांग्रेस में सत्तावाद बढ रहा है । कांग्रेस सरकारों भ्रष्टाचारकारी हो गई है । समाजवादी दल के विरुद्ध एक जनतांत्रिक, स्वतंत्र, निर्भीक और स्वस्थ विरोध को मांग है । सोशलिस्ट पार्टी ही इस भाग को पूरा कर सकती है । इतिहास की इस चतुती को हमें स्वीकार करना चाहिए । कांग्रेस 'निर्जीव' होनी ला रही है, राष्ट्र-आशा को एक नई किरण की साज में है । नई आशा की किरण की खोज सोशलिस्ट पार्टी का उत्तरदायित्व है । हमें कांग्रेस से अलग होकर कुछ समय विषादात में रहना होगा, पर भुर्के विश्वास है कि हम समाजवादी समाज का विकास करने में, जनतांत्रिक समाजवाद को प्रतिष्ठित करने में सफल होंगे । हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जनतंत्र को जड़े जनता में हैं, अगर जनता सक्षम है तो राज्य भी सक्षम होता ।"

जयप्रकाश ने इसी अन्विष्टान में अपने प्रतिवेदन द्वारा 'शास्त्र और माधन' का महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया :

"पश्चिम में प्रतिपक्षी दल अपने प्रतिपक्षी दल को कर्तव्य करने के लिए अग्रय एवं मिथ्यात्व का सहारा लेना गलत नहीं समझते । वे यह नहीं मानते कि चुनाव में अतुल्य परिणाम प्राप्त करने के लिए शिक्षण और आन्दोलन का भी सहारा लेना पसंद है । कुछ ऐसे दल हैं जो समर्थ एवं आन्दोलन से भी बर्हूत धाने भरे जाते हैं । उनके लिए ज्ञान, लूट और आगजनी ही राजनीतिक सूर-रचना के अंग हैं । पिछले महीनों में हमने देखा है कि किस प्रकार इस सूर-रचना के पराशयक अत्यंत वेदनापूर्ण घटनाएं हुई हैं ।"

अपने इस विचार के संदर्भ में जे० पी० ने गांधी की साधन और माध्य संबंधी दृष्टि में अपनी पूर्ण सरनति प्रकट की । साथ ही अपने एक अन्य वक्तव्य में उन्होंने जब आख्यात्मक पुतर्जीवन की बात कही तो पार्टी के तत्कालीन अध्यक्ष ने सोचा कि हाल की घटनाओं से विभ्रलित होकर जे० पी० जीवन की कठोर

संघर्ष से जो

वास्तविकता-
दिया :

"आप

प्राकारिक

बादों का क

विश्वास नहीं

समाज में जी

समस्या में ही

जो निश्चय

होगा अन्विष्ट

अपने उ

प्रश्न उठात

कारी रखने

का भी जरा

अन्विष्टि कहा

"सोशल

संभव कम थे

लोकतंत्र की

प्राधताप

मेहनतपणा

पहुंचने के

तंत्र के विक

अपानभन प

प्रकार के अ

स्थिति की ह

नसुसाहित

पर सफ

पर पांच ब

भाग को जी

करने का न

पर अ

गहीन हो ग

लिए अन्विष्ट

मनाप नहीं

अपनी प्रा

के बाद उसी मार्च महीने में पुरपोलम-
के समाजवादी पार्टी का अधिवेशन
ट पार्टी के नए सदस्य कांग्रेस से सम्पर्क
में रहा गया :

पक्षीजी हमें 'जनतावाक का छला' बनाता
है वह देना चाहते थे, पर हमने ज्ञान की
'दक्षिण का पक्ष चलना' ही उसका
को कारण ग इच्छा निकाला जाता है
र संश्लेषण-विधि को शामिल किया
संरक्षणों के व्यवहार में भारी संश्लेषण
जनतावाक प्राकृतिक सम्भव ही नहीं है।
इच्छावान वर नहीं है। कांग्रेस सरकार
के विरुद्ध एक जनतावाक, स्वतंत्र,
सोशललिस्ट पार्टी ही इस भाग को पुरा
नी को हमें स्वीकार करता चाहिए।
आशा की एक नई दिशा भी लोक में
विस्तृत पार्टी का उत्तरदायित्व है। हमें
मान में उठना होगा, पर मुझे विश्वास
करने में, जनतावाक समाजवाद की
हू नहीं भूलना चाहिए कि जनतावाक की
राज्य भी सबन होगा।"

प्रतिवेदन द्वारा 'साव्य और सत्य'।

योगी इत को कलंकित करने के लिए
नहीं नहीं समझते। वे यह नहीं मन्ते
के लिए रिश्त और अष्टाचार का
है जो सफल एवं अष्टाचार में भी
ग, लक्ष और आमजननी भी राजनीतिक
में हमने देना है कि कित प्रकार इन
सदस्यों हैं।"

नी० ने गांधी की साधन और साधक
की। ताय ही अपने एक अन्य चरित्र
सात कक्षी ही पार्टी के तमाम दोस्तों
त होकर जे० पी० जोषन की कठोर

वास्तविकताओं से भापने की कोशिश कर रहे हैं। इस पर जे० पी० ने जवाब
दिया :

"आप में तो जिन लोगों ने यह गोबा होगा, वे पूरे आम में है। अगर
आध्यात्मिक शक्ति का कोई आत्मिक या नास्तिक चर्च लिया जाए तो मुझे ऐसी
बातों का कोई ज्ञान नहीं है। मैं सचानक आत्मा या ब्रह्म जैसी किसी वस्तु में
विश्वास नहीं करने लगा हूँ। मेरा जो दर्शन है वह पार्थिव है, मानवीय है।
समाज में जैम लोगों के साथ मैं जीना चाहता हूँ उनका रूप तथा जो यह
समस्या मेरी चिन्ता का विषय है। स्पष्टतः मैं ऐसे समाज में जीना नहीं चाहता
जो गिर्व्यापारियों और हृष्टाचारियों का गणत है। ऐसे लोगों का समाज
होना चाहिए जिनमें भ्रष्टता, गतिमूर्ता और संघर्ष की भावना हो।"

अपने इसी प्रतिवेदन में जयप्रकाश राजनीति में अशुभार की नीति का
प्रश्न उठाते हैं। अपने वक्तु दृष्टतापूर्वक एक भारता को सस्वीकार करते हैं कि
राजी राजनीति केवल सत्ता की राजनीति है और उ० में निहित इस सत्यता
का भी खोज करने है नि राज्य ही सांपादिक बलागण का एकमात्र साधन है।
उन्होंने कहा :

"लोकतंत्र के लिए आवश्यक है कि राजा पर जनता की निर्भरता तथा-
संभव एक म कम हो। और, महात्मा गांधी तथा काले मावर्मे दोनों के अनुसार
लोकतंत्र की गवोन्नत स्थिति वह होगी जिसमें राज्य का लोप ही जाएगा।
अधिन्यायक तंत्र, जो निहित त्वायी के छोटे-से पराजित वर्ग पर लाखों-करोड़ों
मेहनतकशी की संकमणकालीन 'नानाशाही' से भिन्न वस्तु है, पूर्ण लोकतंत्र तथा
पूर्वमे के रास्ते में शासक ही कोई बाँध की पंजिल हो सकती है। पूर्ण लोक-
तंत्र के विकास के लिए यह आवश्यक है कि लोकनिर्वाह का काम करने का
यथामात्र अधिक से अधिक मुक्त अवसर प्राप्त हो। और जनता अपने विभिन्न
प्रकार के अधिक एवं सांस्कृतिक रागनों एवं संस्थाओं के माध्यम से अपनी
स्थिति को सुधारने तथा अपने काम-काज की व्यवस्था करने में समर्थ और
नष्टसाहित हो।"

पर सर्वसे, और शास्त्रमंथन बराबर होता रहा और जे० पी० अपने रास्ते
पर अगे बढ़ने रहे, उभा उसके बावजूद कि सारे लोग, मानकर लोडिया हम
वान की शीघ्र अर्पण करने रहे कि जे० पी० का रास्ता राजनीति का पक्षअधर
करने का रास्ता है, यह 'समाजवादी' है, 'मुँह लिपाकर भागना है,' पारि।

पर अब तक जे० पी० ने राजनीति में जिनका कुछ देना या हममें उन्हें
परीत ही गया था कि बुनियादी परिवर्तन के लिए जो संघर्ष हमें करना है उसके
लिए अनिवार्य है कि पहले हम अपने को अधिक मुक्त करें। हमें परीने से ही
संतोष नहीं करके अपने खुन से एक आदि की अभिविभक्त करता पड़ेगा, अभी
अगली कति एक सफल भाति हो सकेगी।

संज्ञी-भरे हाकी में नाए समाज की स्वच्छ, सुंदर, इमानत की नींव नहीं लायी जा सकती। यदि अपने को पूरी तरह से छोड़ नहीं कर लिया, तो कोई भी कांग्रेस नेताओं की ही क्षमता नहीं कर ले ही सके जाय, अपने नए समाज का निर्माण गमब नहीं होगा। और यदि सोचते हैं कि भिके कदमों से, प्रचारों से, चुनावों से ही लक्ष्य तक पहुंच सकेंगे, तो लोग अब बेचकूतों के स्वर्ग में हैं। आत्म-संशोधन और आनंदान पर ही समाज की सख्ती काति का पूरा होना और एक नए समाज का निर्माण करता संभव है—जयप्रकाश ने यह ताशा संदेश दिया।

मनु १६५३ में धुना में किए गए उपवास में पहले यह महत्वपूर्ण भावतीय प्रश्न जे० पी० की मस रहा था कि अनुष्य कोई अच्छा काम क्यों करे, राजनीति में अच्छाई क्या नीति का क्या संबंध है उसका उत्तर उस मीत अवकाम में अपने भीतर से ही उन्हीने पा लिया। "वर्तमान समाज में, जयकि धर्म का प्रभाव समाजत हो चुका है, इसलिए त विश्वास हिन चुना है, नीतिक मूल्यों की उतिहात के तमिल सुनों की आधारभूत देन मानका दूर फेंक दिया गया है, तब पर प्रश्न पडा होता है कि अनुष्य का हृदय में भौतिकवाद के प्रतिष्ठित होने के बाद क्या अच्छाई के लिए कोई प्रेरणा रह गई है? वास्तव में क्या इस प्रश्न की कोई प्रासंगिकता समाज के वर्तमान तथ्यों, मस-स्यको एक आदमी के तदर्प में है? मैं दृढ़तापूर्वक यह मानता हूँ कि इन प्रश्न से अधिक प्रासंगिक आज दुमरा कोई प्रश्न नहीं है।"

उन्हीने अपने तारों और फैलते हुए वतन और अष्टाचार के रर्म व जाकर जैसे मूल वृक्ष को पकर लिया - "धर्मिन आज पर प्रश्न करता है कि वह अच्छा क्यों बन ? जब तो कोई देवर नहीं है, कोई आशा नहीं, तैतिकता नहीं है। वह इत्य का एक समुचनध-भाज है जो अनायाम बन गया है, और दीछ ही इत्य के असीम महासमुद्र में भिखर जाने वाला है। वह अपने चारों ओर घुराई को—प्रख्यानार, मृत-काशीरी, भुद, धरेव, कुरता, गगाधरिन राजनीति, हिमा अदि को—नफल तात देखता है। वह गरज ही प्रश्न करता है कि वह महाचारी क्यों बने ? आज हमारे को सामाजिक रूप हैं और अनुष्यों के कार्य-कलाप पर त्रिम भौतिकवादी दर्शन का प्रभुत्व है वे उत्तर देते हैं कि उसे सचाचारी बनने की आवश्यकता नहीं। अब, वह जितना ही त्रिम भवुर है, जितना ही प्रतिभा-मंगल है, उनसे ही राष्ट्र के साथ एक गड़े निर्देतिकता की अपन आचरण में अतारता है। और, इन निर्देतिकता क चक्कर में भागव जात के तात अपने और अरभाव भी मुक्कर और तिकुरथर रह जाते हैं।"

आगे उन्हें समुभूति हुई कि अधिक वर्षों तक पने दंडात्मक भौतिकवाद की देवी के मंदिर में अगमता की है। वह दर्शन मुझे अत्यंतिकी भी दशन की संदेशा त्रौटिक रूप ने अधिक त्रुटिकारक प्रतीत होता था। परंतु रहा दर्शन

ही मेरी मुख्य जिज्ञासा यह है कि भौतिकवाद चाहे मानवीय चेतने के तापने घटुल्य ही अन्धा बनते इंद्रात्मक भौतिकवाद के ही और नव भगवान का जाना है, तो फिर युग के अवयव के रूप में

निर्दोष विपत मानव और अंधोप वन का एक प्रकार का प्राकृतिक राज्य तारों उभय वत क ना शिष्य नहीं हूँ। नाम लिए जो परतपूर्ण धर्म जितनी कि विपणन का जो अंत हीन नीने विविध विम सोम कुनाई मानव आति का मन्द का प्रयोग में कर बनाना नहीं है— १२५५ नंब एक नीति परत मध्य की और संकेत अर्थात् अस्मिन्ने को उ प्रकाश एक त्रिभुजा और त्रुचरों की पी निज्ञान के रूप में त्रितिक मानव स्वर्ग का

नाथों की हृदय तथा गणनीति में के जो युगों की प्रति प्रतीति है ? गांधी ने अर्थात् एक अंतर्गत दरमयन गथने या विम नहीं त्रौटिक त्रि समाजवादी चारों है

के समाजवाद बदनाम हो
समाजवाद ही प्रत्येक
के पक्ष में बना दो, समाज
का मुल है, नव
के घर में
के लिए पूरा नव
के लिए, उन्हे भी

के लिए ही गई
के लिए है, क्योंकि
के लिए, कोई
के लिए का अर्थ
के लिए, हमारे अधिक
के लिए, विगतता का
के लिए, देश में अन्ध-
के लिए, हमें
के लिए, हमें ही कर
के लिए, हमें ही कर
के लिए, हमें ही कर

के लिए, हमें ही कर
के लिए, हमें ही कर
के लिए, हमें ही कर

के लिए, हमें ही कर
के लिए, हमें ही कर
के लिए, हमें ही कर
के लिए, हमें ही कर
के लिए, हमें ही कर
के लिए, हमें ही कर
के लिए, हमें ही कर
के लिए, हमें ही कर

उत्तक कहता था कि कांग्रेस के साथ मिलकर काम करना असंभव होगा। चाहे
जवाहरलाल जी की निजी राय कुछ भी हो, कांग्रेस समाजवाद से बहुत दूर
है। उनका तीव्रता कारण यह था कि शासन में चुनने के बाद अपने लोगों पर
दुरा सत्ता पर करना है और उनकी दुर्बलता पर गहरी है। इन दलीलों में
ताकत थी। फिर भी मैं तैयार हो जाऊँ कि हमें नही हृष्टा, मैंने अपने कला कि
हमें अपने लोगों पर विचार करना चाहिए। कांग्रेस समाजवादी संस्था न होने
होगी यदि हमारे तीव्र मुझे कार्यक्रम को, या उनके अधिकार को मान लेनी
है तो हमारे और उनके संबंधों से समाजवाद को कुछ लाभ करने का मौका
मिलेगा, पार्टी की शक्ति और प्रभाव बढ़ेगा। यदि अनुभव से यह सिद्ध हुआ कि
कांग्रेस से हमारे कार्यक्रम को निकाल दिया तो माना जा और हम यदि प्रगति
नहीं कर रहे हैं तो हम हमारी सा देकर बाहर आ सकते हैं और जनता के मागने
हम नीचे भी मकानों से पैदा करके उसको प्रभावित कर सकते हैं। मेरा यह
विचार अत्यंत सरल था नहीं है और आज भी मैं मानता हूँ कि यदि हमारे
दलीलों पर गहरी हो पाया तो समाजवाद के लिए फलदायी होगा। उस संदर्भ
में गया जाने हुए दिन में ४ मार्च, १९५३ का जवाहरलाल का लिखा गया जे०
पी० का यह विरोध रूप में महत्वपूर्ण है।

उसके बाद चुनाव के पूर्व जयप्रकाश ने निर्माण किया कि वह पक्षान्त
निश्चय परतला जा भी त्याग कर देंगे। किन्तु उन दिनों आचार्य तैयार देव
समर्थक थे। जयप्रकाश उनके विश्वास-विषय में नहीं कर सके। १९ फरवरी १९५३
को तैयार देव जी का स्वर्णवर्ण हो गया। पार्टी मूठु ने जे० पी० की सपार
द्वारा हुआ। १९५३ के इनके बाद चुनाव के पहले १९५५ में ही समाजवादी
आंदोलन में कुछ पक्ष गठित। और जवा. मोशनियर पार्टी के दो टुकड़े हो गए।
जे० पी० मोशनियर के नेतृत्व में फिर मोशनियर पार्टी के नाम से एक स्वतंत्र समाज-
वादी पार्टी बनी।

उस बीच, विशेष कर चुनाव में पहले जहाँ मोशनियर पार्टी योग प्रजा
सामाजिक पार्टी चुनाव में एक दूसरे के विरोध में करने का रही थी, जे० पी०
की विरोध उन कारण चुटुने की तरह थी किन्तु मजबूत परिवार में भारी-भांडे
नहीं रहे ही और वह विरोध होकर अनुभव आसूरी रहा है।

अब पार्टी और राजनीति में अलग हो जाने की पूर्ण स्थिति आ गई थी।
पर प्रयोग के माध्याम ने चुनाव तक लागू-पक्ष न देने का वायदा किया। जे० पी०
नाम गए। पर पर किन्हीं कहने की बात थी। जे० पी० ने बहुत पार्टी और
राजनीति को उनी दिन छोड़ दिया, जिन दिन उन्हींने सर्वोच्च का मोशन-
वाद दिया। जिन कारणों से जे० पी० ने ऐसा किया व भी कम न थे। उन्हें
जे० पी० ने पहले हुए के साथ अनुया है। जिन कारणों ने मुझे पार्टी और
राजनीति छोड़कर सर्वोच्च आंदोलन में जाने को प्रेरित किया जहाँ वह

उतका कहता था कि कांग्रेस के साथ मिलकर काम करना असंभव होगा। उन्हें जवाहरलाल नेही की निजी राय कुछ भी ली, कांग्रेस नकाजवाद से बहुत दूर है। उनका तीव्रता कारण यह था कि शासन में भ्रष्टाने के चार छत्ती लोगों पर दुरा यत्न पड़ सकता है और उनकी दुर्वलताएं बड़ सकती हैं। इन दलीलों में ताकत थी। फिर भी मैं तैयार देव जो से महसूस नहीं हुआ : मैंने उनसे कहा कि हम पहले लोगों पर कियारा करना चाहिये। कांग्रेस गणतन्त्रवादी संस्था न होने हूँ भी यदि हमारे भीतर सूत्री कार्यक्रम की, या उनके सविभाषकों को मान लेनी है तो हमारे और उनके सम्बन्धों में समझौता की कुछ आगे बढ़ने का मौका मिलना, पार्टी की सक्ति और प्रभाव बढ़ेगा। यदि अशुभ प्रयत्न भिन्न हुआ कि कांग्रेस ने हमारे कार्यक्रम को मित्रों ऊपर दिखाने में माना था और हम पहले प्रगति नहीं कर रहे हैं तो हम हमरीसा देकर बाहर आ सकते हैं और जनता के मागने हम नीचे भी मकानों से पैदा करने के तमको प्रभावित कर सकते हैं। मेरा यह विचार अत्यन्त सफ़्त नहीं है और यद्यपि भी मैं मानता हूँ कि यदि हमारे अर्थों पर महती हो जाना तो समझौता के लिए उत्सुक होना। उस संदर्भ में मेरा ज्ञान हम दिन से ४ मार्च, १९५३ का जवाहरलाल का लिखा गया जे० पी० का यह विचार हम में महत्वपूर्ण है।

दूसरे दिन चुनाव के पूर्व जयप्रकाश ने निर्णय लिया कि वह पक्षगत निष्पक्ष मतदान का ही त्याग कर देंगे। किन्तु इन दिनों आचार्य तैयार देव सम्भव थे। जयप्रकाश हमारे विश्वास-विभवों नहीं कर सके। १६ फरवरी १९५३ को तैयार देव जी का स्वर्णवाग हो गया। उनकी मृत्यु से जे० पी० की संपादक दल हुआ। १९५३ के हमारे आम चुनाव के पहले १९५५ में ही गणतन्त्रवादी आन्दोलन में कुछ पान गये। और जवा. मोनोविस्ट पार्टी के दो तुकड़े हो गए। जे० पी० के नेतृत्व में फिर मोनोविस्ट पार्टी के नाम से एक स्वतंत्र गणतन्त्रवादी पार्टी बनी।

उस बीच, विशेष कर चुनाव में पहले जहाँ मोनोविस्ट पार्टी सौत प्रजा गणतन्त्र पार्टी चुनाव में एक दूसरे के विरोध में लड़ने जा रही थी, जे० पी० की विभक्ति उन कठण चुटुने की तरह थी जिसके समूहक परिवार में भाई-भाई लड़ रहे हो और वह विषय होकर चुनाव आसू गी रहा हूँ।

अब पार्टी और राजनीति में अलग हा माने की पूर्ण स्थिति आ गई थी। पर प्रयोग के माधियों ने चुनाव तक क्षण-पक्ष न देने का वादा किया। जे० पी० नाम गए। पर वह दिक्कत कहने की बात थी। जे० पी० ने बहुत दली और राजनीति की उनी दिख छोड़ दिया। जय दिन उनीने मर्कौश को गोवन-दान दिया। जिन कारणों से जे० पी० ने ऐसा किया त ही कम न थे। उन्हें जे० पी० ने पहले हुए के साथ बताया है : अजिन कारणों ने मुझे पार्टी और राजनीति छोड़कर मर्कौश आन्दोलन में जान को प्रेरित किया तममें वह

समाजवाद बदनाम हो
समझौताकार इन पदों का
मैंने पकड़ पकड़ ली, समाज
गव दुरा का मुल है, नब
और दुगवा मे के दर में
रह हमारे लिए पूरा नब
इ मान लिया, हमने भी

ह विचारों पैदा हो गई
ने जा रहा है, क्योंकि
का कोई भ्रमण, कोई
नब ने अस्थिरता का अर्थ
है लड़ी। हमने अधिक
, अविज्ञता, विगमता का
उनीलिए देश में अण-
परे हुए थे। पहलने में
पना गया तैयारीके कर
सर्वोपयोग कार्य होने जा
कर ह। चुनाव यह
कन है, उन उभमें रहा।

समझौता, दूसरी पोर
की ही हमने जनता
पर के मतदार के लिए
राजनीति में।
उन अस्थिरता संघर्षात्मक
निकल है। अस्थिर
को अस्थिर पार्टी के
संस्थाओं को एक पक्ष
अस्थिरों के तमकक मत-
न जवाहरलाल जी ने
माने की हमारे पार्टी
ना सम्बन्ध किया।
विद्यमान के तमकक देव
सम्बन्ध के विरुद्ध थे।

सब और उनके विपक्ष के समय मुझे
 ले ही है और जब वह एक मध्याह्न के
 गिनत नहीं उनका चलन हो जाता
 विना कोई गुण कारण है, कोई मुनी
 से जब तथा घोर प्रचार होता है जो
 मुझे विचार है कि क्या राज्य के मन-
 साथी बनने से परंतु विचारों के
 प्रत्यक्ष होना अत्यंत आवश्यक है
 पर प्रत्यक्ष, चरित्र-वर्णना और
 साक्षर भी जानें। मैं जान
 में कह सकता हूँ कि प्रथम में कोई भी
 अकारणीय था, जो इस वही चरित्र
 बना है कि प्रत्यक्ष ही का योग्य बना
 था। विचार यह हम लोगों की
 की नहीं था कि उनके साथ सम्बन्ध
 ई पदार्थ हम सब रहे है। यह एक
 ने मेरे पास नहीं का अत्यंत प्रथम
 की प्रथा जब कोराभिराव नहीं थी
 के साथ तदर्थीय करने की बात बस
 भी जब ऐसा राजनीतिक प्रथम विचार
 नहीं था।"

इसका विकल्प भी अभी इतनी प्रारंभिक स्थिति में है कि अपने हय वस्तुत्व
 द्वारा सचिक पाठकों की राय करने में साव्य ही मुझे सफलता मिले। फिर
 भी मुझे आशा है कि इसमें एक दूसरे को सचिक सम्बन्ध में मदद मिलेगी और
 जिन विचारों का इसमें प्रतिपादन किया गया है, उनमें लोगों की रुचि बढ़ेगी।
 इसका एक दूसरा पहलू भी है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी विभिन्न पृष्ठभूमि में
 ही जीजी का अध्ययन करता है। जो लोग न तो इन अनुभवों में होकर गुजरे
 हैं, निराने साक्षर मुझे सुनकर पढ़ा है और न उन कार्यों की शक्ति के पीछे पड़े
 हैं, जो उन्हें आदर्श रहे हैं, संभव है, वे बेनी उल्लेखों को कह न करें। समाजवाद
 या वगैरे संघर्ष या राजनीतिक साक्षरता अथवा संश्लेष गणतंत्र का जिनके जना-जना
 जेब है संभव है, वे मेरे साक्षर की अभी न समझ पाएँ। अपने विचारों को
 में जब उन्हें कुछ कल्पनों या साधना बनना पड़ेगा और उन कल्पनों का हल
 क्या होगा, उसकी अनुभूति व करेगा, तो साक्षर जल्दी भेरी बात उनकी समझ
 में आए। मेरा यह संकेत दर्शाता नहीं है कि वेने सामाजिक सम्बन्धों का
 कार्य संश्लेष निर्धारण ही कुछ दिना है या सर्वोद्योग ही समाज-वर्षन की दृष्टि है।
 मान्य सम्बन्ध में ही जिनके होता है, इनके लिए वह बराबर साथ ही साथ बंद
 रहा है। वह पूर्ण साथ तक कभी नहीं पहुँच सकता, किन्तु अन्ततः अपने को काम
 करने-करने। सत्य के पथ पर एक सफल है। इसमें कोई संदेह नहीं कि सर्वोद्योग
 विचार और साक्षर की अनेक कारियों का अर्थस्य में पता चलता और सुधार
 होगा। मानव-संस्कार इस प्रकार बराबर साथ ही और बढ़ता ही जाएगा।
 विश्व में यह उत्तरी मानता हूँ कि सर्वोद्योग मान के वर्तमान सामाजिक तत्त्व-
 ज्ञानों और प्रणालियों में अत्यंतता अनेक बड़ा हुआ और उन्नत विचार है। मैं
 जिन दृष्टियों में एक दिखने पर पहुँचा हूँ, उस सम्बन्धों का प्रत्यक्ष अध्ययन। मैं
 जो विश्व रहा हूँ वह किसी तरह की सर्वोद्योग वर्षन का पूर्ण विश्व नहीं है, मेरे
 पास तो एक काम के लिए पर्याप्त साधन साधनी भी नहीं है। मैं अपनी एक
 विचार मागणी के विकास का अन्वेषण कर रहा हूँ, जिनके प्रयोग होने से
 आर्थिक-साक्षरता को होता है।"

राजनीति और भौतिकी या दलीय और अदलीय राजनीति के अर्थ में
 साक्षर देना हीने पाया : "जो भी हो राजनीति में जो प्रथम होता किन्तु, वे मेरे
 विचार में दृष्टि रहे। मैं संश्लेष नहीं हुआ और एक विचारों को करने के लिए
 विचार ही था। दलीय राजनीति का परंपरागत स्वभाव है, सत्ता के लिए
 उनमें सब तरह से संश्लेष और दृष्टि का देने वाले संदर्भ होते हैं, यही बात
 मुझे घोर सचिक विचार करने लगी। बीजेपी : मत, संश्लेष और प्रत्यक्ष के
 साधनों के अर्थ पर विभिन्न दल की प्रयोग को जलता के उपर-उपर देने हैं, कभी
 जलन्य यथावत् में दलीय संश्लेष बन जाता है। कभी दलीय संश्लेष अपने कार्य से
 अर्थस्य : समाज समितियों और विचारियों में संश्लेष नहीं का साथ बंद

और अपने विघटन के समय मुझे
 है और अब वह एक स्पर्शा के
 तने नहीं उभर कर खड़ा हो जाया
 कोई युवा आरक्षण है, कोई युवा
 के वनों और प्रचार होता है जो
 सम्बन्ध है कि इन समय के सन-
 सम्बन्ध हो : उन्हें विचारों के
 होना अन्तःसम्बन्ध होते हुए भी
 कर सकता, परिष्कार-युद्ध का उत्तर
 ही प्राप्त होये है, वे सधन
 प्रकृतः हैं कि हममें से कोई भी
 हो गया था कि हम नहीं कहते
 कि सम्बन्धों से का और केवल
 लेकिन अब हम आगे की
 था कि उनके साथ समाज-
 का हम सब रहे हैं। - अन्तः
 तथा नहीं का अन्तःसम्बन्ध होता
 गया जब कोसमिन्धर १९४० की
 पहलिया के रूप ही बना भक्त
 गया राजनीतिक प्रश्न विचारता
 का।

राजनीति का संस्थान एक
 १९३० में हमारे आम चलाव के
 एक संस्थान में था। कोसम-
 की आधारन नहीं होया, विवेक
 केवलें काये अन्तःसम्बन्ध जो
 प्राप्त हुए थेका।

आज हम भी और पहले
 कोसम के आगे आगे हुए एक
 संस्थान के रूप में समाज-
 केवलें के संस्थान की कोस-
 में, विवेक, १९४० की
 की संस्थान केवलें के आधु-
 केवलें कोसम विवेक है
 कोसम है, और फिर

एकमात्र विकल्प भी सभी उत्तरी प्रारंभिक स्थिति में है कि सधन हुए वक्तव्य
 द्वारा अधिक पालकों की राजी करने में मायद ही मुझे सफलता मिले। फिर
 भी मुझे साक्षात् है कि हमने एक दूसरे की अधिक समझने में मदद मिलेगी और
 जिन विचारों का हममें प्रतिपादन किया गया है, उनमें लोगों की रुचि बढ़ेगी।
 एकमात्र एक द्वारा पहले भी है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी विविध पृष्ठभूमिका से
 ही चीजों का परलोकन करता है। जो चीज न तो इन अर्थवर्षों में शास्त्र गुजरे
 है, अंतर्गत ही हमें गुजरेगा पदा है और न इन साधनों की कोस के पीछे पड़े
 है, जो नए साधनों रहे है, संभव है, वे मेरी दलीलों की मदद न करें। समाजवाद
 का सारे समय का राजनीतिक आंदोलन सबसे संघर्षीय लक्ष्य का सिद्धे अन्तःसम्बन्ध
 जोश है, संभव है, वे मेरे साधनों की सभी न समझ पाए। परन्तु विचार जोश
 में जब उन्हें कुछ अन्तःसम्बन्धों का सामना करना पड़ेगा और उन अन्तःसम्बन्धों का हल
 क्या होगा, इसकी जानकारी वे अपने, जो साधन जन्मी मेरी बात उनकी समझ
 में आए। मेरा यह संकेत इतना नहीं है कि मैंने सांसारिक समस्याओं का
 कोई समाधान निर्धारण तक नहीं किया है या सर्वोदय ही समाज-दर्शन की ध्वनि है।
 परन्तु समाज में ही जिज्ञासु होता है, इसलिए यह वक्तव्य सत्य की ओर बढ़
 रहा है। यह पूर्ण सत्य तक नहीं पहुँच सकता, किन्तु प्रकृतः सत्य का काम
 करने करने सत्य के पथ पर चल सकता है। हममें कोई संदेह नहीं कि सर्वोदय
 विचार और साधन की सन्त-वक्तियों का अन्तःसम्बन्ध में पदा चलेगा और सुधार
 होगा। मानव-सम्बन्धक एक प्रकार बराबर सत्य ही और चहता ही आया।
 लेकिन मैं यह जरूरी मानता हूँ कि सर्वोदय साज के वर्तमान सांसारिक अर्थ-
 ज्ञानों और प्रणालियों से स्पष्टतया आगे बढ़ा हुआ और उन्नत विचार है। मैं
 जिन प्रक्रिया के इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ, उसे समाजाने का प्रथम संकेत। मैं
 जो विचार रहा हूँ वह किसी तरह भी सर्वोदय दर्शन का पूर्ण विचार नहीं है, मेरे
 पास तो उस काम के लिए उपाय साधन सामग्री भी नहीं है। मैं अपनी इन
 विचार साधनों के विकास का उल्लेख कर रहा हूँ, जिसमें प्रथम होकर मैंने
 सांसारिक राजनीति की श्रंश है।"

राजनीति और लोकशाक्ति का राष्ट्रीय और अन्तःसम्बन्ध साधनों के सम में
 शास्त्र केवलें ही न पाया जायेगी ही ही राजनीति में ही अन्तःसम्बन्ध किन्तु वे मेरे
 विचार में गूढ़ रहे। मैं संभव नहीं हमा और एक विकल्प साधनों के लिए
 विवेक ही गया। अन्तःसम्बन्ध राजनीति का अन्तःसम्बन्ध अन्तःसम्बन्ध है, सत्य के लिए
 उनमें सब तरह में विवेक और विवेक कर देना बात संभव होने ही है, पूरी बात
 मुझे और अधिक विचार करने लगी। मैंने देखा : अब, समर्थन और प्रचार के
 साधनों के चल पर विवेक तक कैसे आने की रास्ता के ऊपर लक्ष्य देते हैं, अभी
 अन्तःसम्बन्ध में सर्वोदय अर्थ का ज्ञान है, किन्तु राष्ट्रीय अर्थ रूपने हम में
 सांसारिक चुनाव विचारों और विवेक साधनों में संभव मुझे का साथ चल

जाता है, किश प्रकार जनतंत्र केवल भवदान में सिमट और निकुड़कर रह जाता है, किश प्रकार जन देने का यह अधिकार तक, उन शक्तिवाली दलों द्वारा ग्रहण सम्पीडितार लड़ा करने की पद्धति के कारण भूरी तरह सीमित हो जाता है, क्योंकि काम चलाने के लिए मनदाताओं की सेवा उन्हीं में से किसी को चुनना पड़ता है, जिस प्रकार यह गोपिन निर्वाचनाधिकार तक संवत्सविक हो जाता है, क्योंकि निर्वाचनमण के समझ तो मुद्दे ऐसे होते हैं, वे बहुत अधिक तो उनकी समझ के बाहर होते हैं। दलीय पद्धति को जैसा मैंने कहा, वह लोको को डर-पोक और नतुम्ह बना रही थी। इसने इस तरह ने काम नहीं किया कि जनता को शक्ति और अधिकार (दलीयपद्धति) बड़े या उन्हें स्वरान्त स्थिति करने और अपनी व्यवस्था स्वयं संभालने में सहायता मिले। दलों की तो केवल हमसे मतलब था कि सत्ता उनके हाथ में आए, और वे जनता के ऊपर, बिना तक जनता को तलाश से, राज्य का भरोसे। मैंने ऐसा अनुभव किया कि दलीय पद्धति लोगों को भेड़ों की स्थिति में ला देता जाती है, जिसका एक-धिकार केवल नियत समय पर गड़बड़ों को चुन लेता है, जो उनके कल्याण की चिन्ता नहीं। मुझे हममें हर्षना या दर्शन नहीं हुआ, उस हर्षना या स्वरान्त का, जिसके लिए मैं लड़ा था और उस देश के लोग जिसके लिए लड़े थे।"

पर तो भी ही, अपने इस पत्र की वस्तुत्व में आपस-आपस बहुत कुछ स्पष्ट करने की अपनी भूमिका में सहयोगवादी बने रहे। राजनीति में गहरा (राजनीति में अपने लोक-नीति) संबंध होने पर भी राजनीति से एक भाव था। राजनीति की गहराई में जहाँ आप आरम्भी है, उसके अपने ऐतिहासिक संदर्भ हैं, जे० पी० वहाँ आकर जुड़ गए। दलीय राजनीति के वर्तमान परिदृश में लंबा उभे समझने में अग्रसर थे। यह एक ऐसा कथम था, जिसका अभी तक कोई उदाहरण नहीं था। गंधी ने सर्वोच्च और लोकनीति का दर्शन दिया था, जिसेवा ने उसका व्यापक मुक्त किया था और चलने में ही रों समस्त प्रकारा लक्ष्य था उसे जे० पी० ने देखा था। उस एक जीवन-दर्शन को अपने कई और लोगों ने समझना शुरू किया था अदा सर्वाधिकारी और सीमित अनुभवदार इस कर्म-नेताओं ने। पर समय को यह एक ऐसा अनुभव नहीं था। विज्ञान इतिहास और राजनीति के इतिहास अध्ययन और गहरे अनुभव से निकलकर सब प्राणवृद्धि के प्रकार से लोकनीति विकर्षों पर जे० पी० पढ़ने से साथ उनके कंधों कोर उनके चरित्र से स्पष्ट है।

१९५६ के अंत में जे० पी० ने अखिल भारत सर्व सेवा मण, वाशापु, द्वारा अंतराज समाज के लिए अपना अत्यंत महत्वपूर्ण निबंध 'भारतीय राज्य व्यवस्था का पुनर्निर्माण' किया। वे लोकतंत्र के परद्वारा जाने की प्रतीति कर रहे हैं, क्योंकि वह जनता की अपनी काम-काज के प्रबंध में भाग लेने का अधिकार नहीं प्रदान करता। जयप्रकाश को इच्छित है, आज स्थिति यह है कि राज-

नीतिक दल जो
 उत पर कोई
 भी लोक निर्मा
 दलीय व्यवस्था
 नेतागिरी को
 तथा आशा
 बना है, वहाँ
 सुदृष्टता के साथ
 उन्नीय दिने व
 नागरिक को ह
 के साथ मुद्रा हो
 का प्रम पैदा
 संघर्षों का कारण
 संघर्ष। अ-
 पर-प्राप्तियों तथा
 की राज्य का
 कालिका का द
 एक बड़े
 दृष्टान्त का प्रथ
 तथा उनके उ
 मुख्य का लाभ
 है, मानवीय ल
 संघर्षों का बीच
 जिन तरीका-
 देते को है, कि
 भाव है, उन्हें
 है। यह क
 नाशर्तों। नि
 जो नाशर्तों के
 कल्याण के पर
 संघर्षों प्रतिक
 कार्य पर अ
 निक संघर्षों के
 नहीं होता। नि
 धारणी पर अ

में विपट और भिकुटकर रहे जाते
उत्तम स्थितिवासी दलों द्वारा अपना
कुछी तरह मोड़कर ही जाता है,
केवल इन्हीं में से किसी को चुनना
करना एक अत्यन्त कठिन ही होता है,
ले है, ये बहुत अधिक ही चुनने
में ही होता, यह लोभने की दृ-
ष्टि में मान नहीं लिया कि जमाना
या उन्हें स्वराज्य स्थापित करने
मिले। उन्हीं को ही क्षेत्रम इधर
जमाना के ऊपर, बिना एक
समुझ दिया कि इन्हीं की प्रति
है, जिसका एकाधिकार केवल
उनके कल्याण की विधा करने।
संभोग या स्वराज्य का, जिसके
सम भई है।

में तब तक तो बहुत सारा
राजनीति में सारा (राजनीति
के प्रकाश मने हुए। राजनीति
राजनीतिक यथार्थ है, जो जो
परिचित के लोभ ही स्व-
का प्रथी लन कोई स्वराज्य
न दिया था, जिसका के
की स्वल्प प्रकाश धनदा या
ले अपने कां और वाली ने
है बहुत सारा, जो कर्म
गहीं का, जिसका इति-
रे समुझ में बहुत सारा प्र-
की पढ़ने के साथ उनके

के लोभ नभ, धाराणनी,
में निरर्थक भारतीय राज्य
स्वल्प अपने को धरतीगत
में भाग लेने का स्व-
स्थिति यह है कि राज-

नीतिक इन जनता के वास्तविक भाषण विधाना बन पाए हैं, परंतु जनता का
उन पर कोई नियंत्रण नहीं चलता। यद्यपि कि दलों के नामांकित सदस्यों का
भी नीति निर्माण में या आंतरिक प्रकाशन में कोई प्रभाव नहीं होता। यह
दलीय व्यवस्था अपने बुझाए को जानती है : "राष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विताएं झुठी
नेतागिरी की रूप लेती हैं, राजनीतिक नीतिकला को दधानी है, विवेक हीनता
तथा अज्ञानताएण एवं पद्धत को बढ़ावा देती हैं। जहां जनता की व्यवस्था-
कता है, वहां इन्हीं द्वारा विवाद परे किए जाते हैं, और जहां जनता की
सुननाम अपना सारिण, वहां उनको के प्रतिरोधित करत है। ये इन एकतर
दलीय दलों को राष्ट्रीय दलों के ऊपर रखते है। अति मना का केंद्रीकरण
नागरिकों को सामान्य-कार्य में भाग लेने नहीं देता, अतिसु दल पक्षधरा राजन्यापों
के लक्ष्य पर ही जनता के नाम पर दावा करते हैं और लोकसंघ एवं स्वशासन
का भ्रम पैदा करते है।" ऐतिसि मुख्य अपराधी दलीय व्यवस्था नहीं, अति
संमदीय लोकसंघ है जो उनके लक्ष्य देना है और उनके बिना काम नहीं कर
सकता। अतः स्वशासन दलीय लोकसंघ के स्थान पर, भाषण की पक्षधरी
पर जनता तथा समुझ एवं समुदाय के वास्तविक स्वभाव के समुझ, यह दंग
की राज्य व्यवस्था की स्थापना का मुख्य प्रयत्न करने है। इसको के सामु-
दायिक या स्वशासन लोकसंघ की संज्ञा देने है।

एक नई राज्य-व्यवस्था के निर्माण की सफलता सामाजिक पुनर्निर्माण की
बृद्धि पर निर्भरता का दंग है। जैसा कि, जयकरांत कहते है : "आधुनिक समाजवाद
तथा उनके द्वारा पैदा की गई सांख्यिकवाद की भावना ने, जो पश्चिम आधुनिक
सुख की लाल और इति एवं तन्मयचित्त सांख्यिक प्रगति के पैमानों में जीवती
है, सामाजिक न्याय की निर्धारित रूप लाता है और समुदाय की सामने ही सामने
संघर्षों के बीच पराया बना दिया है। समाज की संभ्रमा की संभ्रमा सामा-
जिक समीक्षण की स्थापना है। समस्या समुदाय की समुदाय के लक्ष्य में चल
देने की है, जिसमें कि ये संघर्ष, जीवनाय एवं नियंत्रणिय अवस्था का बीच साध-
नाम वह मारी। संघर्ष में, समस्या मानव समुदाय का निर्माण निर्माण करने की
है। एक नए नए साधन के आवरणक लक्षण है। स्वशासन, स्वशासन एवं
सामान्य : अविधन के बीच समाज की भाषण, स्थीयत सामाजिक सांख्यिकी
की स्थापना के अदर स्वशासन का बीच तथा समुदाय एवं समुदाय के
कल्याण के लक्ष्यमात्र लक्ष्य की और सांख्यिक साधनों की विभिन्नता। ऐसा एक
समुदाय प्रतीति में कभी देना ही या नहीं, परंतु सभी सामाजिक पुनर्निर्माण का
साधन यह स्वयंसेवक रहे। केवल नहीं समुदाय के सामाजिक स्वभाव और आधु-
निक व्यवस्था के महान् सामाजिक साधनों की निर्दिष्ट होंगी। लक्ष्य लोकसंघ की
नहीं हवा। ये विचार अंतः प्रिय के व्यक्तित्व के ऐसे प्रकाश पंक्त है, जिसके
सभी पर जनता के लिए यह साधन के साधन के साधन की और करने है।

गंधी, जयप्रकाश जैसे लोग उस प्रसंग में याद किए जाएंगे। और, इस प्रसंग का उत्तर हर पिछों को सुद देना होगा।

फिलहाल गांधी शायद अनुनयित रह जायें, पर जयप्रकाश के बारे में सोचा जा सकता है और स्पष्ट कारण भी, वलिक लक्ष्य भी पाया जा सकता है। जे० पी० का क्या है, 'जिन कारणों ने मुझे पार्टी और राजनीति छोड़कर सर्वोच्च प्रादेशिकों में जाने को प्रेरित किया उनमें से वह सांख्यिक दुःख भी था जो पार्टी में चरित्रबध और अग्रह विप्लव के समय मुझे हुआ। राजनीति में मतभेद तो पैदा होते ही हैं और अब वह एक मर्यादा का बाहर चले जाते हैं तो फिर जिनके मत मिलते नहीं उनका फलन ही जाता स्वाभाविक होता है। परंतु हर मतभेद के लिए कोई गुप्त कारण है, कोई चुपची गोप्य है, कोई आंतरिक दुर्बलता है, इस प्रकार भी जब चर्चा और प्रचार होता है तो वह अत्यंत दुःखदायी होता है। आज तक मुझे विश्वास है कि वह समय का मतभेद दूखें बड़े नहीं थे कि उनके कारण लाठी अलग हो। परंतु जिनको ऐसा लगा कि वह साथ नहीं चल सकते उनका फलन ही जाता स्वाभाविक होते हुए भी समझने लायक हो सकता है। पर नीयत पर गक करना चरित्रबध का अहद फैलाना वह तो राजनीति के बाहर के बाहर की बात होती है।"^१

जे० पी०, लोहिया और आचार्य नरेन्द्र देव को साथ लेकर जो मधुन राजनीति उस समय देश में लगी उसमें पत्रजी वार इतने जीवंत ढंग में दो युगों का दायित्वक्षेत्र मद्भूत हुआ — 'राष्ट्रीयता और समाजवाद दोनों को प्रतिष्ठित और पुष्ट करने का कर्तव्य' एक और कालविपरीत जातिप्रथा और संकीर्ण सांप्रदायिकता का परिहारा कर 'एक सामान्य चिह्न और सामान्य लक्ष्य' के माध्यम पर हमें राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़ करना है और दूसरी ओर हमें समाजवादी समाज का निर्माण करना है। हमें केवल वर्गविहीन ही नहीं जाति-विहीन समाज के लिए भी प्रयत्नशील होना है।"^२

आचार्य नरेन्द्र देव के साथ यहां तक आकर जे० पी० ने उस समय उच्च पर महतुग किया कि लोगों की राजनीति पर इतना विश्वास है और उतम हतनी आशा है कि जो कुछ कर सकती है, वह केवल राजनीति ही कर सकती है तो उन्हें आग्रह करट ही नहीं आने पर और पूरे देश के लोगों पर 'सत्य' पाया। हम एतहीन राजनीति का विकल्प क्या है और अगर है तो वह इनकी प्रारंभिक उमर में है। इस समय में जे० पी० का अंत ऐतिहासिक एवं समाज-वाद से नवीन को और, विशेष रूप से उन्मुखनीय है। उन पक्ष के उदाहरण में जे० पी० ने बताया है कि सर्वोच्च की भी अपनी राजनीति है, परंतु वह

१. आचार्य नरेन्द्र देव—'दुख और वेदना,' पृष्ठ ५, (जयप्रकाश की सुविधा)।
२. वही, पृष्ठ ३५५

सर्वोच्च से ल

राजनीति

है। वह ल

सोचना है

नीति पर

नीति को

अर्थ और

'व्यक्ति' व

आज

जाना देश

चुपची देश

आपनी प्र

राजना हो

भूमिका से

जे० पी०

साधन रने

सकें। पर

फल है 'न

समा

किक उम

हो, पुन

होता है।

वर्षिणा के

एवंतो क

जहां की

के लिए

में सधि

निर्मेदात्

प्रवा से

पुरोहित,

रिगने न

वह सर्व

एक बह

पया।

विश

किया।

होता। लेकिन दुनिया की परिस्थिति और मानव की मन:स्थिति में इनका अधिक परिवर्तन हो चुका है कि अब संस्थाओं के गढ़ाने न हो विकास का काम हो सकता है और न आवश्यकता पाने पर कति हो।

समाजवादी जे. पी. ने यह महसूस किया है कि मानवीय संबंध प्रथम और द्वितीय पुरुष के बीच होता है। प्रथम पुरुष का संबंध जिको से नहीं होता। इसी कारण वह जिको के सुख-दुख का भागी नहीं होता। फिर जब वह छन्द पुरुष नेतृत्व व्यक्ति न होकर जड़ संस्था होता है तो वह पुरुष न रहकर एक तन्त्र बन जाता है। प्रथम पुरुष मूले-भटके व.सी-कभी जनता से कुछ संबंध बना लेता है, लेकिन जड़ संस्था के स्वभाव में वह चीज नहीं होती। इसलिए मानवीय संबंध के अभाव में, उस परिस्थिति में नैतिक और व्यावहारिक सुधारों का ह्रास होता है। कलम्बरूप समाज में स्वार्थ की वृद्धि के कारण अत्याचार, शोषण तथा दमन का विधास होता है। सुख-दुख में जब सेवा, शिक्षण यादि संस्थाओं को हीन जनता के गढ़ाने जिन पड़ता था, तो संस्था के लोगों के लिए अनिर्वास था कि वे संस्था में रहते हुए भी जनता से कुछ व्यक्तिगत मदकें करे। लेकिन जब वे दुनिया में कल्याणकारी राज्यवाद का विचार आया है और संस्थाएं ज्यों के गढ़ाने चलने लगी, तब ही संस्था सेवकों के आगे गढ़ाने के लिए जनता न सीधा मदकें करने की आवश्यकता नहीं रहती। अगर संस्था संचालन के लिए जनता से कुछ मन-संग्रह किया भी जाता है, तो उपाय संचालन पुरुष संचालकों द्वारा ही होता है और संघर्ष का भेष व्यापक होता है, जिसमें स्थानीय सेवकों को स्थानीय जनता से सम्पर्क का कोई अवसर नहीं मिल पाता। ऐसे छोटे-छोटे अनेक कारणों से संस्था सेवकों की आत्म शोषणों का कोई सरोकार नहीं रह गया। भ्रमण, लाठी या अकाल निवारण जैसे काम में भी जनता व्यापक अत्याचार का जो आनाकरण बना उसका यही कारण है।

सर्वोदय की इसी पक्ष-प्राया में उन्होंने दुई छल के भीतर वे जे. पी. ओ अनुभूति हुई : "राजनीति नहीं लोकनीति। राजनीति में प्रशासन मुख्य है, लोकनीति में अनुशासन मुख्य है। राजनीति में सत्ता मुख्य है, लोकनीति में स्वतंत्रता मुख्य है। राजनीति में नियंत्रण मुख्य है, लोकनीति में संघर्ष मुख्य है। और जब सुल-कोनट-भरे राजनों और स्टाड-जंगल के पात्र भंगत नदी का जल दिखाई पड़ने लगा—लोकसंग्रह की पद्धति लोकसुलभ ही हो सकती है, जिसकी प्रक्रिया संचालित समसक की न होकर गढ़ाने समाज की हीन आन-स्यक है। वरना 'लोक' का शोषण पूंजीपति द्वारा होता और 'जंग' का दमन लोकप्रवादी और सिपाही की शक्ति द्वारा।"

इसके बाद जे. पी. की वर्तमान जीवन यात्रा शुरू होती है। राजनीति में लोकनीति अपने सर्वोदय के संभार में प्रवेश करने से पूर्व जे. पी. ने पुनः २१ दिनों का उपवास किया था। अब लोकनीति के संघर्ष प्रयोग की नई यात्रा

संघर्ष से लोकवादी

शुरू करने में पूर्व काय ? अपने जे. पी. करने हुए जे. पी. उन सभी संघर्ष में उन्होंने कदम उठाकर जन-सहमति है। वे जनता का गढ़ाने के तरीके ही में संबंधित संस्थाओं

"अगर मैं नहीं जानता। मैं स्थिति का वैशेषिक का समय होगा या वैशेषिक में आ जाओगे !"

"आपका विश्व मैं अपने जिनो न ही नहीं लोक-संसार केना चाहें मैं वा. जनता का

"द्वि. भी उपाक संबंध में तत्स्थिति में दुख स्थिति कायद कि कालीन स्थिति कि यह वाक्यें

"उप. जम्न जनता ही न संसार की गता की पद्धति में पर य मानसिक को जवाब आता नकि

दिक इसी आचार ही स्थिति

र मानव की मानसिकता में उनका
को के अन्दर न के विकास का काम
जाते ही ।

क्या है कि मानवीय सर्वत्र प्रथम
एक का सबसे किसी से नहीं होना ।
की नहीं होता । फिर अब यह प्रश्न
जा है कि यह प्रश्न न रहकर एक
की-लक्ष्यी जगत् में कुछ संभव बना
कीज रहा होती । उदात्तिए सात-
नीतिज्ञ और साम्यवादीसिक गुणों का
की वृद्धि के कारण प्रत्याहार,
प्रभुत्व में जब गया, शिक्षा आदि
का, तो संस्था के लोगों के लिए
जाता कि यह व्यक्तिगत संघर्ष करे ।
वाद का विचार आया है और
संस्था सबको का अपने गुणों के
सकता नहीं रही । अगर संस्था
की भी जाता है, तो उसके संघर्ष-
में प्रश्न का क्षेत्र व्यापक होता है,
सम्पर्क का कोई अवसर नहीं मिल
सकती का आप लोगों के कोई
काल विचारण जैसे काम में भी
का उपाय नहीं करता है ।

बुल के भीतर में ३० पी० को
राजनीति में प्रशासनिक गुण है,
में गया मुख्य है, लोक-नीति में
है, लोक-नीति में संघर्ष मुख्य
संघर्ष-न के बाद गया नहीं का
कोरसुधक ही का सक्ती है,
सहकारी संस्था की होने का-
का होना और 'संघ' का दमन

का कुछ सोचो है । राजनीति के
में से कि पूर्व में ३० पी० न गया में
के सर्वोच्च स्थान की वृद्धि का

वृक्ष करने में पूर्व साम्यदर्शन अनिवार्य है और इसकी शुरुवात कहां से की
जाए ? अपने जन्म दिन से । ११ अक्टूबर १९७१ को अपने जीवन के ५६ वर्ष
पूर्व करते हुए जे० पी० ने एक व्यक्तिगत पत्र का समवेदा लेखार किया । यह
पत्र उन सभी संस्थाओं के नाम था जिनके वह पदाधिकारी या सदस्य थे । इस
पत्र में उन्होंने कहा, "अगर ११ अक्टूबर १९७२ तक मैं जीवित रहा तो अपने
इन उपासनागत लिपेय के अनुसार (जिस हेतु श्रीमती प्रभाकराणी की भी पूर्ण
सहमति है) मैं उन चारों ओरों में अपने आगले हर तरह की परिस्थिति से
प्रलंब कर रहा हूँ । १० अक्टूबर १९७२ को मैं सिर्फ उन संघर्षों और संघर्षों
के दर्द में ही मैं प्रलंब हो जाऊंगा जिसका कि मैं पदाधिकारी हूँ वरन् अपने से
संबंधित संस्थाओं की साधारण सदस्यता भी त्याग दूंगा !"

"अगर मैं जीवित रहा तो इस प्रकार मृत्यु होने के बाद क्या सम्भवा, मैं
नहीं जानता । मैं नहीं चाहता कि मेरे इन एक वर्ष के समय का किसी साक्षा-
त्तिय या ऐतिहासिक चित्रण का नाम दिया जाए । यह समय मेरे लिए पूर्ण विश्राम
का समय होगा और इन काम में मैं किसी भी प्रकार के सम्बन्धों, गोपिणियों
या बैठकों में भाग नहीं लूंगा । मैं सिर्फ यही करूंगा जिसे मेरी आत्मा
चाहेगी !"

"अपने निर्धारित करके मेरे दोन मुझे दया और मे मिल सकेंगे । पर
मैं अपने दिनों भी गणसहायता या संस्थागत विषय पर बातचीत नहीं करूंगा,
न ही यह आवश्यकता, राजनीति या किसी भी भी कार्यवाही के किसी रूपों पर
संवाद देना चाहूंगा । प्रत्यक्ष गया में स्वयं अपने मार्फत न रह जाने के कारण
मैं यह मानना चाहूंगा कि ऐसे किसी मामले पर अपनी सलाह दूँ ।"

"फिर भी इन विषय में दया दौरान यदि कुछ सोचने का मौका मिले तो
उसके संबंध में लिखूंगा । सिर्फ एक दिशा में है जिसमें यदि मैं चलेगा तो अपनी
सदस्यता में टूटकर आगे आ सकूंगा और प्रकाशित भी करवाऊंगा । और वह
स्थिति मानव किसी संघर्ष राष्ट्रीय एकता की स्थिति होगी । लेकिन ऐसा एकद
कालीन स्थिति नहीं, जिसकी घोषणा सरकार करेगी वरिष्ठ विद्यार्थी में सम्भूना
कि यह चारों संघर्ष की स्थिति है ।"

"इस समय की मानसिकता के बाद मैं क्या करूंगा नहीं जानता । मैं सिर्फ यह
जानता हूँ कि जब तक यह दौर का विचारण काम करता रहेगा, मैं अपने देश का
संसार की सेवा करूंगा । मैं यह भी जानता हूँ कि अविध्य के लिए मेरे कार्य
की शक्ति में सत्तरपूर्ण परिवर्तन होने, स्थोतिक वर्तमान कार्यवाहति में आरीरिक
व साहसिक दोनों का मे समय व मानि की वास्तव सिद्ध की है । अब मैं इससे
अपना अपने अविद्य का घरे में नहीं यह सकता, यह उद्वेग के हाथों में है ।"

रीक हमी प्रत्यक्ष प्रभाव की वह घटना है, जब संघर्ष पार्टी के सब
चार तो कार्यवाही न साम्यसर्वण किया । यह परना नहीं, साम्यसर्वी या ।

इसने भारत और विश्व को ही नहीं, स्वयं जयप्रकाश को भी प्रभावित किया। प्रभाव की सीमा यह है कि वर कभी उदरजी चर्चा किसी भी प्रयोग में जे० पी० को करनी पड़ी है, क्योंकि हमें ही कहा है कि उन्हें खुद स्पष्ट मनेही प्राप्त कि उन्होंने वही घटना घटी थीं। जे० पी० ने हम 'ईश्वरीय नीला' पाना और स्वयं को 'निमित्त मान'। वंश के इस कार्य ने जे० पी० को आत्मदर्शन दिया। जे० पी० ने हमें व्यक्ति के आत्मदर्शन की प्रक्रिया क्या होगी और क्या हो सकती है, उसका यह एक गहन उदाहरण है।

गंगडन में शर्मभजन, वंश में सुनिष्ठ, परस्परत्व से स्वाकनवन इसी के बीच में सर्वोदय ने जे० पी० की यह प्रक्रिया ही थी जिसमें उर्र सपनी जोशिन-परी जीवारी के दौरान भी विस्तृत ने उदरज तत्त्वा वंगनदेन की सावरी के लिए विश्व उनमन नैवार करने की भाषा पर निराल भाष। वंश के वाशियों का यह निमित्त गुनकर कि सागर जयप्रकाश हमारे पास नहीं पाए ही हम आत्म-नमर्षण नहीं करेंगे, था तत्ता जयप्रकाश हैं वहां जाकर करेंगे, जे० पी० जीवारी के दौरान भी भनर उठाकर वंश भाटी को छोड़ रखना हुए।

कम के भीतर के आत्मदर्शन, यही है तई प्रक्रिया जे० पी० के दर्शन और जस की। जे० पी० का यह आत्मदर्शन था कि सर्वोदय राजनीति में जो लोग घाटा रखते हैं, वे तुल्य हदरी न्य रहे हैं और अपने ही न्यन का आस्वादन प्राप्त कर गुन हो रहे हैं। यह राजनीति की गिर रही है, प्री० भी गिरगी, छिन्न-भिन्न हो जाओ। तब उनके मरने के बाद एक नई राजनीति जसभी, जो हमें सर्वथा भिन्न होगी। तब भी तसका भिन्न होगा। यह राजनीति होगी, राजनीति नहीं। तब राजनीति के शीत आर भारत की मिट्टी के पार नप में सन-रिन है। उन बीटों को पंचा भिजा था पांथी ने और भारत की घन्ती को अपनी परमाथा प्राण वाग-वार जीवकर उन्हें बोधा है विरोधा ने। हमारी मजात सेवकों की सेवा उरका विनय कर रही है।

सर्वोदय का संकल्प उस भाषा में जे० पी० को रोकर गवान करने, हमारे आस्वादन के काम का समाज पर प्रभाव क्या नहीं करता? तसवलवाही में एक छोटी-सी घटना पढ़नी है जो पूरे देश में हवापन मच जाती है। तब तुमनी हफ हतने गने पासदास हुए, फिर भी सर्वोदय कार्यकर्तियों को या जनता को तेरी प्रतीति क्यों नहीं होती कि कोई वही गिद्धि प्राप्त हुई है?

जे० पी० की इस भाषा ने क्या लगना रहता था कि भूदान को जमीन बांटने में असाक अडाचार हुआ है। इस समय जालधहुर शास्त्री ने कहा था : 'मेरी निरन्त्री जानकारी है, उसमें साफ है कि जमीन बांटने में अरुन ज्यादा अडाचार हुआ है। अगर प्राय लोग इसे नहीं सुधारने को उरने हुए सर्वोदय समाज बननाम होगा है।'

अडाचार की बात केवल भूमि-वितरण प्रयोग तक ही सीमित नहीं थी।

संघर्ष में लोक

विहार स्वयं के मे जो धनमय

कनीसों ने वेर

यह भी उर

जइ तक जान

पड़ेगा : पांर

करने के नहीं

अडाचार का

में सानी ना

के कुछ ल

आदिप, ना

बिना इन

निगाहन के

निकर ल

प्रयाम का

हागा : वरु

में प्रभाव

देना होगा : पा

में सार हा

विभिन्न

गिन जाने

अपनी वा

सर्वोदय

है उरका

रही ने

सकन।

अरुने

यह सं

निधि

तइ हो

ता उरने

न्यकर

को

की

नाकरने

के

यु

नहीं पैदा होनी कि अपने विवेक अनुसार, मैं जो ब्रह्मियों उन्हें तजर खाई है उनका विधान बना है। मना और गण की राजनीति को ब्रह्मिण्य देवधर उनके विधान हेतु ही जे० पी० ने मना और गण की प्रचलित राजनीति छोड़ी थी। उन्होंने देखा और पाया कि 'मेरी लक्ष्य में तनी आना कि मना में बने जान भाग में ही कैसे गण की सेवा की जायगी, क्या पालिकाभंग में बने जाना या नहीं बन जाना ही राजनीति है ? वास्तव में, जतना ही विधान राजनीति को उसके बाहर पड़ी है। मैं शब्द के साथ कहना चाहता हूँ कि इनके लोग मना और गण की राजनीति के कूल में टूटकी लगा रहे हैं, जबकि मैं मना की राजनीति—राजनीति के विधान मना में ही रह रहा हूँ।"

जे० पी० ने अपने राजनीतिक विचार को शोणाचारी और उनके विचारों के उदाहरण देकर स्पष्ट किया है। ब्रह्म पर चर्चा विधिया की आक्ष का विधान लघानः था। अर्थसे न कदा मुझे और कुछ नहीं शोक्षता, केवल विधिना ही शोक्षनी है और अथ ही साथ विधिया की आक्ष ही दिवर्द्ध देती है। अभी तरह परि जे० पी० के जीवन में गणों की आक्ष भारत का प्रधानमंत्री पद होना तो वह अक्षर ब्रह्म विधान लगा चुके होते। 'मेरी तजर यदि गहने से ही उस पद पर होनी तो मैं कांग्रेस न छोड़ता। १९४२ में कांग्रेस छोड़कर अलग समाजवादी पक्ष न बनाता। प्रभावनी के कारण गणों ही से भी पण्डित संघम था। वास्तु के पश्चिम बालि मुझे शपाद मानते थे। मनु १९४२ में जे० पी० के छूटने के बाद गणों ही से मुझे कांग्रेस का अध्यक्ष बनाने की जान नहीं। उनके शब्द गणों भी मुझे पक्ष है। उन्होंने कहा, 'ब्रह्मिणी शपादनी का साथ ले लेना चाहता हूँ।' इसी तरह ब्रह्मिण्य की के साथ भी भाई का रिश्ता था। उन्हें मैं हमेशा 'भाई' ही कहा करता था। १९५२ में उन्होंने मुझे और मेरे समाजवादी साथियों को केन्द्रीय सरकार में शामिल होने का निमंत्रण दिया था। इसीलिए यदि मैं जवाहरलाल का बाद उस देश का प्रधानमंत्री बनना चाहता तो मेरे लिए यह सम्भव नहीं था। प्रधानमंत्री बनने के लिए मैं भिन्न तरह से उपस्थित करता और इन सब चीजों का लाभ उठा सकता था। किन्तु ऐसा कोई विचार ही मेरे मन में नहीं था। मेरी दृष्टि ही कभी उहाँ नहीं थी। इसीलिए चुनाव लड़ने का विचार तक मेरे मन में न आया। 'जानबूझ और अपना उद्देश्य साधने लक्ष्य, मैं नंगा किया है।' 'पक्ष और मना की राजनीति मैंने छोड़ी है, क्योंकि मेरे स्थान में उगने कुछ बनने वाला नहीं है। यदि कुछ बनना भी तो वह बाहर बनेगा, विनाशक नहीं। मुझे भरोसा है कि लोकनीति में विनाशक बनेगा और अक्षर बनेगा।"

मना और देवधर राजनीति में कुछ घाटा लाने वालों को जे० पी० ने उपमा दी है कि वे नूनी हृदिस्था ब्रह्म रहे हैं और अपने ही रक्त का घातवादन कर चुका ही रहे है। लंबे और विविध राजनीतिक सफरों से गुजरकर

जे० पी० ने यह विधान किया है। तब ही तब घाते और विधान में नहीं राजनीति बननेगी भिन्न होना। यह लोकनीति नीचे ले बनेगी, 'मनी के तृप्तताम पाटी या भावने रामभव पर एक तृप्तताम के गर्भ में पैदा होगा। उन तब में लक्ष्योत्त है। 'मना बरनी को अपनी पदवाचन में।"

जे० पी० ने यह विधान का संनविगत देखा शोक्षता में एक भीम का और मर्यादा को स्वीकार में राष्ट्र लोकशास्त्र में बचन आरपी। मर्यादा हीक रहता। १९६५ राजनीति के गाँव मना उस रूप में सबतण ही मना बचता की प्रतिपाद नहीं रही जे० पी० ने अपने। जिन सर्वोच्च मना और लक्ष्योत्त के लक्ष्योत्त विचार शोक्षता में फिर देना में 'आत्मतपक' कदा भयान का 'उद्देश्योत्त' काप्रेम का तमसरात रूप

वस्तु यह और मना ही अदम्य व उपलब्धता बनना है संपूर्ण शक्ति की म की गई है। पर उपलब्धता मना को लोक शास्त्र में प्रयोग को 'दिश' का सातुनिक भावनीय

में की बुद्धियां उन्हें तजर धरई है
राजनीति की बुद्धियां देखकर उनके
प्रचलन राजनीति छोड़ी थीं
तही जाना कि नाना में नाना जाने
करा परिचयमें नाना जाने या
उनता की विद्याय राजनीति की
थाइला हूं कि हमारे लोग पढ़ा
गा रहे है, जबकि मैं नाना की
र पढ़ा हूं।"

डॉ. प्रो. चार्च और उनके शिष्यों के
विचित्रता की छांव का निदाना
नहीं दीजिए, वे नाना विद्याय ही
ही विद्याय ही है। अभी तरह
राज्य का प्रधानमंत्री पद ही
मेरी तजर धरई पहले से हीं उन
१९४० में कांग्रेस छोड़कर चलना
प गांधीजी ने की अनिच्छा मध्य
ने के मन् १९४२ प लेन म
नाना की जान कही। उनके
हारी बुद्धिही का नाम ले लेता
ही धरई का विद्याय था। उन्हें
उन्होंने बुद्धि और मेरे समाज-
हीने का निबंधन दिशा था।
का प्रधानमंत्री बनना आशा
बनने के लिए ही विद्याय तरह
न उठा सकता था। किन्तु ऐसा
ही कभी कहा नहीं थी। इसी-
न साया राजनियम और
राज्य परिषद नाना की राज-
बुद्धि बनने जाना नहीं है। यदि
ही। मुझे भ्रमण है कि लोक-

राज्य राजनीति की जे० पी० ने
इसमें ही एक का कारवायन
राजनीतिक संघर्षों में युज्यकर

जे० पी० ने यह विश्वास पाया है कि वर्तमान राजनीति तण्ट हो रही है। निर
रही है तथा मान और गिरेगी। तब "इसके मन्त्रों के ऊपर एक नई बुद्धियाइ
ने नई राजनीति जन्मेगी, जो इनमें सर्वथा भिन्न होगी। नाम भी इसका
भिन्न होगा। वह लोकनीति होगी राजनीति नहीं। वह ऊपर से नहीं बनेगी,
नीचे से बनेगी, दिल्ली में नहीं, गांधी-वाव में, मुहल्ले-मुहल्ले में। उनके लिए
मन्त्रालय पार्टी का पाइपबोर्ड हीन देना काफी नहीं होगा और न राजनीति के
रामच पर एक नूतनप देना का परवरण काफी होगा। वह तो जन्मभिन
के अर्थ से पैदा होगा। उन लोकनीति के बीज पर्य भारत की गिट्टी में, और
तब से लवणीन है। उन बीजों को पैदा किया था गांधी ने। और भारत की
परमों को अपनी पदयात्रा द्वारा गांधी-वाव जोन करके उन्हें बोया है विनोबा
ने।"

जे० पी० ने यह जान मन् १९७० में कही थी और सर्वोदय में ही इसी
बाग का अंतर्विरोध देखकर हमें संघर्षजनक दृग् अज्ञेय पाया कि सर्वोदय
संशोधन में मन् सीमा शुरू में ही रही है। प्रादोलन कांग्रेसी सरकार के महयोग
प्रौढ परक्षण की स्वीकार पके नाना था। विद्याय था कि इन तरह भविष्य
में ज्ञान लोकनियम के दबाव से स्वतः राजनीति, लोकनीति में पुनरुत्थक रूप
में बदल जाएगा। सरकार लोकनियम के माझे विद्याय होकर शुरू की। पर
हसा हीन उठता। १९६६ में कांग्रेस का उग तरह दृष्टकर दो दिशाओं में बंटना,
राज्यनियम के भाव शासनमंत्र का दृष्टना हवीं होते जाना, भीमती गांधी का
उन रूप में समतया और फलन: यह प्रत्यक्ष ही जाना कि नीचे से चलने वाली
समाज रचना की प्रक्रिया किस भयंकर दंग में कुदित हो रही है पक्ष में जयप्रकाश
सर्वोदयी जे० पी० में अलग हीन लोकनीति के वास्तविक, यथार्थ पथ पर
चल। जिस सर्वोदय म सरकार की सहयोग और संरक्षण के फलस्वरूप अमरदोष
और अत्याग्रह के गांधीवादी अति शक्ति अस्वीकृत हो चुके थे उन्हें जे० पी० ने
विद्यय संशोधन में फिर से स्वीकारा और इस्तेमाल किया। उसमें जे० पी० को
देना ने 'लोकनियम', कदा और दुगरी और इसमें में ही शक्ति पैदा हुई उगने
शासन को 'इतरहोगी' को भीमान चुकाने रही और हीन बंधे वाद गहननी और
कांग्रेस राज स्थापन हुआ। बड़ा हसा प्रशिाष्ट एक हीन बनता पद ही पथा।

परन्तु पक्ष और मन् की राजनीति से क्या फल निकलना? जे० पी० के
ही प्रथम म जयप्रकाश का प्रथम और पालिका रेखांकित ही जाना है। इसी का
उत्तर है मूर्च्छा अति की मूर्च्छा। पर नाना सर्वोदयी समाज रचना के लक्ष्य
ने ही गई है। पर हसा माध्यम अत्र मानने है। मन् १९७४ में जयप्रकाश के
अग्रमंत्र में ही लोक प्रादोलन शुरू हुआ, उनके परिणामों में सब जे० पी० के
उत्तम प्रयोग को दिना जा सकता है।

सामुनिक भारतीय राजनीति में जे० पी० की जो दन है—पहली, इन्होंने

रचनात्मक कार्य से रहा हो।

ज० पी० ने ध्यान सचर्य से लीकशक्ति को एक तरह दिया हो, परंतु उन्होंने धरते 'आंदोलन' से सत्याग्रह को 'दशाव' में बदलने का जो कार्य किया वह अनंत के लिए स्वस्थकारी नहीं। क्योंकि यह निश्चित संयोग है कि ज० लोहिया और ज० पी० अनंत, समता और स्वतंत्रता के सबसे बड़े आंग्रिक योद्धा और पक्षधर हैं, परंतु दोनों ने समण: 'सिविल नाकरमानो' और 'मांदोलन' जैसे प्रश्नों को लेकर वर्तमान भारतीय प्रजातंत्र को सामा नुकसान पहुंचाया है, वर्तमान प्रश्नों, ऐसे देश, काल और समाज में व्यक्ति को ऐसे दखन देकर जिन्हें बांधे में उनके सभी कुछ पता नहीं है कि, यह कैसे चलाना जाए, इसका संकलन और कर्ता कौन हो, कौन हो। यद्यपि यह सच है कि सिविल नापर-माणी, और आंदोलन के बारे में लोहिया और ज० पी० ने बड़ी महत्वपूर्ण बातें लिखी है, पर इन अर्थों को चलाने वालों की तबियतना वे नहीं कर सके। इसी तबियतना के लिए ज० पी० ने संपूर्ण क्रांति को बहा करी है। पर कृपनाती को यह बात महत्वपूर्ण है कि 'संपूर्ण क्रांति' के लिए कार्यकर्ता क्या हैं ?

विचार और कर्म से अर्थात् संपूर्ण संघर्ष में दो लक्ष्य पूरे किए जा सकते हैं- समाज क्रांति और चित्तशुद्धि। पहला लक्ष्य समाजवादी और साम्यवादी का है, और दूसरा लक्ष्य संघ का है। पर ये दोनों लक्ष्य जिसमें एकाएक हो गए हो वह या गांधी का सर्वोद्यम सर्वोद्यम माने सचकर उद्देश्य नहीं, सचके उद्देश्य की बात केवल निरंकुश तानाशाह ही कर सकता है, सर्वोद्यम अर्थात् व्यक्ति की चेतना में परिवर्तन ! व्यक्ति माने जिसमें कुछ अतिरूपरत होता है। जो प्रत्येक में एक है - तानात्र, निराड और पयकाशित को भी प्रकाशित करना है, व्यक्त करता है यही व्यक्ति, 'रूडिनिलुपल' नहीं।

ज० पी० की लोकशक्ति का बाहक पड़ी व्यक्ति है। पर इस व्यक्ति की रचना कैसे हो ? रचना उसी से संभव है जो व्यक्ति को 'कलनाता है, पैदा कर देता है, फिर उसका संवरण भी कर लेता है, जैसे गुरुन। व्यक्ति के लाने और संशुद्धि दोनों का काम नहीं करता है। गांधी भी जो पड़ी व्यक्ति थीं—जक्ति फलाना और फिर बदल लेना, आंदोलन करना और आंदोलन को संपद लेना।

जयप्रकाश शक्ति को पैदा करने, फलाने की ताकत तो नमान है, जैसे मिश्र आंदोलन, पर व्यक्ति का संवरण करना उसकी शक्ति से बहर है। विसरो-मंभी हुई जक्ति अंततः अपने आगामी ही जन्माती है। वर्तमान राज-नीतिक संदर्भ में क्या प्राविंचित ताकतव्यक्त व्यक्तित्व को ही जन्माते नहीं जा रही हैं ?

दृष्ट

सन् १९३० तक प
दुष्कारणित गांधी के
याकतवादी था जि
थी। इन दुवर्गों में
नरेंद्र देव, प्रमुक्त म
पटवर्धन, परंतु
विक्रमदास, आना म
कि गांधी ने हमारे
लन से जहड उर व
साध उसमें आधि
अब तक पूजीपनि
नहीं निकलिया, श्री
ही रहेगा। इसमें
और नए तर्कों की
कुछ नहीं है और प
लागू ही रहा था।
२/आगम १९
जैके एक जन्म का
अने (बाहे इर-मो-म
विश्वित करन थी
बांधी विचारों के
ने भेज पड़्यंके के
और देग अट-आउ
आक इसी गम
में लेनिन की मृत्यु

का नेता या स्थानित हमारे का था ट्राटस्की । ट्राटस्की लेनिन का साथी ही नहीं, उसका दायाँ हाथ था । वह लेनिन के काम को चाहे बढ़ाना चाहता था । उसी ने लेनिन को यह बात भारत के राष्ट्रीय छांदोलन के तंत्र में घुहरवाई की कि हर कोमिन्तर्न को अपनी 'माइन्डिरी' मुखावर पहले राष्ट्रीय छांदोलन को सफल बनाना होगा । शीघ्र इस विचार के विनाशक स्थानित की प्रभुता ने 'कोमिन्तर्न' की राष्ट्रनीति में माधुल परिवर्तन कर दिया । उसने राष्ट्रीय छांदोलन के चला चल दिया कोमिन्तर्न की नीति को । अर्थात् कोमिन्तर्न अब अंतरराष्ट्रीय सम्प्रदाय की संस्था न रहकर हम की गणराष्ट्र नीति की दृष्टि मात्र बनकर रह गया । इस तरह स्थानित ने अपनी अलग कार्यवाहियों में गणराज्य के समाजवादी छांदोलन को आहत किया । इसी की देन थे क्रिस्चर और मुसोलिनी, गणराज्य की भ्रूणहत्या से अपने दृष्टि नानाशाह । उन्हीं के अनुक्रम कोमिन्तर्न ने माना कि भारत में कांग्रेस एक प्रतिष्ठावादी गणराज्य है और गांधी वर्तुला सीद्ध है ।

उसी गांधी की ताकत और प्रभाव को अपनी तरह के इस्तेमाल करने के लिए इस मुनाशकित ने कांग्रेस के भीतर ही कार्यम सोशलिस्ट पार्टी को स्थापना की । मनलक्ष गांधी ब्रूजंगा है उसे अतिकारी बलाघी, पही उद्देश्य था इन तन्त्रुत्यों का । शीघ्र ऐसा ही काम किया था १९२६ में लेनिन ने । उन्हींके एम० एम० गण को गांधी के पीछे लगाया । दो परभाव थे उनके । पहला, गांधी का नेतार कथे कि वह सोशलिज्म नेतृत्व की स्वराज्य पार्टी का सम्भार करे । दूसरा, सोशलिज्म जानि की आलोचना गांधी बंद करे । स्मरण रहे कि इस प्रसंग में लेनिन सोशलिज्म नेतृत्व की गणराज्य में ही एक विशेष गणराज्य ब चुके थे ।

परन्तु गांधी को कोई इस तरह पाठ पढ़ाया था इस्तेमाल कर सकें, यह सम्भव था । गांधी ने स्पष्ट कहा—कोमि में अगण्य, दृष्टि और गुण पदस्थ का कोई स्थान नहीं ।

इस मुनाशकित ने गांधी को द्वारा प्रभावित करना चाहत गई १९२४ में गणराज्य में प्रथम गणराज्यवादी गणराज्य द्वारा गणराज्यी कार्यक्रम स्थापना—वर्ग-संघर्ष, गणराज्य युद्ध, शोषक और शोषित गणराज्यवादी व्यवस्था बनाम पुत्रीवादी व्यवस्था, इत्यादि—भौतिकवाद, आदि-आदि ।

गांधी ने गणराज्य को सब उधार ली हुई जानें है । गणराज्यवादी मार्क्स के नहीं मूल हृष्टा । यह मूल हृष्टा जानि 'बोल्शे' में, उतनिपद से — ईश्वरवाच्यइच्छा-संघर्ष में । हमने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों की बुद्धि चकरा गई । साथे चलकर हमके दो फल हुए—पार्टी छोड़ दो या पार्टी हटय जा ।

दो एम० एम० तन्त्रुदिवाद ने १९३७ के समय में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी छोड़ दी और केरल के चार सशस्त्रीय माण्यवादी एल के संघ हुए । साथ सदस्य थे—कृष्ण गिळबर्दी, एम० जी० शेखर के० दापोवरन । पर इन मारी तारों में थे तन्त्रुदिवाद एक ऐसा विशेष नाम था जिसने यह स्वीकारा है कि "गणराज्य गांधी

के व्यक्तित्व और १९३७ में ही संप्रदाय में १९३७ वारह मान का अलग आक्रामक किया । उन्हीं के कार्य-काल के अंत में १९३७ के सम्भार एम० एम० ने गांधी की स्वराज्यवादी और गणराज्यवादी पक्ष-विरोधवादि पक्ष गणराज्य की पक्ष मकते है ।

"जब गांधीवादी नेतृत्ववादी बदलि उन्हींकी अनुष्णनी क पद वापसी गांधी का प्रेम समाजवादी और सर्वसम्भूत होगा है किन्तु हम गांधी समाजवादी पक्षी के पक्षी घाना में ही एम० एम० के दृष्टि-समक पक्षि आराधनीय गणराज्य की आका में उन्हींके फिर गणराज्य की

मन्त्रुदिवाद ने गांधी के और न 'पाठ' काट न लेकर हीन भौतिकवाद प्राप्त हुए प्रमत्त नेताओं के है । १९३९-३९ गणराज्यवादी तन्त्रुदिवाद ने उन्हींके

सरकार की कर्मोमी सरकार द्वारा
साक्षात्जन किया गया था कि सरकार
के। चीन नहीं हुआ। कर्मोमी की
की मान्यता प्राप्त की। अब हमें लाना
की हकूमत का बर्तास्त कर दिया।
दिले अवशोक कर्मो का हुंसा। यहाँ-
२२ में वे वल के तन्मया और वल
में सकल हो गए, जिन्होंने १९५२-
५३ में चीनी आक्रमण के विपक्ष
में कर्मो के सवाल पर बहस का
और कर्मो वल नेमी दक्षिणियों
पाठ पढ़ना इन का एक विवा
मंडे के जाने न केवल कर्मो की
लेख उस संस्थापकी प्रतिष्ठावादी
र हो गए किन्तु के उस समय तक

कर्मो वल संघर्ष और भा मयिक
संस्थापकी साक्षात्जन में नेमी
गया। तो तन्मया वल के साक्ष्यवादी
ने संस्थापकी तन्मया को का जो
बहुत पाठक मयिक और तन्मया
का पढ़ना तथा कर्मो साक्ष्य-

के साक्ष्यवादी कर्मो के बीच उभार
की वल तन्मया वल की विचार-
विचार का संचार हुआ। तन्मया
वल के चीन मयिक वल तन्मया
र वल के चीन का विचार और

साक्ष्य के वल विचार में भारत की
मयिक कर्मो और वल का न ग
ताम म प्रथम हो गया। तन्मया
का वल कर्मो विचार। तन्मया

विचारक और संस्थापकी दोनों है। इनका कहना है कि साक्ष्यवादी वल का
पुराना तन्मया संस्थापकी पाठ म ही समाजवाद की स्थापना में विचारक करने
लगा था। तन्मया विचार इन संस्थापकी करते थे। इनका विचार है कि अंततः
समाजवादी समाज की स्थापना के लिए संघर्ष के बहुत सड़कों पर संघर्ष करना
हो गइया।

पर मूल बात यह है कि भारत की साक्ष्यवादी पार्टी का बहुत बड़ा भाग
सम भक्त था, और साथ ही वल में चीन भक्तों की भी कर्मो नहीं थी। जब
तक मय और चीन में विचारक भी तब तक भारत की समाजवादी पार्टी में भी
एकता बनी रही। बाद में मास्को भक्तों और चीन भक्तों में महसूसित्व
अवभव हो गया। यह बात वल ने भी स्वीकार की है और स्वयं तन्मया वल ने
अपने कर्मो साक्ष्यवादी कर्मो ने भी। १९६२ के रूप-चीन विवाद के संदर्भ में वल
लिखते हैं, "उत्ती में भारतीय समाजवादी पार्टी में भी कुछ एक गईं। जो चीन
की साक्ष्य के समर्थक थे वे बाहर हो गए।"^१

साक्ष्यवादी पार्टी की स्थापना पर चीन में प्रचलित व्यक्त की गई, और
कर्मो इनकी लिखा की गई। चीनी नेताओं और समाजवादी कर्मो ने इसी वल को
भारत की सचो साक्ष्यवादी पार्टी कहा, तथा वल को 'दाला' और 'तन्मया-
वादी' कहा और कर्मो के प्रति बहुत भावित किया। इस बीच भारत की साक्ष्य-
वादी पार्टी और वल के वल तन्मया वल ने कर्मो की चीनी कर्मो का विशेष
गर्हो किया और वल वल म दाला कि वल वल के साक्ष्यपुत्र नहीं है।

वल के वल संघर्ष का सभ्यतम उदाहरण उस वल तक १९६३ में चीन ने
कर्मो की वल नहीं थी। चीन के साक्ष्यवादी कर्मो ने यह घोषित
प्रतिपादित की कि साक्ष्यवादी, वल और भारत में साक्ष्यवादी कर्मो का विचार
देना चाहिए। संघर्ष म वल वल भारत में साक्ष्यवादी कर्मो होने जाने थे। उस पर
समाज की कर्मो छाया संघर्ष रही थी। स्थान-स्थान पर साक्ष्यवादी साक्ष्यवादी
कर रहे थे। चीन नहीं चाहता था कि साक्ष्यवादी पार्टी चुनाव में भाग ले।
जब चाहता था कि पार्टी का नेता वल वल और वल कर्मो में कर्मो पड़े।

परन्तु तन्मया वल के विशेष प्रवर्तों ने साक्ष्यवादी वल ने चुनाव में भाग
लिया और चीन की वल के विचार संघर्ष कर्मो वल का विचार भी किया।

१. चुनाव १९६७ की चीन के 'वीपुल कर्मो' ने एक लेख में साक्ष्यवादी कर्मो
को मलमला और कहा कि भारत में साक्ष्यवादी, साक्ष्यवादी, तीव्रवादी, वल-
वाद चीन कर्मो संस्थापकी का वल वल। और साक्ष्यवादी विचारक कर्मो
की। इस कर्मो के संघर्ष की वल मयिक और वल मयिक वल कर्मो वल
वे किन्तु कर्मो वल और तन्मया वल का मार्ग मयिक लगता था। 'वीपुल कर्मो'

१. 'वृक्ष का फल' विचार, पृष्ठ १० वल, पृष्ठ ६०

की व्यवहार के अनुसार साम्यवाद के नेतृत्व में नरमपंथवादी में एक हिमालय विद्रोह शुरू किया गया। परंतु यह विद्रोह कुचल दिया गया। संयोग से कुचलने वाले व्योमति अनु ही थे।

चीन की व्यवस्था ने और भारत के उग्र मार्क्सवादियों ने इस पर सीधे प्रति-क्रिया व्यक्त की। उन्होंने कहा कि मार्क्सवादी पार्टी का नेतृत्व भी इतिवादीयों की तरह गिरगिटाने लगा है। वह भी संगोपनवादी हो गया है। खुली क्रांति से बचना है। नरमपंथवाद ने इसका खुलकर प्रतिवाद किया। उन्होंने तत्काल-वादियों को 'नैतिकीय और दुस्साहसी' कहा। उन्होंने कहा कि हम मंगरीय पद्धति में विश्वास विश्वास नहीं करते। हम इसे केवल एक साधनगत समझते हैं। लेकिन हम यह मानते हैं कि अभी हमारी पार्टी बहुत छोटी है। अभी वह समय नहीं आया जब हम मकानापूर्वक द्रव्य क्रांति का विस्तार करें। इन्होंने चीन की साम्यवादी पार्टी की भी आलोचना की कि चीन की पार्टी भारत की परिस्थितियों का गलत अनुकूलन कर रही है।

मकानवादीयों और चीन ने नरमपंथवाद की इस नीति पर गंभीर प्रहार किए। अगस्त १९६७ में ही 'पीपुल्स रिथ्यू' ने एक लेख में लिखा, "मार्क्सवादी पार्टी में जो भी क्रांतिकारी सदस्य हैं, वे पार्टी से अपना संबंध तोड़ दें। और मार्क्सवादी-लेनिनवादीयों को एक नई पार्टी बनाएं जो मार्क्स-लेनिन के विचारों पर आधारित हो।"

इस चीन सांघ की घटनाओं ने नौकरा साम्यवादी पार्टी के जन्म की प्रक्रिया को और तेज कर दिया। सांघ में सिरो-माकुलन के क्षेत्र में स्थानीय क्रांतिकारी खुली क्रांति की संज्ञाएं कर रहे थे। नरमपंथवाद उस नीति के विरोधी थे। उस तरह पार्टी के अंदर मार्क्सवादीयों को उस वान में सब किसी तरह की फोड़ बंका नहीं रह गई भी कि मार्क्सवादी नेतृत्व को कुछ के दवाओं में भिन्न नहीं है। अगस्त १९६६ को कलकत्ता के मैदान में हजारों लोगों के बीच नातू साधवाल ने नौकरा साम्यवादी पार्टी—मार्क्सवादी लेनिनवादी पार्टी की स्थापना की घोषणा की।

इस पार्टी का उद्देश्य और लक्ष्य एकदम स्पष्ट था। मार्को के आदेशों और सिद्धांतों के अनुसार गांव-गांव में घरों के बाग जमींदारों-साहूकारों का खंड करना और गांव में अपना 'वेम' बनाना और फिर गांव बढ़कर अहरों को घेरना। इस क्रांति के मार्ग अभिया नहीं भूमिहीन किसान होंगे।

परंतु यह नीति चली नहीं। १९७१ में लोकसभा के चुनाव हुए। उसके साथ ही पश्चिमी बंगाल में विमान गण के भी चुनाव हुए। अंड में श्रीमन्नी गांधी विधान व्यवस्था में विजयी हुईं। वे मार्क्सवाद को कुचलने के लिए कृत संकला थी।

घटनाओं के इस संक्षिप्त विवरण से, बल्कि इन्हीं घटनाओं के कारण ही भारतीय मार्क्सवादी दल (पी० पी० एम०) का निर्माण हुआ और पापसी

संपर्क का भी नेता के रूप में संघर्ष करने में कोचीन में परिपक्व हुए घोषणा यह स्थापना की से बाहर वा मार्क्सवादी का पापसी द्वारा किया

यह संघर्ष करने इन के अनुसार विकास के साम्यवादी कारणों त मायाज्यवा विरुद्ध भी है कि राज्य के मुद्दों पर है कि इन

नरमपंथवादीयों की संविधानिक संगठनों, मु करता है। है

—

सभी निय

—

रोकने के लेने की प्र

१. भारत

में नवमूलनवादी में एक विस्मय विरोध किया गया। संयोग में कुचलने वाले

य मानसवादीयों ने इस पर तीव्र प्रति-
वादी पार्टी का नेतृत्व भी छात्रवादीयों
संघर्षवादी हो गया है। सभी पक्षों
कर प्रतिवाद किया। उन्होंने तत्काल-
कहा। उन्होंने कहा कि हम संघर्ष
हम इसे केवल एक माध्यम-य समझते
हारी पार्टी बहुत छोटी है। सभी वह
इसके काल का सिद्धांत करें। उन्होंने
ना की कि चीन की पार्टी भारत की
है।

पाद की इस नीति पर सशक्त प्रहार
'यू' ने एक लेख में लिखा, 'मानस-
वे पार्टी के रूप में संबंध तोड़ दें।
ई पार्टी बनाएं जो मासों के-युग के

नापावनी पार्टी के जन्म की प्रक्रिया
कुतन के धर्म में स्वाभाविक क्रान्तिकारी
विवाद इन नीति के विरोधी थे। इस
काल में सब किन्हीं तरह की कोई संका
रुम के दलालों में भिन्न नहीं है।
हजारों लोगों के बीच तन्मूद्रिवादीय
सैनिकवादी पार्टी की स्थापना की

म स्पष्ट था। भासों के आवेशों और
ने हाग जमींदारों-माहुराणों का अंत
और फिर आगे बढ़कर २५ हरो को
भूमिहीन किसान दोगे।

सोकसभा के चुनाव हुए। इसके साथ
चुनाव हुए। रुंड में धीमन्दी माधो
बाद की कुचलने के लिए रुत संकला

विकि इन्दी परतनाओं के कारण ही
) का निर्माण हुआ और मापनी

संघर्ष का दौर एक नए राजनीतिक परिवेश से शुरू हुआ। मानसवादी दल के
नेता के रूप में तन्मूद्रिवाद ने सी० पी० आई० भारतीय साम्यवादी दल से सीधे
संघर्ष करने हुए उनके और अपने दस्तावेजों को पेश किया—'अक्तूबर १९७१
से कोचीन में हुई इक्षिपणधी साम्यवादी दल की कार्यस के लिए वल की राष्ट्रीय
परिषद् द्वारा तैयार किए गए राजनीतिक संकल्प की केंद्रीय राष्ट्रीय उद्-
घोषणा यह है कि भंड में कांग्रेस के नेतृत्व में वामपंथी लोकतांत्रिक सरकार की
स्थापना की जाए, यद्यपि इसे वे अधिकतम रूप से कार्यस के भीतर और कांग्रेस
में बाहर बापांथी लोकतांत्रिक शक्तियों का संगठन कहते हैं।... इसके विपरीत
मानसवादी मानसवादी दल प्रतिक्रियावाद के उस समग्र शिपि के विरुद्ध संघर्ष
का आवाहन करता है जिसका प्रतिनिधित्व समस्त तर्काकृद् वर्गों के सभी दलों
द्वारा किया जा रहा है।'^१

यह मंदिर मरीच है कि तन्मूद्रिवाद मानसवादी विचारक होने के साथ ही
सर्वे दल की संगठनात्मक संरचना के प्रमुख व्यक्ति हैं। अपने वर्तमान विचारों
के अनुसार वह श्रमजीवी वर्ग के नेतृत्व में श्रमजीवी वर्गों के संयुक्त दल के
विकास के लिए तन्मूद्रिवादी वर्गों के उम वर्ग के सहयोग की अपेक्षा करते हैं जो
साम्राज्यवाद, सामंतवाद और एकाधिकारवादी पूंजी का विरोधी है। वह विभिन्न
कारणों में समाज के उन व्यक्तियों और वर्गों से सहयोग की कामना करते हैं जो
साम्राज्यवाद विरोधी और सामंतवादी विरोधी है तथा पूंजी के एकाधिकार के
विरुद्ध लोभी संघर्ष के लिए तैयार हैं। तन्मूद्रिवाद का राजनीतिक विचार
है कि राष्ट्र के इन तीन वर्गों के विरुद्ध संघर्ष का व्यापक पंथों श्रमजीवी वर्ग
के मुद्दों और स्वयं नेतृत्व से ही तैयार किया जा सकता है और यह आवश्यक
है कि इसका आशय मानसवादी-लेनिनवादी विचारवादा हो।

तन्मूद्रिवाद का विचार है कि इनका मानसवादी साम्यवादी दल दोनों कांग्रेस
दलों और तत्काल वर्गों के अन्य दलों के विरुद्ध लोगों के राजनीतिक और
संविधानिक अधिकारों के लिए युद्ध होना और अन्य मरुके जोरतांत्रिक दलों,
संगठनों, गुटों और व्यक्तियों को इनके विरुद्ध संघर्ष करने के लिए प्रामाणित
करता है। इसके लिए उन्होंने अपने दल की और से इन पंथों की मांग की
है :

- विचारक विरोध प्रतिनिधित्व, शोकांगिक सुरक्षा अधिनियम आदि जैसे
सभी विघ्नकारी कानूनों को निरस्त किया जाए।
- मजदूरों द्वारा की जायेवाली हड़तानों और अन्य नमस्वित संघर्षों को
रोकने के लिए प्रतिबंधात्मक आदेशों और सुरक्षा प्रक्रियाओं आदि का अन्वय
लेने की इच्छा को अंत कर दिया जाए।

१. 'भारत के राजनीतिक दल', तन्मूद्रिवाद, पृष्ठ ६०

मजदूर वर्ग और बेरोजगारों के अन्य समुदायों के प्रति भी उनका हम ऐसा या जिसमें व्यवहारनः पूँजीवादी वर्ग को गन्नायना मिली । इस्टीमिप (न्याय) का उनका सिद्धांत, राजनीतिक किये-कलाप के संभालन के लिए कतिपय नैतिक मूल्य-मान्यताओं के पालन का उद्देश्य था। अतः, अपने गैर-संप्रदीय कार्यकलाप (रचनात्मक कार्यक्रम और सत्याग्रह) का अपने सहकारियों के समदीय कार्य-कलाप के साथ अक्षयपूर्वक मेल बैठाना, मनु के विरुद्ध जनता का प्रत्यक्ष आंदोलन चलाने हुए । उसमें भागभीता भी करते जाने का विविष्ट सिद्धांत ही गांधीवादी तरीका था । ये सभी व्यवहारनः पूँजीवादी वर्ग के लिए बड़े उपयोगी सिद्ध हुए, क्योंकि इनमें (क) अम जनता साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष में उनारी गई; और (ख) उसे अतिशयोक्ति जन-सामंजस्य प्रकृत करने से रोका गया । जनता को उभारने और साथ ही उस पर संकुच अपने को, साम्राज्यवाद-विरोधी प्रत्यक्ष संघर्ष छेड़ने और साथ ही साम्राज्यवादी जगत्को के साथ सम-सौदा-वार्ता चलाने जाने की गांधीजी की धारणा न उतनी पूँजीपति वर्ग का निर्विवाद नेता बना दिया । ऐसे नेता में वर्ग के सभी गुटों और समुहों को विश्वास था, हमीनिप पर हज़े एकताबद्ध और गतिप कर सकते थे ।

आखिरी बात यह है कि पूँजीवादी वर्ग के अग्रणी नेता के रूप में गांधी जी की भूमिका को यह अर्थ में समझ लेना चाहिए कि वह गया और ही सकारण पर पूँजीपति वर्ग के साथ रहते थे । अतः वह उतनी लचीले हैं, और उस वर्ग की दिगके बड़े निष्प, दार्शनिक और पथ-प्रदर्शक थे, लुडी है कि कई राजानों के संबंध में वह कलापन में होकर, अतः अनेक ही सावाज उद्यते रहे । ऐसे सभी मोकों के लिए उनके और बाकी लोगों में यह आशापी समझौदा या कि सहायी रूप में वे हत्या-प्रलय भागी पर चलेंगे । वह बीच हमे बार-बार देखने की मिलती है । असहयोग आंदोलन के बाद के वर्षों में (जब स्वराजिनों और पञ्चायतनियमनों में अंग-विभाजन हो गया था), फिर १९३२-३३ के विविध अग्रणी आंदोलन के वर्षों में, उसके बाद कई बार नृपीप विरुद्ध मुक्त के दिनों में; और अन्तः स्वतंत्रता-प्राप्ति के कुछ महीने पहले और उसके कुछ महीने बाद की अवधि में ही हरे उदरोक्त कथन को स्पष्टता देने की मिलती है ।

" उनके जीवन के अन्तिम दिनों में तो हम खाम तोर से हम चीज को पाते हैं । उस समय उनका आदर्शवाद 'लौहपुरुष' सरदार वटेल के 'व्याथहात्मिका-वाद' के साथ टकराया था । उसवारी बुद्धिजीवी पंडित नेहरू तथा कई अन्य लोगों के सामुनिकतावाद के साथ उनको टकराई हुई थी । आजादी के बाद के महीनों में उनके महाभियोगों के बीच वरुनी हुई आई है उनके जीवन को दुःखद मृत्यु से पहले ही पुनः बना दिया था ।

" इस लार्ड की देखने पर ही हम गांधी जी का सचमुच अत्युन्नत तथा हर पहलू में अक्षयकम अंग पाते हैं । वह कोई हम सामंजसिकता को अभिव्यक्ति थी

हृदय से तथ्यः

कि कतिपय नैतिक में पूँजीपति वर्ग में वह उनके रा

" तिन दि

था, गांधी गण-

साम्राज्यवाद में

जाते हुए हम उ

था, हम समय

पूँजीपति वर्ग के

संघर्ष के अक्षय

पालन कर जन

अपने साम्राज्यवा

जा सकता था

गई । इसके पाल

हस्ता हरेमान

जगके राज्य संघ

प्राप्ति का दुःख

प्रतिनिधि (पंजी

एव जनता के प

लने । अतः वे अ

" वर्ग के क

में ह्या जनैवाले

गांधी जी अम भी

विरोधी संघर्ष के

" अतः हम

आदर्शवाद साम

एक व्यवहार्य प्री

दिनों में पूँजीपति

वाद के काल में

अन गया था ।

सामुद्रिकता

वाद का सहारा का

इसलिए कि गांधी

उच्छासुमार कुल

है । लेकिन समुद्रि

निर्बंध बृहत् का फल

एक ही मर्म में विश्लेषण रहा है।
यह प्रथम प्रयोग था और तबसे
आ 'कृत' का फल और दूसरा
यह तब तक में तीन तन्त्रुद्विवादों
शेखरों की चीन प्रायद्वीपवासियों
की प्रतिक्रियाकारी, तूनीवादी
की प्रायः न ही कोई प्रायद्वीप

प्रतिष्ठापक सिद्ध कि परिवर्तन
है। इस सक्ति वाहन है—

विश्वाम के साथ शिक्षा या वि-
कक वापस का विनाश करके
जलाना। यही भावना की मूलतः
रखने वाले राज्य का निर्माण
इसके बाद में यद्यपि भी नया
ले यह भावना कल दिशा या 'म'
की जतना है, तब तक अधिकांश
प्रभाव ही नहीं है।

के समाजवादियों ने इस वाहन
साथ रखने है, परंतु साम्य-
वादी नया है कि समाजवाद
रखने या अस्मिता प्रकृत का
नया वाणी है, जो साम्य के
प्रायः ही नही जाति-प्रणाली
का है।

सर्वप्रथम का 'मित्र' विचार है।
हंद का वा वाणी यहाँ एक वाद
रखने लगे। इसका फल यह
में है और इनके बाद अन्त
के हीनता से न ही साम्य
वाक भी कोई नहीं पहचान है
यह मान लिया कि समाज की

शास्त्र प्रायद्विवादों में ही परिवर्तन होने हैं अतः अगले समाज के विचारों पर
प्रथम ध्यान हो जाता है, तो फिर इन कभी 'दल' नहीं कि वहाँ यह भारत के
विश्व मर भी है। अगले के भारतीय समाज की आगे मानसिक अवस्था व
उत्प्रेक्षे साम्यवादी विचार का मध्यमन करने ना इ-है पता चलता कि हमारे
समाज के सदियों ने आती साम्यवादी विचारधारा में बुद्धिपूर्वक परिवर्तन जाना
छोड़ दिया है। उन समाज की वाह्य परिस्थितियों में चाहे जितने परिवर्तन
हो जाएं, लेकिन मध्यम-वृद्धिवादी यह अपने विचारों में परिवर्तन नहीं करता।
नई परिस्थिति के अनुकूल यह नए विचार पैदा नहीं करता, न धोरा से यह
रहीबार करना है। पुराने विचारों के निपके रहने की उसकी प्रवृत्ति है। यह
राष्ट्रीय समाज की मानसिक जड़ता है। इस लीइन के लिए उसके अन्तःकरण
में अन्तःकरण पैदा करनेवाले व्यक्ति भी पहले जरूरत है। राजा राममोहन राय
ने लेकर देगा और गांधी तक यही मूल्य प्रयत्न हुआ है। अन्तःकरण बुद्धि के
निष्ठापक कर्तव्यों की परिचर्यता है यही। क्योंकि तन्त्रुद्विवाद यह है कि हमारे
समाज की मानसिक अवस्था यूरोप के मध्ययुगीन या उसके भी पहले के
समाज की मानसिक अवस्था जैसी है। यहाँ के लोगों ने अभी दार्शनिक यूरोप
को यथोचित साम्यवादी क्रांति की कल्पना या लोगों का प्रकृत 'मित्र' प्रकृत
अभी तक साम्यवादी क्रांति में नहीं समझा है। ऐसा समाज में क्रांति लाने को
इच्छा रखने वाले ही तन्त्रुद्विवाद की यह ध्यान में रखना चाहिए कि समाज के
उत्थार में आते परिस्थितियों की प्रवृत्ति उनको विलंबी विचारधारा व विकृत
भावनाओं को मूल भाषा पहचानी है।

गांधी जी और इनका बाद के लेखक भी तन्त्रुद्विवाद की यह धार
रखना चाहिए कि दार्शनिक यूरोप के देशों में राष्ट्रीयता के साथ-साथ अन्तःकरण
और उत्साहवाद भी जन्म हुआ था। यह राष्ट्रीयता संसार के लिए एक नई
वस्तु थी। राजा और साम्यवादी के स्वयं पर इनके राष्ट्र और जनता की
प्रतिष्ठा थी। उन तक जनता का प्रमुख स्थापित नहीं हुआ था। तब तक
राजा और जनता का संबंध नहीं बदल तब तक साम्यवादी युग की राष्ट्रीयता की
प्रतिष्ठा न हो पायी। यह राष्ट्रीयता व्यक्ति के मूल्य और मानवता की तुलना
में विश्वास रखती थी। समाजतः इसका बीज मंत्र था। इसने प्रकृत का
ध्यान राजा दरबारों में हुआकर जनता के जीवन, उनकी भागा और कला पर
कीर्ति लिखा। उन्होंने यह प्रयत्न किया कि जनता साम्यवादी की प्रेरणा प्राचीन
काल में धर्म के विधानों भी यह तब तक के राष्ट्रीयता में मिले। राष्ट्रीयता मानने
माने 'जीत', अपनी धनी के मूल में उठता। परंतु यही मूल वाक भारतीय
साम्यवादियों के लिए 'परिस्थितिववाद' है।

जब एक विचार एक देश में मकल होता है और नई अर्थनीति और राज-
नीति में परिवर्तन होता है तब उन्हीं देशों में स्थिति के परिचय न होने पर भी

यह विचार फैलने लगता है। और यदि यहाँ का राजनीतिक जीवन कमजोर है और अर्थनीति नहीं बदलती है तो इस राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति सांस्कृतिक क्षेत्र में हीनी है। भारत में ठीक वही दृष्य है—इसे देखना चाहिए।

जो व्यक्ति पक्षपात और झारू के बिना विचार कर सकता है और अपने समय से ऊपर उठ सकता है, उसकी मातृभूमि कहीं भी नहीं है और सर्वत्र है—यह है भारत की राष्ट्रीयता की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति यह सभ्यता के शाश्वत मूल्य की खोज में और उनकी प्रतिष्ठा में तत्पर है।

भारत में भावसंबन्ध का योग नया ही सकता है, इसका प्रयोग नया है, इसका उत्तर अब तक केवल आचार्य नरेंद्र देव ने दिया है। काश्मिरी, असेमियादि जैसी भावसंबन्धियों ने देखा होता :

भारत की स्वीकार्यता, और लक्ष्य आध्यात्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में है, राजनीतिक क्षेत्र में नहीं। हमारी कांति की परिभाषा है स्वतंत्रता का प्राप्ति कर लेना और स्वतंत्रता का फल है स्वतंत्र हो जाना !

तिलक, गोविन्द, टैगोर
ने यहाँ राष्ट्रीयता का
सा। साधारण 'भारत'
राज्य की कृत्रिम प्र
एक स्वाभाविक, मह
वी मानव और 'व्या
भी माना है कि यहाँ
है। राष्ट्र-देश-पाल
का अर्थ, भावसंब
अतः उनकी रक्षा त

श्रीयोगेश्वर युग
के फलस्वरूप राज
अनेक देश यूरोप के
पर स्थापित हो गए
युगल साम्राज्य के
राज्य स्थापित किए
हथिया रिया। प
नहीं कल्पनी थी।
यहाँ तक कि यह प
अप्रेत यहाँ आते
और यहाँ बस नहीं
और कानो की
की जाती थी। क
हस्तक्षेप किया नहीं
मान से यह इतना

निर्भय ब्रह्म का कल

ब्रह्म का राजनीतिक जीवन कमजोर राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति सांस्कृतिक है—इस देगना चाहिए ।

बना बिना कर सकना है और अपने मानसुक्ति वही भी नहीं है और सर्वत्र सांस्कृतिक अभिव्यक्ति । यह सम्मता के त्रिष्टा में तत्पर है ।

ही सन्दर्भ है, उगका प्रयोग क्या है, रेंद्र देव में दिया है । क.ए. उग ३३ :

साम्प्रतिक हीन सांस्कृतिक क्षेत्र में है, दे को परिभाषा है स्वयं की प्राप्ति ही जाता ।

तेरहवा प्रध्याय

राजनीति से राष्ट्रीयता : दीनदयाल उपाध्याय

तिलक, गोळवे, टैंगर, शरदित, गावी, सुभाषचंद्र बोस, जयप्रकाश, डा० लोहिया ने यथा राष्ट्रीयता को विशेष रूप से फैलाया किन्तु उनका भव्य अ-राजनीतिक था । सामान्य 'जन' और उनकी 'भाषा' उन राष्ट्रीयता के प्रणे थे । ये पुस्तक राज्य का कृत्रिम और मानविक मानते हैं । राज्य के ठीक विपरीत राष्ट्रीयता तथा स्वाभाविक, राष्ट्र और मौलिक भव्य है । इन पुस्तकों में राष्ट्रीय जन समग्र को मानव और 'व्यक्ति' के बीच की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी माना है । और यह भी माना है कि यह समाज राजनीतिक न होकर सांस्कृतिक और साध्यात्मिक है । राष्ट्र देग-बाल और स्वभाव के अनुसार एक दूसरे में भिन्न होते हैं । प्रत्येक का अपना मापदंड होता है । प्रत्येक राष्ट्र अपना रूप में पवित्र है । स्वतंत्र है । अतः उनकी रक्षा होनी चाहिए ।

धोलायिक युग में माने-माने राष्ट्रीयता के राजनीतिक स्वरूप की स्वीकृति के फलस्वरूप साम्राज्यीय भा संगठन हुआ । धीरे-धीरे एशिया और अफ्रीका के माने-देश यूरोप के अधीन ही गए । यूरोपीय यूजीवाट का प्रभुत्व सारे संसार पर स्थापित ही गया । भारत में अंग्रेजी राज १६वीं सदी में स्थापित हुआ । मुगल साम्राज्य के टिप-गिन होने पर अंग्रेजों और सिखों ने माने-अपने राज्य स्थापित किए, किन्तु अंततः अंग्रेजों ने उन्हें जगाकर सारे भारत को अधिपति किया । पारंपरिक में ईस्ट इंडिया कंपनी भारतीय जीवन में हस्तक्षेप नहीं करती थी । उनमें केवल जमीन की व्यवस्था में बदल-बदल किया था । यहां तक कि यह पादरियों का ईसाई धर्म का प्रचार नहीं करने देती थी । जो अंग्रेज यहां आते थे वे यहां किसी तरह की जयराज भी नहीं करीद सकते थे और यहां बस नहीं सकते थे । नीलधो और पंडित मुकदमों का फैसला करत थे और अंगरेजों की ओर ने संस्कृत, अरबी और फारसी की शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी । कंपनी के अधिकारी अंततः थे कि यहां के सामाजिक जीवन में हस्तक्षेप किया नहीं कि यहां राष्ट्रीय भावना जागृत होने लगी । उस राष्ट्रीय भाव से यह इतना विश्वरा-दुटा देग एवला की ओर में बंध जाएगा और अपने

सक्रिय भाग लिया था, नहीं बड़ी गहराई से यह महसूस किया कि हमारे राष्ट्रीय जीवन में ही कोई बुनियादी कमी या खर्च है, जिसके कारण हमें इस तरह पराधीनता का मुँह देखना पड़ा है। डॉ० हेडगेवार ने इसके ऐतिहासिक कारणों पर विचार किया और इस नतीजे पर पहुँचे कि राष्ट्रीय चेतना का प्रागव ही हमारे एतन का मुख्य कारण है। डॉ० हेडगेवार ने यह भी महसूस किया कि समाज में राष्ट्रीय चेतना जगाने तथा एकता और चरित्र निर्माण के कार्य का साधारण इत देश की प्राचीन उदात्त संस्कृति ही हो सकती है। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि अपने सांस्कृतिक मूल्यों के साथ हिंदू जीवन शैलियों द्वारा अपनी राष्ट्रीयता का आधार रखा है। हिंदू मूल्यों मानवता के कल्याण को कामना लेकर चलता है और दूसरे कम का घादों को कभी नतीज और महाधान नहीं ले सकता। "हिंदू" अर्थात् 'संस्कृत' की तरह ही है। धर्म शब्द का अर्थ है हमें उस व्यक्ति का बोध होता है, जिसमें ईश्वर के राष्ट्रीय जीवन को मुख्य विशेषताओं की अभिव्यक्ति मिलती है। इसी प्रकार 'हिंदू' शब्द उस व्यक्ति के आदान, ईश्वर, उपासना तथा आदि के संबंध के विचारों का बोध नहीं करता, अपितु ऐसे व्यक्ति का बोध करता है जिसमें उनके जीवन की विशेषताओं की अभिव्यक्ति हुई है। उसके धर्म, राजतंत्र, धार्मिक मन, संवदाय आदि से हमें कोई संबंध नहीं है। ईश्वर अथवा इस्लाम के अर्थों एक धर्म, एक संवदाय का बोध होता है, वही हिंदू शब्द ने राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय संस्कृति का बोध होता है। "राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने राष्ट्रीय गुणजागरण और संगठन का काम उसी लक्ष्यों के बीच शुरू किया जिन्हें हम हिंदू कहते हैं, क्योंकि उनमें राष्ट्रीय चेतना जागृति आरम्भ किया सामान्य था।"⁹

डॉ० हेडगेवार के इन विचारों को उनके उत्कृष्ट देशप्रेम तथा अपनी संस्कृति और उसके घादों के प्रति गहरी निष्ठा का ही परिणाम था कि १९२५ के विजयादशमी के दिन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपने एक एक को स्थापना हुई। १९२५ से १९४० तक डॉ० हेडगेवार ने अपनी शारी शक्ति राष्ट्रीय गुणजागरण के इस सांस्कृतिक संगठन के विस्तार में लगाई। १९४० में उनकी मृत्यु हो गई। मृत्यु के पूर्व उन्होंने इस संगठन का कार्य-भार श्री माधवराव सराधिकार गोलवलकर (श्री गुरुजी) को सौंप दिया था। गुरुजी ने अपनी नैतिक बल की अद्वितीय मान्यता और गहन कार्य के फलस्वरूप इस संगठन को राष्ट्रीय स्तर और क्षेत्र दिया।

इसी परिवेश में दीनदयाल उपाध्याय की भूमिका प्रारंभ होती है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक के तौर उपाध्याय जो १९४२ में लखीमपुर जिले में नियुक्त हुए। तीन वर्ष के कार्यकाल में ही वे उत्तर प्रदेश में राष्ट्रीय स्वयं-

9 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ', सुरजि माहि-य प्रकाशन, पृष्ठ ८६

राजनीति मे
 सेवक संघ के
 वे इती क्षेत्र
 भारतीय
 १९५१ को
 द्वारा प्रस्तुत
 की राष्ट्र वि
 होने के बाद
 सामाजिक
 लगे। तब
 से महसूस
 के जनत्व
 या नव दोग
 सम्मेलन व
 प्रथम अखि
 जो की ज
 जनसब के
 उनके नेतृत्
 रूप में गाम
 गांधी
 उन्हें मिल
 भारतीय र
 तो ही म
 बुद्धि के फ
 उनके विधा
 उन्हें
 लगे बा
 संकराचार्य
 निकलने से
 दायाँ-बा
 कर एक अ
 शाशु
 अथवा रण
 गांधी इ
 है—जैसे
 इस नया

से यह महसूस किया कि हमारे
 या गई है, जिसके कारण हमें उस
 ही है। इसके ऐतिहासिक
 पर यह कि राष्ट्रीय चेतना का
 ही है। यह भी महसूस
 या पर ही और चरित्र निर्माण के
 ही तो मकसद है। यह एक
 ही के साथ ही जीवन संघर्षों
 ही पूर्ण मानवता के लक्षणों
 का अर्थ उभे कभी पतनीय और
 ही की तरह ही है। अज्ञेय शब्द ने
 ही के संघर्षों के राष्ट्रीय जीवन की
 ही प्रकाश दिखे। पर ही व्यक्ति
 के विचारों का बोध नहीं कराया।
 ही के जीवन की विशेषताओं की
 ही का, मंत्रणाय शक्ति से इसका
 ही का लक्षण, एक मंत्रणाय का
 ही राष्ट्रीय संस्कृति पर बोध होना
 ही संरक्षण और संरक्षण का काम
 ही है, क्योंकि उनमें राष्ट्रीय

के एक देशप्रेम तथा अपनी
 ही परिणाम था कि १९२५
 ही १९२०-१९२० तक की स्थापना
 ही अपनी मांगों पर ही राष्ट्रीय
 ही ने लगी। १९४० में इसकी
 ही का कार्य-कार भी माधकराव
 ही दिया था। मुहूर्त ने अपनी
 ही के फलस्वरूप इस संगठन का

का प्रारंभ होती है। राष्ट्रीय
 १९४२ में लखीमपुर जिले में
 ही प्रवेश में राष्ट्रीय स्वयं-

सेवक संघ के सह-प्रान्तप्रचरक बन गए। नव १९५१ में जनसंघ के निर्माण तक
 वे इसी क्षेत्र में इसी दायित्व में कार्य करते रहे।

भारतीय जनसंघ की स्थापना के छह महीने बाद ही दिल्ली में २१ अक्टूबर
 १९५१ को कांग्रेस अधिवेशन में अक्षय पद से डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी
 द्वारा प्रस्तुत घोषणापत्र (भारण) के अनुसार भारत की राजनीति में भारतीय
 को राष्ट्र चिन्तन की अद्वैत नीतियों के फलस्वरूप पाकिस्तान का निर्माण
 होने के बाद कांग्रेस में नया ही राजनीति की शुरुआत हुई। देश के प्राथमिक,
 सामाजिक, औद्योगिक, शैक्षणिक सभी क्षेत्रों में विकास के आधार प्रकट होने
 लगे। एक क्षेत्र में राजनीतिक क्षेत्र में नए क्षेत्रों की आवश्यकता जड़ी तीव्रता
 में महसूस की गई। इनके माध्यमता की पूर्ति में जब १९५१ में डा० मुखर्जी
 के नेतृत्व में अखिल भारतीय जनसंघ की स्थापना का विचार किया जा रहा
 था तब दीनरमान उपाध्याय ने ११ अक्टूबर १९५१ को लखनऊ में प्राथमिक
 सम्मेलन बुलाकर प्रदेश जनसंघ की स्थापना की। १९५२ में जनसंघ का
 प्रथम अधिवेशन भारतीय प्रतिनिधित्व कानपुर में हुआ। इसी अधिवेशन में उपाध्याय
 जी को जनसंघ के प्राथमिक भारतीय महासंघी का पद सौंप गया जिसे उन्होंने
 जनसंघ के राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व (१९५३) तक रखी स्थापना के साथ निभाया।
 उनके नेतृत्व में भारतीय जनसंघ कांग्रेस के पश्चान् हुये। राजनीतिक दल के
 रूप में सामने आया।

उपाध्याय ही मुख्य विचारक थे। इनके मौलिक विचारों को संकलन
 करते मिलकर, गांधी और लोहिया के काम में रखा जा सकता है। 'राष्ट्रीयता'
 भारतीय राजनीति, प्रजातंत्र और 'सर्व नीति' के बारे में इनके विचार मौलिक
 ही ही साथ ही सर्वोच्च महत्त्वपूर्ण और व्यावहारिक है। इनके विचार इनकी
 बुद्धि के फल नहीं हैं बल्कि इनकी आस्था और 'चिति' या चिन्तन के फल हैं।
 इनके विचार शूद्र रूप में भारत की माटी में, हमके 'स्व' से निकले हैं।

इन्हे पढ़कर, देखकर और सुनकर भारत के सामरिक इतिहास में क्रांति
 लाने वाले दो पुरुषों के युग की याद आती है। एक वह कि वह महादुर्ग
 जंकराचार्य गया। ११ धर्म का संदेश लेकर वेग न स्थापन यथाचार यथागत करने
 निकले थे और दूसरा वह कि जब शूद्र भारतीय सर्वेगायक भारत का उत्तम-
 दायित्व लेकर सब राज्यों (प्रजासत्तक) में विद्यमान राष्ट्रीय शक्ति को संगठित
 कर एक भारतीय महासंघ की स्थापना करने का प्रयत्न लगे थे।

प्राथमिक भारतीय राजनीति और हमें संबंधित विचार और अनेक
 अवधारणाओं पर प्रायः विद्वानों आचार्यों की व्याख्या का प्रभाव पड़ता है।
 साथ ही इन क्षेत्रों में नए-नए संबंधी मापों और समुचित विचारों की हमें उभरने
 हैं—जैसे यह केवल बुद्धिबिलास ही या अहंकार विचार के उद्देश्य से ही।
 हम नए-नए अज्ञान, नई-नई संकल्प के स्तर से उपाध्याय जी के विचार सुधरे

भारतीय दार्शनिकों को तब तिर्रे से सूखवड़ा करने हुए तूरे धातुपिचवाम के नाथ हठारे सामने यात । इनका 'दुर्लभ मानववाद' इस प्रकार में मूला उल्लेख-योग्य रहेगा । इसमें तब आत्मतर्पण को रखने और यहा क 'व्यक्ति' को मानव त मर में देखने के पक्ष में व्यावहारिक उपाय है । भारत के साधुनिक ह्य में लेकर राष्ट्रीय स्वतंत्रा की, व्यक्ति न केनर राष्ट्रीयता तक को इन्होंने अक्षय आत्म-विरासत और निर्भीकता में देना और परखा है ।

राष्ट्रीयता की यह उपाध्यायणा अत्र कितनी मुजबूत है जहाँकि इन देखने है कि व्यक्तिवारी संश्लिषि जाति नही बना पावे । केवल राष्ट्रीयता का भाव ही व्यक्ति का मार्ग है । यह सामूहिक भाव पक्षी राष्ट्रियता ही वह कौली है कि तब हमारे अन्दर कृति, अनेक अवस्था कीक का गलत विधी जायगी । उपाध्याय के लिए, प्रजातंत्र में प्रजा भावितो के अन्विष्टारों को ही ले । अंत का अधिपार है । जोर देते समय यदि राष्ट्र का विचार रहा तो धर्म होगा और यदि व्यक्तिगत विचार में प्रियि होकर मंगल हुआ तो अधर्म ही जायगा । राष्ट्रीयता यदि ठीक है तो सब अवस्था कीक विधी जायगी और यदि राष्ट्रियता के विपरीत भाव हुआ तो अनेक अवस्था भी गलत सिद्ध होंगी । जो लोग राष्ट्रीयता ना समझे उपाध्याय, राष्ट्र के विचारों की निवाजनि देकर विभिन्न प्रकार के 'बादों' के तारों में उलझने से सावधान में वे भूल करते है । उनके अंत में कोई अन्धः कार्य नहीं हो सकता । महातन्त्र, पूत्रीवाद, प्रजातंत्र अथवा अन्य कोई भी बंद अधिः में व्यक्ति एक रास्ता है, प्रगी का साधार नहीं । व्यक्तिगत, दलगत या वादगत कोई विचार लेकर चलने के प्रयत्न नहीं हो सकता । राष्ट्रीयता अधिः राष्ट्र के लिए ही है । यदि राष्ट्र का विचार छोड़ दिया, तब राष्ट्र की अस्मिता, अनेक इतिहास, संस्कृति, सभ्यता भी छोड़ दिया तो राष्ट्रियता का क्या तावोग ? राष्ट्र का स्मरण कर कार्य होगा तो मयका मूल्य रहेगा ।

पर इसका यह अर्थ नहीं है कि उपाध्याय जी के विचारों में 'धी' बात की कोई भला नहीं है । उनका विद्वान्म है कि व्यक्तिगत विषय व्यक्ति का अधिकतर चलता है, तब आवश्यक है । मैं ने अनुष्ठान में अर्थात् व्यक्तिवाद में 'व्यक्ति' के लक्ष्य हुए लिए जाने है पर तन्मिःद्वारा ने इससेव की प्रति हीनी है । मंच मानव उठना ही प्रगति का रास्ता है । 'दुर्लभ मानववाद' क गिद्धात का परिणतत कर उपाध्याय जी न साधुनिक राष्ट्रीयता, अर्थव्यवस्था तथा समाज-रचना के लिए एक चतुरंगी भारतीय दृष्टि देकर की है ।

उपाध्याय मानववाद का उद्देश्य से बड़े उपाध्याय जी न कहताः राष्ट्र और राज्य, राष्ट्र का स्वरूप विधि और भारतीय अर्थनीति पर जो सीमा-विचार है, तब अर्थतः अक्षयपूर्ण है । उन्हीदि प्रपरी प्रसिद्ध पुस्तक 'राष्ट्र जीवन की दिशा' में विचार किया है कि राष्ट्र और राज्य दो पलग-अलग सामां हैं ।

राजनीति से राष्ट्रीयता

राष्ट्र एक जीवमान होता है । किसी 'व्यक्ति' उस क्षमि के साथ न गुणों को मानसिक न होता है, मूष-द्वैत न प्राप्त कर परन्तर कि जीवन-मूषों को हवा करनेवाले तथा उनके परिश्रम करनेवाले न शय मानव मनुष्यों भावात्मक स्वभाव को बनी रहती है राष्ट्र के

इस प्रकार राष्ट्र करते के लिए 'राज्य' जाने है । याने 'राज्य' आश्रयपना तब होनी कारण उत्पन्न तथाप्य है । उम तब 'राज्य' नहीं बचन सकता । और अपनी आवश्यक सभी क्षेत्रों में विभिन्न जिनमें 'राज्य' भी तब को मजबूत करने के राष्ट्र को सर्वत्र जा अर्थात् पर करती

राष्ट्र के अस्मिता के फल उच्च 'व्यक्ति' का उदय होगा है । तब तब हो जाता है । 'व्यक्ति' की संज्ञा ही अमान्य किता जाना

इस संदर्भ में राष्ट्र का अर्थद्वार राज न निरासी । पर तब 'राष्ट्र' से जिस पा

सुसज्जित करने हुए पुरे सामर्थ्यवान के
 म मानवजात' इन वचनों में भेदा उचित-
 करने की जरूरत है। 'व्यक्ति' की मान्यता
 है। मानव के आधुनिक रूप के लक्षण
 राष्ट्रीयता तक की दरमिती अल्पता आत्म-
 परसा है।

विलम्बे रूपवान है ज्वरिण ह्या दपने
 बना था। केवल राष्ट्रीयता का अल्प
 मान परंपरे राष्ट्रीयता ही पर कभी-से
 एक ही शीत का अल्प गिनी जगती।
 विलम्बे के अविचारों को ही से - राष्ट्र
 का विचार रहा भी धर्म शान्त और
 संभव ह्या तो अल्प ही जाणता।
 शीत गिनी जाणती और गति राष्ट्रीयता
 का ही अल्प गिनी होती। जो बोध
 विलम्बे को विचारमति लेकर विभिन्न
 अल्प में से भूष करती है। अल्प अल्प
 अनाजक, अनाजक, अनाजक अल्पता
 अल्प है, अल्प का आधार गती।
 अल्प अल्प अल्प से अल्प नहीं हो
 ही है। यदि राष्ट्र का विचार शीत
 शीत, अल्पता अल्पता की शीत शिवा
 अल्पता कर अल्प शीत को अल्पता

अल्प को के विचारों में शीत नाम की
 कि अल्पता अल्प अल्पता अल्पता
 के अल्पता से अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता

अल्पता को के अल्पता राष्ट्र अल्प
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता

राष्ट्र एक जीवनमान उभरते है। अल्पताओं से अल्पता में इसका विकास
 होता है। किन्ती निश्चित भूभाग में निवास करनेवाले मानव-समुदाय जब
 उस भूमि के साथ तात्कालिक का अनुभव करने लगता है, अल्पता के विभिन्न
 गुणों की आकर्षण करता हुआ अल्पता परंपरा और महत्ताकांक्षाओं से युक्त
 होता है, गुण-युक्त की महत्ता अल्पता और अनुभव की अल्पता अनुभूतियां
 प्राप्त कर परंपरा ही संबंध में जायग होता है, अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 जीवन-सूत्रों की अल्पता के लिए अल्पता होता है, और इस अल्पता का अल्पता
 करनेवाले तथा अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता के लिए अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता

इस प्रकार 'राष्ट्र' एक अल्पता अल्पता है। राष्ट्र की अल्पता अल्पता का गुण
 करने के लिए 'राष्ट्र' अल्पता अल्पता है। 'राष्ट्र' की अल्पता अल्पता के अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता

राष्ट्र के वास्तविक स्वरूप की मूल अल्पता के लिए उपाध्याय जी ने राष्ट्र
 के मूल अल्पता 'निति' की अल्पता अल्पता की है। 'निति' के अल्पता अल्पता से राष्ट्र
 का अल्पता अल्पता है, राष्ट्र की अल्पता अल्पता है और अल्पता अल्पता से राष्ट्र
 अल्पता अल्पता है। राष्ट्र की अल्पता, राष्ट्र का 'अल्पता' अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता

इस अल्पता में अल्पता 'जन' अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 का अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता
 अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता अल्पता

'जन' एक जीवमान इकाई है। जिस प्रकार व्यक्ति पैदा होता है, बनाया नहीं जाता, उसी प्रकार 'जन' को भी एक स्वतंत्र स्वरूप बना देना है।

यही 'जन' ग्रामीण मूल प्रकृति के पोषण के लिए किसी भूमिक्षेत्र से संबंधित होता है। उस भूमिक्षेत्र से उसका संबंध मां और पुत्र के समान रहता है। यह संबंध सहस्रवर्षपूर्ण है मनुष्यता केवल किसी भूमि को केवल 'जातियों' समझकर, और भूमि से केवल उपभोग का संबंध रखकर कोई बड़ा काम 'जन' या 'लोक' नहीं हो सकता। अंग्रेज इस नवचार को मनी भांगि समझते थे, इसलिए उन्होंने भारत के इस 'एक जन' भाष को नष्ट करने के लिए भारत को 'दुनिया' कहना शुरू किया। उनकी यह बात कितनी सफल हुई है, "यह तो हमी बात से स्पष्ट है कि हम अपने संविधान में 'दुनिया दे दे भारत' ही गए हैं। दरममल अंग्रेज की बात ही यही थी कि इस पृथ्वी में बड़ी के जनता, उन और जननी संबंधी शोध सामान ही जाय। पर ऐसा नहीं हुआ। हमारे राष्ट्रीय संघान का आधार 'भारत माता की जन्म' रहा। यही भारत मां हमारी राष्ट्रीयता का आधार है। माता मरना पडा होना ही भारत केवल जमीन का टुकड़ा मात्र रह जायगा। इस भूमि का और हमारा महत्व तब माता है जब माता बाला संबंध रहता है। कोई भी भूमि तब तक देश नहीं कहना सकती, जब तक कि उसमें किसी जाति का मानक समझ, उसके ऐसा महत्व जैसा वृष का भावा के प्रति होता है, न हो। यही देशभक्ति है। 'अस्तु राष्ट्र का स्वरूप इस 'एक जन' को सामूहिक मूल प्रकृति द्वारा निर्धारित होता है। यही 'चिति' है। 'चिति' जीवन मूल्यों को परिचाय करने के लिए राष्ट्र का प्रतिभाय हुआ है। उनका मानक होते यही एक 'चिति' विस्तारमान रहती है। राष्ट्र में जीवन बना रहता है।"

'चिति' के आगे उपाध्याय जी ने 'विघट' का विवरण किया है। 'विघट' राष्ट्र की वह अभ्यन्त है जो चिति से जायत एवं संगठित होती है। विघट का राष्ट्रजीवन में घटी लक्षण है जो शरीर में प्राण का है। उपाध्याय जी के सारे कर्मों का लक्ष्य राष्ट्र के इसी विघट को जायत करना था। उन्होंने अपने प्रथम के प्रति गौरव का भाव लेकर, वर्तमान का नगर्यवादी माकलन कर और अहित्य की मन्त्राकांक्षा लेकर विघट को अग्रत करने की आस्था थी है। राष्ट्र इष्टि के बाद उपाध्याय जी को अर्थनीति उल्लेखनीय है। लक्ष्मी ने इन्होंने अपनी पुस्तक 'भारतीय अर्थनीति- विकास की एक दिशा' में भारतीय अर्थनीति का दर्शन दिया है। इन्होंने इस लक्ष्य में मार्ग की बात पकड़ी है कि पश्चिम का अर्थसाहस ही इच्छाओं को बनावर बंधने जाना और उनकी आवश्यकताओं की निरंतर पूर्ति करना ही अपना लक्ष्य मानता है। और अब तो हालत यहाँ तक पहुँच गई है कि जो कुछ पैसा चिया जाता है, उसका निश्चित रूप से

१. 'राष्ट्र जीवन की दिशा', पृष्ठ ६०

राजनीति में राष्ट्रीयता

उपभोग हो उसके लिए लक्ष्य केवल उपाध्याय जी। उपभोग उपाध्याय का पक्ष ही है कि प्रकृति की मर्त्य दोनो अर्थनीति-दुनिया-मार्गित किया है। उपाध्याय जी का विचार

- (१) प्रत्येक व्यक्ति को सुख प्राप्त करना
- (२) इस लक्ष्य के लिए केवल उपभोग के लिए ही प्रकृति का उपयोग करना
- (३) उपभोग के लिए ही प्रकृति का उपयोग करना
- (४) राष्ट्र का जीवन का विभाग करना
- (५) राष्ट्र के जीवन का विभाग करना
- (६) राष्ट्र के जीवन का विभाग करना

अर्थनीति के भारतीयता विचार को एक नवप्रकृति का निर्माण ही भारत के राष्ट्रजीवन की जायत हो गई। यही का लक्ष्य करने अपने राष्ट्रजीवन की प्रकृति ही है। यही ही नीतियों का मूल्य है।

आगे हमी संबंध में राष्ट्रजीवन का प्रकृति का निर्माण किया जाय है।

१. 'राष्ट्र जीवन' पृष्ठ ६६

कार ध्वनि पैदा होता है, वनाया नहीं
संज्ञक स्वयंभू सत्ता है।

ण के लिए निर्भी भूमिवाह में संबंधित
मां और पुत्र के समान रहता है। यह
मि को केवल 'कान्ठोनी' समझकर, और
कोई बात का 'जन' या 'जोश' नहीं हो
नि नष्ट करने थे, हतविष्ट उन्होंने भारत
लिए भारत को 'दुश्मिनी' कहना शुरू
हुं है। 'यह तो इसी जन से स्पष्ट है
ज 'भारत' हो गए हैं। २० अक्षय संघेज
ही के जन का, जन और जननी संबंधी
ता। हमारे राष्ट्रीय संघाम का आधार
का हमारी राष्ट्रीयता का आधार है।
जमीन का श्रम का माप यह जाएगा।
है। जब माता अथवा संघम जुड़ना
सकते, जब तक कि अपने कर्मों
जब ऐसा पुत्र का माता के प्रति होता
राष्ट्र का स्वयंभू हस्त 'एक जन' की
है। गरी बिनित है। जिन जीवन
का साक्षिभाव हुआ है। उनका मानव
। राष्ट्र ने संघम बना रचना है।
राष्ट्र का विचार किया है। 'निराश्रित'
राज्य एवं संगठित होती है। विराट्
र में प्राण का है। तथाप्य जी के
को ज्ञान करना था। उन्होंने अत
संघम का पथार्थवादी साफल्य कर
ह को ज्ञान करने को आस्था है।
निर्भी उल्लेखनीय है। सभी अर्थों में
-विक्रम भी एक दिशा में भारतीय
संघम में मर्म की बात पकड़ी है कि
र बढ़ाने जाना और जननी आवश्यक-
क्षम मानता है। और घर तो हालत
या जाना है, उसका निश्चित रूप से

उपभोग हो इसके लिए लोगों में इच्छा पैदा की जाती है। जैसे मनुष्य नहीं,
केवल उपभोगता हो। पहले उत्पादन उपभोग का अनुसरण करना था पर
उपभोग उत्पादन का अनुचर है। इस संघम में उत्पादन जी ने गंभीर चेतावनी
दी है कि प्रकृति की संपादन न मूर्त, प्रकृति से उल्लंघन न हों। पश्चिम की
दोनों सांख्यिक दृष्टियों—गणतन्त्र और पूंजीवाद को उपाध्याय जी ने घातक
सांचित किया है। उपाध्याय जी के विचार में भारतीय संघेव्यवस्था का उद्देश्य
देशीय साहित्य

- (१) प्रत्येक व्यक्ति की व्युत्पन्न जीवन-स्तर की सांख्यिक तथा राष्ट्र के
गुरुता सामर्थ्य की व्यवस्था।
- (२) उच्च स्तर का उपभोग जनश्रेण्ड समृद्धि जिसमें व्यक्ति और राष्ट्र को
ने साधन उपलब्ध हो सकें जिससे वे अपनी 'चिति' के साधारण पर
विश्व की प्रगति में योगदान कर सकें।
- (३) उपर्युक्त श्रेण्डों की सिद्धि के लिए प्रत्येक जन एवं स्वयंभू व्यक्ति
को सांख्यिक संतुष्टि का संयोजन देना तथा प्रकृति के साधनों का
सिद्धि-प्रतिष्ठा के साथ उपभोग करना।
- (४) राष्ट्र के उत्पादन उत्पादों का विचार कर अनुकूल प्रोत्साहिकी
का विकास करना।
- (५) यह व्यवस्था 'सात्वत' की व्यवस्था न कर इसके विकास में बाधक
ता तथा समाज के सांख्यिक एवं पंच्य जीवन-भूत्यों की रक्षा करने।
यह व्यवस्था है जिसका सांख्यिकण संघेव्यवस्था किमी भी परि-
निष्ठा में नहीं कर सकती।
- (६) विभिन्न श्रेण्डों के राष्ट्र में राज्य, व्यक्ति तथा जन संस्थाओं के
स्वायत्त का निर्माण सांख्यिक साधारण पर हो।

संघेव्यवस्था के भारतीयकरण के प्रसंग में उपाध्याय जी ने बड़ासा दावी के
विचार को एक सांख्यिक संघेव्यवस्था दिया है। पश्चिम का सांख्यिक उपभोग
का सिद्धांत ही मनुष्य के दुर्गम का कारण है। क्योंकि उपभोग की मानव परि-
परी की जात ही बड़ा बढ़ती ही जाती जाती है। "मनुष्य को प्रकृत भावनाओं
का संस्कार करके प्रसंग सांख्यिक उत्पादन, समान वितरण तथा संघमित
उपभोग को प्रकृति पैदा करना ही सांख्यिक क्षेत्र में संस्कृति का कार्य है। इसमें
ही लोगों का संतुष्टन है।"^१

पश्चिम की संघम में सांख्यिक लोकतंत्र का उनका विचार भी भूत्यवान है।
राजनीति का धर्म का प्रका में विकेंद्रीकरण करके जिस प्रकार सासन संस्था
का निर्माण किया जाता है, उसी प्रकार सांख्यिक व्यक्ति का भी प्रजा में विकेंद्री-

१. 'सांख्यिक विचार', पृष्ठ ६६

'जन' एक जीवमान दृशाई है। जिस प्रकार व्यक्ति पैदा होता है, बनाया नहीं जाता, उसी प्रकार 'जन' की भी एक स्वतंत्र स्वयंभू सत्ता है।

यही 'जन' अपनी भूज प्रकृति के पोषण के लिए किसी भूमिखण्ड से संबंधित होता है। उस भूमिखण्ड से उसका संबंध भाँ और पुत्र के समान रहता है। यह संबंध भद्रत्वपूर्ण है अथवा केवल किसी भूमि को केवल 'का' होने' समझकर, और भूमि से केवल उपयोग का संबंध रखकर कोई वहाँ का 'जन' या 'लोक' नहीं हो सकता। अंग्रेज हम गन्नाई को भली भाँति समझते थे, इसलिए उन्होंने भारत के हम 'एन जग' भाग को नष्ट करने के लिए भारत को 'इंडिया' कहना शुरू किया। उनकी यह बात कितनी सफल हुई है, "यह तो दली बात से स्पष्ट है कि हम अपने संविधान में 'इंडिया दैट इज भारत' हाँ गए हैं। दरममल अंग्रेज की बात ही यही भी कि इस भरती से यहाँ के जन का, जब और जननी संबंधी बोध समाप्त हो गया। पर ऐसा नहीं हुआ। हमारे राष्ट्रीय संग्राम का आधार 'भारत माता की रज' रहा। यही भावना ही हमारी राष्ट्रीयता का आधार है। माता पक्ष होता दीर्घ, तो भारत केवल जमीन का टुकड़ा मात्र रह जाएगा। इस भूमि का और हमारा सम्बन्ध एक मात्र है जब माता वाला संबंध जुटता है। कोई भी भूमि तब तक देना नहीं करेगा सकती, जब तक कि उसमें किसी जाति का सामूहिक समत्व, याने ऐसा समत्व जैसा पूज का माता के प्रति होता है, न ही। यही देशभक्ति है। प्रत्येक राष्ट्र का स्वतंत्र उस 'एन जन' की सामूहिक मूल प्रवृत्ति द्वारा निर्धारित होता है। यही 'चिन्ति' है। अर्थात् जीवन मूल्यों को चरित्रार्थ करने के लिए राष्ट्र का प्राविभाव हुआ है, उसका पालन होने रहने तक 'चिन्ति' विद्यमान रहनी है। राष्ट्र में जीवन बना रहना है।

'चिन्ति' के आगे उपाध्याय जी ने 'विनाट' का विचार किया है। 'विनाट' राष्ट्र भी वह कर्मक्षेत्र है जो चिन्ति से आगत एवं संगठित होती है। विनाट का राष्ट्रजीवन में जहाँ स्थान है जो शरीर में प्राण का है। उपाध्याय जी के सारे कर्मों का अर्थ राष्ट्र के इसी विनाट को जायज करना था। उन्होंने अपने प्राचीन के प्रति मोहव का अर्थ लेकर, वर्तमान का परार्थकारी चरित्र बन कर और यशस्वी की अद्वैतःकक्षा लेकर विनाट को जायज करने की आस्था ही है। राष्ट्र दृष्टि के बाद उपाध्याय जी की अर्थनीति उत्कृष्टनीति है। तभी पृथ्वी में इन्होंने अपनी पुस्तक 'भारतीय अर्थनीति- विकास की एक दिशा' में भारतीय अर्थनीति का दर्शन दिया है। इन्होंने इस संदर्भ में मर्म की बात पेश की है कि पश्चिम का अर्थशास्त्र तो इच्छाओं की बजाकर बढ़ाते जाते और उनकी आवश्यकताओं की निरंतर पूर्ति करना ही अपना लक्ष्य समझता है। और प्रथम तो हासत यहाँ तक पहुँच गई है कि जो कुछ पैदा किया जाता है, उसका निश्चिन अर्थ से

१. 'राष्ट्र जीवन की दिशा', पृष्ठ १०

सकारण व्यक्ति पैदा होता है, बनाया नहीं।
 वृक्ष स्वयंभू मत्ता है।
 वृक्ष के लिए किसी भूमिखण्ड से संबंधित
 भाग और पृथक् के लक्षण रहता है। यह
 कि कोई व्यक्ति 'कालोनी' मध्यमतर, और
 कोई वृक्ष का 'अंक' या 'श्रीक' नहीं हो
 कि तपसके थे, इसलिए उन्होंने भारत
 लिए भारत को 'उडिया' कहना शुरू
 ही है। 'पहले तो दूरी बात से स्पष्ट है
 कि भारत' हो गए हैं। प्रथममय संश्लेष
 हैं के जनक, जन और अन्तही संबंधों
 हैं। इनके राष्ट्रीय संप्रदाय का अन्वय
 का अन्वय ही राष्ट्रीयता का आधार है।
 अन्वय का अन्वय भाव रख जाएगा।
 का है। जब मनुष्य मानव संबंध जुड़ता
 या अन्वय, अब तक कि, उनमें किसी
 कि जैसा पृथक् ही मानव के प्रति हीना
 राष्ट्र का अन्वय इस 'एक जन' की
 है। यही चिन्तित है। 'कि जीवन
 का साधन ही है। उनका अन्वय
 राष्ट्र में अन्वय बना रहता है।'
 'कि विचार किया है। 'अन्वय'
 अन्वय ही मानव ही है। विचार
 में प्राण का है। अन्वय ही के
 ही जाया करता था। अन्वय अन्वय
 अन्वय का अन्वयवादी मानवत कर
 की अन्वय करने की अन्वय ही है।
 नीति अन्वयवादी है। 'अन्वय' में
 अन्वय की एक विधा' में अन्वय
 अन्वय में अन्वय की अन्वय ही कि
 अन्वय का और अन्वय अन्वय-
 ही अन्वय है। अन्वय ही अन्वय
 का है। अन्वय अन्वय ही के

उपभोग हो इसके लिए लोगों में इच्छा पैदा की जाती है। जैसा मनुष्य नहीं,
 केवल उपभोग ही। पहले उत्पादन उपभोग का अनुकरण करना या अन्वय
 उपभोग उत्पादन का अनुकरण है। इस अन्वय में उपाध्याय जी ने गंभीर चेतावनी
 दी है कि प्रकृति की मर्यादा न भूलें, प्रकृति से उच्छृंखल न हों। पश्चिम की
 दोनों शक्तिशाली शक्तियाँ— सपानवाद और प्रगतिवादी उपाध्याय जी ने मानव
 शक्ति कहा है। उपाध्याय जी के विचार में भारतीय अर्थव्यवस्था का अन्वय
 अन्वय :—

- (१) प्रत्येक व्यक्ति को अनुदान जीवन-स्तर की आवश्यकता तथा राष्ट्र के
 सुरक्षा मामलों की व्यवस्था।
- (२) एक स्तर के उपरान्त उन्नततर सृष्टि विस्तार व्यक्ति और राष्ट्र को
 नैतिक अन्वय ही अन्वय ही अन्वय के अन्वय 'अन्वय' के अन्वय पर
 अन्वय ही अन्वय में अन्वय कर सके।
- (३) उपर्युक्त लक्ष्यों की शक्ति के लिए प्रत्येक अन्वय ही अन्वय व्यक्ति
 को अन्वय अन्वय का अन्वय ही तथा प्रकृति के अन्वय का
 अन्वय ही अन्वय के अन्वय अन्वय।
- (४) राष्ट्र के अन्वय अन्वय का अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही
 का अन्वय करना।
- (५) अन्वय अन्वय 'अन्वय' की अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही
 ही तथा अन्वय के अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही
 ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही
 अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही
- (६) अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही
 अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही

अर्थनीति के भारतीयकरण के अन्वय में अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही
 विचार को एक अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही
 का अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही
 ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही
 ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही
 ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही

यह अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही
 अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही
 अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही
 अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही अन्वय ही

करण करके अर्थव्यवस्था का निर्माण और संचालन होगा चाहिए। 'राजनीति में व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता को जिस प्रकार गानाशाही नष्ट करती है, उसी प्रकार अर्थ नीति में व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता को भारी पैमानों पर किया गया उद्योगीकरण नष्ट करता है। ऐसे उद्योगों में व्यक्ति स्वयं भी मशीन का एक पुर्त बनेकर रूढ़ जाता है, इसविषय गानाशाही की भांति ऐसा उद्योगीकरण भी वर्जनीय है।'^१

अनुतः आर्थिक क्षेत्र के जीवन के तीन आयाम हैं—मनुष्य, धर्म और मशीन। इन तीनों का समन्वय ही अर्थव्यवस्था का उद्देश्य है। यह त्रिकोण सही है कि जिस अर्थव्यवस्था में यह समन्वय नहीं उसमें विपत्तियाँ उत्पन्न होती। उसी विपत्तियों की देन है पूँजीवाद का 'आर्थिक मनुष्य' और इसकी प्रतिक्रिया में साम्यवाद या समाजवाद का 'मानविक मनुष्य'। फलतः पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों केंद्रीकरण के शासी हैं। इन दोनों पद्धतियों से सर्वथा अलग और स्वतंत्र उपाध्याय जी का विचार है कि जब तक एक-एक व्यक्ति की विशिष्टता और विविधता को ध्यान में रखकर उसके विकास की चिन्ता नहीं होगी तब तक मानव कल्याण असंभव है। पूँजीवाद और साम्यवाद इन दोनों व्यवस्थाओं में मनुष्य त्रिजिह्व मशीन का एक पुर्त मात्र बना दिया गया है। मनुष्य यानी एक जंतु जो घाट घटे संतुलन सजदूरी करे। कार्य और जीवन के बीच एक दीवार खड़ी कर दी गई। 'अतः हम पूँजीवाद और समाजवाद के चक्कर में मुक्त होकर 'मानववाद' का विचार करें।' इसके लिए विकेंद्रित अर्थव्यवस्था चाहिए। स्वयंसेवी क्षेत्र की सहायता करना होगा। यह क्षेत्र अतिरिक्त बढ़ा होगा, उतना ही मनुष्य माने बढ़ सकेगा, मनुष्यता का विकास ही सकेगा। 'आर्थिक क्षेत्र में स्वयंसेवा समाप्त होती है तो राजनीतिक क्षेत्र में भी समाप्त हो जाती है। समाजवाद और प्रजातंत्र साथ-साथ नहीं चल सकते।'^२

अर्थनीति पर उपाध्याय जी के समस्त विचार हमारी बुनियाद के हमें जोड़ते हैं। इनकी सारी अर्थ दृष्टि शुद्ध भारतीय मनीषा का अञ्जलतम उपहार है। अणुसूत्र ने कहा—सुखस्य मूल धर्मः, धर्मस्य मूलस्यः। अर्थात् सुख धर्ममूलक है धर्म धर्ममूलक। टीका इसी परंपरा में उपाध्याय जी ने धर्म और अर्थ की व्यापक अर्थव्यवस्था दी है। अर्थ का अभाव ही नहीं अर्थ का अर्थव्यवस्था भी धर्म का नाश करता है—यद् भारत का अर्थव्यवस्था विशेष दृष्टिकोण है। इसी तरह धर्म वह है जो विकृति को रोकता है। हमारा संस्कृति जिस पहलुओं सीढ़ी से बनती है वही धर्म की ही सीढ़ी है। मनुष्य अपनी प्रकृति

१. 'सत्य विचार', पृष्ठ २७

२. वही, पृष्ठ ६३-६४

माने होगा चाहिए। राजनीति में
र राजाशाही मूल्य करती है, उसी
मता को भारी पैमानों पर किया
में में व्यक्ति स्वयं भी मशीन का
मही की भाँति सेवा उद्योगीकरण

आयाम हैं—मनुष्य, धर्म और
स्था का उद्देश्य है। यह विस्तृत
व्यवस्था नहीं उभरे विषयमताएँ चलदम
का 'व्यक्ति मनुष्य' और उनकी
मूलिक मनुष्य'। फलतः पूँजीवाद
। इन दोनों गठनियों में भ्रंश
है कि जब एक एक व्यक्ति
कर उसके विकास की चिन्ता नहीं
पूँजीवाद और साम्यवाद इन दोनों
मूल्य पाये बना दिया गया है।
मनुष्य को। वहाँ और जीवन
में पूँजीवाद और साम्यवाद के
करे। उनके विरुद्ध विरोधित
करना होगा। यह क्षेत्र चिन्ता
केका, मनुष्यता का विकास हो
ती है तो राजनीतिक क्षेत्र में
समावेश साध-साध्य नहीं बन
भार हमारे बुद्धिवाद में हमें
कीय मनीषा का उच्चनलक्ष्य
में, धर्मार्थ मूलमर्थः। यथार्थ
परंपरा के उपाध्याय की ने
का अभाव ही नहीं बस या
—यह भारत का अन्तः विरोध
रहेका है। उभरती संस्कृति
ही है। मनुष्य स्वयं प्रकृति

के समस्त नियमों का पालन करता रहे और हमारे के साथ ठीक प्रकार की
व्यवस्था रहे, यही है धर्म। धर्म नजहूब नहीं है, ऐतिह्यन नहीं है। धर्म माने
साचरण।

पूँजीवाद और साम्यवाद के विरुद्ध में दीनदयाल उपाध्याय का 'एकात्म
मानववाद' का विचार सभी दृष्टियों से बहुमूल्य है। यह अपने 'कीर्त' और
प्राने वृक्ष का फल है। 'धर्म' के प्रती दुर्लभ न करने और आत्मभिमुख बनने
की प्रेरणा इसमें है। भारतीय संस्कृति के एकात्मवादी स्वरूप में विविधता में
एकता मयवा एकता का विविध रूपों में व्यक्तिकरण महत्वपूर्ण विचार है जिसे
स्वीकार कर विभिन्न कलाओं के बीच का सम्पर्क सुलभ हो जाता है।

एकात्म मानववाद महात्मा गांधी, विनोबा, राजगोपालाचारी और जयप्रकाश
नारायण के 'राष्ट्रीयता' के विचार को संपूर्ण प्रया में भारतीय सांस्कृतिक मंदिर
देता है और उसे हमारी सस्ती में जोड़ता है और इसे महज ही महत्वपूर्ण
बनाता है।

उपाध्याय जी के विचारों में से स्पष्ट रूप 'हिंदू राष्ट्रवाद' और 'हिन्दुत्ववाद'
निराल से भी उनके एकात्म मानववाद की आध्यात्मिक अर्थवत्ता पिन
जाएगी। 'भारत राष्ट्र' क्या यही पर्याय नहीं है? जिस मानीय राष्ट्र 'संस्कृति-
कारी आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का अर्थ विकास निराल, दादा भाई, गोपाल,
अरविंद के द्वारा उगी का फल है 'एकात्म मानववाद'।

मुक्तमान यौन ईसाई हम भारत देन के ऐतिहासिक सत्य ही नहीं, धार्मिक
मरप भी हैं। इसलिए इनकी संस्कृति भी सम्भावना: उत्तमी ही सत्य है। इति-
हास को गिदाना महत्वपूर्ण नहीं है, उसे स्वीकार कर लेना महत्वपूर्ण है। हम
एकात्म मानववाद में कीर्त हिंदू बन जाता है, कीर्त मुक्तमान और कीर्त ईसाई?

राष्ट्रीयता को उपाध्याय जी ने राजनीतिक रूप में गलेवर मूढ़ सांस्कृतिक
रूप में लिया है, यह महत्वपूर्ण है। पर अब तक यह केवल जित्तिव विचार के
रूप में हमारे सामने है, इस पर अब तक कोई प्रयोग नहीं हुआ है। यह मात्र
की चुनौती है। महात्मा गांधी ने जो भी विचार दिए उन्हें उन्होंने पहले खुद
प्रयोग करके देना। उन्होंने कहा है—'मेरा जीवन ही मेरा विचार है।' यह
मही है कि उपाध्याय जी का जीवन उनके विचारों के स्वरूप था। पर यह
निर्भी शक है : उपाध्याय जी का विचार पूरे देन के प्रति है—देन के पुनर्निर्माण
के लिए है। और इनका प्रयोग मनी देन के जीवन में होना है। कारण राज के
बाबुद भाषी जैसे मूल्य के विचारों का प्रयोग नहीं हुआ। क्या वह समाज
को धारण एतः एतः का अनुयायी प्रीण समर्थक है— वह इस सीख है कि राष्ट-
वाद की प्राणिकारी आध्यात्मिकता एकात्म मानववाद का प्रयोग स्वयं करेगा
मपने जीवन में या इस देश में, वर्तमान समाज में उसका प्रयोग होने देगा ?

राष्ट्र के परलंब होने से पूर्व—एक हजार वर्ष पहले जहाँ हमने राष्ट्र-

जीवन का भूषण छोड़ दिया था—वहीं से हम उसे छोड़े बहाएँ—इस विचार का संकलन करने हुए उपाध्याय जी ने माना है कि जीवन का प्रवाह कहीं रुकना नहीं। 'गंगा की साना को लौटाने का प्रयत्न बुद्धिमानी नहीं होगी।' पर इस दृष्टि के बावजूद उपाध्याय जी गंगा को लापद हिंदू गंगा ही मानेंगे, जबकि अब यह भारत गंगा है, अरिक्त गंगा है। गंगा गाँव में जो संस्कृति विद्यमान है, उसे कौन नष्ट कर सकता है ?

भारत की संस्कृति संगमरी थी, संगम की संस्कृति है, यहाँ सब हैं, भिन्न-भिन्न हैं, पर सब एकात्म हैं। उपाध्याय जी के एकात्म मानववाद का मन्त्रा प्रथं यही है। इसी विदु ने देश में चैतन्य का निर्माण संभव है। 'यह बेरा नहीं सब का है और इंगीनिष् राष्ट्र का है।' यही मन्त्रा राष्ट्रवाद मन्त्र लोकतन्त्र से संबन्धित होता है। उपाध्याय जी का व्यक्तिवाद और धर्मिण दोनों महत्त्व और समत था। कहीं भी उनमें जनरकार, करिष्मा नहीं था। और यहाँ का जनमानस चम्पकारी का ही गुजारी है। यह चम्पवान गन्नाच नया यह देख सकेगा कि संस्कृति वृक्ष में अब नून लग जाता है तब पुण्यधर्मो पुण्य रूपी फल उनमें नहीं लगते। फिर भी यह पुण्यफल हमारे समय के वृक्ष से कैसे लभ गया ? आज हमारी ही राष्ट्रपिता नहीं भागे विभक्त की राष्ट्रपिता छिन्न-भिन्न हो रही है। भौतिक प्रगति के मांग मानव संस्कृति की प्रगति का साक्षर्य जैसे नुक रहा है। प्रजापति तभी धर्मिक तब चयना राजनीति तंत्र बन रहा है। सब महत्त्व यह रहे हैं कि इन राजनीतिक वादों से भागे जाने का समय आ गया है कि नु धर्म। धर्म से किया नहीं जाता। 'धर्म जानता हूँ पर उसमें प्रवृत्ति नहीं है। धर्म में भी जानना हूँ पर उसमें निवृत्ति नहीं है।'

उपाध्याय जी का राजनीतिक चिन्तन उनकी सांस्कृतिक परंपरिणा जेना का फल है। इनका 'हिंदू', इनका 'राष्ट्र' शोध वर्गमान राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से विकसित भिन्न है। इनका 'हिंदू', उनकी राष्ट्र केन्द्रित भावना गंगा की तरह सौरभजन्य भारतीय परिस्थितियों के गठने में नहीं, बल्कि इस देश की सनातन मनीषा के व्यत्यय संदर्भ में परिभाषित हुआ है। सार० एम० एम० का प्रतीक - गुण रामदास के सामने नतमस्तक श्रद्धागति शिवाजी महाराजपुत्र है। श्रद्धालु राजनीति धर्म श्रेष्ठ व्यवस्था के नियमन के ही संपीन है—उमते ऊपर नहीं, उमते स्वतंत्र नहीं। पर अपने चालरण में सार० एम० एम० ने गुण रामदास की सुभाकर केवल शिवाजी की स्मरण रक्षा और महत्त्व दिया। फलतः इनमें शब्द—हिंदू—संगमरी धेगना, तिसकी रक्षा और विकास का यह वाता करता है वह काफी भीत है। और ऐसा लगता है कि सार० एम० एम०, जनसंघ हमारी उगी निरन्तर बुद्ध का ही फल है। पर निरन्तर ही जीवनमान जो हमारे तब जायत संरक्षा-धीन के मुफल है। गंगा की देवमुख का व्यक्तिवाद और कृतिव्य इसका जीवंत प्रत्यक्ष स्वरूप प्रस्तुत कर रहा है।

इसलिए मैंने पास जाकर पूछा, 'यह क्या हो रहा है?' मने कांति दासों और चमकती हुई आंखों वाले गोल चेहरे की उछाकर मेरी ओर नमीरता से देखते हुए अपने जवाब दिया, 'जोन साफ़ मानै बनने का अभ्यास कर रही है। अभी-अभी उसी के बारे में पढ़ रही थी। एक दिन जोन साफ़ आंक की तरह मैं भी आभादी की लड़ाई में अपनी जानता का नेतृत्व करूंगी।'^१

पचासतार बच्चों के साथ गरम राजनीतिक वातावरण में रहने के कारण इंदिरा की भनिया अपनी उम्र के बच्चों के मजबूत चिन्तन प्रकार की थीं। वह कभी शीत हो गई थी।^२ उसके सहपाठियों की पुरी दिलचस्पी खेलकूद में थी, राजनीति से उन्हें कोई मतलब नहीं था। इंदिरा उनमें घुल-मिल न पाती, न उसे उनके खेलकूद में भाग लेने की इच्छा ही होती, वह सबसे अलग-थलग प्रकृति रहा करती।

१९३० में अन्धकार ने अपनी बेटी इंदिरा प्रियदर्शिनी के भाग, उसके तेरहवें जन्म दिवस पर एक स्मरणीय पत्र लिखा था, 'प्यारी बेटी, जिस साल तुम्हारा जन्म हुआ, अर्थात् सन् १९१६, वह इतिहास का एक बहुत प्रसिद्ध वर्ष था। इसी साल एक महान् नेता ने, जिसके हृदय में गरीबों और दुखियों के लिए बहुत प्रेम और हमदर्दी थी, अपनी कोमल हाथों से ऐसा ऊंचा काम करवा लिया, जो इतिहास में अमर रहेगा। उसी महीने में, जिसमें तुम पैदा हुईं, लेनिन ने उस महान् शांति को शुरू किया था, जिससे हम और आस्ट्रेलिया का काया रलट हो गया और आज भारत में भी एक हमारे महान् नेता ने, जिसके हृदय में मुसीबत में फँसे और दुखी लोगों के लिए दर्द है और जो उनकी सहायता के लिए भेगाव हो रहा है; हमारे देशवासियों में महान् प्रयत्न और उच्च अनिष्टन करने के लिए दर्द जान डाल दी है, जिससे हमारा देश फिर आशाद हो जाए और भूखे, गरीब और पीड़ित लोग अपने पर लदे हुए बोझ से छुटकारा पा जाए!... भारत में आज हम इतिहास का निर्माण कर रहे हैं। हम और तुम बड़े खुशकिस्मत हैं कि ये सब बाने हमारी आंखों के सामने हो रही है, और इस महान् नाटक में हम भी कुछ हिस्सा ले रहे हैं।... मैं नहीं कह सकता कि हम लोगों के जिम्मे कौन-सा काम आएगा; लेकिन जो भी काम आ पड़े, हमें पढ़ पाइ खना चाहिए कि हम ऐसा कुछ नहीं करेंगे, जिससे हमारे उद्देश्यों पर बलक लगे और हमारे राष्ट्र की सहायता हो... यही क्या है और यही क्या है, यह तब अपना आसान काम नहीं होता। इसलिए जब कभी तुम्हें शक हो तो ऐसे समय के लिए तुम्हें एक छोटो-सी नमोशी बताता हूँ। चापव दगते तुम्हें मदद मिलेगी। कोई काम खुफिया तौर पर मत करो, और न कोई ऐसा काम करो जिसे तुम्हें दूसरों के छिपाने की इच्छा हो; क्योंकि छिपाने की इच्छा का मतलब है कि तुम इनको

१. 'विवान मंत्री,' पृष्ठ ४०-४१, तथा 'की नेहरूवा'।

हो और डरते-डरते सब चुपचाप खिचने के लिए एक-एक करके

गंगोलास विनलते थे।

बेचो धाई हैस

देहरादून

एक जन विजय

का एक महत्त्व

ने रहे होने।

जाने से पहले

कमपा का देह

वट अच्छा है

नहीं देना।

बहुत दूसरों के

है। अब अपने

गोपनी है।

मनोवैज्ञानिक

है कि अमीर

हय स्वाधी

बहुत सारी शक्ति

प्यार ने, पूरे ने

दीप्त-मैहमानों

में जिसके संनते

बोर्ड अंशज का

बच पाए।

तान नेरु कप-

भारतीय राजनी

शे : महात्मा

धिकायी हो, डा

इसी रामेनी रते

१. 'विवान मंत्री' पृष्ठ ४०-४१, तथा 'की नेहरूवा'।
२. 'विवान मंत्री' पृष्ठ ४०-४१, तथा 'की नेहरूवा'।
३. 'विवान मंत्री' पृष्ठ ४०-४१, तथा 'की नेहरूवा'।

हो रहा है?' घने काने वालों और उठाकर मेरी घोर गंभीरता से देखते बनने का दृश्य देख कर रही हूँ। अभी-दिल जेन प्राक प्राक की तरह मैं भी नेत्रमूक रहनी।^१

भित्तिक साक्षात्करण में रहने के कारण मैं से सर्वथा भिन्न प्रकार की थी। वह इतनी की पुरी दिलचस्पी खेलकूद में थी, दरिद्रता उतमें घुल-मिल न पाती; न ही होती, वह सबसे मजबूत-पतल

देव; प्रियादासी के नाम, उसके देरदूर में था, '...की बेटी, जिस साल तुम्हारा एक एक बहुत प्रियद कर्म था। उतमें कभी-कभी और दुःखियों के लिए बहुत प्रेम ऐसा कर्म काम करवा लिया, जो इति-सममें तुम पैदा हुई, लेकिन जो उस महान् कर्म-प्रियता की कथा पलट हो गया जाता न, जिसके हृदय में सुरीयता में कसे उनकी सहायता के लिए जाता हो रहा और उच्च बलिदान करने के लिए नई साजिश हो जाए और भूख, गरीबी और छुटकारा न जाए। ...भारत में आज और तुम बड़े युवाकिसमत है कि ये सब और इस महान् तादक में हम भी कुछ कि हम लोगों के निम्ने कोन-गा काम हमें यह दार सहायता चाहिए कि हम अपने पर कर्मक लगे और हमारे चान्दु त कर्म है, यह सब करना सामान्य काम हो जो ऐसे समय के लिए हमें एक ससे पुर्ण मदद मिलेगी। कोई काम है ऐसा काम करो जिसे तुम्हें हमसे से ही दृष्टा का मतलब है कि तुम अपनी

हो और डरना बुरी बात है और तुम्हारी जान के खिलाफ है। ...दयारी नहीं, अब तुममें बिना नेता हूँ, और कामना करता हूँ कि बड़ी होकर भारत की सेवा के लिए एक बड़ादुर मिपाड़ी बनो।"^२

मौतीलाल अपने पड़ों मानेवाने विशिष्ट मेहमानों की इच्छा से प्रवश्य मिताने थे। तरीजती नाथदू ने इंदु से कहा था, "तु बेपर ही प्राउडिस्ट लुकिंग बेटी आई हैव हीन।"^३

देहरादून जैन से लिखा हुआ जवाहरलाल नेहरू का १ जून १९३४ का एक सत्र विचार-संश्लेषण पत्रिके के नाम, इंदु के अतिरिक्त और स्वभाव को संश्लेषण का एक महत्वपूर्ण अंशत्व है : "तुम एक भोग निश्चय ही कश्मीर का आनंद ले रहे होगे। मैं अब तक नहीं जानता कि शांति निकेतन का क्या मतलब है। वहाँ जाने से पहले इंदु को कुछ दिन कभला के साथ रहना चाहिए। जैसा कि कभला का देहरादून में रहना संभव नहीं है, इंदु यहाँ न जाए कश्मीर से। ... यह प्रकृष्ट है कि वह इतिहास में गाय हो गई; यद्यपि मैं इसे उतना महत्व नहीं देता। कुछ सत्य महत्वपूर्ण मामलों में मैं उतने कतई प्रयत्न नहीं हूँ। ... यह दूसरों के प्रति निहायत 'बहुप्रण' और 'इंजिफरेंट' है। यह गंभीर दोष है। इंदु अपने अकारमें, स्वार्थों में रहती है। वह मुश्किल में दूसरों के बारे में सोचती है। ...अब मैं उससे मिलता तो मुझे थोड़ा खबर-ना भगा। यह कुछ मनो-अज्ञानिक अनुभव-मा है, जिसे मैं बयान नहीं कर सकता। ...नहीं सब संभव है कि कश्मीर में उगकी बागधी पर मैं वहाँ उससे मिलना नहीं चाहता। ..."^४

इस स्वार्थी, निही और महंगारी स्वभाव और अतिरिक्त के निर्माण के पीछे बहुत सारी शक्तियों और परिस्थितियों का हाथ है। दादा मोतीलाल के लाइ-प्यार ने, पूरे नेहरू परिवार के दुःखार ने और आनंद भवन में आनेवाले तनाम इंग्लैंड-मेहमानों ने इंदु के स्वभाव की सही बातों में विगाड़। "उस मूल अनुशासन में जिसके अंतर्गत मोतीलाल के बच्चे घर में रहने थे, इंदिरा बाहर थी। ऐसी कोई संश्लेषण था (एवनेस) नहीं थी जो इंदु को अनुशासन में रख सके।"^५

'बच प्राक मोन्य अटर्न' में यह स्पष्ट है कि किशोर-रह और कीर्ती मोतीलाल नेहरू अपने पुत्र जवाहरलाल नेहरू की उस समय के (१९१७ से १९३१) भारतीय राजनीति के प्राकाश में सबसे ऊँचे नक्षत्र की तरह चमकाना चाहते थे। महान-मा गांधी की भवरी में जवाहर ही स्वतंत्र भारत में उनके उत्तराधिकारी हों, इस उद्देश्य पर मोतीलाल के सतत प्रयत्न अलंखनीय हैं। ठीक इन्ही मार्ग-परंपरा के अनुसार, जवाहरलाल ने अपनी प्रकृत बेटे इंदिरा

१. 'निर्णय इतिहास की सतक,' बयबा पिता क पर पुत्री के नाम'।
२. 'निकेतन वांछित भाव'—नेहरू विचार-संश्लेषण पत्रिके की, डीनपूति, नई दिल्ली।
३. 'इंदिरा गांधी—ए सांघासकी,' ब० सनानी, पृष्ठ ६-७

गांधी की अपना उत्तराधिकारी बनाने की जो सफल कोशिशें की वे कम उत्प्रेक्षणीय नहीं। फरवरी १९२५ को इंदिरा कांग्रेस की कार्यकारिणी प्रतिष्ठित में ली गई। २३ फरवरी १९२८ को यह अपने विद्या के स्थान पर सेंट्रल पोलिटिकल बोर्ड की सदस्यता बनाई गई। सौर १९२९ के फरवरी मास में इंदिरा कांग्रेस की अध्यक्ष चुनी गई। पिता की मृत्यु के बाद भारतीयों के प्रतिमण्डल में इंदिरा चुनना और प्रशासन संभरी बनी। १९ जनवरी १९६६ को श्रीमती गांधी पार्लियामेंटरी दल की नेता चुनी गईं। उस समय पर उन्होंने अपना पक्षी राजनीतिक भाषण देते हुए कहा कि "मेरा दिल हमेशा भरा हुआ है कि हमझ से नहीं छाता कि माफकी कैसे सम्भव हो। आपके सामने खड़े होने हुए मुझे अपने प्रधान नेताओं की याद आती है—महात्मा गांधी, जिनके चरणों में बैठकर मैं बड़ी हुई, मेरे पिता पंडितजी और श्री लालबहादुर शास्त्री। आरक्षीजी और पंडित पत जी वे जो साजसी के बाद मुझे राजनीति में ले आए। और जब कभी मैंने राजनीति में अपना साहा, उन्होंने जोर देकर मुझे प्रेरण करने से रोका। ... मैंने हमेशा अपने को देशसेविका माना है।"

१९ मार्च १९६७ को श्रीमती गांधी संसद में कांग्रेस दल की नेता चुनी गईं और २३ मार्च १९६७ को भारत की प्रधान मंत्री बनीं। १९ मार्च को राष्ट्र के नाम अपने रेडियो संबोधन में उन्होंने कहा, "एक बार फिर आपने सरकार चलाने की जिम्मेदारी मुझे सौंपी है। ... मैं जानती हूँ कि मेरे पचास करोड़ देशवासियों मेरे साथी हैं। ... साम चुनाव (नीचा) ने यह संकेत दिया है कि देश काम, प्रगति और परिवर्तन चाहता है। अब सत्ता और जिम्मेदारी नई पीढ़ी के हाथों में आ रही है और हमें बुझुगों की बुद्धि, समीपता और अनुभव का तथा राजकारणों की कल्पनाओं और नेतृत्व का सम्भव करना है।"

१९ जनवरी १९६६ को १२ मार्च १९६७ के इन दोनों संबोधनों में एक बुनियादी अंतर है। पहले संबोधन में इनका 'दिल हमना भरा हुआ है' और करीब नौदह महीने बाद 'सत्ता और जिम्मेदारी' में यह भर गई। इस मान-सिद्धता की मदद करने के लिए यह संकेत होगा कि सत्ता दृष्टिमाने के लिए इन्हें क्या कुछ करना पड़ा। यह वह नई सत्ता राजनीति थी जिसकी सुदृष्टता जवाहरलाल के जीवन के अंतिम चरण में उन्होंने के द्वारा हुई थी और उत्तम विकास श्रीमती गांधी के अपने व्यवहारों और कर्मों में हुआ।

१९२९ की नागपुर कांग्रेस में जब डेवर भाई के बाद इंदिरा जी को एकमात्र अपना कांग्रेस अध्यक्ष बनाया गया तो कांग्रेस दुर्दकमत में भी बढ़ती को आश्चर्य हुआ था। अध्यक्ष होनेवालों में केवल श्री निजलिप्ता गांधी सुदृष्टात्म

की जो मण्डल कॉमिश्नों की वे कम
 विरा कॉमिश्न की कार्यकारिणी कमिटी
 कि प्रान्त विद्या के अन्तर्गत पर संकुल
 है। जोन १९६२ के परवर्ती भाग में
 गिता की मृत्यु के बाद इन्होंने जो के
 ग मंत्री बनीं। १९६१ जनवरी १९६६
 में मंत्री बनीं गईं। उस समय पर
 देते हुए कहा कि 'मेरा दिल इतना
 साधारण सीमे ध-र-व-र-दू। भावके
 ताओं की याद राणी है—महात्मा
 हुईं, मेरे जिना पंडितजी को भी
 इन पंत हो के जो साजरा के बाद
 की मेरे रात्रिनीति में हटार जाही,
 १९६१ में हमारा मरण को देवभक्ति

संघ में कांग्रेस दल की नेता बनी
 ममान लयी बनी। १२ मार्च को
 रहा, पान, बार, गिरा दावे सरकार
 जान-से हैं कि मेरे पचास करोड़
 १९७० में यह कवन दिया है कि देश
 सत्ता और जिम्मेदारी नहीं दीई
 बुद्धि, संभोगना और समुदाय का
 महत्त्व करना है।"

१९७० के इस संवत् में मण्डल
 दिन इतना भार हुआ है और
 लीं म धर म गई। इस मान-
 कि मया हृदयवाले के लिए हमें
 रात्रिनीति थी 'विश्वी शुरुआत
 ही के मान हुई थी और इनका
 कर्मों में हुआ।

ई के बाद इंदिरा जी को एकमात्र
 म हाई-मान में भी बहुतों को
 भी निजालिपता या भी सुरक्षात्मक

का ही नाम विदित था। इस फेरते में, यहाँ तक कि जालबहादुर शास्त्री भी
 प्राथम्यव्यक्त थे। पर भागे चलकर यह भी सब निकला कि इंदिरा जी के लिए
 यह अत्यंत पर उतना महत्वपूर्ण नहीं था। दूसरीलिए कार्य अवधि पूरी करने
 ने काली पहल ही उन्होंने स्वयं त्यागपत्र दे दिया : इतना बताया गया वृत्तंत
 स्वाभ्यन्त था। पर मन्तार ई यह थी कि उनकी भावी परन्तवाकांक्षा को देखते हुए
 कांग्रेस अध्यक्ष पर एक तुरंत और अर्थात्नीन कोर हो गया। उसमें जिनकी अक्षित
 प्राण बचानी थी वह पूर्ण हो गई। इसका कारण यह भी था कि कांग्रेस अध्यक्ष का
 पर सब तक एक घोषणापत्र जैसा ही नर गया था। 'जगमे कोई विद्वान मना नहीं
 यह गई थी। १९६२ के घाम चुनावों में पहले अपनी विवेक पाषा में जवाहर-
 लाल जी के किसी पयकार हुआ। यह पृष्ठे पर कि 'आपका उत्तराधिकारी कौन
 है ?' प्रभाव दिया था कि 'अगर मैं उसका नाम छोडो से बता दूँ तो 'उन
 गरीब को इतन ज्यादा भीनों के हृष्या-हृषण का मुकाबला करना पर 'आपका' कि
 बाद में उस पर पर पहलुओं की उसके लिए लौकत हो नहीं आ पाएगी।' लोगों
 से इसका प्रभाव लगभग 'यि वह 'गरीब' केवल जालबहादुर शास्त्री ही हो सकते
 है मया कोई नहीं। पर जो सन्तुष्टिया मम कराने या रही हैं 'उसमें स्पष्ट है
 कि १९६२ के बाद से जालबहादुर के प्रति नेहरू के भाव में लगातार परिवर्तन
 माने गया था। और इसी के फलस्वरूप इंदिरा जी ने शास्त्री जी जैसे भावकों
 की समझा शुरू की। वह 'गरीब' इंदिरा जी लीं, जालबहादुर तो केवल नाम-
 मात्र थे।

मण्डल पुत्री के अविध्य के बारे में नेहरू की प्रगती मलग थीसनाम थी।
 उन योजनाओं को लोग नाकी स्पष्टता में समझते थे। यह वह समय था जब
 भारत तथा अन्य देशों म लोगों त यह प्रान्त सुखता शुरू कर दिया था कि 'नेहरू
 के बाद लोग ?' तरह तरह के अनुमान लगाए जा रहे थे। लेकिन बहुत कम
 लोग यह जानते थे कि नेहरू स्वयं एदु की (त्रिग नाम में थे प्यार में इंदिरा की
 पुत्रावतें थे) इस बात के लिए तैयार नर रहे थे कि वे तीसरी पीढ़ी में भी
 नेहरू-शास की कार्य बड़ा सकें। यह सकारण ही तरो था कि नेहरू ने इस
 बात का समर्थन किया था कि श्री किरोज गांधी के विचार के बाद भी इंदिरा
 अपने को नेहरू-गांधी कहें।

पार्लिय का अध्यक्ष बनने के पखले से ही नेहरू ने इंदिरा के सार्वजनिक
 व्यक्तित्व को डालना शुरू कर दिया था। जब भी वे किसी प्रसिद्धि भयत-
 नाकी या विदेश में पाए गए महमान को घर पर भोजन करने के लिए बुलाते
 थे, तो इंदिरा मलग में उन लोगों का सम्कार करती थीं 'भगलत जब रांन में'र
 और रुजवेन्ट नेहरू के साथ भोजन करते आए, तो इंदिरा ने उन्हें एक सनीय-
 पारिक बाकी फार्सी के लिए आमंत्रित किया। ऐसा करने के दो उद्देश्य थे :
 एक बाहर वालों से मिलने के लिए इंदिरा में आत्मविश्वास पैदा करना, जो

उनमें नहीं था और दूसरे, उनका स्वतंत्र और पृथक् व्यक्तित्व स्थापित करना।

ऐसी परिस्थितियाँ बनाई गई कि कार्यकारिणी का सदस्य बन जाने के बाद, प्रथम सदस्यों ने नेहरू से भंगर्क स्थापित करने के लिए और उन तक अपनी हस्ताक्षर और विचार पहुंचाने के लिए इंदिरा को एक माध्यम के रूप में इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। इस प्रकार उन्हें दुसरे की तथा स्वयं अपनी दृष्टि में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया। जन व १९५६ में कांग्रेस की प्रत्यक्ष बर्नी, तो नेहरू स्वयं उनकी बातों को आयोजित करते थे और यह निश्चिन करने के लिए हर प्रयत्न करने थे कि वे वास्तव में लाभप्रद हो। दश प्रकार भीरे-भीरे, नेहरू के प्रथम निर्देशन में इंदिरा ने राष्ट्रीय मंच पर एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया। भीरी आक्रमण के बाद जब नेहरू ने उन्हें केंद्रीय नागरिक परिषद् का अध्यक्ष नियुक्त किया, तो इंदिरा का महत्त्व और भी बढ़ गया।

लगभग १९५५ तक इंदिरा को पार्टी के कार्य का बहुत कम अनुभव था। लेकिन कांग्रेस अध्वक्ष इंदिर ने अब उन्हें कार्यकारिणी का सदस्य नियुक्त कर दिया, तो उन्होंने प्रथम सक्रिय रूप से काम शुरू कर दिया। राज्य पुनर्गठन पर अमली गिर्वाणों के बारे में नार्मलजिक प्रतिक्रिया भंगर्क के लिए उन्होंने बंबई तथा दक्षिण का दौरा किया और अपने बातों में पार्टी संबंधी विषयों पर प्रत्यक्ष प्रभावधारण दृष्टिकोण प्रकट किए। उन्होंने कहा कि कोई भी व्यक्ति मना के उच्चतम शिक्षण तक भले हो गह्रुव जाए, लेकिन उसका उत्तमान मूलनः पानी द्वारा ही संभव होता है। उन्होंने यह भी कहा कि रूस में कम्युनिस्ट पार्टी सरकार पर कड़ी नजर रखनी है और उन मंत्रियों को पदच्युत कर देनी है जो ठीक तरह नहीं करते। "भारत में भी हम जिसनी जल्द ऐसा करें उतना अच्छा होगा।"

यह ध्यान में रखने की बात है कि यह दृष्टिकोण नेहरू के संसदीय सरकार संबंधी इस सिद्धांत के विपरीत था कि संसदीय पक्ष की पार्टी नेत्र से मुक्त होना अनिवार्य है। इस मामले पर इंदिरानी ने १९३७ में कांग्रेस की अध्वक्षता से त्यागपत्र दे दिया था और बाद में उन्होंने कहा था : "अध्वक्षता और पक्षगत कार्य के स्तर से आरंभ होते हैं, नीचे से नहीं। नेहरू निम्नस्तर के मनुने नहीं हैं, लेकिन कभी-कभी वे यह प्रमाणित कर देते हैं कि उन पर वाणीवादो विचार-धारा का प्रभाव है।" लेकिन इंदिरा की इन उक्तिओं ने राजनीतिक दायरी में कोई विशेष मूलवनी पैदा नहीं हुई।

इसमें संदेह नहीं था कि नेहरू अपनी पुत्री को प्रधान मंत्री पद के लिए तैयार कर रहे थे। यह ध्यान एवं सुना जरूर हो गई, जब तामपुर अधिवेशन में एम० निर्मलिंगमा के अगोपचारिक रूप से कांग्रेस अध्वक्ष चुने जाने के बाद भी, इंदिरा की अचानक कांग्रेस अध्वक्ष चुन लिया गया। लोगों ने बाद में

इंदिरा ने तामपुर कि उन्हें इतना चुन लिए गए थे आहूती भी, लेकिन उनसे नहीं था कि पर पर मफलत प्राप्त अच्छी तरह से और उन्हें इंदिरा ने अपने अंतर्गत पर ही जाए। इसके अति को उसकी तबका करवा दिया।

पार्टी में उन्हें वे भी नेहरू अपने आक्रमण के वास्तविकतां भाए, तो वे अपनी गमन्य अंगने पिता की अतिशय केंद्रीय प्रधान मंत्री बनने ने वे नेहरू पर उ करने पर विवश नहीं हैं और तब शक्तिमान थे और सफल थे। इस के बाद नेहरू तब से बात करते के राजनीति के तब आर से मान के इंदिरा को अपने को अधिकतर में तामपुर को वे शरू हया। उन कांग्रेसी नेता थे

दिलों की राज्यों की कांग्रेस पार्टी पर इसी मिशनरी का पुरा नियंत्रण था। पर संयोग से कांग्रेस अध्यक्ष वा.महाज. में मिशनरी का दमनिक मनमुटाव हो गया कि उन्होंने दूसरी बार भी अध्यक्ष बने रहने पर जोर दिया और उसमें गफल भी हो गया। मिशनरी के सदस्य पुरातनरंभी थे। वे 'राज' बनाने का काम करते थे। कांग्रेसी मन्त्रा को बनाए रखने के लिए वे केंद्र के नेता के रूप में ऐसे कमजोर और राजाशाही व्यक्ति को चाहते थे, जो पूरी तरह उनकी मूढ़ी में रहे। कांग्रेस भी मूलतः इसी मिशनरी के ही चरित्र के थे। उधर उम्मीदवार अपने पक्ष में कांग्रेसी सदस्यों के बीच जोर-भोज भिड़ा रहे थे, इस कामराज 'राज' बनाने वाले की भूमिका निभा रहे थे। उन्होंने इंदिरा के पक्ष में अपनी पूरी ताकत लगा दी। वे समझते थे कि इंदिरा उनके साथ ही कठपुतली होगी। यद्यपि इन राज्यों ने कांग्रेस पार्टी की सरकार भी वहाँ से मुख्य संविधान की दिशा में बनाकर उन्होंने कहा कि कांग्रेस पार्टी के संयत-सदस्यों को वे उम्मीदवार का समर्थन कर उसी की प्रशंसा मत देना होगा और इनकी पूरी जिम्मेदारी साध लोगी पर है। इंदिरा ने उन्होंने संसद् में कांग्रेस पार्टी के नेता के चुनाव में लड़े होने से स्पष्ट कहा। इंदिरा मन में तो यही चाहती थी कि साधना त्रिवेदीय वह हो जाए; लेकिन जब चुनाव की तारीखी मासने आई तो उसी अपने स्वयं स्वीकार कर लिया, जग भी लघवराई। और न वह कांग्रेस के इस पक्ष में ही हर्षावाहित हुई कि उसका चुनाव महज परधारी है। उन्होंने लिखा था, 'उस वृक्ष हो गए, और उस वृक्ष का चुनाव नहीं तो स्वयं के लिए सावध न भी रहे।' लेकिन इंदिरा जानती थी कि पार्टी के वे पुरातनपक्षी कुछ भी नहीं बन सके, उनका उनके साथ है। जब एषनारों ने उनके चुनाव लड़ने की उनकी प्रवर्धना के बाद में पूछा तो उन्होंने जवाब दिया, "मैं नहीं करूँगी जो भी कामराज कहेंगे।" दूसरे शब्दों में इसका मतलब यह हुआ कि अगर कार्यकारिणी के बहुमत में उसका नाम प्रस्तावित किया तो वह राजाभिद हो जाएगी।¹⁾

प्रधानमंत्री बनने के बाद इंदिरा जी ने कामराज समेत मिशनरी का यह दिशा दिया कि तुम वृक्षों की 'राज' बनाने वाली ताकत अब खत्म हुई। भ्रष्टकारी ताकत में राज्यों में होगी। मतलब मैं खुद एक नई पार्टी बनाऊँगी ताकि मैं एक पार्टी का अग्रणी होऊँ, देश के शिष्ट में इस्तेमाल कर सकूँ, इतना ही हीमती वाली मे तैरक फल के संविधान दिनों में अपनी साक्षों में यह देखा दिया था कि कांग्रेस पार्टी पर चुनो है। यह उनकी मूर्खता का ही लक्षण है कि वह 'राज' बनाने की मर्जीत हो गई है। उस मर्जीत को नष्ट कर एक ऐसी नई मर्जीत बनाई जाए जो पूरी तरह 'मेरी हो' क्लिक केने प्रकार पर चले, यहाँ वही महत्वाकांक्षा का पक्ष किहु है जहाँ से श्रीमती गांधी एक मोर सत्ताधारिणी बनती

१. 'हनु मे प्रधान मंत्री', पृष्ठ २१४

महत्वाकांक्षा से श्री

है, और दूसरी ओर का राजनीतिक फल नहीं हुआ पार्टी के वहनें सब केवल मरी ही बंधी होने लगे

इसका जबरद

नृशे के साथ निर श्रेष्ठ ने मेला था क था। ठीक इसी पर साथ समाजवादी दिशा में कादुमरे दारी उन्हीं पर है ककारी प्रति है। इ चरित्र को नोड़ने का मार्गशी।

राजनीति में

दिनी तरह का भी लाहादाह की संया उन विरोधी दल का इसकी परतों में च मिशन के लिए यह नीति चरित्र। डा. इंदिरा की म में श्रीमती गांधी पढ़ा।

गैरक और न

को बाकत नहीं है मतलब, यह फल जबकि इसी तंत्र में तंत्र था जो दम देत से यह जामने तंत्र सकता है न अपनी

राजनीतिक प्रयोग से इसका उदाहरण पेश कर दिया है ।

इस सत्ता राजनीति के ठोस उदाहरण का आरम्भ राष्ट्रपति डाक्टर जाकिर हुसैन की मृत्यु के काबू में शुरू हुआ । जुलाई १९६६ की घटना है । मिडीवेल्ट कांग्रेस की मरफू में राष्ट्रपति के लिए श्री संजीव रेड्डी का नाम प्रस्तावित हुआ । इस नाम का संश्लेषण में इंदिरा जी ने समर्थन किया था । लेकिन उच्च विजली प्राकर मोरारजी देसाई से उनका विजय विभाग अपने हाथ में ले लिया और कहा कि मोरारजी भाई पहले की तरह सब भी उप-प्रधान पंजी बने रहेंगे । श्रीमती गांधी ने ऐसी अपमानजनक स्थिति पैदा कर दी कि मोरारजी भाई ने उप-प्रधानपदी अब संत्यागपत्र दे दिया । १६ जुलाई १९६६ को चौदह प्रमुख भारतीय वंकों के राष्ट्रीयकरण की घोषणा कर दी गई । श्री इम तया-कथिन 'क्रांतिकारी' कथम था नाम उठाकर इतिहास जो एक नाचनर राग-नीतिक खिलाड़ी के रूप में राष्ट्रपति पद की उम्मीदवार श्री संजीव रेड्डी के सम्बंध में इंगित कर श्री वी० वी० गिरि के माथ सड़ी हो गई । इंगे 'अंतरात्मा की घागात्र' नाम दिया गया । स्वभावतः तदा राष्ट्रपति श्रीमती गांधी का व्यक्ति हुआ । और इस मरफू भूठ, प्रबंध और परस्पर परिवर्धन की राजनीति शुरू हुई । कपिल दो हिस्सों में बंट गई—पुरानी कांग्रेस और नई कांग्रेस ।

दसमम राष्ट्रपति का वह चुनाव श्रीमती गांधी के व्यक्तिगत मण्डल की एक सफल परीक्षा थी । यहीं से व्यक्तिगत सत्ता का श्रीगणेश होता है । और गांधी ही यहीं श्रीमती गांधी से व्यक्तिगत परिवर्धन और सयुग्धः शोध की भी परिष्कार होती है ।

व्यक्तिगत सत्ता हाँदियाने के सम्ये पर 'गरीबों हत्याघो' के नारों के बीच १९७१ का लोकसभा चुनाव मंगल हुआ और श्रीमती गांधी के पक्ष की अभूत-पूर्व जीत हुई । पर आगे चलकर तब परिवर्धन और सयुग्धः शोध में विरकोट हुआ । जब १६ जून १९७५ को श्री राजकारण श्रीमती गांधी के अलाफ चुनाव गणिका में जीत गए । श्रीमती गांधी की यह हार क्या इतनी बड़ी थी कि इसकी प्रतिक्रिया में २६ जून १९७५ को देश पर आपातस्थिति लागू कर देश के मारे नेताओं और सम्मन विपक्ष को गुपचाप जेल में डाल दिया गया ? हाँ, यह हार नहीं, सङ्कार पर चोट थी । यह हार, नहीं व्यक्तिगत सयुग्धः शोध और परिवर्धन की दुर्घटना थी । श्रीमती गांधी द्वारा मावात्स्थिति की घोषणा इसी का फल थी ।

प्रसिद्ध अङ्गदीप पत्रकार गो० राम० पंडित के शब्दों में "अस दिन भारतीय राजनीति में नेहरू पुनः समाप्त हो गया ।" "वे० पी०" के शब्दों में "२५ जून १९७५ तक भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र था । २६ जून १९७५

१. 'एन आन एन एन', पृष्ठ १००

से वह प्रतिभायुक्त तब
इस देश की मानिक
को (आदि) के स्थान

२६ जून १९७५
स्वयं और चारों
हर स्तर के छात्रों,
हिंदी क्षय और दिवस
उपान न, और लक्ष्य
तानाशाही का भारतीय
और समुदाय हिंदी क्षेत्र
और सब १९७५ के
प्रतिबंध लगाया गया
नसबरी हुई । प्राप्त
नों की गीतों के

दस्ता आर्जक
श्रीमती गांधी सत्ता
और जन-शाहीन
उत्तर पूरे देश में
शकल लेने जा रहा
के विचार पूरे देश
जाए ? वह राजनीति
पहलूय था जून में
अनता में छात्रों की
ही साथ वह देश में
अम पैदा कर उसे
तकके कि देश में
हल पर सकी है
कारवाई हुई है, वह
को कारवाई भी
कि समाचारपत्रों में
कारी नहीं की गई
किया गया, घूमने
की समय से पहले
ऐसे लोगों के विचार
इस व्यक्ति के

र दिया है।
 शरभ राधकृष्ण शास्त्रि
 १९६६ की घटना है। मिनीकॉट
 संजीव रेड्डी का नाम पटनामिन
 समर्थन दिया था। लेकिन इन्फ
 त्त विभाग अपने हाथ में ले लिया
 त्त मंत्र भी उपा-प्रधानमंत्री बने
 स्थिति देश कर दी कि मंत्रालय
 था। १९ जून १९६६ को श्री
 का कर दी गई। श्री इम तया-
 दुरिरा जी एक नए नए राज-
 न्मोदवा भी मंत्रालय रेड्डी के
 साथ सही हो गई। इस 'अंतराल' में
 राष्ट्रपति श्रीमती गांधी का व्यक्ति
 नर कनिष्ठा की राजनीति का
 क्रांति भी नई कार्य में।
 श्रीमती गांधी के व्यक्तिगत संघर्ष की
 जनता का भीगवाह होता है। श्री
 निरन्तर भी अनुकूलता बोध की
 श्रीमती गांधी के साथ के बीच
 श्रीमती गांधी के वक्ष की समुन्-
 म भी अनुकूलता बोध में दिक्कत
 श्रीमती गांधी के खिलाफ चुनाव
 हार का इतनी बड़ी थी कि इसकी
 पानस्थिति लागू कर देश के बारे
 में न मान दिया गया? हाँ, यह
 ही व्यक्तिगत समर्थन और
 या सान्त्वयन की घोषणा करनी

में वह अधिनायक तंत्र में परिवर्तित कर दिया गया। २५ जून तक जनता
 इस देश की मालिक थी, परंतु २६ जून से वह अधिकार खिन गया है और
 जोगाही के स्थान पर एक व्यक्ति की तानाशाही कायम हो गई है।"

२६ जून १९७५ को देश में अचानक जो आपातस्थिति लागू हुई उसका
 स्वरूप और चरित्र क्या था? यह चीज क्या थी? अनुभव तो सभी ने किया।
 हर स्तर के यादगी, हर स्तर के समाज और पूरे देश में। एकदम समस्त
 हिंदी क्षेत्र और दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात,
 बंगाल में, और सबसे अधिक दिल्ली में उसे भेगा। जिस तरह से यह हमारे
 तानाशाही का भारतीय गानन थी, उसी के अनुकूल उसका माहन कार्यक्रम दिल्ली
 और सन्ध्या हिंदी क्षेत्र था। १९५७ में यही क्षेत्र था। १९६२ में भी यही क्षेत्र था
 और अब १९७५ में भी यही क्षेत्र था। यही सबसे अधिक कड़ाई से प्रेश पर
 प्रतिबंध लगाया गया। जनता के मूल अधिकार खीने गए। अर्थात् देश में
 तमबन्दी हुई। शासक के जितने उपयुक्त हो सकते हैं, सबके प्रयोग यहाँ हुए। जामों
 लोगों को सौख्य में बंद कर दिया गया। एक अजब तानाशाही घोष दी गई।

दुसरा सवाल और प्रश्न नहीं पैदाया गया? क्या सिर्फ इमोलिया नहीं कि
 श्रीमती गांधी तत्ता को कुम्भों पर बैठी रहें, बल्कि मुख्य रूप से इसलिए भी कि
 जो जन-सादोषन राजनीतिक मूल्यों और अधिकारों के लिए हिंदी क्षेत्रों से
 उठकर पूरे देश में फैला जा रहा था और बहुत तेजी से जो संयुक्त प्रति की
 टकल लेने जा रहा था, उसकी बुनियाद को ही खत्म कर दिया जाए? जे० पी०
 के विचार एवं लोकसंघर्ष में मजबूत हो गए संगठनों को ही दफना दिया
 जाए? वह राजशाही द्वारा लोकशक्ति का नष्ट करने का एक बहुत ही गुरा
 पद्धत था। जून से लेकर अगस्त तक लाखों लोगों का गिरफ्तार कर देश की
 जनता में सन्तुष्ट फैलाने का उद्देश्य तो इस तानाशाही सरकार को पर ही, साथ
 ही साथ यह देश में भीतरी और बाहरी संकट का होना खड़ा कर जनता में
 भ्रम पैदा कर उसे अपनी शरण में लेने का भी उपाय था ताकि जनता यह
 समझे कि देश में जो भीतरी और बाहरी संकट ऊठा हुआ है, उसे सरकार ही
 हल कर सकती है और देश में आपातस्थिति की घोषणा कर जो समन को
 कार्रवाई हुई है, वह उसी संकट से निपटने के लिए की गई है तथा यह हमन
 को कार्रवाई भी देश और समाज के बाधुओं के साथ हुई है। यही कारण है
 कि समाजशास्त्र में गिरफ्तार, सादोलनकारियों के नाम और संख्या की जम्न-
 कारी नहीं दी गई। सरकार की उठकर गफड़ा गया, चोरबाजार का माथे जश्न
 किया गया, बूसलोर इंपोव्ण्टर मुफ्त में किया गया या किसे 'निकामी' अकंठर
 को समय से पहले पेशान दे दी गई तो उसका खूब चिड़ोरा पीटा गया। स्वभावतः
 ऐसे लोगों के विरुद्ध कार्रवाई का जनता ने स्वागत और समर्थन किया।

इस दमन के खिलाफ जन के सौख्य में, भूमिगत लोगों से

सा पता चला कि हमारी प्रधान मंत्री कितनी निर्भय
 ही का भारतीय भावना तैयार किया है। एक तरफ
 के जीवन में पुनर्जात का इलाका नहीं, दूसरी तरफ
 कर्म विशेष करनेवाली, मुक्ति चाहने वाले दोनों
 सांख्यिक-सांख्यिक जीवन के लिये एक आवाज उठाने
 का साधन करना पड़ रहा है, उन्हें जेलों में
 लटकाने पीना या रहा है, पेशाब पीने के लिए
 दूसरे की जननीयता को मृत में रखने के लिए
 । उनकी गांधीजी के साथ सामाजिक व्यवहार
 संवाद चल रही है, मध्यम प्रणाली के अविश्व
 को शक विपक्ष के नेता जेल में नजरबंद है और
 है। तमिल में कायंबाड़ी चल रही है और इसका
 में प्रकाशित नहीं किया जा रहा है। एक तरफ
 तरह २०-सूची सांख्यिक कार्यक्रम का आधार
 जन-मजदूरों को सांख्यिक स्थिति में परिवर्तन की
 उद्योगपति घराने, देश के सांख्यिक, उनके २०-सूची
 पर रह है ? क्या उनका देश परिवर्तन ही
 र हस्तगत के अधिकार का जन्म कर लिया गया
 की इंदिरा के भाषण मुखवाज तमिल के मुँह
 है, मीने के धर्म बनाया जा रहा है ।
 ही के इन भारतीय पाठक को विशेषतया हमें
 हम भाषावादी के रचनात्मक अर्थों पर न जाने
 कोई शक्तिकारी भाषावादी, विगत जन-जीवन
 सेवा के लिए नहीं बरखा जा सकता। रचनात्मक
 की जीवन-संसार के साथ-साथ समाज के
 सेवा स्थिति सेवा हमारे साहित्यिक संपूर्ण
 ही जनता आग, और वह सुधी-सुधी सरकार
 इंदिरा में अनुशासन का यही अर्थ है। हम
 आप को कि गए— एक संघटन और इनका
 में गरीब किसान से लेकर ऊपर तक लोगों
 सरकार बहुत प्रगतिशील बंद गई दिल्ली है।
 नहीं कि देश भाषावादी सरकार मूठ और
 सोवने लगे, मतवादीयों की तरफ से पात्र
 से लपटा जा रहा है, लेकिन यह कोई नहीं

बान नहीं है। इंदिरा ने भी 'समाजवाद' में अपना विश्वास प्रकट किया था
 और अपना २२-सूची सांख्यिक कार्यक्रम भी बताया था। नहीं पूर्व मुसोलिनी
 भी क्या एक 'समाजवादी' नहीं था ? इन 'समाजवादी' का एक ही अर्थ होता
 है—कांग्रेस ! और सांख्यिकवादी सरकार देश के मिल-मालिकों और सूत्री-
 पतियों से दान धन की साधारणता पर खड़ी होने है। लोकतंत्र में परित
 एक मिल के अनुसार सब नाल-पंजी, पूर्ण बंदी और मजदूरों की छाती करने
 के पहले सांख्यिकों को निर्धारित सूचना देकर गया के दे या राज्य सरकार से
 राजा प्राण करना आवश्यक हो गया। उग मिल ने कांग्रेसी सरकार द्वारा
 मिल-मालिकों को ऐसी अनुपति देने के पहले कांग्रेसी धन को इनके लंबी रुकने
 बगुनने का रास्ता और साफ कर दिया। लोग देखने लगे— सब सरकार और
 मिल-मालिकों कायम में नाल-पंजी कर मजदूरों का दोहा गोपन करे और
 मजदूर इस अधिपण के लिये एक हस्तगत नहीं कर सकते। मजदूरों के जिन के
 नाम पर ही सरकार ने उनका अधिकार (हस्तगत और जनता का अधिकार)
 हीन किया ! सांख्यिकीय म (हस्तगत) या भाषुनेन भारत को अपने अनुभवों
 के ज्ञान-शाही को कुछ मजदूरों का पता लगा।

सांख्यिकीय साधन करने के लिए इंदिरा गांधी ने क्या कारण दूना और
 किम बताया में उसे 'राष्ट्र के जन्म संदेश' का का दिया इतने उनके राजनीतिक
 चरित्र का स्पष्ट पता चल जाता है : 'गरीबों के हित में ध्यान करते हुए युक्त
 ज्ञान और तपः करने के लिए निर्वाधियों द्वारा एक विशाल पदार्थ रचे जाने
 की वरत में मुझे यह अंतर कर्म उदाभा पड़ रहा है ।'

यह दरममल स्थिति कथन है राजनीतिक इंदिरा का। उससे महत्वाकांक्षा
 के साथ अहंकार है। अहंकार के साथ तपः के जनि अधिराज्य है। अहंकार
 के साथ ही निर्भय अहंकार भी है। महत्वाकांक्षा, अधिराज्य और अहंकार इन
 तीनों के संगोपन में जिम इंदिरा का चरित्र प्रकट है, उसका एक ही फल है—
 संघटना। दोहन चले जाता गले के लिए। जाने के लिए नहीं अधिराज्य के लिए।

जिम निर्भय राजनीति का वृक्ष लगाया था अहंकार ने, अधिराज्य ने और
 निर्भय वृक्ष की जवाहरमाल में बड़ा किया उसी का फल है इंदिरा गांधी। यह
 नगोपन की बान नहीं है कि भोगनी गांधी का पूरा नाम इंदिरा नेहरू-गांधी है,
 यदि यह ऐतिहासिक तथ्य है। कि इंदिरा का विनायक ने वह तपः करने ही
 पिता जिने राजनीति और सांख्यिक का अहंकार बहन है और वह कहीं नहीं
 पिता जिने ज्ञानंर करते हैं। विगत फल के भीतर वा कोर तैयार होता है।
 फल जिमसे पकता है और तपः वृक्ष में मजदूर से जन्म ही जाता है।

एक बार १९६६ में कांग्रेस की बैठक था निर्भय मता के लिए। और
 उन निर्भय मता को कायम रखने के लिए सांख्यिकीय नी लाना पड़ा इस देश
 में सांख्यिकीय राजनीतिक कार्यक्रम के बाद १९७० में जब दूसरी बार

फिर कार्यवाही को तोड़ना पड़ा इंदिरा नेहरू-गांधी को। एक बार नदी दोन्दी बार जिसे प्रधान मंत्री की पूर्ण सत्ता प्राप्त हुई, जिसे नेहरू में कई गुना अधिक सत्ता अर्जित हुई, जिसने जूनोथ महीनो तक भारत जैसे देश पर ऐसी तानाशाही की, उसे अब भी इतनी सत्ता और महत्वाकांक्षा की इतनी भूख क्यों? दरअसल इसके अलावा इस निर्मूल राजनीति में और कुछ है भी तो नहीं। चूंकि अपनी सत्ता कुछ नहीं है, भीतर केवल भय है, असुरक्षा है, अहंकार है, प्रतिजोध है, अपने और दूसरों के प्रति अविश्वास है तो बाहरी सत्ता के अलावा और विकल्प ही क्या है? ऐसी स्थिति में सत्ता हथियाने का एक ही मार्ग है—बांटो, तोड़ो, छूट डटो, जो नहीं हो वह बनो, जो है ही नहीं वही दिखो—यही है सत्ता राजनीति और इंदिरा नेहरू-गांधी का अन्वयतम उदाहरण है।

आणवृत्काल में संविधान में प्राप्त मूल अधिकारों की समाप्ति, प्रेम पर कड़ा से कड़ा सेक्टर और हजारों नौ जेल भेजने पर इंदिरा गांधी सावा करती नहीं हारों कि वे "संविधान के अंतर्गत और प्रजातंत्र को अंधाधुंध के लिए काम करती नहीं है।" और वह आज भी नहीं हारेंगे हैं, कभी नहीं हारेंगी क्योंकि हार तो उसी दिन ही गई जिस दिन ऐसी राजनीति का उद्वेग हियेक बनना पड़ा।

इस सब के बावजूद श्रीमती इंदिरा गांधी, आज जब कैंद्र में जनता पार्टी का संपूर्ण शासन है, लोक नेता जयप्रकाश के समान्तर एक राजनेता है। इनमें राजनेता के वे साठे लक्षण हैं, लक्ष्य हैं, साधन हैं, जिसे हम भारतीय राजनीति कह सकते हैं—भारतीय राजनीति का राजनेता, मनलक्ष समलोक, कर देने वाला, ध्यान सींचने वाला, चर्चा, भय, किडमा-कहानी का त्रिपय बनने वाला, प्रीत प्रतल: महान दिखने वाला— विशेषकर अपनी बातों में चरित्त वाले जैसा ही उसे कौन देखने या सकला है। जिसका जितना शक्ति भूठ होगा उसकी उतनी ही बड़ी राजनीति होगी।

आज हम जि
 निर्भरकर्मो (प
 राजनीति नहीं
 नरिथ स्वभाव
 सामाजिक बंध
 मध्यस्थीन है।
 नियाम बनना
 मिताही का प
 मध्यता, सुद
 नादिरशाह, उ
 छोटे नैमूर, की
 बाटे कोई
 राजनीति में न
 कर दिया है।
 की बहान बनाने
 है। हमें पता है
 स्थिति, संकल
 है—'गरीबों ह
 कार्य करेगा? व
 उनमें मनुष्य क
 उलाह हो रहा
 भाग का
 वह तीन प्रकार
 आया और राज
 ने आरंभचंचकि

दुरु-गांधी को। एक बार तही दो-दो
 त्र हुई, जिसे तत्काल से कई गुना अधिक
 महीने तक भारत जैसे देश पर ऐनी
 और महावाकांक्षा की इतनी भूख
 पूरा राजनीति में घोर दुःख है भी तो
 तर केवल भय है, असुरक्षा है, पड़कार
 ति अविश्वास है तो दाहरी भला के
 त्विनि में यत्ना दृष्टिदाने का एक ही
 हीं हो वह बनो, जो है ही तही वह
 नेरक-गांधी इस अस्वास्थ्य की दृष्टिकोण

बुद्ध धर्मियों की समर्थन, प्रेम पर
 भेजने पर हरिद्वार गांधी आवा करती
 और प्रजातंत्र को बचाने के लिए यान
 ही धारी है, कभी नहीं हारेगी क्योंकि
 ही राजनीति का अर्थ है शिक्षा बनना

गांधी, भारत अथ केंद्र में अनेक पार्लो
 के समान एक राजनेता हैं। उनमें
 आगत है, जिसे हम भारतीय राजनेता
 राजनेता, मतलब अपकार कर देने
 कम्पा-रहागो का विषय बनने वाला,
 हर अपनी बातों में अरिष्ट चाहे जैसा
 जितना बड़ा भूट होगा उसकी उतनी

पंद्रहवां अध्याय

राजनीति और हम लोग

हम लोग जिस राज्य और उसकी राजनीति को देख रहे हैं वह 'इंडिया' की
 डिमोक्रेसी (परिचर्या) के रूप में राजनीति है, भारत में लोकतंत्र या जनता की
 राजनीति नहीं। अखिर में उसकी अपनी डिमोक्रेसी और उसकी राजनीति का
 चारित्र्य स्वभावतः आधुनिक है। परंतु वही चूंकि हमारी भारतीय प्रजातंत्र और
 सामाजिक संस्था में वैमेल है, विपरीत है, अतः उसे राजनीति का चरित्र यह
 मध्ययुगीन है। राजमहल या जेल, वं ही जहाँ हैं वहाँ हमारे यहाँ का राजनेता
 विवास करता है, बल्कि जहाँ उसे निवास कराया जाता है। दोनों स्थानों पर
 गिराही का पहना रहता है। उसकी परिवर्तन विनियमनों में बाँधकर, दरवाजे
 कसबता, भूँठ और कूना उल्लेखनीय है। मध्य युग में कहीं एक वैभूषण एक
 तादिरबाह, एक बाँधर- एक बाँध लुटकार बना जाता था, अब चमत्कार लोहे-
 छोटे तैपूर और तादिरबाह अनातार हटने रहने हैं।

जहाँ कोई मत्तारह में हो या अविश्व के किसी भी देश में बात की हमारी
 राजनीति में सबकी अपनी जगह से उठकर राजमहल की गैरउत्तरी के पास खड़ा
 कर दिया है। सबकी परधर्म और जालनी बन गया है। यह राजनीति जनता
 को वेह्वर बनाने, गरीब की गरीबी भिन्न के नाम पर अपना व्यवसाय करती
 है। दूरी गता है कि इगका अस्मिन्च ही निर्भर है मनुष्य के दारिद्र्य, दूख,
 विधित, संकट और उसके अज्ञान पर। यह माय बड़ा-बड़ा घोषणा करती
 है -- 'गरीबी हटाओ', 'संपूर्ण क्रांति', पाँच पर यह मनुष्य करता है जो यह
 कार्य करेगा? वह मनुष्य बनने का होने ही न राग यही तो उसकी राजनीति है।
 उत्तम मनुष्य क्या, केवल मनुष्य बनने की प्रेरणा, अभिक्रम, उद्वेग और
 उत्साह ही कहा है?

भारत का राजनेता सबसे अधिक बाणी या भाषा का उपयोग करता है।
 वह तीन प्रकार की भाषा इस्तेमाल करता है—साध्व्यारिषभ भाषा, क्रांतिकारी
 भाषा और वाजाल भाषा। पश्चिम का पत्रकार और राजनयिक हमकी भाषा
 में साध्व्यारिषभ रह जाता है। उसकी शक्ति में कुछ नहीं पाया। भारत के

राजनीति और व्यापारी में पूरी तरह से सम्मानता है। शहर सम्मानता है तो स्वयं मूल्य— राजनीति विना किसी माध्यम से, पूँजी के अभाव व्यापार करता है— इसीलिए इनकी चर्चा करता है— 'सेवा', 'देससेवा', अर्थात्, और ज्ञान रहे कि मनुष्य सेवा नहीं, यहाँ तक कि अपने स्वयंसेवा की सेवा नहीं स्वयं देससेवा! और व्यापारी मान मानने तककर अपना व्यापार करता है, और केवल 'मान' के लिए लुब्धी मांसे रहता है।

उनके इस चरित्र का फल यह हुआ है कि समाज के स्थान पर व्यवस्था चलावाली हो गई है। व्यक्ति की तरह परिवेश दुर्बल और अज्ञेय हो गया है। और व्यवस्था ने 'विश्व' के लिए हुए धर्म में 'लेनिनिस्ट' बनने के लिए विवश हुए। इसलिए इस राजनीतिक परिवेश में हर कोई 'मिरी' 'मांसे' को लेकर भयभीत हुए हैं। वहीं परिवेश उन्मत्ततर अचिन्त मान, अधिक उच्छ्वा, और अधिक भूषण दिखाकर रहता है, और वहीं अपने से नम्रों का आत्म भी रचता है। वहीं बला है, वहीं दातु है, वहीं भयना है। एक साथ में अपना दुर्ग हाथ में देना। एक ही मांसे की स्थितियाँ पैदा करना, दूसरी ओर समन करना।

परमर हमारी वर्तमान राजनीति उन्मत्तों के मगार में भेल अपने लगती है। वहीं रहता, वहीं दुरानी चर्चे में भूल पाना, वहीं कुट्टी, वहीं भिन्नी, वहीं आदेशपत्र व्यवहार। हर एक देश जने के चक्कर में। कहीं कोई मुक्त में मेरी नीर न धीरे से जाण हर समय वहीं शाशका और भय। ती काली सेजों और अधिवासी की रक्षा का केवल एक ही उपाय है—अधिक से अधिक अविश्वानी होने बनने को महत्ववाना। उन्मत्तों प्रक्रिया में अन्तः धीमती गीरेग मांसे की तरह 'दिकेंद्र' हो जाना, और अल्प-प्रचचना यह कि हमें बनना, देस और भयानक की 'सेवा' और 'रक्षा' करना।

वचन में नरा जाता हुआ पाना और पुत्र का वह आदेशपत्र भनव और उक्ता जीवन्तरीय, भारतीय राजनीति के चरित्र का महा लक्षण है। 'लेनिनिस्ट' पितः का अपने बड़ा विरोधी है और साथ ही पितः का अपने बड़ा आर्षेय और प्रणम भी है। उन आदेश में सेवा वचना, 'अज्ञेय' वाले जितना अज्ञेय हो जाण, वह अपने प्रतिपक्षी से कभी भी पूरी लड़ाई नहीं लड़ सकता। वह आदेशपत्र अपने विरुद्ध खड़ा हुआ अपना संघर्ष अन्ततः कोन ही में लेने के लिए विवश हो जाता। क्योंकि वह अपने अचरित में उन अन्विश्वानी मना के प्रति एक ही साथ प्रेम और निरोध दोनों कर रहा है। अज्ञेय मना के विनाक भावों का अन्तः, अज्ञेय और कुट्ट मन्थ के बात आने तक देना उन्मत्त नो-चिन्तन का मन्थ है। मांसे के वाद लोहिण और उग्रप्रभावा आती के उन्मत्तमान नेरु और ज्ञानेय मना के अन्विश्व मांसे में वहीं 'अज्ञेय' आदेशपत्र अन्विरोध है। एक ही साथ सत्ता के प्राने विरोध

राजनीति की
 और मता के
 नहीं, यह है
 उन्मत्तों
 ही राजनीति
 है। पर प्रग
 मिन एव नो
 सानी प्रोफे
 मत्तः में राजे
 कुर्मी पर शन
 कि वे सत्ता के
 वाले और सत्
 कभवा है वह
 तीमा ही नहीं
 अन्विश्व
 यह विचार
 ही अपजोर है
 पान 'वितनी
 कम गोर इन्वि
 रूपकारी नो
 है। उन्मत्त
 नहीं है। वह
 वह खर रही
 उनके अन्वि
 अन्विश्व ही में
 एक में बदना
 हमारे ग
 रही है और
 है और एव
 व्यक्ति पूर्णतः
 निश्चयम का
 व्यवस्थित रहे
 है एवन्विश्व
 की सत्ता का
 शासक की अ
 की ही मांसे

समान लक्ष्य चूके अम्युदय और निःश्रेयस है, इसीलिए ये तीनों अन्धोन्धाधित है। इसीलिए यह धर्म है, व्यक्ति से व्यक्ति-धर्म, समाज से समाज-धर्म, राज्य से राज्य-धर्म। इस प्रकार धर्म भी नहीं है जिसके द्वारा अम्युदय और निःश्रेयस को मिटा हो। मतलब जिसमें व्यक्ति, समाज, राज्य में परस्पर मर्दादा व्यवस्था बनी रहती है वही धर्म है। धर्म वह माथन है जो मनुष्य के हाना परम और काम, के उपभोग को मर्यादित करता हुआ उसे मोक्ष (फल) की ओर ले जाता है। पर केवल इतना कह देने में मोक्ष फल नहीं प्राप्त होगा—यह सत्य है। उसी-लिए संपूर्ण समाज जीवन की योजना भी इस लक्ष्य में की है परन्तु जिसमें व्यक्ति के रूप में मर्यादा रहे। वह अनुमानित जीवन लिए। इसके लिए राज्य या अंगक का यह अन्यायी कर्तव्य था कि समाज में चाने और पैसा जाता-परण हो सके कि व्यक्ति ऐसा गुणोत्कर्ष कर सके कि वह 'फल' को प्राप्त हो। आश्रम व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में 'मर्यादा' का विधान कभी इसीलिए बनाया गया था।

परन्तु जब एक मात्र 'धर्म व्यवस्था' और 'मर्यादा' के दुर्जन से समाज में पतन प्रारम्भ हो जाता है तो वह वृक्षा ही चलता है। ऐसे समय व्यवस्था और मर्यादा बनाए रखने के लिए किसी शक्ति की, अथवा राज्य की आवश्यकता होती है। जब राज्य की आवश्यकता सिद्ध हो गई तब राज्य को अपना कार्य करने के लिए शक्ति की भी आवश्यकता हुई। वह शक्ति इष्ट देने की शक्ति के रूप में राजा या राज्य का प्राणत हुई। गुरु नीति में लेकर व्याप्त, चाणक्य और मनु तक राजा की 'वंश-शक्ति' के बारे में इन तरह कहा गया है कि राजा कान का, मयव का कारण है। अर्थात् समाज के खर मच्छा भ्रमण रहता है या बुरा, यह राजा या राज्यकर्ताओं पर निर्भर है।

पर उल्लेखनीय सत्य यह है कि वह राज्य सदा समाज के सर्वगत रहे अर्थात् समाज के अनुकार, उसके मर्दान चले, यह भी हमारी प्रतीक्षा। मनु-स्मृति में कहा गया है कि राजा को धर्ममय होना चाहिए उसका धर्म यही है कि समाज के हित में, समाज की प्रमुख मानकर राज्य का कार्य करना चाहिए। किसी राजा को 'धर्मराज' की मजा मिली है। कीर्तिलय ने कहा है कि वीरशैव होने के कारण यदि धर्म, अधर्म द्वारा तप्य किया जाता है तो वह राजा की, शासनकर्ता की ही भाव देना है। हमारे पूर्वजों ने राजा के धर्ममय होने पर जो इतना बल दिया है उसका अर्थ और अर्थस्य यही है कि राज्य समाज को तप्य न होने दे, न राज्य समाज पर हावी हो जाए। उनके अनुमान धर्मराज का भूत कर्तव्य यह है कि जो विधम समाज-निर्वाणों ने बनाए है अथवा जिन नियमों, प्रथाओं, पालनियों का विधान हम से ही प्राप्त होता है उन्हें ही अथवा उनकी ही भावना के अनुकूल नियमों को राज्य को मालाका देना चाहिए, तथा उन्हें ही को आत में रखकर शासन करना चाहिए। धर्मराज का यह धर्म

कराण नहीं कि... है जब राज्य समाज... और निःश्रेयस को... यहाँ जो कुछ व्यवस्था, सागर... कर्म उमा... मर्यादा और इस... एतलब यह... सोचने, हीनोत्... का मूल अर्थित है... निरावस्था को... अन्धता में राज... अर्थात् नहीं 'इति... नी तप्य भी है... का धन उगा... राज्य में इतना प्र... पर हमारे स... जो विम मर्यादा है... नीव पर है। म... राजतव का माध... हमारे यह क... सदा है। और... गोट रूप राज्य है... अर्थात् महत्त्वपूर्ण... है। राजा और राज्य... मारी कराने उगी... का यहाँ 'धर्म' तप... साभूतक विषय के... शर्मि या अर्थात्... विधान कल्प है... ने। जिस विम... के विधान म... कर थी।

हमारे यहाँ... है। इसके अनुकार...

नि.सेवक है, इसीलिए ये नीलो अन्धकारस्थित
क्ति से व्यक्त-धर्म, समाज से समाज-धर्म राज्य
की वही है जिसके द्वारा अस्पृश्य और निःश्रेयस
व्यक्ति, समाज, राज्य में परम्परा अर्थात् व्यवस्था
वह माधन है जो मनुष्य के द्वारा अर्थ और काम,
हुमा उसे मोक्ष (पथ) की ओर ले जाता है।
धर्म ही नहीं प्राण प्राण— वह मर्य है। उमो-
जना भी हम हंग में की हमने जिसमें व्यक्ति के
सिन जीवन लिए। उनके निरु राज्य वा शासक
कि समाज में चली और धर्म: चलाकर ही
कर मने कि वह फल का प्राण ही। माधम
जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में 'मथोदा' का विधान

व्यवस्था और अर्थात् के दृष्टि में समाज में
है अर्थात् ही: मरता है। जैसे मनुष्य व्यवस्था
निर्मा व्यक्ति की अर्थात् राज्य की आवश्यकता
आवश्यकता सिद्ध हो गई धर्म राज्य का अर्थात्
भी आवश्यकता हुई। यह कति एक देते की
व्य की प्राण हुई। मुक्त भेति में लेकर व्याप,
ही 'देव-भक्ति' के अर्थ में हम तरह कहा गया
ता कारण है। अर्थात् समाज के अर्थ अर्थात्
वा वा राज्यकर्ताओं पर निर्भर है।

है कि वह राज्य अर्थात् समाज के अर्थगत रहे
अर्थात् चले, यह ही हमारी प्रतिज्ञा। मनु-
की धर्ममय हीना अर्थात् हमका अर्थ यही है
को प्रनुष मानकर राज्य का कार्य बनना
व की मना मिली है। अर्थात् हमने कहा है कि
अधर्म द्वारा नष्ट किया जाता है तो वह राजा
है। हमारे पूर्वजों में राजा के धर्ममय होने पर
अर्थ ही अर्थ यही है कि राज्य समाज का भाव
वही ही जाए। अर्थात् मनुष्य धर्मराज्य का
म समाज-निर्गत को ले बनाए है अथवा जिन
विभिन्न समाजों में प्राण होता है उन्हें ही
हम निर्भर की राज्य की मान्यता देनी चाहिए।
साध्य करना चाहिए। धर्मराज का यह अर्थ

कदापि नहीं कि किसी सम्प्रदाय विशेष का राज्य पर प्रभुत्व हो। यह सभी संभव
है जब राज्य समाज के अंगीन हो। और यदि ऐसे समाज में व्यक्त का माधुर्य
और निःश्रेयस को प्राप्ति दोनों संभव है।

पहला जो कुछ भी है सब उसी 'फल' की ओर आमुख है। यहाँ की मानी
व्यवस्थाओं, माना वाङ्मय, मागे कलाएँ, विद्याएँ, मनुष्य के मारे उद्योग और
कर्म उन्हीं विधेयन फल की ओर गतिमान है। अतः इस समाज-व्यवस्था का
संरक्षण और इस बात का अर्थ नि: कोई उसे भंग न करे, सब लोग व्यवस्था का
पालन करे यह दायित्व राज्य का है— उसी को राजा नामांकित नाम, लि: क,
गोबले, टैंगोर, अर्थात् और नामों में 'स्वराज्य' कहा है। अर्थात् है कि स्वराज्य
का मूल व्यक्ति है क्योंकि 'स्व' का अर्थवादी अर्थमें अर्थ प्रथम वही तो है। इस-
लिए स्वराज्य को कल्पना करण भारतीय वा-एवदा ही मर्यादा है— अर्थात् स्व को
जल्दना में राजतंत्र अधिक में अर्थात् प्रजातंत्र ही ही मर्यादा है। क्योंकि वहाँ
उचित नहीं 'इंडिक्युअर' है और वह सामाजिक पणु है— इसीलिए वह राज-
नीतिक पणु भी है— यह धर्म उनके पुरुषों में मानी और नहीं है अर्थात् अस्तु
का मूल व्यवस्था उपलब्धीय है। सभी पश्चिम की 'इंडोकेमी-प्रजातंत्र' में
राजतंत्र इतना प्रबल है, अर्थात् राजनीति जगती अस्तित्व में है।

पर हमारे यहाँ हीक: इनका उल्टा है। हमारे यहाँ समाज एक अर्थात् अर्थक,
जीवित संस्कृत है। समाज नैतिक आधार पर खड़ा है राज्य केवल अर्थक को
नीव पर है। समाज साधन और लक्ष्य दोनों है— अर्थात् समाज केवल
राजतंत्र का साधन है।

हमारे यहाँ अर्थक मूल व्यक्ति है: अर्थात् वही खड़ा है, इसीलिए वही
ब्रह्मा है। और उनका अर्थक रूप, विष्णु रूप समाज है और उसी का
चोद रूप राज्य है। यहाँ है विभूति की हमारी कल्पना। इस विभूति में सबसे
आंधक महत्त्वपूर्ण है वही अर्थक, विष्णु। और उसी अर्थक को रक्षा के लिए
है। और और कृष्ण उसी अर्थक के अर्थकार है। और आनन्द धर्म माने मुख्य,
मारी अर्थात् उसी अर्थक में अर्थक है। स्वतंत्रता वही अर्थक तत्त्व है। अर्थात्
यह यही 'स्व' तत्त्व है। यह स्वतंत्रता राज्य वा राजनीति का विषय नहीं। यह
मान्यता तत्त्व विषय है। पर जो राजनीति वा राज्य अर्थात् को अर्थकता को अर्थमे-
दारी वा अर्थकार रूपमें हाथ में लेता है वह स्वभावतः समाज की सत्ता का
अर्थक करता है और उस अर्थक स्वतंत्र की पूर्ति करना चाहता है अर्थात्
अर्थक अर्थक वा अर्थक हमारे बीच में नए उसी अर्थक में राजतंत्र अर्थात् समाज
क अर्थक में लगे गये। यही अर्थक अर्थक वा अर्थक अर्थक अर्थक का यहाँ
फल था।

हमारे यहाँ की विही ही हमारी है। 'अर्थ' और 'वृक्ष' ही अर्थक अर्थक का
है। उसके अर्थक राज्य पर समाज का निर्भरण, राज्य तंत्र पर लोग अर्थ

का नियंत्रण हमारी अपनी राजनीतिक विवेकता है। यह राजनीति हमारी संस्कृति का एक पक्ष है, एक प्राणम है इसके अनेक पक्षों और बहु आयामों में से। क्योंकि हमारी ता जीवित परंपरा ही रहनी है गण राज्य या संघ राज्य की जो पद्धतों डिमेंक्रसी (गणतंत्र) से भवेका प्रयत्न है। पश्चिम की यह डिमेंक्रसी वहाँ के कुलतंत्र (ग्रामशासनों) की परंपरा का फल है। हमारे वहाँ सभी हमारे गणराज्य या संघ राज्य के वृक्ष में लोकतंत्र या जनतंत्र 'फल' फल की प्रतीक्षा है। गांधी का 'श्रम स्वराज' उक्ति गणराज्य परंपरा में आने-वाला लोकराज्य प्रथम लोकतंत्र है।

गांधी के बाद 'लोकतंत्र' और 'जनतंत्र' के लिए राजा लोहिया और जयप्रकाश ने सारा जीवन लगा दिया पर सद्दज समुचित फल नहीं आया। क्योंकि इनके लिए लोहिया और जयप्रकाश ने जो भी लड़ाई की वह केवल राजनीतिक स्तर पर थी। क्योंकि यह लड़ाई नासकलिक है—महाज घोष धर्म अर्थात् बीमन (विष्णु) स्तर पर संपूर्ण बुद्ध, तब आंदोलन नहीं लोक राज्य का 'फल' उग देना की संकेत।

हमारे वहाँ लोक की नियंत्रण राज्य पर रहा। इस क्रम में तब तक बाधा नहीं पड़ी जब तक अपना राज्य रहा। अतः, हूण आदि प्राक्रोता भी इसे नहीं छोड़ सके। यहाँ तक कि मुस्लिम शासन के अंतिम दिनों तक जब आवाजी लिहासतामीन हुए, तब भी नहीं क्रम अंतित या। पर जिस दिन से अंग्रेजों ने यहाँ राज्यमता संभाली उन्होंने हमें हमारे आधार से ही अलग कर देने का कार्य शुरू कर दिया। लोक को राज्य से कृचना। महाज को राजनीति से तोड़ा। अंतर्व्यतिष्ठ के वलन अधिकांश विपना की भरा। अंग्रेज अंत मण, पर उन्होंने राजतंत्र और राजनीति की जो विष वेन लगाई वह बढ़ती चली गई।

इसके पिछले पृष्ठों में देखा है कि धर्म से निर्हित जो राजधर्म है उसके दो लक्षण हैं—अभ्युदय और निःशेषता। पहले लक्षण न भौतिक उदय और हमारे उदय में प्रांतिमक, भौतिक उन्नति, अर्थात् 'धर्म राज्य'। पहले लक्षण की प्राप्ति के बिना हमारे लक्ष्य की प्राप्ति असंभव है। और दूसरे के बिना पहला अधुरा और अशुद्ध है। नाणक्य के अर्थशास्त्र में 'अर्थ' का यही अर्थ है। अतीवृत्त राजधर्म के संपूर्ण विचार में बार-बार इसी बात पर बल दिया गया है कि राजधर्म तभी सफल है, 'अर्थशास्त्र' है जब धर्म, अर्थ और काम इन तीनों की अन्वयित-अनुत्त मानकर समाज रूप में विकसित और सिद्ध किया जाए। आस से लेकर नाणक्य तक और यहाँ तक कि आरंभिक सदी के आचार्य सोमदेव तक यही 'वचन' है कि धर्म, अर्थ और काम— इन तीनों में से किसी एक का बल बिना अन्वयित में काम ही जायागा, 'लोक' (धर्मिक और समाज) उनका हमी सन्तुष्टि में अशुद्ध ही जायागा।

लोक की समा अर्थशास्त्र में निर्भूत राजनीति का वृक्ष पक्ष परंपरा और एतने

विनयास रूप में राजा हमारी

दो फल हम राजनीति-वृक्ष

हमारे पहले उग राज्य

विकल्प के समार में

परमार्थित हुए। हम लक्ष्य

का 'लोक नहीं- लोक' का

वला देखने को 'लोकना'

में मजबूत—का लोक—

है। विषय नाम लोक कर्तव्य

है। विनयास, विष्णु दुष्टा

हम तरह विकल्प का सु

आई। अर्थ को, 'धर्म' को

में केवल एक चेतना—

लोकमानस का यही लक्ष्य

है। हमारा अर्थशास्त्र

समाज धर्म पर, लोहिया

है। हमी लक्ष्यो लोक

धर्म, लोहिया, कलाकार,

लोक पर लोक को पहल

समाज हमी फलतः

केवल—अर्थशास्त्र राजनीति

उन विष्णु लोक

नुष्ठात, तबशासन, लक्ष्य

विकल्पित, विनयास, लक्ष्य

मौर, महादेवा गांधी

लेकर गांधी तक की र

और हमी सन्तुष्टि में

की बात है कि भारत

जीवन के कारण विन

दुष्टा उसे मुक्त करने

और लोक जागरण का

दरकार थी।

पर लोक इनके वि

जागरण का वह कार्य

राज्य या सरकार की

निर्माण वृक्ष का फल

विनोदना है। यह राजनीति हमारी इसके अनेक पक्षों और बहु आयामों में ही रहती है वही राष्ट्र या नभ राष्ट्र को सर्वथा सत्कार है। पश्चिम की यह नीति परंपरा का फल है। हमारे यह वृक्ष में लोकतंत्र या जनतंत्र 'फल' मानें 'उत्तम' गणराज्य परंपरा में अने-

न नयों के लिए डाँठ लोड़िया चीन पर सड़क संपूर्ण फल नहीं खाया। शासन की भी लड़ाई का यह केवल सड़कें नाकूलीत है-- नमाल और धर्म सुदृढ, तब लोकतान्त्रिक नहीं लोक राज्य का पर सड़कें इस क्रम में तब तक बाधा पवने, हृण अति व्याख्या भी इसे नहीं के अतिम 'दोनों' तक जब शिवाजी केत था। पर जिस संत में अर्थों ने भी आधार से ही अलग कर देने का कृतना, समाज को राजनीति से तन्मा को अर्थ। अर्थों चले गए, पर लय वेन पगड़े वह अद्वैती चली गई। मर्म से निरतन जो राजधर्म है इसके दो लक्ष्य के आर्थिक उद्यम और दूसरे लक्ष्य का राजन। फलने लक्ष्य की शक्ति को और हमारे के बिना पहला सचुना और अर्थों का जरी पर्थ है। इसीलिए राजनीति पर बना दिया गया है कि राजधर्म अर्थ और लक्ष्य के अतीनों को अर्थोत्था- अर्थों सिद्ध किया जाए। ध्याम से अर्थोत्थनी नहीं क अर्थोत्थ भीपरेव तक अत तनी में मे एकम एक का बन है (अर्थोत्थ और समाज) उतना उसी

राजनीति का कृत यज्ञ पनवा और इतने

विकल्प रूप में राज हमारे सामने है। और हम लोग विना: और विकृति के ही फल इस राजनीति-वृक्ष में लगे— एकदिवस और निर्विना।

हमने पहले इस तथ्य को देखा है कि कैसे हमारा जीवन संकल्प से केवल विकल्प के स्तर में परिणीत हो गया और इसका क्या फल हुआ। इस पराधीन रूप। इस लंबी पराधीनता में हमारा वही लोक (लोक) माने पश्चिम का 'लोक' रहती— लोक, अर्थात् लोकतंत्र, जितना भी कुछ दिखता है। वही हमारे यज्ञ देवने को 'लोकना' कहते हैं, अर्थात् जितना भी हमारे इतिहास के माध्यम के मजबूत - रूप लोक— दिखता है हमें, राष्ट्रमन के माध्यम से जितना अस्पष्ट है, जितने नाम लोक कहते हैं और इस मदकी गिलाकर जितने लौकिक बना है) निराल, विकृत हुआ। इसी लोक विकृति में विकली यह विकृत राजनीति। इस तरह विकल्प का मूल लोक ही है। लोक मानस के ही परले वह अर्थांगता आई। अर्थ को, धर्म को, अर्थांगी रूप में लिखा जाने लगा। संपूर्ण नेतृत्वों में केवल एक नेतृत्व। अर्थ अर्थांग, केवल 'नेता' जैसे भी हो केवल नेता -- लोकमानस का वही लक्ष्य बन गया। राजनीति मरी में लेकर आज तक जिस तरह हमारे अर्थ वर्ग, मध्य वर्ग, अधरवर्गी वर्ग और उनके आरण मंत्र नीचे का समाज धन, पद, लोकरी, लाभ और 'विकल्प' को घेरें उठा है, वह सबके सामने है। इसी एकलोक लोकमानस से रक्षभावतः एकलोक लोकतंत्रिक निर्धने— अध्यापक, केवल, कलाकार, अर्थ-नेता, विचारक और सुधारक। इस तरह बुद्धिबद्धी और पर लोक को पहले लोकतंत्रियों में उतना नहीं मिला कि उसका विकृति समाप्त होना। अतः एकलोक लोकतंत्रिक के स्वरूप लोकतंत्रिक— अर्थात् राज-नेता - अर्थात् राजनीति करनेवाले मिले।

यस विकृत लोकतंत्रिक को सुकृति में बदलने के लिए धर्म, दर्शन, विचार, सुधार, नवजागरण, तबचेतना, राष्ट्रीय जागरण और पुनर्निर्माण के स्तर पर विवेकानंद, रामानंद, राजा राममोहन राय, तिलक, गोखले, देशंदर, मणिवंद मोर महारथ गांधी ने जो कार्य किए उसी का फल था कि तिलक से लेकर गांधी तक की राजनीति सांस्कृतिक, मुकृत लोकतंत्रिक में ही अन्तु रूप और उसी अनुपात में सुकृति की राजनीति थी। पर यह भी ध्यान में रखने की बात है कि भारत की इतनी लंबी पराधीनता और इतने बड़े विकल्पों की जीवन के कारण जितने गहरे और व्यापक स्तर पर हमारा लोक विकृत हुआ उसे सुकृत करने में विवेकानंद से लेकर गांधी तक जितना लोक संस्कार और लोक जागरण का काम हुआ है, उसमें लौकिक कर्म और प्रपत्तियों की दरकार थी।

पर लोक इसके विपरीत मार्ग के बाद आज तक लोक संस्कार और लोक जागरण का वह कार्य ही एक गया। इसके नाम पर जो कुछ भी हुआ, वह राज्य या सरकार की ओर से हुआ। डा० लोड़िया और जनप्रकाश की और

ते जो लोक परिष्कार और लोक जगकरण का काम हुआ। उसका मूल चरित्र राजनीतिक था, इसलिए यह एकांगी था। दर असल यह कर्म राजनीतिक नहीं सांस्कृतिक है। यह एकांगी नहीं संपूर्ण है। इस मन्धार्थ को तिलक और गोखले ने एकड़ा था, तभी गांधी ने उन्हें अपना पथप्रदर्शक और गुरु स्वीकार किया। जितना भी लोक गांधी के संपर्क में आया उगमे पुनः धार्मिक आस्था क्यों जग गई वह फिर से नव राज्य, स्वाधीनता के लिए क्यों तड़प उठा, इसका पूरा कारण यही था कि गांधी ने वह कर्म धार्मिक आध्यात्मिक अर्थात् गुरु सांस्कृतिक चरित्र से किया। परन्तु इसके विपरीत गेह्लर, मोहिया और भवप्रकाश के कर्म में जो लोक उनके संपर्क में आया उगमे अधिकांश के प्रति भ्रम और भ्रष्टाचार के प्रति जिम्मा पैदा हुई। सभात-वार्तियों में संभवतः आचार्य नरेंद्र देव ही ऐसे एकदम से जो गांधी के उस कार्य को उसी स्तर और चरित्र में कर सकते थे। पर लोक नेतृभाहीन परिवेण में राजनीति किम तरह सांस्कृति को अपने पारकर एक किनारे जन देती है, इसके उदाहरण हैं आचार्य नरेंद्र देव।

निर्वीर्यता इस राजनीति का दूसरा फल है। इस राजनीति से जो राज गंत्र निकला है वह मनुष्य को बेईमान, तिकड़मी, झूठा और प्रयत्नो बनाता है—क्योंकि फल ये तत्व या गुण मनुष्य में नहीं हैं तो वह हम राज गंत्र और इसकी व्यवस्था में विगष्ट होकर रह जाएगा। क्योंकि उस राजतंत्र ने अपने पास इनका अपना बल (व्यक्ति और सभाज दोनों के बल हरण कर लिए गए हैं।) सन्तित कर लिया है कि उसका मनुष्योत्त ही वह भूल गया है। लोक इसके विपरीत राजधर्म में जन का स्वयं या विवेक के अनुसार वा प्रयोग होना था और जिसकी रक्षा थी दसकित, इसका उर राजा समाज और व्यक्ति उन तीनों उकाहनों पर समान और विषय रूप में था। तभी उस समाज में इनको संगति थी, तारक्यप था, फलतः उनको सुन-शान्ति थी। पर राजनीति के राजतंत्र में उस दशकित के स्थान पर अहित-शाली और बनवान के प्रति परपाल है, कायरता है, और निवेन के प्रति क्रूरता और अन्याय है।

चूंकि लोक में साहस, हिम्मत और संकल्प नहीं है, इसलिए इस राजनीति में भी फलतः साहस, योध्यता (गदस्य) और संकल्पशक्ति (विल) नहीं है। चारों तरफ गड़गई और अंधाकार का टोकने में लेकर शान्ति और व्यवस्था की स्थापना तक हममें यह जाति का इन्तेमाल करते हैं। अज्ञानता और निर्वीर्यता प्रबल है। इसी राजनीति में एक और यह भ्रष्ट है। जो कि 'जाति कुटी लोच है' और दूसरी और यह समस्य फैला है कि 'जो सत्ताहीन है वह कुछ नहीं है।' सत्ता और शक्ति के बीच जो अंतविरोध और अनापेक्ष्य वह इसी राजनीति का अपूर्व फल है। जिसके पाग सत्ता है वह भी दुःखी वह भी बेचैन और

भयभीत और जिसके पास जिसके पास सत्ता है उसमें वह बेहद डरा हुआ है। नि-उगमे लड़ किनी में ही है। और जिसके पास सत्ता है वह अपने तुलना शक्ति से बल है वह उन वह जाति और जन को शान्ति के लिए पाग और ही चतुःश्रेण्य तत्व है उस

सत्ता और शान्ति के और जनवकाश। सत्ता-नाल नेहुर और शीघ्र ही ही वह शान्ति। उ से राजनीति नहीं है। इस का अपना कष्ट और दो इस पाव ने अर्थः सुन-राजनीति प्रकाश ला ही हय राजनीति के संगत नहीं है, तब बनने की है, तीरत और नैनकता क्योंकि बनेमान लोक में नहीं है। लोक का भी इच्छा पुणे हो जाए। चाहें भांड में जाग उस का नहीं प्रयत्न है कि लिए जो बनेमान शिष्ट में उगदा विरोधाभास नहीं पुणे हो मन्तो पुणे होने ही यह राज-हीनो है प्रांगणोपन। मन्ध और मन्धर शक्ति जो हुयले लोक में और उसी की विरामत र हरेंद्र आ दे राजनी

राजा का रूप हुआ। उसका मूल चाँदनी राज-
शा। २) अमर गुरु कर्म राजनीति: नहीं
संपूर्ण है। इस अर्थार्थ को जिसके और
ने उन्हें अपना पथदर्शन और गुरु
गांधी के मार्ग ने आशा उसमें पुनः धार्मिक
व राज: स्वाधीनता के लिए नहीं बढ़ा
क गांधी ने वह कर्म धार्मिक आध्यात्मिक
किया। पर टीका इसके विपरीत नेहक,
जो लोक उनके संघर्ष में छाया उसने
धार्मिक के प्रति लिखा है। सभा-
वेव ही ऐसे पुरुष थे जो गांधी के इस
धर्म में थे। पर लोक चेतनाओं पर
को उनके चारकर एक किनारे बन देना
देव ।

हूतग फल है। इस राजनीति में जो
वेदमात्र निकड़गी, मत्ता और प्रपत्ती
गा गुण मनुष्य में नहीं है जो वह इस
वेदमात्र संघर्ष में जागगा। क्योंकि इस
वप (व्यक्ति और समाज दोनों के वन
विया है कि उसका मद्दयोंग ही वह
राज्य में वन का धर्म गा। विवेक के
विद्यमान मज भी संवर्धित, इसका इ
को इकाइयों पर समाज और विनाश रूप
गति भी चारतम्य था। फलतः उनमें मूल-
में इस संवर्धित के स्थान पर अन्त-
है। कारण है, और निर्बल के प्रति

नैव सकल नहीं है, इसलिए इस राजनीति
की और सकलशक्ति (दिल) नहीं है।
कि उनके ने अकार धार्मिक और व्यवस्था को
वेदमात्र में ही कलाओं और निर्बीयना
वह मूढ सिद्ध है कि 'शक्ति वृत्ति' की है
क 'वे' गताहीन' है वह कुछ नहीं है। मत्ता
और समाज-व्यवस्था वह सभी राजनीति का
है वह भी दुःखी, यह भी बेचैन और

भयभीत और जिसके पास यह सत्ता नहीं है वह भी दुःखी, बेचैन और भयभीत।
जिनके पास सत्ता है उसके दुःख, बेचैनी और भय का मूल कारण यह है कि
वह वेदद डरा हुआ है कि किसी भी क्षण उसकी सत्ता हिल जाएगी, क्योंकि
उमते वृत्त किसी में भीतरकर इसे लिया है। वह उसको आत्म-धार्मिक नहीं
है। और जिसके पास सत्ता नहीं है वह इसलिए दुःखी, बेचैन और भयभीत
है कि वह अपनी तुलना उसी गताधारी से करने की मजबूर है। जिसके पास
शक्ति है, वन है, वह उनको प्रयोग नहीं जानता तथा जिसके पास नहीं है
वह शक्ति और वन की पाल (दीवली) मजबूर है। इसलिए अन्तः शक्ति
दोनों के लिए पाप और अपराध है। जहाँ वास्तविकता यह है कि शक्ति
ही सर्वश्रेष्ठ सत्त्व है इस जीवन और जगत् का।

सत्ता और शक्ति के प्रति इसी अतिविरोध के बहुत पत्र है जो लोकशा
और व्यवस्था। सत्ता और शक्ति के प्रति दुर्बलपण के बहुत फल है जबकि
जान नेहक और भीमती गांधी। सत्ता और शक्ति का दुर्बलपण करने हुए और
हमी यह संकल दे दें कि सत्ता और शक्ति पाप है, इस राजनीति की मूल
राजनीति नहीं है। इस राजनीति का फल यह है कि मार्ग लोक, इस पाप
का कारण काट और पीड़ा भीग रहा है और मार्ग राजन्य और राजीना कर्म
इस पाप में अकार सुत्र-सुविधा का उपयोग कर रहा है। राजनेता किसी भी
राजनीति प्रकार का ही वह गुण-सुविधा और मज्जे का हकदार होगा। इसीलिए
इस राजनीति के संघर्ष में ही राजनीतिक कार्यकर्ता, जो अन्तः कार्यकर्ता
नहीं है, वेदा वनने भी बेमयी और सोड़ में जगा है। जो क्या मनुष्य देश गया
है, जोति और नैतिकता क्या है, जीवन मूल्य क्या है, उसके उद्देश्य क्या हैं ?
नहीं कि वर्तमान लोक में ही इन सत्ता और मूल्यों का कोई मतलब पर संबंध
नहीं है। लोक का भी अर्थ नहीं बनकर है कि चाहे जैसे भी हो उसकी अपनी
उच्छा पूरी हो जाए। जैसे आज हर पुनिधन यथा पत्नी पहना है कि इस
चाहे भाव में जाए, उसकी मांग पूरी हो, ठीक जमी तरह हर राजनीतिक दल
का यही प्रयत्न है कि चाहे जैसे भी हो सत्ता उसके हाथ में आ जाए। इसी-
लिए जो वर्तमान पत्र में है स्वभावतः वही राज्य की बहाल में है और मव
में ज्यादा विरोधामात्र इस राजनीति का यह है कि इच्छा किसी को यहाँ
नहीं पूरी हो सकती सत्ता यहाँ किसी को नहीं प्राप्त हो सकती। एक इच्छा
पूरी होती ही वह राजनीति हम में वृत्ती उच्छा पैदा कर देती है। फिर गुरु
शक्ति है प्रांतव्यवस्था। सम्भति होने जाते हैं और लोग विक्लें लचने हैं।
मूल्य और चादरें वंच पर चढ़ाए जाने लगते हैं।

जो हमारे लोक में है, वही हीरा हमारी राजनीति में। मेकाने की शिक्षा
और उसी की विद्यालय में हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में शिक्षित विद्वान्,
राजवन्त और राजनीतिक अन्धकार को धारोर्गी द्वारा दूर करना चाहते हैं,

वही उसका उद्देश्य है, शक्ति है, उधर किसी का अजन ही नहीं। माना-रिहा, गुरु, अध्यापक, लेखक, पत्रकार, मैडना-हूकार, बलाकार, मद-माधु, योगी, विचारक, गृध्राणक सब राजनीति वा मंत्र निहार रहे हैं और राजतंत्र के सामने हथ जोड़े, 'सब भूषण' लड़े हैं। यह राजनीति लोक जन की वह पक्षी है जो अपनी पूंज की तन्क से स्वयं को ही ला रही है।

इस राजनीतिक खेल से एक विचित्र कल्पना लोक का निर्माण हुआ है— जो अपनी प्रकृति में अविद्युत जगत्-सा है। कोई बच्चा जैसा स्वयं देखना है कि 'गोबी पिटा देगे।' कोई कहता है 'विहासन गानो गाने कि जगता घाती है।' लोहिया कल्पना लोक से कहते हैं कि 'प्रजापति नहीं उदयते, भारी वों का राज'। जयप्रकाश उम्मी कल्पना लोक से देखते हैं 'संसार कावि'। योर्तिवा कहते हैं 'गानो व्यवस्था जगल दो।' जे० पी० का विचार है— 'गानो व्यवस्था जगल करे।'

ऐसे कल्पनालोक के राजनीतिक उदय वरुण 'गार्थी' के मूक ने कभी निकले थे? नहीं, कभी नहीं, क्योंकि वह राजनीति नहीं कर रहे थे। वरिष्ठ उग्र प्रकाश की राजनीति के गार्थी सबसे उद्रे मनु थे। उर्ध्वनिष्ठ किसी तरह यह राजनीति अपने मशर ने उम्मी गार्थी को बहर निजालकर आगम से रहना चाहती है। वह लोक को जरा रहे थे, उगे संस्कार से रहे थे। वह कह रहे थे कि लोक ने, मेरा देगप्रीम मेरे धर्म द्वारा नियंत्रित है। मैं भारत में उम्मी तरह सधा हूँ निश्च तरह कोई वालक अपनी मा की छाती से चिपटा रहता है, क्योंकि मैं महसूस करता हूँ कि वह मुझे मेरा मातृप्रेम का आधारमिथ, पोषण देता है।... यदि किसी कारण से मेरा यह विश्वास हिल जाय वा भला जाय तो मेरी उमा उन अनाथ के जैसी होगी जिसे अपना पालक गाने की माता ही न रही हो।' ('एंग हरिवा', ३-४-२५)

गार्थी का सारा बृद्ध लोक विद्रुति के विनाशक बना था। यह उगे विद्रुति के मूर्खता की छात्र से जा रहे थे और उन दक्षिणा में वह स्वयं अपने अधकार से प्रकाश की और बर रहे थे। वह दोहरा पल था उस कर्म में। पर उन राजनीति में दोहरा दुर्भाव, दोहरी निष्कलता है। विकृत लोक से विकृत राजनीति, फिर उस राजनीति में उस लोक को कई गुना विकृत बनाना और बनाने वाले जाना, और अंत में उस लोक की समूल नष्ट कर नीचे में अपर एक उसके स्थान पर अज्ञानता का, दूध का, राज्य का एक जात देना देना। उन तरह उस राजनीति की एक ही चरम परिणति है—तानाशाही, डिक्टेटोरिया, अधिनायकवाद। साम्यवाद और पुंजीवाद से दोनों रास्ते उसके लिए स्पान हिल और तापन के हैं। काल मार्क्स में गेहो, लेकिन साम्यवाद में तो व्यक्ति है ही नहीं, लोक नश्वर है, वहा केवल वर्ग है और वर्गों में परस्पर द्वेष, गुणा और संघर्ष उत्पन्न कर अंत में केवल एक राज्य, केवल एक, एक और केवल

एक, राजनीति ही
 वर्तमान राज
 पूर्ण उदाहरण हम
 मी, मे प्रचलनके
 उम्मी एकदो गुं
 कोष जाना। जैसे
 नाल में सीक प्रमे
 बाले को पति'क
 लोक ने उन तरह
 उरिगा गार्थी की
 लोक पक्षी उर्मी
 हम उग तरह भी
 की वहा उग मा
 विकृत चारा काय
 उम तरह ला
 हुआ। सता तस्म
 जैसे १९४० में ह
 'हस्तान्तरित' हुई,
 जवाहरलाल नेहरू
 चुदा था। और व
 विकरान रूप में म
 है 'जगता'। जगल
 ही लिए है। पहले
 समानवाद जनसंघ
 सर्वोदय, विनीया
 नहीं, कोई प्रतिपक्ष
 व्यवस्था के सद हो
 'निर्वीचिता' में मान
 लंदी गुलामी
 साधक से अलग ह
 ने उन 'शक्ति' से न
 करना चाहा है। ल
 परम है। इमान्द
 अधिष्ठापित के स्था
 है। क्योंकि ये दोन

उपर किसी का ध्यान ही नहीं। माना-पिता, मैठनाहूकार, कलकलार, मन-साधु, योगी, का मुठ-निहार रहे ही और राजनर के सामने यह राजनीति लोक जन की वर भरनी है जो ही था रही है।

विशेष करणता लोक का निर्माण हुआ है—
 है। जोटे शक्यो जेमा गदान देवता है कि
 है गिहयन साधो कयो कि जनता शानो
 है कि प्रजातन तही जगत 'नर' को
 ना लोक में लगने है 'अपुन कर्ण'। जाहिया
 'वि' १० का विचार है— मारी व्यवस्था

जक एवद नरो जार्न के घुस में कयो निकले
 राजनीति तही कर रहे थे। वरिण उस
 से बने शक्य है। इयोनिण किमी तरह यह
 लोक का बाह्य निजालकर अणम से रहना
 थे उसे नस्यार दे रहे थे। यह कह रहे वरि
 जग निजालन है। में भारत में उसी तरह
 रूपन ना की लाता में चिपरा रहना है,
 ह मुने मेरा सावरलक साव्यगमक गोपण
 पर यह विधाम दिन बाण ना नला जाण तो
 कि जिसे नरो पालक पाले की सजा ही न
 २१)

कृति के 'सुलभ बना था'। वह उसे विद्वति
 और दन अविना में नह स्वयं सगने शोधकार
 यह दोहरा फल था उन जमे में। पर दन
 ही निगलन है। विवरा लोक के विरुन राज-
 लोक को कडे गुना विरुन बनना और बनाने
 को नमून नए कर लोने में उणर एक उनके
 राजनर वा एक जाल हीन देना। उस तरह
 ह पोणोत है—लानावाही विकेटेदरिण,
 गुनीवाद के दोहरे गाने उनके दिन गमान
 लरु में नही, लेकिन मायवाद में तो व्यक्ति
 केवल नर है और वरों में वरनपर हेद, घुजा
 केवल एक राज्य, केवल एक दन और केवल

एक राजनीति ही लक्ष्य है।

वर्तमान राजनीति के मतर्गत भारतीय लोक को भ्रमभरे का एक भ्रूत-
 पूर्ण उदाहरण हमें १९७५-७६ के साप्ताहिकालीन समय में मिला। सोपे हुए
 लोक में प्रचलक कोष और विशेष का भ्रष्ट कहे में सचानक पैदा हो गया?
 उसकी एकानी शूल, स्वार्थ और निर्दोषता पर चोट लगी तो प्रतिक्रियाकण
 कोष जगल। जैसे कोई वेमवर भी रहा हो और दूसरा कोई आकर उसकी
 राक में सीक घुसेर दे तो मंजे वाला हड़कड़ाकर जागेगा और सीक घुसेरने
 वाले को प्रतिक्षेपलन एक भापड़ मारकर फिर सो जागा। भारतीय
 लोक में उस तरह उसे विरुन 'नसने वाला', राक लगत गाभी शोमतो
 रहिरा गाथी की व्यवस्था को कंध में आकर बदन दिया, और फिर वह
 लोक सगने उरते गहरी निद्रा में सो गया। उस पुरो घटना या दुखेदा की
 हम इस तरह भी देख सकते है कि जहाँ सारा लोक लूट रहा था एक दूसरे
 को वहाँ उस सामूहिक लूट पर प्रतिबंध लगाकर केवल एक लूटे, उनके
 विरुद सारा कोष और अर्थनीय था लोक को।

७५ तरह लोक द्वारा राज सला में बदलाव हुआ पर परिश्रम तही
 हुआ। सला तमसाम में बदली, पर राजव्यवस्था वही भी वही रही। ठीक
 जैसे १९४७ में हुआ—सत्ता सगनेजा के हाथ में भारतीयों के हाथ में
 'हस्तांतरित' हुई, पर यह भारत को अपनी लोकमना तही हीं सकी।
 जवाहरलाल नेहरू के सिनाफ राममनोहर लोहिया के जागी लड़के का यही
 मुद्रा था। और वही मुद्रा अब तक यों का यों ही रही, अब से आज और
 विकरान रूप में सामने है। कहने को यह बदला सरकार है पर कहीं नहीं
 है 'जनता'। जनता आज भी कलन 'बीट', 'प्रदर्शन', 'भीड़' और 'रीची' के
 ही निण है। पहले कांग्रेसी सरकार और उसकी राज व्यवस्था के अलोक
 गनाजवाद, जनताप शासक का इतना जबरदस्त प्रतिपक्ष था। उनमें भी ऊपर
 मवीदय, विनोबा और जयप्रकाश था उनका नैतिक भय था। आज कोई भय
 नहीं, कोई प्रतिपक्ष नहीं। विनोबा जैसे रहे ही नहीं, जयप्रकाश वर्तमान
 व्यवस्था के संग ही गए और सारा लोक फिर सगने उसी चक्रांतता और
 'निर्दोषता' में सांकठ दुब गया।

जंजी गुलामी और अपनी कुछ व्याप्तियों के कारण हम अपने भारतीय
 सञ्चार से सलग होकर 'वसने' के लिए मजबूर हुए। ऊपर में हम राजनीति
 ने उम 'व्यक्ति' जेतना को पारकर उनके स्थान पर 'व्यवस्था' को समावृत्त
 करना चाहा है। व्यक्ति को 'डिडनीशुष्य' में बदल देने की साजिश का यही
 मन है। ह्यमिण व्यक्तित्व शोषण के स्थान पर 'निजी भोग', स्वतंत्रता की
 अभिव्यक्ति के स्थान पर 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' पर आज धनता साफह
 है। क्योंकि ये दोनों चीजे केवल उसी लोटे से वर्ग के लिए संभव है जिसके

ज्ञान में या तो पूंजी है या राजसत्ता है। वह केवल भांग की इतनी पसोम खाजादी चाहता है।

यह जितनी महत्वपूर्ण बात है कि प्रकृति नियंत्रण ही इतना उत्पादन करने में समर्थ है जितना कि जगत् का प्रत्येक व्यक्ति विवेकपूर्ण भांग कर सके। पर प्रकृति इतना उत्पादन नहीं कर सकती कि प्रत्येक मनुष्य वासनामूलक भोग कर सके। इसलिए ऐसी वासनामूलक व्यक्तियों में शक्तिशाली लोग भोग के साधनों का हथियारने के लिए जल का प्रयोग करके और मत्स्यव्याय का राज्य होंगे।

उम मत्ता-भोग की राजनीति के खिलाफ और साथ ही उनके विकल्प में डा० लोत्रिया, आचार्य नरेंद्र देव और जयप्रकाश ने जो समाजवादी राजनीति (सोशलिज्म) का कार्य किया, वह काफी महत्वपूर्ण है—उम हद तक महत्वपूर्ण बिना हद तक उसका प्रति उभरे संकल्प था, क्योंकि उभी हद तक स्वभावतः लोक में 'संकल्प' फिर से उजागर हुआ। पर कांग्रेस की मत्ता राजनीति से सम्पर्कत यह भी विकृत हुआ—वह एक विचित्र बात है। यह राजनीति एक ऐसा दब है, जिससे नहीं चली तो शायी शक्ति यह पहरे ही से जाता है। उसके भंग की केवल डा० लोत्रिया ने पाया था, 'समाजवाद घबरा गया है साम्यवाद में, कम्युनिस्टों में। उस धरणाई में वह अपनी आत्मा की बेधने के लिए तैयार रहता है—फिर समाजवाद के मत में एक और विचार घुस गया है कि यदि देश की और दुर्दशा को बदलना चाहते हो तो शक्ति की जगहों पर पहुँचो, उसके बिना उसे कैसे बदल सकते हो? तात्कालिक मरुतता की राजनीति ने भी समाजवाद के स्वरूप की बहुत बिगाड़ा है। तब नया नतीजा होता है? सिद्धांत की ह्रासिन करने के लिए शक्ति हासिल करो। शक्ति को हासिल करने के लिए शोका बहुत समझौता करो। समझौता करते-करते शक्ति ही जाती है शिसलने की, और जब शिसलना शुरू करते हैं तो पूरा चक्र चल जाता है।'

डा० लोत्रिया के मजदूर आंदोलन, मैत मजदूर-किसान आंदोलन, मोहना आंदोलन, जाति लोड, दाम बांधी आदि आंदोलनों ने निश्चय ही उस समाज को जगाने, राजनीति की भुगतान में उससे अधिक शक्तिशाली करने के उद्देश्य से जन्म लिया था। और उसका एक हद तक लाभ भी हुआ। पर दुर्भाग्य से इस पूरे समय में शिसर राजनीति, दाब-पेंच वाली राजनीति, चापल में जोड़-तोड़ वाली राजनीति इतनी जबरदस्त चल रही थी कि एक हद के बाद लोत्रिया का समाजवाद और धर्मोद्धार तथा जयप्रकाश का सर्वोद्यम—दोनों उसके सामने निस्तेज हो गए।

१. 'सरकार से सहयोग और समाजवादी एकता', डा० लोत्रिया, पृ० १३

मांधी के बाद यह भी गतेथा निम्न हमने देखा है कि रहता है सरकार के ऐसा साक्ष्यवाद में सवस्था में और पश्चिमवर्तन या सवस्था वायकुद गांधी का विरोध में ही सिल रचना मत या भाग 'उदम्' में, संकल्प उनना ही मानविय ने भी केवल निम्न विष्णु पक्ष है। विष्णु की रक्षा न उसका सुरक्षण थी

गांधी न उम उनके दोनों उत्तरा ह्रासक, एहां ही (भुगतान, गांधी की) हम राज्य की मम प्रकाशना में हम और आजादी की गांधी, जयप्रकाश आन में नईय इव ही से शक्तिमा और शक्ति ही इन्ने शप करनी शक्ति परों तो 'सिद्धांत' के विज्ञान और शक्ति विज्ञान के यही एकांगना र

शक्ति शक्ति है, और उनके वि प्राचीन संगीत

मता है। यह केवल भाग की इतनी समीप है कि प्रकृति निरन्तर ही इतना उत्पादन करते का प्रत्येक व्यक्ति विवेकपूर्ण भाग कर सके। यह यकनो कि प्रत्येक मनुष्य वास्तवामूलक भाग मूलक व्यवस्था में व्यक्तिगतनी लीग भाग के का प्रयोग करने और मध्यमवर्ग का राज्य

न के खिलाफ और साथ ही उसके विकल्प देव और जयप्रकाश ने जो समाजवादी राज-वस्था पर आती महत्वपूर्ण है—उन हद तक प्रति उनमें संकल्प था, क्योंकि उसी हद तक न से उजागर हुआ। पर कांग्रेस की मता विकृत हुआ— यह एक विचित्र बात है। यह मते लटके नहीं तो आती संकेत यह पहले ही बन हा। कांग्रेस ने भाग था, "समाजवाद म्बुनिष्ठा" है। इस अवसरपर वे यह अपनी रहता है— फिर समाजवाद के मन में एक दि देव को और दुःस्थता को बदलना चाहते हैं। उनके दिना उसे कैसे बदल सकती हा ? वे भी समाजवाद के स्वरूप को बहुत बिगाड़ा म्बुनिष्ठा को शामिल करने के लिए अक्ति करने के लिए थोड़ा बहुत सम्भोगीना करी। जाती है किमलने की, और जब किमलना बात है।"

मोलन नेत्र भगवत-विमान आंदोलन, महिला की आदि आंदोलनों ने निरन्तर ही इस भवाज में उगम अतिक्रमणकारी करने के उद्देश्य पर हद तक लक्ष्य था हुआ। पर दुर्भाग्य से के दांव-पेच वाली राजनीति, आवास में लोड-अवस्था चल रही थी कि एक हद के बाद आतथ्य जयप्रकाश का सर्वोच्च— दोनों उसके

गांधी के बाद गांधी की लोक नीति या 'गांधी नीति' को नया हो गया कि वह भी सर्वथा निरस्त हो गई। क्या कोई एकांगिता गांधी में स्वयं थी ? हमने देखा है कि विरोध की अवस्था में, गांधीवाद के बारे में जो स्वरूप रहता है सरकार की व्यवस्था में उसका वह स्वरूप सर्वथा बदल जाता है। ऐसा माकतोवाद में नहीं है। नम्बूद्रिपाद के माध्यम में माकतोवादी विरोध की अवस्था में और मजदूरवादी सरकार की अवस्था में, दोनों में इतना गुणात्मक परिवर्तन या अंतर नहीं होता जितना गांधीवाद में। क्यों ? जब कुछ के मायजूद गांधी का प्रथम एक श्रेष्ठतम, 'मन' या 'भावना' का ही जगत् है। यह विरोध में ही स्थिति है। गणना में ही फलना है। पर समाज मन्त्रा, राज्य रचना मन या भावना से प्रमाण 'बहुम्' से नहीं होती। यह रचना होती है 'दुःख' से, संकल्प जगत्का स्वरूप है। और इसमें सहार और विनया कम रचना ही अनिवार्य और अपेक्षित है जितना कि निर्माण। गांधी अपने विरोध में भी केवल निर्माण थे। वे हजारों महर्षि और धर्म के केवल श्रद्धा और विष्णु पक्ष थे : विष्णु शिव के बिना निर्दिष्ट थीं, अज्ञेय थीं। शिव के बिना विष्णु को रक्षा न हो सकती। निर्माण हुआ गांधी के अर्थान्त में (प्रस्ता) परन्तु उसका संरक्षण और तर्जनिर्माण न हो सका शिव के बिना।

गांधी में एक शिव पक्ष के अभाव के ही कारण स्वयं महात्मा में और उनके दोनों उदात्तप्रकारी जयप्रकाश और लोहिया में राज्य के प्रति अत्यन्त-द्विगम्य, यहा तक कि यगन्मात्रिक श्रेया है। इन तीनों की विचारधारा (मूलतः गांधी की) तत्कालीन राजसत्ता विरोधी विचारधारा है। दरअसल, जब हम राज्य को समाज या लोक के समकक्ष या उससे स्वतंत्र मानने लगते हैं तो प्रकाशान्त में हम राज्य को लोक से अलग और अकिञ्चलीकी मानकर निरंकुशता और तानाशाही को खोज रहे होते हैं। भावद इसी विरोधाभास के कारण गांधी, जयप्रकाश, लोहिया और आचार्य तरंग देव जैसे मुख्य राजसत्ता से शानि में सर्वेव बचते रहे हैं। इन्होंने रता था कि राजसत्ता से अलग रहने हुए ही ये साहित्य और मन्त्राश्रम की नैतिक शक्ति पर चल सकते थे राजसत्ता में शानि हो इन्होंने अपनी अभिप्रायों को देनी शुरू की। और, हम मानारण भाग अपनी शानि एरोशा दे ही नहीं सकते क्योंकि हम 'व्यक्ति' हो रहे नहीं, हम को 'लोक, बहुल' हो गए। पुरे कार्यमें राजसत्ता और राजनीति की एकांगिता और निर्बीयता का शही कारण है। स्वभावतः कांग्रेस के प्रतिपक्ष में भी कि में विरोधी इल है और उनकी राजनीति है उन सब में इन तीनों लोगों में यही एकांगिता और निर्बीयता सर्वत्र उजागर है।

व्यक्ति और समाज के बिना 'लोक' नहीं है, लोक के बिना राष्ट्र नहीं है, और उनके बिना राज्य नहीं है। इसी का मर्म झुलता है हमारे यहां के आचोन संगीत और साहित्य में— विशेषकर नाट्य में, नाव विद्या में, जहाँ

स्वरो और रम का मूजल और निष्पत्ति हो जाने के लिए नहीं, वांछने के लिए नहीं वरन् विशिष्ट प्रकार के व्यक्तियों में एक प्रांतिक विद्रोह कायम करने (समाज बनाने) के उद्देश्य से ही जानी थी। कल-साहित्य का धर्म ही यही था कि व्यक्ति की मानसिकता के अंतर्विरोध को संकीर्णता को काटकर उसे सामाजिक, सृजक और मूलगत बनाए। हमारे यहाँ प्राच्य ही सत्य है, जो समाज को आनता है। अथप्रकाश जब यह बहते हैं कि राज्य का यह मिश्रण अन्धकार है इसे उत्पन्न कर सीधा कर दो, तो उनका लक्ष्य यही है कि जो आधार है—व्यक्ति और समाज, उन्हीं को व्यवस्थित कर राज्य सत्ता, उसकी राजनीति निर्भर हो। आज राज्य की राजनीति का ब्रह्म उल्टा भया है, हमें उलटकर इसके आधार पर रीति रीतों हमें 'स्वराज्य' का धर्म विकसित ही गयेगा।

परन्तु यह काम आसान नहीं है। एक काल का सुभारंभ हमारे वर्तमान में महात्मा गांधी के निधा। परन्तु हमें आज जो सोचने का कार्य दुर्भाग्यवश जबहोना है, नेहरू द्वारा हुआ। इनके राज्यकाल में समाज के, लोक के, राष्ट्र के अस्तित्व से राज्यसत्ता इतनी विकराल और गंधर्वक हुई कि उसके अन्तर्गत समाज में शांति लोहपा, अथप्रकाश, जेठ की कृपणाती, आचार्य गौड़ सेव सम्प्रदाय आदि के इतने काम, उन्हीं नेगस्या, समुचित और सृजक बन नहीं स पाई।

गांधी के द्वारा आरंभ किया गए काम को अक्षरों में सागे बढ़ाया जाए ? जनता संघ (बहु संघटित राजनीतिक दलों का एक संगठन) ने कांग्रेस राज्य को हराकर अथप्रकाश के तैलक में मन्त्रालय गांधी की रूपान्ति पर पहला संकल्प पड़ी किया था "आधारना जी ने जिस कार्य का सुभारंभ किया उसे हम पूर्ण करेंगे।" निरंकित कैसे ?

जनता संघ परिस्थितियों को देन है। इसे हम अपना मूलन, आधुनिकीकरण बना लें। अथ व्यक्ति गण अंकित हो उदय दें। जिन कारणों से पक्षा का व्यक्ति 'उद्धिबिजुपन' करने को विवरा हुआ है, उन्हें धीरे-धीरे निरुद्ध वें नार्किकर में अंकित घपने 'समाज' की प्राप्त हो गके। 'उद्धिबिजुपन' हीकर हमारा 'हम' 'मै' को गया। अपने-अपने अहंकार में बंट गया। अपने 'मै' के स्वार्थ के सापने न समाज रह गया, न देश, न राष्ट्र, नैतना। इनके लिए शिक्षा में बुद्धिवादी परिवर्तन ही। साथ ही घर में, पहोस में, गृहस्थों में लगातार ऐसे कार्यक्रम किए जाएं जहाँ एक दूसरे के संबंध में हमारा 'मै' आए। सामाजिक संस्कार शते ही 'मै' 'हम' हो जाएँगा, क्योंकि हमारे भीतर हमारा 'मै' 'मर' नहीं है—यस का बीज, मगयनी का बीज। 'मकान्त बीज' हमारे अंतर सुपुत्र पड़ा है, इसे जगाकर चैतन्य में प्रांग्रतित कर देना है। फिर धीरे-धीरे प्रजा के अनुचित, विनय और जीवन में अनुप्राणित उदात्त लोक-चैतना उत्पन्न

होगी। लोक-तंत्र को की 'विमोक्षणा' प्रजा को ही नष्ट कर डाले निरुद्ध हुई (यस 'मै' कर) इस परिवर्तनी प्रजातन्त्र में राज्य-कार्य को पूरा करने वर्तमान राज्य-व्यवस्था

जिस समता (बोध) और अंततः पुरस् मदा प्रत्येक सनदा ही, भाव हो हम अपने जनता में प्रपन्न किया करने होंगे। यद्यपि यह विरोधी हो गई है।

यह याद रखना केवल वर्तमान में ही नोता नार्किक समाज का राज्य पर अंधा रहे एक आन्तगत मुनाते की है, इनका पनांगता ही अर्थोकि गुमरागी स्वतंत्रता

स्वतंत्रता में जीना, इस जीवन में होने का अर्थ है—सबसे एकतरम मन्त्रालय के वें अन्वय ही नृका था या। उनके बाद मन्वैदय, राष्ट्रीय में अन्वय गव कृष्ण यह जीवन मन्वैद

निष्प्राण है। हमारी सारी संस्कृति, समूचे जीवन का 'बीज' ही है 'उत्सव'। इसी उत्सवात् वृक्ष के पुष्प हैं अनुष्ठान, पूजा, गुरु-भक्ति, मान्तापूजा, नाति भाव, लीला, साहित्य, सर्गाति और ज्ञान का महानाव, और इसी का फल है मुक्ति का मोक्ष।

हमारा यह राष्ट्रीय सांस्कृतिक 'वृक्ष' जिस धरती पर उगा और बढ़ा है उसका आधार ही है समता, अभ्युदय और निःश्रेयस। यही आधार ही गद्य हुआ हमारी गुलामी में, अंगरेज की राजनीति में और कर्मकाण्ड में। उसमें हमें हमारी धार्मिक बुनियाद में ही 'धर्मनिरपेक्षता' के नाम पर उलाहलन फेंक देना। हमकी शिक्षा नीति ने धर्म के प्रति, धार्मिक संस्थाओं और संस्कारों के प्रति और अंततः संपूर्ण जीवन के प्रति प्रतिनिधता का भार पैदा किया।

व्यक्ति और समाज का संस्कारक सातत्य है धर्म। जब भी व्यक्ति और समाज में धर्म, धर्म, कर्म— इन तीनों में से किसी एक के प्रति एकानिष्ठा का भाव पैदा होता है तो हमने उत्पन्न विकास में सबसे पहले अटक जाता है यही धर्म, अपनी कीमलता और अति संवेदनशीलता के कारण। स्वामी रामकृष्ण परमहंस और निवेकानंद ने लेकर स्थायी दयानंद, तिलक और गांधी तक जब अंगरेजों ने यह देखा कि ये महापुरुष राजनीति नहीं धार्मिक नवजागरण और धार्मिक परिशुद्धि के लिए अपने कार्यरत हैं तो वे धरम गण। अंगरेजों ने बदनाम करना और धर्मक तरह से दबाव डालना शुरू किया कि 'ये राजनीति में धर्म घुसेड़ रहे हैं' पर इन महापुरुषों ने भद्रतर्पण की पुनः समझा की पकड़ बनाया था और जीवनपर्यंत उसी धार्मिक चेतना का नमः निरंतर प्रज्वलित करते का अथक प्रयत्न किया। इन महापुरुषों ने हर तरह से एक ही धर्म की बात कही है कि धार्मिक चेतना का सतत निरंतर परिशुद्धि और परिष्कार नहीं किया जाए तो यही चेतना सबसे जल्दी और सबसे पहले विकार से दूषित हो जाएगी जब कि यही चेतना संपूर्ण जीवन का उत्सव है, केंद्र और आधार है। जो मूल काम से बढ़ेगा वही तो सारे जीवन में चरितार्थ होगा। समाज उत्सव परिशुद्धि, परिष्कृत होकर प्रज्वलित हो जाए तो पूरा समाज, राज्य और राजनीति, जीवन और व्यक्ति को सारी कलाएँ, सारे उद्योग सहज ही शुद्ध और परिष्कृत हो जाएंगे। हमारे इतिहास में यह संकल्प जड़-जड़ हुआ है नव-नव भारत चेतना के ऊंचे शिखर पर पहुँचा है। इतिहास में इसका पहला नाश हमें अंगरेजों से मिलना है। 'धर्म नमभाव' लोगों का जब संगम होता है, जब राष्ट्र जगता है और देश का उत्थान होता है। अर्थात्, जब प्रत्येक 'स्व' को स्वधर्म अर्पण होता है और सारे स्वधर्मों के संगम से राष्ट्र को जो 'चिति' प्राप्त होती है। फिर उसी से तबका अभ्युदय होता है। 'स्व' का अभ्युदय अर्थात् राष्ट्र का अभ्युदय। 'स्व' का निःश्रेयस की प्राप्ति अर्थात् पूरे देश की निःश्रेयस की प्राप्ति। हमारे समय में यही संकल्प महात्मा गांधी का था। पर उनके लोक

विपरीत का
कुफल प्राप्ति

हमें प

एक नहीं मे

पश्चिम का

'रेलिया' का

के नाम पर

स्वतंत्रता का

भवकाय है

गांधी की

रचना ही

व्यक्ति

रेलिया का

में, स्वयं

कर्म में, स्व

अथवा नहीं

में धर्मधर्म

महात्मा का

का अर्थात्

ऐसे जो अर्थात्

लोक का

दश

ब्रह्मचर्य का

समय में

गांधी। अर्थात्

कर्म भी उत्सव

नीति नहीं

य स्वयं स्वयं

होने हुए भी

होने का

प्रति होने का

रण। गांधी

संकल्प अर्थात्

हमारे

वृक्ष में अभ्यु

मूषे जीवन का 'बीज' ही है 'उल्लास'।
पूजा, पुनः-निश्चित, नाल्पुत्रा, पालि भाष,
महाभाव, और इसी का फल है मुक्ति

बुद्ध जिम धरती पर उगा और बढ़ा है
और निःशेष ! यही साधारण मनुष्य
जनों में और कायेस राज्य में। दुर्लभ
निर्लेखता के नाम पर उल्लास के
प्रति धार्मिक सभ्यताओं और संस्कारों के
निर्लेखता का भाव पैदा किया।

यह नान्यत्व है धर्म। जब भी उचित
हो तो मैं ने किसी एक के प्रति एक-
दूसरे उल्लास विचार के सबसे पहले मनुष्य
प्रति सर्वप्रथम उल्लास के कारण। स्वामी
के देकर स्वामी स्वामी, तिरुक् और
के ने महापुरुष राजनीति नहीं धार्मिक
लिए इन्ने कायेसत होंगे वे घबरा गए।
तरह से उल्लास उल्लास शुद्ध किया। ये
महापुरुष ने भारतवर्ष की सभ्य संस्कृत
त उत्ती धार्मिक चेतना को नए सिरे से
। इन महापुरुषों ने हर तरह से एक ही
का जल निरंतर परिशुद्धि और
ना करने लगे और नवने पहले विकास
ग संपूर्ण जीवन का उल्लास है, केंद्र और
ही तो गारे जीवन में कार्यवाही होगा।
ए प्रकाशित ही जाए तो पुनः समाप्त,
त को मारी कलाप, गारे उल्लास सहज
ए उल्लास में यह नकल जब-जब हुआ
एर बढ़ा है। इतिहास में इसका पहला
समस्या। धर्म का जब समाप्त होता है,
त होता है। यथा, जब प्रत्येक 'स्व' को
के संगम में राष्ट्र की वा 'चिति' प्राप्त
होता है। 'स्व' का अस्तित्व संपूर्ण राष्ट्र
प्रति प्रथम पुनः देव को निःशेष की
महात्मा लक्ष्मी का था। एर उसके एक

विपरीत जवाहरलाल नेहरू को तथाकथित 'धर्मनिश्चय' राजनीति थी जिमका
कुफल आज हम लोग रहे हैं।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि राज्य स्वयं किसी 'रेलिवन' विभेग का
पक्ष नहीं लेता, परन्तु राज्य मारे 'रेलिवन' को विकसित होते देता- यह है
पश्चिम की धर्म निश्चयता। इमोलिए पश्चिम के प्रजातन्त्र के इतिहास में
'रेलिवन' का सबसे अधिक विपक्ष हुआ है। परन्तु हमारे यहां धर्म-निश्चयता
के नाम पर धर्म के प्रति, धार्मिक चेतना के प्रति, धार्मिक गुरुओं के प्रति
ग्लानि का, भ्रष्टा और अपमान का जो मनुष्य इन तीन दशकों में पैदा हुआ वह
अधिकतर है इस देश के प्रति, और विश्वासपात है उस राष्ट्र के प्रति। 'महात्मा
गांधी की यह बात कि "चूंकि मैं धार्मिक हूँ तभी राजनीति में हूँ" भरीन याद
रखनी होगी।

धार्मिक नहीं है प्रार्थना है ? पर ग, मना से, कुर्मी से, जनता से, अज्ञानों से,
रेली और जय-जयकार से ? जो नहीं। धार्मिक का अंत है अपने भीतर—'स्वधर्म'
में, 'स्वराज्य' में। जो स्वधर्म में भीतर है वहीं स्वराज्य के, राजतन्त्र के
धर्म में व्यवहार में, चरित्र में प्रकट हो जाए, तभी तो सारा रूपक सफल होगा
सम्बन्ध नहीं, यहाँ है हमारा सांस्कृतिक विपण। जो लोक में है वहीं जिम नान्यक
में सौम्यकल हो जाए वही है हमारा लोकतन्त्रक जैसे बुद्ध, रामकृष्ण पन्नहुम,
महात्मा गांधी। बुद्ध को लोकतन्त्रक कहते हुए नागार्जुन ने लोकतन्त्रक के स्वरूप
की बताया है वदताम् बन्धु, अतस्थानाम साधु, लोथानाम लोकतन्त्रक।
मैंने लोकतन्त्रक से गौतम बुद्ध जिमके फल थे सातवाहनों के राज्य। जब ऐसा
लोक था तो उसका फल था यह राजधर्म, जिसका साधु है चाणक्य।

एसा लोक का निर्माण, स्वयंवा लोकोदय, हमारे पुरखों ने सातवाहनों और
ब्रह्मदण्डन के दो धूर्तों के एक विदु रूप में परिणत करके किया था— हमारे
समय में जिसके ज्वलंत उदाहरण है विवेकानंद, स्वामी रामानंद, धर्मजिद,
गांधी। आत्मदर्शन और ब्रह्मदर्शन के बोध में जो कड़ी है कर्म की, राजनीतिक
कर्म और एसी मनुष्य से लेना होगा, तभी यह फल की प्राप्त होगा। यह राज-
नीति तभी लोक-नीति होगी जब इसके नेतागण यह देखे और संकल्प ले कि
वे स्वयं अपने कर्म की मनी है भोक्ता है इसलिए उनका प्रत्येक कर्म उनका
होने हुए भी हमारे के प्रति वाप है, उनका प्रत्येक व्यवहार अपने प्रति होने
हूए भी समाज के प्रति वाप है, और उनका प्रत्येक अज्ञान और भोग अपने
प्रति होने हुए भी देश के प्रति वाप है। यही धर्म है। धर्म भाते संपूर्ण साव-
रण। तभी हमारे देश प्रत्येक शान, प्रत्येक जय, प्रत्येक तप के अंत में यह
संस्कृत्य अनिश्चय है : 'न भयं'—यह अर्थ होगा नहीं।

हमारे यहां एसा अत्यंत प्रचलित लोकतन्त्रक है : एक सुगना धा जो किसी
बुद्ध से अमृतफल अपनी बोध में उठाए, कहीं किसी को देने आ रहा था।

वह आकाश में उड़ा जा रहा था और पीछे से लगातार आवाज आ रही थी—सावधान ! मुड़कर पीछे देखा तो उसी अणु बनकर रहस्य हो जाफेगा !

भारतीय मानस वायु-धार अपने अतीत में इतना क्या जाता है ? वह दर-दरमय अपने उस मूल की ओर, अपने 'बीज', अपने आदिमाल की ओर लिखकर जाता है उससे जुड़ने के लिए । एक बार मूल से जुड़ जाए तो स्वभावतः वह अपने वर्तमान में रहेगा, अपने पूर्ण 'स्व' और अपने पूर्ण ऐतिहासिक गीत-व के साथ जिएगा और सुफल होगा ।

□ □

डॉ. लक्ष्मीनारायण गौतम